भाषालोचन

卐

— लेखक —

पंडितप्रवर आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी,

एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति), बी० टी०, एल्० एल्० बी०, साहित्याचार्य ।

❀

— प्रकाशक —

हिन्दी-साहित्य-कुटीर,

बनारस

[संवत् २०१० वि०]

—प्रकाशक—

द्वारिकादास गुजराती (राजा बाबू)

हिन्दी-साहित्य-कुटीर,

हाथी गली,

बनारस—१

मूल्य ६)

— मुद्रक —

राममोहन शास्त्री,

श्रीगोविन्द मुद्रणालय, बुलानाला,

बनारस।

संभाषा

भाषालोचन ग्रन्थ क्यों लिखा गया इसकी व्याख्या इस ग्रन्थकी विस्तृत प्रस्तावनामें की जा चुकी है। यह संभाषा केवल दो तीन भ्रमोंके स्पष्टीकरणके लिये प्रस्तुत की जा रही है।

आजकल जहाँ-जहाँ हिन्दीका शिक्षण हो रहा है वहाँ-वहाँ पाठ्यक्रममें भाषाविज्ञानको स्थान देनेकी परम्परा चल पड़ी है। यह परम्परा यद्यपि गुरुवर आचार्य श्यामसुन्दरदासजीने चलाई थी, किन्तु यह विषय और इसका शिक्षण दोनों ही छात्रों और अध्यापकोंके लिये अभिशाप हैं। क्योंकि—१. भाषाओंके विकास और स्वरूपके सम्बन्धमें अभीतक कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सका है। २. भाषा-शास्त्र एक स्वतन्त्र विषय है जिसका किसी एक विशिष्ट साहित्यके अध्ययनसे सम्बन्ध नहीं है। वनस्पति-विज्ञान, जीवविज्ञान, और नृविज्ञानके समान ही यह एक अलग विज्ञान है। अतः इसे अलग एक स्वतन्त्र विषय बनाकर रखना चाहिए, हिन्दी साहित्यके साथ इसका मिथ्या और अवाञ्छनीय गठबन्धन करके साहित्यके अध्येताओंके लिये कालपाश उपस्थित करना ठीक नहीं। ३. भाषाशास्त्र सीखने और सिखानेवालोंको संसारकी समस्त भाषाओंका व्यक्तिगत ज्ञान होना चाहिए। इतना भी नहीं तो कमसे कम एक भाषा-गोत्रकी सब बोलियोंका तो सूक्ष्म ज्ञान होना ही चाहिए। ४. तथ्य तो यह है कि केवल एक बोलीकी सूक्ष्मता जानने और समझनेके लिये एक जीवन अपर्याप्त

है। अतः सद्वृत्ति तो यही है कि हिन्दीके पाठ्यक्रमसे तत्काल भाषाशास्त्र निकाल दिया जाय क्योंकि जो व्यक्ति कमसे कम संस्कृत (हिन्दी योरोपीय) गोत्र को सब भाषाओंका पूर्ण ज्ञाता नहीं है वह भाषा-शास्त्र पढ़ने या पढ़ानेका अधिकारी ही नहीं है। ५. आज जितने भी अध्यापक विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें भाषा शास्त्र पढ़ा रहे हैं, सब विदेशी लेखकोंके परिणामोंको आँख मूँद कर मानते और पढ़ाते चले जा रहे हैं, यहाँतक कि जिन लोगोंने भाषा-शास्त्रपर पोथियाँ भी लिखी हैं, उन्होंने विदेशी ग्रन्थोंका अनुवादमात्र किया है। हमें इस मिथ्या पांडित्य और मिथ्याडम्बरसे तत्काल मुक्त होना चाहिए और छात्रोंको भी इस अनृत मायासे मुक्त करना चाहिए। ६. आजकल ग्रिम, वर्नर और ग्रासमानके नियमोंको निरर्थक महत्त्व दिया जा रहा है। किन्तु उन्होंने जैसे सापवाद नियम निकाले वैसे तो न जाने कितने सहस्र नियम हमारे प्राकृत वैयाकरणोंने बना डाले हैं। ७. प्रायः भाषाशास्त्रके पंडित लोग जब परीक्षक बन जाते हैं तब अनेक शब्दोंकी व्युत्पत्ति पूछा करते हैं। वे क्यों समझते हैं कि प्रत्येक छात्र संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशका कोश रटे बैठा है? ८. जिन्होंने भाषाशास्त्रपर ग्रन्थ लिखे हैं उन्होंने आँख मूँदकर जो प्रतिलिपि की है उसके प्रमाण 'लखनऊ' और 'नखलऊ' शब्द हैं जिन्हें लोग भूलसे ध्वनिविपर्ययका उदाहरण समझते हैं किन्तु हैं वे अक्षर-विपर्ययके उदाहरण। इस प्रकार विदेशी और भारतीय लेखकोंके मतसे हमने जहाँ वैमत्य प्रकट किया है वहाँ सकारण स्पष्ट भी कर दिया है। ९. अनेक भाषाओंसे साक्षात् ज्ञान होनेके कारण हमें इस ग्रन्थकी रचनामें बड़ी सुविधा हुई है फिर भी जिन भाषाओंसे हमारा परिचय नहीं है उनके लिये हमने दूसरोंको प्रमाण माना है। उनकी प्रामाणिकता कितनी

है इसका एक उदाहरण यह है कि लंदनके एक प्रतिष्ठित भाषा-शास्त्रके आचार्यने अपने ग्रन्थमें भारतीय भाषाओंका परिचय देते हुए 'हिन्दुस्तानी'के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग समझाते हुए उदाहारण दिया है—बेटी = लोफ़ (रोटी); बेटियाँ = लोव्ज़ (रोटियाँ)। हम उन्हें दोष नहीं देते क्योंकि संसार भरकी भाषाओंसे परिचित होना और संसार भरके शब्दोंका अर्थ जानना किसीके लिये भी संभव नहीं है। अतः अपनेको भाषा-शास्त्रका पंडित समझना केवल दम्भ है।

इस स्थितिमें विभिन्न विश्वविद्यालयोंके हिन्दी विभागोंके अध्यक्षोंको यह मिथ्याडम्बर और अनृताचार दूर करके छात्रोंका कल्याण करना चाहिए और योरोपीय लेखकोंकी प्रतिलिपि न करके स्वयं अपने अध्ययनसे भाषा-विवेचन करके, जितनी भाषाओंका ज्ञान हो उतनी ही भाषाओंके सन्बन्धमें प्रत्सक्ष अनुभवसे लिखना चाहिए। भारतीय विश्वविद्यालयोंके अधिकारियोंको चाहिए कि वे भाषा-शास्त्रको वैज्ञानिक विषयोंके समान अलग स्थान दें जैसे कुछ विदेशी विश्वविद्यालयोंमें नृविज्ञान (एन्थ्रोपालौजी) के साथ या स्वतन्त्र विषयके रूपमें इसका अध्ययन कराया जाता है।

आजकल विश्वविद्यालयोंमें पी-एच्० डी० और डी० लिट्० के नामपर जो व्यापार चल रहा है उसमें यदि एक-एक भारतीय और विदेशी भाषापर शोध-कार्य कराया जाय तो वास्तविक साहित्यसेवा भी होगी और उनको कृतिका कोई उपयोग भी होगा। अभीतक भाषाओंपर जितना विचार हुआ है, सब कल्पनापर आश्रित है, अतः उसे विज्ञान नहीं कहना चाहिए। इसीलिये हमने इसे भाषा विज्ञान न कहकर भाषालोचन कहा है। आजतक इस विषयपर जितनी पोथियाँ लिखी गईं सब इतनी

दुरूह पारिभाषिक शब्दावलीमें लिखी गई कि उनमें गति होना किसीके लिये संभव नहीं था, अतः हमने ऐसी साधारण बोलचालकी भाषामें इस ग्रन्थकी रचना की है जिससे इसका विषय सर्वबोध हो सके।

यह ग्रन्थ मैंने हिन्दी-साहित्य सम्मेलनकी साहित्य-समितिकी प्रेरणासे लिखना प्रारम्भ किया था। मुझे हर्ष है कि मेरे मित्र राजा बाबूने इसे प्रकाशित करानेकी तत्परता दिखाकर इसे शीघ्र सुलभ कर दिया। इस ग्रन्थकी रचनामें मैंने आजतक प्रकाशित सभी स्वदेशी और विदेशी भाषाओंमें लिखे हुए ग्रन्थोंका प्रयोग किया है। उन सभीके लेखकोंके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं उन सब मित्रोंका आभारी हूँगा जो मुझे इस ग्रन्थकी भूलों, दोषों या त्रुटियोंकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करनेकी कृपा करेंगे।

उत्तर बेनिया बाग, काशी
मकर संक्रान्ति, सं० २०१०
१४ जनवरी, सन् १९५४

सीताराम चतुर्वेदी
एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति), बी० टी०, एल् एल्० बी०, साहित्याचार्य

भाषालोचन

विषय-मीमांसा

प्रस्तावना

पहली पाली

[बोलियाँ क्यों और कैसे आईं ? उनकी बनावट और उनका फैलाव]

दूसरी पाली

[ध्वनियों, शब्दों, अर्थों और वाक्योंमें क्यों और कैसे हेरफेर होते हैं ?]

तीसरी पाली

[संसारकी बोलियाँ और उनके बोलनेवाले कहाँ-कहाँ हैं ?]

चौथी पाली

[हिन्दी कैसे बनी, सँवरी और फैली ।]

—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भाषालोचन

१

सीधी बटिया

क्या और क्यों ?

बोली आठ कोसपर बदले—हे भगवान् ! इतनी बोलियाँ—बोलियाँ आपसमें मिलती-जुलती भी हैं ?—भाषालोचन क्यों, भाषा-विज्ञान क्यों नहीं ?—भाषालोचन किसे कहते हैं ?—भाषालोचनमें क्या होता है ?—भाषालोचन और दूसरी विद्याएँ—भाषालोचनसे घबराइए मत—यह पोथी क्यों ?—भाषाकी छानबीन करनेके लिये सीधी बटिया ।

§ १—बोली आठ कोसपर बदले

अपनी इस धरतीपर जहाँ कहीं भी मनुष्य रहते हों, वहाँ-वहाँ घूमनेकी साध लेकर आप झोली-डंडा उठाकर चलें तो अपने ही देशमें दो-चार-सौ कोस धरती नाप लेनेपर आपको इतने ढंगोंकी इतनी बोलियाँ बोलनेवाले मिल जायँगे कि आपको उनकी एक बात समझना दूभर हो जायगा और आप जी थामकर, माथा

पकड़कर बैठ रहेंगे, धरतीकी फेरी देनेका सारा हियाव आपका ठंडा पड़ जायगा।

आपने न जाने कितनी बार बड़े-बूढ़ोंके मुँह सुना होगा—

चार कोसपर पानी बदले, आठ कोसपर बानी।
बीस कोसपर पगड़ी बदले, तीस कोसपर छानी॥

[चार कोस या आठ मीलपर पानीका स्वाद बदल जाता है, आठ कोस या सोलह मीलपर बोलीका रंग-ढंग बदलने लगता है, बीस कोस या चालीस मीलपर ओढ़ने-पहननेका ढंग या पगड़ी लगानेकी चलन बदल जाती है और तीस कोस या साठ मीलपर घर-छप्पर बनाने का ढंग बदल जाता है।] हमारे-आपके घरसे, गाँवसे, न जाने कितने लोग तीरथ करने निकलते हैं और इनमेंसे कुछ तो अपने पैरों ही चारों धाम कर आते हैं, पर पूरब-पच्छिम-दक्खिन-उत्तरके सब तीर्थोंके पंडे अपने-अपने यजमानोंकी बोलियाँ ऐसे फर्राटेके साथ बोलते हैं कि तीरथ करनेवाले यही नहीं जान पाते कि बदरीनाथ, वैद्यनाथ, रामेश्वर और द्वारिकाकी बोलियोंमें कुछ बिलगाव है भी या नहीं।

§ २—हे भगवान्! इतनी बोलियां!

इतनी दूर क्यों? आप काशीसे प्रयागतक ही पैदल विन्ध्य-वासिनीजीका दर्शन करते हुए चले चलें तो काशीमें आपसे पूछा जायगा—"केहर् जइबऽ?" [आप कहाँ जायँगे?], विन्ध्याचल पहुँचते-पहुँचते आप सुनेंगे—"केहर् जाब्यऽ?" और प्रयागमें सुनाई पड़ेगा—'केहर् जाबो?" अलग-अलग परदेसोंकी बात जाने दीजिए। कई बोलियाँ बोलनेवालोंकी एक ही बस्तीमें भी आपको बोलनेके ढंगका ऐसा बहुत-सा अलगाव मिल जाता है।

कभी-कभी तो एक ही साथ बसनेवाले और एक ही बोली बोलनेवाले लोगोंमें भी बोलनेका ढंग एक दूसरेसे अलग मिलता है। काशीमें—"वह गया था"—के लिये कहा जाता है—"ऊ गयल् रहल्" किन्तु उसी बातके लिये काशीके अग्रवाल कहते हैं—"ऊ गवा रहा।" यही नहीं, आप संसारके किसी भी घने बसे हुए देशमें कहीं भी सौ-पचास मील निकल जाइए तो आपको न जाने ऐसी कितनी बोलियाँ सुननेको मिलती चलेंगी जो या तो आपकी बोलीसे मिलती हो नहीं होंगी या मिलती-जुलती होनेपर भी ठीक-ठीक आपकी समझमें नहीं आ सकेंगी। घूमने-फिरनेमें आपको झंझट जान पड़ती हो और आपके पास कोई ऐसा अच्छा रेडियो ही हो जो संसार-भरके रेडियो-घरोंकी बोलियाँ पकड़ सकता हो तो आप एक पूरे दिन-रात उसकी खूँटी घुमा-घुमाकर संसार-भरके रेडियोघरोंकी ही बोलियाँ सुन लीजिए तो आपके कान खड़े होने लगेंगे और जब मैं आपको बताने लगूँगा कि संसारमें बसनेवाले दो अरब मनुष्य २७९६ (सत्ताईस सौ छानबे) बोलियाँ बोलते हैं तब तो आपका माथा भन्ना उठेगा, सिर चकराने लगेगा, झाँई आने लगेगी और फिर आप आँख-मुँह फाड़कर बिना पूछे, बिना कहे चिल्ला उठेंगे—हे भगवान्! इतनी बोलियाँ!!

§ ३—बोलियां आपसमें मिलती-जुलती भी हैं।

पर यह न समझिए कि ये अट्ठाईस सौ बोलियाँ एक दूसरीसे कहीं दूर हैं या उनमें किसी बातमें कोई मेल या लगाव है ही नहीं। हम-आपमेंसे न जाने कितने लोग, न जाने कितनी दूरतक, न जाने कितनी बार घूम आए होंगे; एक बस्तीसे दूसरी बस्ती, एक धरतीसे दूसरी धरती और एक समुद्रसे दूसरे समुद्रतक आ-जा भी चुके होंगे, पर हममेंसे ऐसे कितने लोग होंगे जिन्होंने कभी

पल-भर भी यह सोचा हो कि हम बोलते ही क्यों हैं, बोलते हैं तो सब एक ही बोली एक ही ढंगसे क्यों नहीं बोलते, क्या बिना बोले काम नहीं चल सकता, इतनी बोलियाँ आ कहाँसे गईं, ये अलग-अलग बोलियाँ क्या एक दूसरीसे मिलती-जुलती हैं और उनमें बहुत-सा हेर-फेर, अदल-बदल, जोड़-तोड़ कैसे होता रहता है। पर सभी तो एकसे नहीं होते। हममेंसे कुछ ऐसे भी लोग निकले जिन्होंने कान खोलकर दो-चार-दस देशोंकी बोलियाँ सुनीं और मन लगाकर, ध्यान देकर सीखीं तो उन्हें यह जानकर बड़ा अचम्भा हुआ कि उनमेंसे बहुतसी बोलियाँ आपसमें बहुत बातोंमें इतनी मिलती-जुलती हैं मानो वे दोनों एक ही सोतेसे फूटकर निकली हुई हों और अलग-अलग धरतीपर पहुँचकर वहाँका रंग-ढंग अपना लेनेसे अलग-सी जान पड़ने लगी हों। उन्होंने सोचा कि क्यों न ऐसी बोलियोंकी छानबीन की जाय और यह परखा जाय कि ये बोलियाँ कहाँसे आईं, इनका आपसमें कितना और कैसा मेलजोल है और किन-किन बातोंमें ये एक दूसरीसे अलग हैं। जब बहुत लोग इस ढंगकी परखके लिये लँगोट कसकर अखाड़ेमें आ उतरे तो ऐसी छानबीनके लिये एक नया 'परखका ढंग' बना लिया गया जिसका पहले भूलसे नाम रक्खा गया "फ़िलोलौजी", जिसे हिन्दीमें हम लोगोंने भी भाषा-विज्ञान कहकर पुकारा पर जिसका ठीक नाम है लिंग्विस्टिक्स या भाषा-शास्त्र या भाषाओंकी छानबीन।

§ ४—भाषालोचन क्यों ? भाषा-विज्ञान क्यों नहीं ?

"फ़िलोलौजी" सचमुच बड़े झमेलेका शब्द है। जर्मनी और योरपके देशोंमें "फ़िलोलौजी" का अर्थ है "किसी देशके साहित्यका अध्ययन"। इसलिये हम जिस ढंगसे बोलियोंकी

छानबीन और परख करना चाहते हैं, उसका नाम "फ़िलोलौजी" न होकर लिग्विस्टिक्स" या "भाषा-शास्त्र" या "भाषालोचन" होना चाहिए। इसे भाषा-विज्ञान कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि विज्ञान तो किसी बातको ठीक-ठीक जाननेकी वह कसौटी है जिसपर किसी एक बात या वस्तुको एक ढंगसे कसनेपर सभी देशोंमें सदा उसका फल एक ही होता हो। जैसे, हम चाहे किसी भी देशमें लोहेका गोला लेकर गरम करें तो वह बढ़ ही जायगा। इसे हम यों कह सकते हैं कि विज्ञानमें किसी भी बातके क्यों, कैसे, क्या और कहाँकी सच्ची जानकारी मिल जाती है। पर भाषाकी परखमें ऐसी बात नहीं कही जा सकती। अभी भाषाकी जाँच मनचाहे ढंगपर, अपनी-अपनी अटकलसे की जा रही है और की भी जायगी क्योंकि सब देशोंके मनुष्योंके मुँहकी भीतरी बनावट—गला, दाँत, ओठ, जीभ—एकसी होनेपर भी सब देशोंकी बोलियाँ अलग-अलग सुनाई पड़ती हैं। इसलिये बोलियों-की परख, जाँच और छानबीनको भाषा-विज्ञान न कहकर भाषा-लोचन (भाषा + आलोचन, भाषाओंकी जाँच या आलोचना) या (भाषा + लोचन, भाषा परखनेकी आँख) या भाषाओंकी परख कहनी चाहिए। हमारे यहाँ शास्त्रको लोचन* या आँख बताया गया है जिसके सहारे हम कुछ भी ठीक-ठीक देख और परख सकें। इसीलिये हमने भी इस पोथीका नाम भाषा-विज्ञान न रखकर भाषालोचन ही रक्खा है।

इसका नाम भाषाध्ययन भी इसलिये नहीं रक्खा कि इसमें

---

* सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।

[शास्त्र ही सबकी आँख है। जिसे यह आँख नहीं मिली, उसे अन्धा समझना चाहिए।]

सब भाषाओंका अध्ययन (मन लगाकर उन्हें ठीक ढंगसे पढ़ना) या उन्हें जानकर उनमें बोलना या लिखना-पढ़ना तो होता नहीं, इसमें तो संसारके सैकड़ों देशोंमें बोली जानेवाली सैकड़ों बोलियों-का आपसमें मिलान किया जाता है, एक दूसरीसे मिलाकर उनकी जाँच की जाती है कि कौन-सी बोली कहाँसे आई, कौन किससे कितनी मिलती-जुलती है, उसमें अपनापन कितना है और पराया-पन उसने कितना, कब और क्यों अपनाया। इसलिये हमने इस विद्याको भाषालोचन कहा है, भाषा-विज्ञान या भाषाध्ययन नहीं।

§ ५—भाषालोचन किसे कहते है ?

आपके घरमें भगवान्‌के दिए बहुत-से बच्चे होंगे और जैसे-जैसे वे बड़े होते रहे होंगे, वैसे-वैसे आप यह भी चाहते रहे होंगे कि जैसा-जैसा आप उन्हें सिखाते चलें, वैसा-वैसा वे बोलते भी चलें। पर हम आपसे पूछते हैं कि आप ही बोलते क्यों हैं और अपने बच्चोंको ही क्यों बोलना सिखाते हैं ? आप और वे न बोलेंगे तो संसारका या आपका क्या बन-बिगड़ जायगा ? फिर आप यह क्यों चाहते हैं कि आपका बच्चा वैसे ही बोले जैसे आप बोलते हैं ?

जैसे हम-आप खाना तो खाते हैं, पर कभी यह सोचने-समझनेका जतन नहीं करते हैं कि पेटमें जाकर वह खाना कैसे रंग बदलता है, कैसे पचता है, कैसे हमारी देहको लगता है, उसीके सहारे कैसे हमारी नसोंमें लोहू दौड़ता है, कैसे फेफड़ा साँस धौंकता है, कैसे भीतरकी नसें दिनरात सब काम करती हैं कैसे आँखें देखती हैं, नाक सूँघती है और कान सुनते हैं, ठीक वैसे ही हम-आप भी दिनरात बोलते तो रहते हैं पर कभी यह नहीं सोचते हैं कि मुँहसे बोलकर हम अपने मनकी बात क्यों और कैसे दूसरों-

को समझा देते हैं, क्यों हम सीधे "पानी दो" न कहकर 'कृपया थोड़ा जल मँगानेका कष्ट कीजिए" कहते हैं, क्यों हम लिखते-बोलते हुए अपनी बातको नई, अनोखी और सुहावनी बनानेके फेरमें पड़े रहते हैं, क्यों हम कविता बनाते हैं और क्यों पोथियाँ लिखते हैं, क्यों अलग-अलग देशोंके लोग अलग-अलग ढंगसे इतनी बोलियाँ बोलते हैं और वे लोग क्यों अपनी-अपनी बोलियोंमें आए-दिन नए-नए बोलचालके ढंग निकालते जा रहे हैं।

जैसे संसारकी सब बातोंका ठीक-ठीक भेद जानने-समझने और परखनेके लिये बहुत-सी नई विद्याएँ बना ली गई हैं, वैसे ही कुछ लोगोंने बोलियोंकी छानबीन करनेके लिये भी एक ढंग निकाल लिया है जिसे वे 'लिंग्विस्टिक्स' कहते हैं और जिसे हम भाषालोचन कह रहे हैं।

§ ६—भाषालोचनमें क्या होता है ?

जैसे हम लोग वैद्यक या डाक्टरी पढ़ते हुए यह सीखते हैं कि यह देह कैसे बनती है, कैसे बढ़ती है, इसके कितने अंग हैं, एक दूसरेकी देहमें कौन-कौन-सी बातें मिलती-जुलती हैं और किन-किन बातोंमें उनमें आपसमें बिलगाव है, वैसे ही भाषालोचनमें भी हम यह परखते हैं कि बोली क्यों और कैसे जनमी, कहाँसे आई कैसे बढ़ी, कैसे फैली, उसमें कितनी पुरानी ध्वनियाँ थीं, कितनी नई आईं, उन ध्वनियोंको बोलनेका ढंग पहले क्या था, अब क्या है, क्यों, कब और कैसे यह अदल-बदल हुआ, उसमें शब्द कैसे बनते थे, उनकी बनावट कैसी थी, उनमें हेरफेर कैसे हुआ या होता है, उसके शब्दोंके पहले क्या अर्थ थे, अब क्या अर्थ हैं, उसके बहुतसे अर्थ क्यों और कैसे बदले गए, उसमें वाक्य कैसे

बनते हैं, कैसे बदलते हैं, यह हेरफेर कब, कहाँ, कैसे और क्यों होता है, उस हेरफेरसे उसमें क्या नई बात आ जाती है, वह पहले कैसे बोली जाती थी, अब कैसे बोली जाती है, कौन-कौन-सी बोलियाँ आपसमें किन-किन बातोंमें मिलती-जुलती हैं, सब बोलियाँ किन-किन बोलियोंसे छिटककर क्यों और कैसे अलग हो गईं, संसार भरकी बोलियोंके ऐसे आपसमें मिलते-जुलते कितने ठट्ट या परिवार हैं, ये बोलियाँ कहाँ-कहाँ बोली जाती हैं, इनमें लिखावटकी चलन क्यों और कबसे चल पड़ी, यह लिखावट पहले कैसी था, अब कैसी है, उसमें कब-कब, कैसे-कैसे हेरफेर हुए, ये और ऐसी ही सब बातें भाषालोचनमें समझी और परखी जाती हैं।

§ ७—भाषालोचन और दूसरी विद्याएँ

यह नहीं समझना चाहिए कि भाषाकी छानबीन करनेका कुल काम भाषालोचनमें ही होता है। इसकी बहुतसी झंझटें तो व्याकरण, साहित्यशास्त्र, निरुक्त, शिक्षा और प्रातिशाख्य-वालोंने अपने-अपने ढंगसे अलग-अलग निपटा दी हैं।

व्याकरण—

कभी-कभी लोग यह भी समझनेकी भूल कर बैठते हैं कि व्याकरण भी भाषालोचन ही है। उन्हें यह पहले ही समझ लेना चाहिए कि व्याकरण तो किसी एक भाषा या बोलीके बने हुए या चलते हुए रूपको देख समझकर उस बोलीको भले लोगोंके बीच बोलने-चालने और लिखने-पढ़ने या उस बोलीकी पुरानी लिखी रक्खी हुई पोथियोंको ठीक समझने-पढ़नेका ढंग बता देता है, जिससे हम कोई भाषा या बोली बोलने-लिखनेमें या किसी पुरानी

बोलीमें लिखी हुई पोथीको समझनेमें ऐसी भूल न कर बैठें कि पढ़े-लिखे लोग उँगली उठावें या हँसी उड़ावें।

साहित्य-शास्त्र—

साहित्यशास्त्रमें यह बताया जाता है कि काव्यकी बनावट कैसे की जाती है या कैसे की जाय, उसकी क्या अच्छाई या बुराई है, उसे कैसे सँवारा-सुधारा जाय और उसकी बनावटमें कैसे नयापन, अनोखापन, चटक और रस भरा जाय कि वह औरोंका मन लुभा ले।

निरुक्त—

निरुक्त लिखनेवालोंने संस्कृतमें (वेदकी संस्कृतमें) आनेवाले ऐसे शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ समझाया जो नई संस्कृतमें काम नहीं आते या अनजान हो गए हैं और बताया कि ये शब्द कितने ढंगके हैं, कहाँसे आए और कैसे बने।

शिक्षा—

शिक्षामें यह बतलाया गया है कि वेदमें आनेवाली ध्वनियाँ मुँहके भीतरी अंगोंके कैसे मेलसे बोली जायँ और कैसे वेद पढ़ा जाय।

प्रातिशाख्य—

फिर प्रातिशाख्य बने, जिनमें यह बताया गया है कि किस शाखाके वेद पढ़नेवालोंको वेदके कौनसे शब्द और मन्त्र किस ढंगसे पढ़ने चाहिएँ।

दूसरी विद्याएँ—

पर इतनेसे हमारा काम नहीं चलता। बोलियोंकी ठीक-ठीक परख करनेके लिये हमें धरतीकी बनावटकी विद्या (भूगर्भ-शास्त्र

या जिओलौजी), धरतीकी ऊपरी तह परके देशोंके ब्यौरेकी विद्या (भूगोल या जिओग्रफ़ी), मनुष्यके रहन-सहन, रंग-ढंग, मेलजोल, लड़ाई-झगड़े, गाँव-बस्तियोंके उजाड़-बसाव और राजाओंकी हार-जीतके ब्यौरेकी विद्या (इतिहास या हिस्टरी), मनुष्यके भेद, उनकी बनावट, उनके जन्मकी और इधर-उधर फैलनेकी कहानीकी विद्या (नरशास्त्र या एन्थ्रोपोलौजी), देहकी बनावटकी विद्या (शरीर-विज्ञान या फ़िज़िओलौजी), मनुष्यका मन परखनेकी विद्या (चित्तविज्ञान या साइकोलौजी), गाँव-समाज-राज बनाने और चलानेकी विद्या (समाज-शास्त्र और राजनीति या सोशियोलौजी और पौलिटिक्स), चित्र बनाने और लिखनेकी विद्या (चित्रकला या ड्राइङ्ग), ध्वनि निकलने, चलने और दूसरोंसे सुनी जानेकी विद्या (भौतिक विज्ञान या फ़िज़िक्स) और संगीत-विद्या भी जाननी चाहिए क्योंकि इनका सहारा लिए बिना हमारा कुल काम अधूरा रह जायगा। बोलियोंकी छानबीनका या भाषा-लोचनका, ऊपर लिखी सब विद्याओंसे बड़ा गहरा मेल है। उन्हें थोड़ा-बहुत समझे बिना, हमारा एक पग आगे बढ़ना दूभर है। इसलिये हम बीच-बीचमें जहाँ काम पड़ेगा वहाँ इन विद्याओंकी भी थोड़ी-बहुत टेक लेते चलेंगे।

धरतीके भीतरकी बनावटकी विद्या [भूगर्भशास्त्र]—

आप यह सुनकर भौचक रह गए होंगे कि ऊपर जिन बहुत-सी विद्याओंके नाम गिनाए गए हैं उन्हें गहराईके साथ पढ़े या जाने बिना भाषाका भेद समझमें नहीं आ सकेगा। पर बात ऐसी है। इसीलिये हम यह समझा देना चाहते हैं कि भाषालोचनसे किस विद्याका, कितना और कहाँतक मेल है। अब भूगर्भ-विद्या या धरतीकी भीतरी तहोंकी बातें जाननेकी विद्याकी ही ले लीजिए।

आप बहुत बार धरती खोदते हैं, उसमेंसे न जाने कितने ढंगकी मिट्टी या चट्टानें मिलती हैं। उनका मिलान हम उन पत्थरके हथियारोंसे करते हैं जो पत्थरवाले लोग काममें लाते थे। उन चट्टानोंको देखकर बहुत कुछ नहीं तो हम इतनी बात समझ ही सकते हैं कि वैसे हथियार बनानेवाले या उन हथियारोंको काममें लानेवाले लोग उस ढंगके पत्थरोंकी चट्टानोंके आसपास कहीं रहते होंगे और वहाँ जो बोली बोली जाती होगी, उसमें उसके आसपास होनेवाले जीवों, पेड़ों, चिड़ियों, और वहाँ किए जा सकनेवाले कामकाजोंके शब्द होंगे और वहाँ अब जो बोली बोली जा रही होगी उसमें उस पुरानी बोलीकी ध्वनियाँ भी थोड़ी-बहुत आ ही गई होंगी।

धरतीकी ऊपरी तहके देशोंका ब्यौरा जाननेकी विद्या [भूगोल]—

भूगोल बिना जाने तो हम एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। इस धरतीके गोलेपर कहाँ धरती है, कहाँ पानी है, कौन धरती पहले किस धरतीसे मिली हुई थी, वह कब और कैसे अलग हो गई, किस धरतीपर कितनी ठंढक या गर्मी पड़ती है, उससे वहाँका रहन-सहन, खान-पान, कामकाज, खेतीबारी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, फल-फूल सबका क्या रंग-ढंग हो जाता है, यह सब जान लेनेपर हमें यह समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि वहाँ किस ढंगके और कैसे शब्द होंगे, वहाँके लोगोंका किन लोगोंसे कब कितना मेल-जोल होता रहा और उस मेल-जोलसे आपसमें एक दूसरेसे किसने, कितने शब्द, क्यों, कैसे और कब लिए होंगे, कौन-सी ध्वनि बोलनेमें किसे कितनी सुविधा है, गर्म देशोंवाले लोग क्यों पूरा मुँह खोलकर सब ध्वनियाँ धड़ल्लेके साथ बोल लेते हैं, ठंढे देशवाले लोग क्यों मुँह कम खोलते हैं

और रेतीले देशमें रहनेवाले लोग क्यों जीभ दबाकर और गला कसकर बोलते हैं ? पहाड़, बड़ी नदी और जंगलका बीच पड़नेसे बोलियोंमें क्यों बिलगाव हो जाता है। ये सब बातें हम तभी समझ सकते हैं जब हम इस धरतीके ऊपरका पूरा ब्यौरा जान लें। फिर, जब हम यह समझाना चाहेंगे कि किस देशके लोग कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे फैले, तब भी हमें भूगोलका ही सहारा लेना पड़ेगा। धरतीके पहाड़, नदी, झील, समुद्रोंको देखकर ही हम ठीक-ठीक जान सकेंगे कि कहाँके लोग, किधरसे होकर, कहाँ-कहाँ क्यों गए होंगे। इसलिये भाषालोचनकी पढ़ाई भूगोलके बिना कोरी रह जायगी।

नरविज्ञान—

आप भाषालोचनमें आगे चलकर देखेंगे कि कुछ देशोंके लोगोंकी बोलियाँ बहुत बातोंमें मिलती-जुलती हैं और कुछकी किसी बातमें भी नहीं मिलती। जिन लोगोंकी बोलियाँ आपसमें नहीं मिलती हैं, उनके रूप-रंग डील-डौल, मुँह-आँख-नाक, गाल-बालकी बनावटमें भी बहुत बिलगाव है। यह बिलगाव क्यों हुआ, कैसे हुआ, इन सब बातोंको बिना जाने आप बोलियोंके अलग-अलग ठट्ठका पूरा ब्यौरा कैसे जान सकेंगे। इसलिये आपको नरविज्ञान या एन्थ्रोपोलौजीका भी थोड़ा-बहुत सहारा कभी-कभी लेना ही पड़ेगा।

शरीर-विज्ञान—

मनुष्यकी देहमें बोलने और सुननेके लिये, मुँह और कानका काम पड़ता है, सुनकर लिखनेके लिये कान, आँख और हाथका और बोलकर लिखनेके लिये मुँह, कान, आँख और हाथका। आपको जब बोलना सिखाया जाता रहा होगा तब गुरुजी कहते रहे

होंगे—'स' बोलनेके लिये जीभकी कोरको ऊपरके अगले दाँतोंके पीछे लगाकर बोलो। इसलिये किसी भी बोलीकी ध्वनियोंके ठीक-ठीक बोलनेके ढंगको समझनेके लिये हमें यह जानना पड़ेगा कि ध्वनि निकलती कैसे है, क्यों बहुतसे लोग जन्मसे बहरे-गूँगे रह जाते हैं, कान और मुँहका क्यों ऐसा मेल है, मुँहके भीतर जीभको कहाँ-कहाँ लगाकर या ओठ और जबड़ोंको कैसे-कैसे सिकोड़ या फैलाकर कौन-कौन सी ध्वनियाँ किस-किस भाषामें बोली जाती हैं। हमारा पूरा ध्वनिशास्त्र (बोलने और बोलियोंको समझनेका ढंग) सब शरीरकी बनावट समझनेकी विद्या या शरीर-विज्ञान (फ़िज़िओलौजी) से ही बँधी हुई है।

चित्त-विज्ञान—

जब हम लोग एक दूसरेसे बातचीत करते हैं तो इस बातको पहलेसे समझ लेते हैं कि किस बातको किस ढंगसे कहनेपर दूसरा क्या कहेगा या करेगा। हमारा जितना साहित्य बनता है और आपसमें हम लोग जितनी बातें कहते-सुनते हैं उनमें बराबर यही ध्यान रक्खा जाता है कि कौन-सी बात किस ढंगसे कहनेपर हम अपना काम बना सकेंगे, किस ढंगसे बातें करनेपर काम बिगड़ जायगा क्योंकि किस बातपर हमारे मनमें कौन-सी बात उठती है, हम किस ढंगसे उसे कहना चाहते हैं पर फिर उस ढंगको बदलकर हम क्यों उसे किसी दूसरे ढंगसे कहते हैं, ये सब बातें हम चित्त-विज्ञान या दूसरेका मन परखनेकी विद्यासे ही तो जान सकेंगे। इसलिये भाषालोचन समझनेके लिये हम चित्तविज्ञानको भी छोड़ नहीं सकते।

इतिहास, समाजशास्त्र और राजनीति—

मनुष्य आपसमें इतना लड़ता-झगड़ता रहा है कि एक ठट्ठके-

लोगोंने कभी बदला लेनेके लिये, कभी दूसरोंकी धन-धरती हड़पनेके लिये, कभी लड़ने और देश जीतनेकी खाज मिटानेके लिये, कभी धर्मके अन्धेपनमें पराए धर्मवालोंको तलवारके घाट उतारनेके लिये और कभी-कभी तो लोगोंको मरते, कराहते, बिलखते देखकर उससे जी बहलानेके लिये बड़ी मारकाट की और इसी झोंकमें कुछने दूसरोंपर अपना राज जमाया, अपनी बोली उन्हें सिखाई या उनकी बोली सीखी, नये ढंगसे लोगोंके समाज बनाए और उन्हें सुखसे रहने देनेके लिये बहुतसी रोक-थाम कर दी। ये सब बातें हम इतिहास, समाजशास्त्र और राजनीतिसे जान सकते हैं। इनके बिना भाषा-लोचनका काम चल ही कैसे सकता है ?

भौतिक-विज्ञान—

जब आप ध्वनिकी बात पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि ध्वनियाँ न जाने कितनी-कितनी होती हैं। एक घंटे और दूसरे घंटेकी ध्वनिमें कितना अलगाव सुनाई देता है, एकके मुँहसे निकला हुआ 'हाँ' दूसरेके मुँहसे निकले हुए 'हाँ' से बहुत अलग-लगता है पर हम कानसे सुनकर दोनों बोलनेवालोंको उनकी बोलीसे पहचान जाते हैं। ध्वनि कैसे मुँहसे निकलती है, कैसे चलती है, उसमें कैसे लहरें उठती हैं, ये सब बातें हम भौतिक-विज्ञानके सहारे ही जान सकते हैं। इसलिये भाषा-लोचन सीखते हुए हम उसे छोड़ कैसे सकते हैं।

संगीत—

भाषा या बोलीमें अपनी बात दूसरोंसे कहना या दूसरोंकी सुन लेना इतना ही काम नहीं है। कभी-कभी हम लोग गाते भी हैं, और यह गाना बड़े ढंगसे स्वर साधकर किसी कविका कोई

गीत लेकर या अपने आप कोई गीत बनाकर हम गाते हैं। इसमें हम स्वर साधते हैं, कँपाते हैं, ऊपर चढ़ाते हैं, नीचे उतारते हैं, लहरें देते हैं और उसे न जाने कितने ढंगोंसे ऐसा सुहावना बना देते हैं कि वह सुननेमें मीठा लगे, अच्छा लगे। यह कुछ अचम्भेकी ही बात है कि आजतक बोलियोंकी परख करनेवाले लोग संगीत और भाषा-लोचनका ठीक-ठीक मेल नहीं समझ पाए। सच पूछिए तो जब हम कोई वाक्य या शब्द बोलते हैं तो उसे हम उसके अर्थके लहरेके साथ बोलते हैं। यह लहरा बहुत कुछ संगीतके भीतर ही आता है। इसलिये संगीतका भी कुछ सहारा हम बीच-बीचमें लेते चलेंगे।

चित्रकला—

हमारी लिखावट सच पूछिए तो मूरत बनाने या चित्र खींचने ही निकली है। आज भी जब घरमें ब्याह-बारात पड़ती है तो काशीमें लोग अपने घरके बाहर गणेश लिखवाते हैं, उनका चित्र नहीं बनवाते। इसलिये जब हम लिखावटकी जाँच करेंगे तो इसका भी सहारा हमें लेना ही पड़ेगा, भाषा-लोचनमें हम इसे भी साथ-साथ समझते चलेंगे।

§ ८—भाषालोचनसे घबराइए मत !

जब कभी हमारे संगी-साथी हिन्दी पढ़ते हुए बोलियोंकी परख (भाषालोचन) सीखनेके लिये फेंटा बाँधकर जुटते हैं तो दो-चार पन्ने उलटते-पलटते उनके माथेकी नसें तनने लगती हैं, पसीना छूटने लगता है और वे हार मानकर, अखाड़ा छोड़कर भाग खड़े होते हैं। वे समझते हैं कि जबतक संसार भरकी बोलियाँ हम न जान जायँगे तबतक इस अखाड़ेमें हमें कोई पैर

नहीं धरने देगा. लोग धकियाकर निकाल देंगे। बोलियोंकी छान-बीन और परख करनेके ढंगपर जितनी पोथियाँ लिखी गई हैं उनमें भी एसे ऐसे लम्बे-चौड़े, कनफोड़, मथचाट शब्द आ जाते हैं कि उन्हें पढ़-सुनकर ही बहुतोंके पैर उखड़ जाते हैं और वे समझते हैं कि जबतक पाणिनिकी घुटाई न हो जायगी तबतक इससे छेड़छाड़ करना अपनी हँसी कराना है। ऐसी ही कुछ बातोंने हमारे विद्यार्थियों और भाषा-साहित्य पढ़नेवालोंके मनमें ऐसा खटका डाल दिया है कि वे इस ओर या तो ध्यान ही नहीं देते, या परीक्षाकी नदिया पार करनेके लिये कुछ मोटी-मोटी बातें पी-घोंटकर परीक्षा पार करके गंगा नहा लेते हैं, समझते हैं जान बची लाखों पाए और फिर कभी भूलकर भी उस पोथीका नाम नहीं लेते। पर भैया, बात ऐसी नहीं है। आप अपने दस-पाँच संगी-साथियोंके बीच, बड़े-बूढ़ोंके बीच, हाट-बाटमें काम करने-वालोंके बीच कान खोलकर उठिए, बैठिए और जो कुछ वे बोलते-कहते हों उसे ध्यान लगाकर सुनते चलिए, अपने बोलनेके ढंगको मिलाते चलिए, उससे आप एक बातके लिये जो वाक्य कहते हैं उसके लिये उनके वाक्यकी बनावट समझते चलिए और एक शब्दको वे किस झटके. खिंचाव, दबाव या चढ़ावके साथ बोलते हैं, इसपर ध्यान देते चलिए तो आपको यह समझनेमें तनिक भी देर न लगेगी कि बोलियोंकी छानबीन, लगाव-बिलगाव और जाँच-परखका काम वैसा ही सुहावना और मन बहलानेवाला है जैसे पतंग उड़ाना, चौसर खेलना. मेला देखना, बुलबुल लड़ाना या चलती-फिरती मूरतें (सिनेमा) देखना। हाँ, यह तो मानना पड़ेगा कि इस विद्यापर जितने लोगोंने लिखा-पढ़ा, उन्होंने उसे इतना उलझा दिया कि सीधे-सादे पढ़ने-लिखनेवाले लोगोंके लिये वह पहेली बन गई। इसीलिये लोग उससे कतराने लगे, कभी

काटने लगे, आँखें चुराकर बच निकलनेकी ताक लगाने लगे। यही देखकर हमने ऐसी सीधी बोलचालकी भाषामें यह पोथी लिखी है कि जो इसे पढ़े, वह बोलियोंकी छानबीन करने, उन्हें पढ़ने-समझनेके काममें चावके साथ जुट जाय और फिर यह न कहे कि यह हमारी समझके परे है, इसका नाम सुनकर उसे कँपकँपी न छूटे, घबराहट न हो।

§ ६—यह पोथी क्यों ?

इस पोथीमें हमने यह समझाया है कि मनुष्यने दूसरे जीवोंसे अलग होकर कब, क्यों और कैसे बोलना सीखा, बोलीमें कितनी बातें आती हैं, संसारकी दूसरी बोलियोंमें कितनी ध्वनियाँ थीं और हैं, ये ध्वनियाँ कैसे अदलती-बदलती रही हैं, शब्द कैसे बनते-बिगड़ते-मिटते रहे हैं, शब्दोंकी बनावटमें और उनके अर्थोंमें कैसे हेर-फेर होते रहे हैं, अलग-अलग देशोंमें अलग-अलग बोलियाँ क्यों बोली जाती हैं, एक बोलीमें दूसरी बोलीकी ध्वनि, शब्द और वाक्योंकी बनावट कैसे और कहाँसे आ पैठती है, दो बोलियोंमें आपसमें किन-किन बातोंसे बिलगाव या मेल समझा या परखा जाता है, इन सब बोलियोंके कितने ठट्ट (परिवार) हैं, एक-एक ठट्टमें कितनी-कितनी बोलियाँ हैं, वे आपसमें किन-किन बातोंमें मिलती-जुलती हैं, हमारी बोली किस ठट्ठमें है, उसका अपने देशकी दूसरी बोलियोंसे किन बातोंमें मेल है, उसमें कितनी अपनी ध्वनियाँ हैं, कितनी बाहरसे आई हैं, उसके शब्द कैसे-कैसे बने या बनते हैं, उसके शब्दोंकी बनावटमें और अर्थमें क्यों और कैसे हेरफेर हुए, हो रहे या हो सकते हैं, उसमें वाक्य कैसे बनते हैं, उन वाक्योंकी अपनी बनावट कैसी थी या है, उनमें किस प्रकारके और क्यों हेर-फेर होते आए हैं।

इन सब बातोंको ठीक-ठीक समझानेके लिये हमने इस पोथी-की चार पालियाँ बाँधी हैं—

१. बोली कैसे जनमी, बड़ी हुई और फैली !

२. बोलीके अंग (ध्वनि, अक्षर, शब्द, अर्थ और वाक्य)

३. बोलियोंका मिलान

४. हमारी हिन्दी

पहली पाली

इनमेंसे पहली पालीमें हम बता रहे हैं कि—

(अ) बोलीने क्यों, कब और कैसे जन्म लिया।

(आ) बोलीसे हमने क्या काम निकाला।

(इ) बोलीकी बनावट कैसी होती है या उसके कितने अंग होते हैं, जैसे ध्वनि, अक्षर, शब्द, अर्थ, वाक्य, कहावत (लौकिक न्याय), चलते बोल (मुहावरे या रूढ़ोक्ति) और इन सबके भी भेद।

(ई) बोलीका फैलाव और बढ़ाव, देशी, तद्भव (बिगड़े हुए) और तत्सम (ज्योंके त्यों) शब्द, तत्समसे तद्भव, शब्द, विदेशी और नवगढ़न्त शब्द, पुराने शब्दोंके बदले नये शब्द या नयेके बदले पुरानेका चलन, अर्थोंमें अदल-बदल।

(उ) एक ही बोलीके बहुतसे रूप—पढ़े-लिखे लोगोंकी, अपढ़ोंकी, गाँवकी, जंगलोंकी बोलियाँ और उनमें भी कई ढंगकी बोलियोंका चलन।

(ऊ) बोलियोंसे लाभ, और

(ए) बोलियोंसे हानि।

इस पालीमें किसी भी बोलीकी छानबीनकी सभी बातोंका ब्यौरा मिल सकेगा।

दूसरी पाली

दूसरी पालीमें हम यह समझायँगे कि—

(क) ध्वनि किसे कहते हैं, वह कैसे और कहाँसे उपजती है, कितने ढंगकी ध्वनियाँ कहाँ-कहाँ लिखने-पढ़नेके काम आती हैं, मुँह और गलेके भीतर ध्वनि उपजानेवाली कौन-कौनसी टेक हैं, बोलनेवालेके मनसे उसकी बोलीका क्या मेल है, ध्वनिमें कैसे बिगाड़ या हेरफेर होता है, उसके क्या नियम हैं।

(ख) शब्द किसे कहते हैं. शब्द कैसे बनता है. कितने ढंगके शब्द होते हैं. शब्दोंकी बनावटमें कैसे हेरफेर हो जाता है, जिससे बात की जाती है उसे समझानेके लिये बोली क्यों और कैसे अपना रंग बदल लेती है।

(ग) अर्थ किसे कहते हैं, शब्द और अर्थमें क्या मेल है, कितने ढंगके अर्थ हो सकते हैं, शब्दकी शक्ति और अर्थ. अर्थमें हेरफेर क्यों, कब और कैसे होता है. अर्थमें हेरफेरके क्या नियम हैं, चलते बोल क्या होते हैं और उनमें बिगाड़ कैसे होता है।

(घ) वाक्य किसे कहते हैं, वाक्यकी बनावट. कितने ढंगके वाक्य होते या हो सकते हैं।

तीसरी पाली

तीसरी पालीमें हम यह देखेंगे कि—

(च) मनुष्योंके एक-एक ठट्ठ जिस ढंगसे संसारमें फैले, उसी ढंगसे उनकी बोलियोंके परिवार भी कैसे फैले. बोलियोंके ठट्ठ और उन ठट्ठोंकी पाँतें अलग-अलग कैसे बाँधी गई, एक-एक ठट्ठमें क्या-क्या अपना निरालापन है, किन नियमोंसे ये परिवार बाँधे या बनाए गए हैं।

(छ) बोलियोंके आपसी मेलजोल या बिलगावकी छान-बीन किन बातोंमें, किस ढंगसे की जाती है या की गई है, उनसे क्या नई बातें जानी गई हैं।

(ज) संसारकी बोलियाँ, उनकी ध्वनियाँ, उनके शब्द और वाक्य बनानेके नियम क्या हैं, आपसमें उनमें क्या मेल है।

चौथी पाली

चौथी पालीमें हम अपनी भाषा हिन्दीका पूरा ब्यौरा देते हुए बतावेंगे कि इसका जन्म कैसे और कहाँसे हुआ, इसके कितने रूप हैं, इसमें कितनी ध्वनियाँ हैं, इसमें शब्द कैसे और कहाँसे आए, इसमें वाक्य कैसे बनते हैं, इसके भीतर कितनी बोलियाँ आती हैं, भारतकी दूसरी बोलियोंसे इसका क्या और कितना लगाव है।

इससे आप समझ गए होंगे कि हम इस पोथीमें संसार भरकी बोलियोंकी छानबीनके साथ-साथ हिन्दी भाषाकी भी पूरी जाँच करेंगे।

§ १०—भाषाकी छानबीन करनेकी सीधी बटिया

अब आप समझ गए होंगे कि बोलियोंकी छानबीन, जाँच-परख और लगाव-बिलगावके लिये हमने इस पोथीमें ऐसे सब झाड़-झंखाड़, कंकड़-पत्थर, कुश-काँटे हटाकर, झाड़-बटोरकर ऐसी सीधी-सुथरी बटिया बना दी है कि जो इसपर पैर धरे वह आगे बढ़ता चला जाय, उसे कहीं अटकना-भटकना न पड़े; ठोकर न खानी पड़े, उलझना न पड़े और हारकर, थककर लौटना न पड़े। सबसे पहली बात तो यह है कि हमने इसमें यह जतन किया है कि कोई ऐसी बात छूटने न पावे जिसके बिना बोलियोंकी ठीक

परख करनेमें कहीं अड़चन आ पड़े। फिर हमने यह भी ध्यान रक्खा है कि ऐसे कोई शब्द बीचमें न आ जायँ जिसका अर्थ न समझ पानेसे गाड़ी बीचमें ही अटकी रह जाय। पढ़नेवालोंके समझानेके लिये हमने सब अध्यायोंके पीछे थोड़े-थोड़े शब्दोंमें उस अध्यायका निचोड़ भी दे दिया है जिसे एक बार पढ़ लेनेपर पूरा पाठ दुहरानेके लिये सहारा मिलता चले। हम समझते हैं कि बोलियोंकी छानबीन करनेके लिये हमने जो यह सीधी बटिया बनाई है इससे उन विद्यार्थियोंको भी अड़चन न होगी जिन्होंने संस्कृत नहीं पढ़ी है और उन पढ़ानेवालोंका भी काम चल जायगा जिन्हें या तो बहुतसी पोथियाँ मिल नहीं पातीं या मिलती भी हैं तो उन्हें समझना और दो-चार-दस दिनके भीतर उसकी गहराई नापना दूभर हो जाता है। सच पूछिए तो भाषाओंकी नाप-जोख, जाँच-परख या छानबीनपर कोई ऐसी बात इस पोथीमें हमने नहीं छोड़ी जिसका न होना या न मिलना इस पोथीमें किसीको खटके।

सारांश

इसे पढ़कर आप समझ गए होंगे कि—

१—थोड़ी-थोड़ी दूरपर बोली बदलने लगती है।

२—संसारके दो अरब मनुष्य सत्ताईस सौ छानबे बोलियाँ बोलते

३—दो बोलियोंका आपसमें मिलान देखकर ही बोलियोंकी छानबीनका खटराग छेड़ा गया क्योंकि कुछ बोलियाँ आपसमें मिलती हैं, कुछ नहीं मिलती।

४—भाषाओंकी जाँच-पड़ताल, नाप-जोख और छानबीन करनेकी विद्याको भाषा-विज्ञान न कहकर भाषालोचन या भाषाशास्त्र कहना चाहिए।

५—भाषालोचन समझनेके लिये हमें उन सब विद्याओंका सहारा लेना पड़ेगा जिनमें मनुष्यकी बनावट, उसके फैलाव, उसकी देह, उसके मन, उसके करतब, उसके मुँहसे निकलनेवाली ध्वनि, धरतीपर उसके रहन-सहन और उसके मनका पूरा-पूरा ब्योरा मिलता हो।

६—शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण और साहित्यशास्त्रमें भी वेद और पीछेकी संस्कृत बोलने-पढ़नेके ढंग और संस्कृतकी बनावट-सजावटकी बहुत कुछ जाँच परख आ गई है।

७—इस विद्याको ठीक-ठीक समझा जाय तो इससे भी मन-बहलाव हो सकता है इसलिये इससे घबराइए मत।

८—इस पोथीमें चार खण्ड हैं—(क) भाषा कब और कैसे बनी, कैसे फैली। (ख) भाषाकी बनावटके अंग—ध्वनि, अक्षर, शब्द, अर्थ और वाक्य। (ग) संसारकी सभी बोलियोंका आपसमें मिलान। (घ) हिन्दी भाषाकी बनावट।

—:०:—

२

बोलियोंकी छानबीन

भारतमें भाषाकी जांच-परख कैसे हुई ?

यह बात सूझी किसे ? — क्यों सूझी ?—हमारे देशके लोगोंने क्या किया ? - वेद पढ़नेके अलग-अलग ढंग : प्रतिशाख्य (शौनक, विष्णुपुत्र, उब्बट, आत्रेय, मारिषेय, वररुचि और कात्यायन) — प्रातिशाख्योंकी कहानी शौनक कौन थे ? — क्या प्रतिशाख्य ही वेदके व्याकरण हैं ? वेद पढ़ते समय किन बातोंका ध्यान रक्खा जाय : शिक्षा — संस्कृतके व्याकरण — पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि — बोपदेव — व्याकरण कबसे चला और क्यों ? — अष्टाध्यायी — व्यालि —- पाणिनिपर टीकाएँ : कात्यायन वररुचि और पतञ्जलि — यह व्याकरणका पचड़ा क्यों ? — शब्दोंका कौनसा अर्थ कैसे समझा जाय : यास्कका निरुक्त ।

§ ११—यह बात सूझी किसे ?

पीछे लिखा जा चुका है कि जब कुछ लोगोंको कई बोलियाँ सीखने और सुननेपर ऐसा जान पड़ा कि ये आपसमें कुछ मिलती-जुलती भी हैं तब उनके मनमें यह चाव बढ़ा कि देखें बोलियोंमें यह मेल-जोल, एकपन और लगाव किस ढंगका और कहाँतक है । बस यहींसे बोलियोंकी छानबीन या भाषालोचनकी नींव पड़ी । यह छानबीन पहले तो अपनी-अपनी बोलियोंको लेकर हुई जिसमें लोग यह देखते-परखते रहे कि हमारी बोली

कैसे बनी, वह कहाँ-कहाँ बोली जाती है, दूसरी बोलियोंसे इसका क्या और कितना मेल है।

इस ढंगकी जाँच-पड़ताल जिस गहराईसे हमारे देशके पंडितोंने संस्कृत भाषाके लिये की थी और उसके सहारे, उसके निखरे और सँवारे हुए रूपको जिस नये-ढंगसे बाँधकर पक्का और अटल कर दिया था वैसा संसारमें किसी बोलीके बोलनेवालोंने अभी तक नहीं किया। जिस अनोखे ढंगसे हमारे देशमें ध्वनियों-की परख, उनकी सजावट, शब्दोंका चुनाव, उन सब शब्दोंके अर्थोंकी ठीक-ठीक परख, संस्कृतमें आनेवाले सब शब्दोंकी बना-वट और ऐसी सब बातोंका पूरा ब्यौरा और उनके सहारे नये शब्द बनाने और गढ़नेके सब नियम बहुत पहले सोचे-विचारे जा चुके थे, वैसे किसी देशमें नहीं सोचे गए।

§ १२—**क्यों सूझी** ?

आर्योंने सबसे पहले अपने वेदोंके मन्त्रोंको बाहरी बोलियों-की मिलावटसे और अपने देशके और बाहरसे आनेवाले अपढ़, गँवार और उजड्ड लोगोंकी बिगड़ी हुई बोलियोंसे बचानेके लिये ऐसे-ऐसे ढंग निकाले कि आज भी वेदके मन्त्रोंको ठीक-ठीक, ऊँचे-नीचे स्वरके उतार-चढ़ाव, झटके-खिचावसे पढ़नेमें कभी कोई गड़बड़ी नहीं होती। पहले तो आर्य लोग त्रिसप्तसिन्धुकी लहलहाती हुई धरतीपर वहाँकी सातों बड़ी-बड़ी नदियोंके कछारोंमें बसकर अकेले अपने वेद पढ़ते-पढ़ाते थे, पर जब बाहरके लोग यहाँकी हरियालीसे ललचकर या लूट-पाट करनेके मनसे इधर आने-जाने और धावा मारने लगे तबसे आर्य लोगोंके कान खड़े हुए और उन्होंने वेदके इकट्ठे किए हुए मन्त्रों (संहिताओंके)

सब शब्द अलग-अलग करके (उनके पद-पाठ बनाकर) उन्हें गलेमें उतार लिया। इतना कर लेनेसे सब मन्त्रोंके शब्दोंको अलग करके उनका रूप समझना और समझकर उन्हें एक ढंगसे रट लेना बड़ा सीधा काम हो गया। ऐसा माना जाता है कि यह काम सबसे पहले शाकल्य ऋषिने किया था। फिर इस ढंगपर न जाने कितने ब्राह्मणोंने बड़ी लगनके साथ एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीतक वेदके मन्त्रोंको ठीक-ठीक गलेमें उतारते हुए उसे आजतक ज्योंका-त्यों बचाए रक्खा है। इसीलिये आज भी वेदके मन्त्रोंमें किसी भी ढंगका कोई कहीं हेर-फेर नहीं हो पाया।

§ १३—हमारे देशके लोगोंने क्या किया ?

वेदके मन्त्रोंको इस ढंगसे घोखने-रटनेके लिये पहले तो यह सीखना पड़ता था कि मन्त्र पढ़ते हुए मन्त्रोंके शब्दोंके नीचे-ऊँचे स्वर कैसे काममें लाए जायँ। इससे यह समझनेमें देर नहीं लगेगी कि वेदके मन्त्र गलेमें उतारनेके लिये यह भी जान लेना पड़ता था कि किस अक्षरको मुँहके भीतरके किन-किन अंगोंके किस ढंगके हेरफेरसे कैसे बोला जाय। बोलने और पढ़नेके इस ढंगका पूरा ब्यौरा हमें शिक्षामें मिलता है। साथ ही वेदके मन्त्र रटनेवालोंको यह भी जानना पड़ता था कि वेदके मन्त्रोंमें कैसे, कहाँ, किस ढंगसे शब्द मिलते हैं, कैसे बनते हैं, उनके कितने भेद होते हैं और वे वाक्यमें किस ढंगसे बैठाए जाते हैं। इन सबका ठीक-ठीक ब्यौरा व्याकरण या शब्द-शास्त्रमें पूरा-पूरा मिलता है। वेदके शब्द कहाँसे आए हैं, कितने ढंगके हैं और उनके कितने अर्थ हैं, इसकी पूरी जानकारी निरुक्तसे मिलती हैं। इससे जान पड़ेगा कि हमारे देशके पुराने पण्डितोंने सोच-समझकर वेदकी

और वेदके पीछेकी संस्कृत भाषाकी बनावटकी पूरी गहराईसे छानबीन की थी।

§ १४ वेद पढ़नेके अलग-अलग ढंग — प्रातिशाख्य

जबसे वेद पढ़ने-पढ़ानेका चलन हुआ और ऋषि लोग अपने-अपने चेलोंको वेद पढ़ाने लगे तभीसे उन्होंने अपने-अपने ढंगसे वेदमें आनेवाले स्वरोंके उतार-चढ़ाव, ठहराव-खिंचाव, शब्दोंको एक अपने ढंगसे सजाने मिलाने और तोड़-तोड़कर पढ़नेका अपना-अपना ढंग निकाल लिया। जितने ऐसे ऋषि हुए उन सबका एक अपना चलन बन गया और उनके ढंगसे वेद पढ़नेवालोंकी उतनी ही टोलियाँ बन गईं जिन्हें शाखा कहते हैं। इस ढंगसे अलग-अलग वेदों या एक ही वेदके बहुतसे स्वरोंके बोलने (उच्चारण करने), शब्दोंको एक ढंगसे लगाने, सजाने और मिलाने (पदक्रम) और उन्हें तोड़-तोड़कर पढ़ने (विच्छेद) के ढंगका पूरा ब्यौरा जिन पोथियोंमें समझाया गया है उन्हें प्रातिशाख्य (वेद पढ़नेमें अलग-अलग ढंगका ब्यौरा) कहते हैं। ऐसे प्रातिशाख्य सब वेदोंकी सब शाखाओंके बने हुए थे पर ज्यों-ज्यों वेद पढ़नेमें ढिलाई होने लगी त्यों त्यों ये प्रातिशाख्य मिटते गए और यहाँ तक मिट गए कि अब ले-देकर ऋग्वेदकी शाकल शाखाका शौनकका बनाया हुआ एक ऋक् प्रातिशाख्य यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य और वाजसनेय शाखाका कात्यायनका बनाया हुआ वाजसनेय प्रातिशाख्य, सामवेदकी माध्यन्दिन शाखाका पुष्प मुनिका बनाया हुआ साम प्रातिशाख्य और अथर्ववेदका अथर्व प्रातिशाख्य या शौनकीय चतुराध्यायी, बस गिने गिनाए इतने प्रातिशाख्य मिलते हैं।

ऋग्वेदका प्रातिशाख्य—शौनक, विष्णुपुत्र और उव्वट

ऋग्वेदपर शौनकने एक प्रातिशाख्य लिखा है। यों तो वेद

पढ़नेके लिये जितनी बातें कही और लिखी जा सकती थीं सब इसमें आ ही गई थीं फिर भी जो कुछ थोड़ी-बहुत बातें बची-खुची रह गईं वे उपलेख सूत्र नामकी दूसरी पोथीमें मिल जाती हैं। सबसे पहले विष्णुपुत्रने इस ऋग्वेदके प्रातिशाख्यपर उसका अर्थ बताते हुए और उसकी सब बातोंको अच्छे ढंगसे तोड़-तोड़कर समझाते हुए एक भाष्य लिखा था। उसीकी देखा-देखी उव्वटाचार्यने भी एक इसी ढंगकी लम्बी-चौड़ी आलोचना या छानबीन लिखी है।

यजुर्वेदका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – आत्रेय, मारिषेय और वररुचि

यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखावालोंने जो तैत्तिरीय प्रातिशाख्य लिखा है उसमें आत्रेय स्थविर, कौण्डिन्य, भारद्वाज, वाल्मीकि, अग्निवेश्य, अग्निवेश्यायन और पौष्करस नामके बहुतसे आचार्यों-की चर्चा की है। जैसे ऋग्वेदके प्रातिशाख्यपर बहुत लोगोंने टीका करके उसकी सब छिपी हुई, उलझी हुई बातें खोलकर अच्छे ढंगसे सुलझाकर समझाई हैं वैसे ही आत्रेय, मारिषेय और वर-रुचिने भी तैत्तिरीय प्रातिशाख्यपर अपनी-अपनी पोथियाँ लिखी हैं। कार्तिकेयने देखा कि इन तीनोंकी पोथियोंमें भी बहुत सी ऐसी बातें आ गई हैं जिन्हें समझना सबके बसकी बात नहीं है तो उन्होंने समझमें न आनेवाली ऐसी सब बातोंको अच्छे ढंगसे समझाकर त्रिभाष्य नामकी पोथी लिखी।

वाजसनेय प्रातिशाख्य – कात्यायन

कात्यायनने जो वाजसनेय प्रातिशाख्य लिखा है उसमें उसने शाकटायन, शाकार्य, गार्ग्य, काश्यप, दाल्भ्य, जातुकर्ण, शौनक, उपशिव, काण्व और माध्यन्दिन नामके बहुतसे पुराने आचार्यों-की बातें कहीं हैं। इसीमें सबसे पहले यह बताया गया था कि

वेदकी संस्कृत अलग है और वेदका अर्थ समझानेवाली पोथियों (भाष्यों) की संस्कृत अलग है। इस प्रातिशाख्यके पहले अध्यायमें यह समझाया गया है कि संज्ञा या नाम किसे कहते हैं। दूसरेमें यह बताया गया है कि वेद पढ़ते हुए कौनसा स्वर कैसे चढ़ाव, उतराव या खिंचावके साथ पढ़ना या बोलना चाहिए। तीसरेसे पाँचवें अध्याय-तक यह बताया गया है कि शब्दोंके बीचमें कैसे नए अक्षर आते हैं, निकल जाते हैं या बदल जाते हैं और उन शब्दोंका अपना रूप और ढंग सचमुच क्या है। छठे और सातवें अध्यायमें यह समझाया गया है कि क्रिया बतानेवाले जितने शब्द हैं उन्हें वेदके मन्त्रोंमें कहाँ कहाँ, किस-किस स्वरके उतार-चढ़ावके साथ किस ढंगसे बोलना चाहिए।

सामवेदका प्रातिशाख्य —पुष्पमुनि

सामवेदका प्रातिशाख्य रचनेवाले पुष्पमुनिने कुछ दूसरे ही ढंगसे प्रातिशाख्य लिखा है। यों तो इसमें भी बहुतसी बातें तो वैसी ही हैं जैसी दूसरी प्रातिशाख्योंमें, पर इसमें यह भी बता दिया गया है कि सामवेद कहाँ गाया जाय कहाँ न गाया जाय।

अथर्ववेदके प्रातिशाख्य

अथर्ववेदके दो प्रातिशाख्योंमें एक है शौनकीय चतुराध्यायिका जिसे शौनकने चार अध्यायोंमें लिखा है। इसमें भी यह समझाया गया है कि स्वर और व्यंजन कैसे मिलते हैं किसी भी शब्दका स्वर ऊँचा-नीचा कैसे किया जाना चाहिए, उसे कैसे बोला जाना चाहिए और किस ढंगसे कौनसे अक्षर तोड़कर, जोड़कर, खींचकर और झटकेसे बोलने चाहिएँ। इसमें यह भी बताया गया है कि शब्दोंकी सजावट वाक्यमें कैसे होनी चाहिए, शब्द किसे

कहते हैं और क्यों वेद पढ़ना चाहिए। ये छः बातें इस चतुराध्यायिकामें बड़े ढंगसे समझाई गई हैं।

§ १५—प्रातिशाख्यकी कहानी

ये प्रातिशाख्य कुछ तो बहुत पुराने हैं और कुछ ऐसे हैं जो पाणिनिके पीछेके हैं। कुछ लोगोंका यह कहना है कि सामवेदका जो प्रातिशाख्य पुष्पमुनिने बनाया है वह पाणिनिके सूत्रोंसे कहीं अधिक पुराना है। उनका तो यहाँतक कहना है कि शास्त्रोंमें सबसे पुराने मीमांसा दर्शनसे भी वह बहुत पहलेका बना हुआ है क्योंकि सामवेदके प्रातिशाख्यकी बहुतसी बातें ज्यों की त्यों मीमांसा दर्शनमें लेकर रख दी गई है। कुछ पच्छिमी विद्वानोंका कहना है कि वाजसनेय प्रातिशाख्य रचनेवाले कात्यायन और पाणिनिके सूत्रोंको खोलकर समझानेवाले (वार्तिककार) कात्यायन दोनों एक ही हैं क्योंकि कात्यायनने अपने वार्तिकमें जैसे पाणिनिकी खुलकर जाँच-परख करके पग-पगपर उन्हें खरी-खोटी सुनाई है वैसे ही उन्होंने प्रातिशाख्यको भी खोल-टटोलकर उसपर तीखा-कड़ुवा सब कुछ कह डाला है। इससे उन लोगोंने यह समझ लिया कि वाजसनेय प्रातिशाख्य पाणिनिके सूत्रोंसे बहुत पीछे लिखे गए हैं। पर बहुत लोग यह भी मानते हैं कि पाणिनि और दूसरे व्याकरणोंके रचे जानेसे बहुत पहले ये प्रातिशाख्य लिखे जा चुके होंगे। पच्छिमी विद्वान् तो यह मानते हैं कि इन सब प्रातिशाख्योंमें शौनकका बनाया हुआ अथर्ववेद प्रातिशाख्य ही सबसे पुराना है। इसके पीछे ऋग्वेदका प्रातिशाख्य लिखा गया, उसके पीछे तैत्तिरीय और सबसे पीछे कात्यायनका वाजसनेय प्रातिशाख्य लिखा गया।

§ १६—शौनक कौन थे ?

जैसा कि हम ऊपर बता आए हैं, अथर्ववेद और ऋग्वेदके

प्रातिशाख्य दोनों ही शौनकके बनाए हुए माने जाते हैं। पर ये दोनों शौनक एक ही थे या दो थे, इसकी ठीक-ठीक परख करनेकी कोई कसौटी हमारे पास नहीं है। शौनकने अपने ऋग्वेदके प्रातिशाख्यमें व्यालि (व्याडि) का नाम लिखा है। इस व्याळिने पाणिनिकी अष्टाध्यायीपर संग्रह नामकी एक वहुत बड़ी पोथी लिखी है। इससे जाना जाता है कि व्याळिसे बहुत पहले पाणिनि रहे होंगे और जब शौनकने भी अपने ऋग्वेदके प्रातिशाख्यमें व्याळिका नाम दिया है तब तो सचमुच ही वे बहुत पीछेके आचार्य होंगे।

§ १७—**क्या प्रातिशाख्य ही वेदके व्याकरण हैं ?**

कुछ लोगोंने भूलसे प्रातिशाख्यको वेदका व्याकरण मान लिया है। वे जानते ही होंगे कि वेदके छः अंगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द और व्याकरण) में व्याकरण भी एक है। जितने लोगोंने इनपर पोथियाँ लिखी हैं उनमेंसे किसीने भी अभीतक वेदके अंगोंमें प्रातिशाख्योंकी गिनती नहीं की है। हम ऊपर समझा भी आए हैं कि प्रातिशाख्योंमें तो अलग-अलग वेदके पढ़नेवालोंने वेद पढ़नेका जो अपना-अपना अलग ढंग निकाला और चलाया उसे ज्योंका त्यों बनाए रखनेके लिये इन्होंने प्रातिशाख्य रच डाले जिससे पीछेके लोग वेद पढ़ते हुए कोई गड़बड़ी या भूल न कर बैठें और वेद पढ़नेकी जो पुरानी लकीर बनती चली आई है वह मिट या बिगड़ न जाय। पंडितोंने इसीलिये समझाकर बताया है कि ध्वनि, स्वर और पदको संहिता या वेदके पाठमें कैसे काममें लाया जाय, इसीको समझानेके लिये ही प्रातिशाख्य लिखे गए हैं। इतना जानकर भी प्रातिशाख्यको व्याकरण माननेकी भूल कौन करेगा। देखा जाय तो इन

प्रातिशाख्योंकी बहुत-सी बातें शिक्षामें तो मिलती हैं पर व्याकरण-का तो इसमें थोड़ा भी लगाव नहीं है। जहाँतक शिक्षाकी बात है, उसके लिये भी शौनकने अलग अपनी शौनिकीय शिक्षामें बड़े अच्छे ढंगसे उसे समझानेका जतन किया है। इसलिये प्रातिशाख्यको न तो वेद का व्याकरण समझना चाहिए न शिक्षा।

§ १७ वेद पढ़ते समय किन बातोंका ध्यान रक्खा जाय — शिक्षा

ऊपर हम बता चुके हैं कि वेदके छः अंगोंमें शिक्षा भी एक अंग है। शिक्षाका अर्थ वही है जिसे हम अपनी बोलीमें सीख कह सकते हैं। हमारी बोलीमें सीख कहते हैं किसीको समझाना, बुरे बाटसे हटाकर अच्छे बाटमें लगाना शिक्षामें भी यह सीख दी गई है कि वेद पढ़ते समय कैसे बैठना चाहिए, कैसे मुँह खोलना चाहिए, कैसे बोलना या कैसे नहीं बोलना चाहिए, और किस अक्षर या शब्दको कैसे मुँहसे निकालना चाहिए शिक्षामें यही समझाया गया है कि वर्ण कितने हैं, स्वर कितने हैं, व्यंजन कितने हैं, मात्रा किसे कहते हैं, वर्ण और स्वरको कैसे-कैसे कहाँ-कहाँ मिलाकर, तोड़कर, दबाकर, झटका देकर, चढ़ाकर या उतारकर बोलना चाहिए। वेद बनानेवाले ऋषियोंको इस बातका बड़ा ध्यान था कि वेदके मन्त्रमें आनेवाले शब्दोंके बोलनेमें उतार, चढ़ाव, खिंचाव या ठहरावका तनिकसा भी भेद न पड़े, क्योंकि वे मानते थे कि श्रुति या वेदके लिये बोलने या पढ़नेका ढंग (उच्चारण) ही सब कुछ है। वे मानते थे कि—

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥"

[स्वरके उतार, चढ़ाव, खिंचाव, ठहराव या बिगाड़कर बोल देने से जो शब्द बिगड़ जाता है और ठीक-ठीक काममें न लानेसे

जब उसका ठीक अर्थ नहीं निकलता है तब वह शब्द दुष्ट हो जाता है और वह वज्र बनकर शब्द बोलनेवालेपर ही घहरा पड़ता है और उसे मिटा डालता है जैसे स्वरके तनिक बिगाड़से "इन्द्रशत्रु" शब्द वृत्रासुरको ले बीता।]

शिक्षाका आदर

कभी वे दिन भी थे कि शौनककी बनाई हुई शिक्षाको लोग वेदसे कम नहीं मानते थे। "शब्देन्दुशेखर" रचनेवालेका कहना है कि पाणिनि जैसे बड़े पण्डितने भी शौनककी बनाई हुई शिक्षा-को वेद जैसा ही माना है। शिक्षाकी इन पोथियोंमें उन दिनों यही बताया जाता था कि वेदकी संहिताओंका पाठ कैसे करना चाहिए। फिर यह बताया जाने लगा कि किस चलनसे या कैसे एक-एक शब्द अलग करके वेद पढ़ा जाय। फिर धीरे-धीरे पद-पाठका एक ढंग चला जिसमें एक-एक पद (शब्द) अलग-अलग करके तोड़-तोड़कर मन्त्र पढ़े जाने लगे। यास्क, पाणिनि और पतञ्जलिने यह भी लिखा है कि जहाँ अर्थ समझमें आता हो वहाँ पद-पाठ किए बिना या शब्दोंको अलग-अलग तोड़े बिना भी वेद पढ़ा जा सकता है। ये शौनक वे ही हैं जिन्होंने ऋग्वेदका प्रातिशाख्य लिखा है। ये आश्वलायनके गुरु थे। इसलिये हमें यह माननेमें कोई झंझट नहीं है कि ऋग्वेदका प्रातिशाख्य और उसपर शिक्षा-की पोथी लिखनेवाले शौनक दोनों एक ही थे और ये दोनों पोथियाँ भी बहुत पुरानी हैं। ऐसी शिक्षाएँ और भी बहुतसी मिलती हैं जैसे याज्ञवल्क्य-शिक्षा और पाणिनीय शिक्षा।

§ १८—शब्दोंको परखकर ठीक-ठीक काममें कैसे लाया जाय — व्याकरण

ऊपर हम बता चुके हैं कि शिक्षाके साथ व्याकरण भी वेदका

अंग है। इसमें यह बताया गया है कि वाक्यमें कर्ता, कर्म, क्रिया, समास, सन्धि. ये सब क्या हैं, कैसे बनते हैं और कैसे काममें लाए जाते हैं। इसमें यह बताया जाता है कि भले लोगोंके बीच बोलने और लिखनेके लिये कैसे शब्द बनते हैं और वे कैसे काममें लाए जाते हैं। इससे यह समझनेमें कोई अड़चन नहीं होगी कि व्याकरणका काम यह है कि वह बोलने और पढ़नेवालेको यह समझा दे कि किस ढंगसे शब्द बनते हैं, वाक्योंमें उन्हें कैसे काममें लाना चाहिए और कैसे उन शब्दोंसे क्या काम निकाला जा सकता है। यों कहिए कि इसका काम शब्दोंको ठीक-ठीक ढंगसे चलाना और काममें लाना है। इसीलिये इसका दूसरा नाम शब्दानुशासन भी है। कहा जाता है कि एक बार बृहस्पतिने इन्द्रको एक सहस्र वर्षों (देवताओंके वर्षों) तक केवल शब्द ही शब्द गिनकर सुनाए फिर भी वे शब्द पूरे नहीं हो पाए। इसे यों कह सकते हैं कि शब्द इतने हैं कि कोई उनका पार नहीं पा सकता। इसलिये व्याकरण-का भी कोई अन्त नहीं पा सकता और कोई यह नहीं कह सकता कि हमने किसी भाषा या बोलीका पूरा व्याकरण बना डाला है, अब इसमें घटाना-बढ़ाना नहीं रहा।

§ ११—संस्कृतके व्याकरण

वेदके छहों अंगोंमें व्याकरणको पंडित लोग सबसे बढ़कर मानते हैं यहाँतक कि जो लोग वेदको ईश्वरकी वाणी समझते हैं वे भी यह समझते हैं कि जैसे वेद सदासे था, है और सदा रहेगा वैसे ही व्याकरण भी सदासे ही है। पर जो लोग यह मानते हैं कि ऋषियोंने वेद बनाए होंगे, वे यह भी मानते हैं कि मन्त्र बन जानेके पीछे ही व्याकरण भी बना लिये गए होंगे। ऊपर जो हमने इन्द्र और बृहस्पतिकी कथा सुनाई है उसके सहारे यह

माना जा सकता है कि व्याकरणके सबसे पहले पंडित देवताओं के गुरु बृहस्पति ही रहे और उनके पीछे उनके सबसे बड़े चेले इन्द्र ही होंगे। पर न जाने क्यों पाणिनिने अपने व्याकरणमें पहले ही पहल यह बताया है कि अइउणसे हल् तक जो चौदह सूत्र[1] हैं, वे माहेश्वर सूत्र हैं और इन माहेश्वर सूत्रोंके लिये यह कहा गया है कि अपना तांडव नृत्य कर चुकनेपर शिवजीने चौदह बार जो अपना डमरू बजाया उसीकी ढमकसे चौदह माहेश्वर सूत्र निकल पड़े[2]। कुछ लोगोंने 'माहेश्वराणि सूत्राणि' से यह समझा है कि ये माहेश्वर सूत्र किसी दूसरे व्याकरणके रहे होंगे। पाणिनिके व्याकरणसे अलग एक शिवसूत्र भी है जिसमें पचीस हजार सूत्र बताए जाते हैं। एक इन्द्र व्याकरण भी है जिसमें पचास सौ सूत्र आए हैं। पतञ्जलिने बृहस्पति और इन्द्रकी जो कहानी कहकर यह समझाया है कि शब्दोंके भण्डारका कोई ठिकाना नहीं है, तो हो सकता है कि बृहस्पतिने माहेश्वर व्याकरण ही इन्द्रको सुना डाला होगा जिसके लिये धनराज शास्त्रीने कहा है कि उसमें एक लाख सूत्र थे। माहेश्वर और शिवसूत्रको हम एक मान लें तो दोनोंको मिलाकर सवा लाख सूत्र हो जाते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि पाणिनि व्याकरणमें जो प्रत्याहार (छोटे किए हुए) सूत्र[3] दिए गए हैं वे ही माहेश्वर व्याकरण हैं।

१—अइउण्। ऋऌक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव। कपय। शषसर्। हल्। इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादि संज्ञार्थानि।

२—नृत्यावसाने नटराजराजो निनाद ढक्का नवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।

३—देखो १ [अइउण् आदि सूत्रोंको प्रत्याहार सूत्र कहते हैं।]

ये सूत्र कुछ भी हों पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि पाणिनिसे पहले भी बहुतसे लोगोंने संस्कृत भाषाकी गहरी छानबीन करके उसपर व्याकरण लिखे थे जिनमेंसे अत्रि, आंगिरस, आपिशालि, कठ, कलापी, काश्य, कुत्स, कौण्डिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जाबाल, तित्तिर, पाराशर्य, पीलबभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधूक, यास्क, बड़वा, वरतन्तु, वशिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, शिपालि, शौनक और स्फोटायनके नाम पाणिनिने ही अपनी अष्टाध्यायीमें दिए हैं। शाकटायनके भी कुछ इने-गिने सूत्र पाए गए हैं जो छापे भी जा चुके हैं। 'ओनामासीधम्' के बेढंगे और बिगड़े हुए रूपमें बुन्देलखण्डकी ओर गाँवोंमें अनपढ़ और अधपढ़े गुरु लोग अपने बालकोंको जो रटाते आए हैं वह सचमुच शाकटायनके पहले सूत्र 'ॐ नमः सिद्धम्' का बिगड़ा हुआ रूप है जिसका तुक मिलाकर नटखट लड़कोंने एक तान बना ली है – ओनामासीधम्। बाप पढ़े ना हम।

§ २०—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि

अभी तक जितने छपे हुए व्याकरण मिलते हैं उनमें पहला व्याकरण पाणिनिका है और दूसरा व्याळिका। नागेश भट्टने लिखा है कि व्याळिकी बनाई हुई पोथीमें एक लाख श्लोक हैं। इनके पीछे कुछ लोगोंने निरुक्त लिखनेवाले यास्कको भी व्याकरण बनानेवाला माना है और इनके पीछे फिर कात्यायन और पतञ्जलि आते हैं। पर व्याकरणके लिये जो तीन मुनि (मुनित्रय) माने जाते हैं, वे पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ही हैं। यों तो पतञ्जलिने ही बहुत अच्छे ढंगसे व्याकरणकी सब बातें बहुत खोलकर समझा दी हैं फिर भी उसमें बहुतसे लोगोंकी ठीक-ठीक

पैठ नहीं हो पाई। इसलिये वामन और जयादित्यने उसे भी समझानेके लिये एक काशिकावृत्ति (चमकानेका ढंग) लिखी। कात्यायनने पहले-पहल पाणिनिके सूत्रोंपर वार्तिक (खुला ब्यौरा) लिखा और फिर पतञ्जलिने उसीपर महाभाष्य (व्याकरण समझानेका बड़ा पोथा) बना डाला। पर इतनेसे भी लोगोंका मन नहीं भरा। कैयटने उसपर प्रदीप नामकी टीका लिखी और नागोजी भट्टने उस प्रदीपपर भी एक टीका लिख डाली। यों तो काशिकावृत्ति लिखी ही इसलिये गई थी कि सबकी समझमें आ जाय पर जब उसमें भी कहीं-कहीं कुछ अड़चनें दिखाई पड़ने लगीं तब उसे ठीक-ठीक समझानेके लिये हरिदत्तने पदमञ्जरी लिखी जिसपर जिनेन्द्रने टीका की। यह धारा ऐसी चली कि नागोजी भट्टने वृत्त-संग्रह नामकी पोथीमें पाणिनिके सूत्रोंकी छोटीसी टीका की, पुरुषोत्तमने एक भाषावृत्ति लिखी, सृष्टिधरने उसे भी खोलकर विवृति लिखी, भट्टोजी दीक्षितने 'शब्द-कौस्तुभ' रचा, बालमभट्टने प्रभा नामकी टीका लिखी, जिसपर शब्देन्दुशेखर नामकी एक छोटीसी टीका लिखी गई, जिसे और भी छोटा करके लघुशब्देन्दुशेखर लिखा गया। इतने पर भी जब भट्टोजी दीक्षितका जी नहीं भरा तो उन्होंने सिद्धान्तकौमुदी लिखी जिससे अष्टाध्यायी पढ़नेका चलन ही उठ गया। अपनी सिद्धान्त-कौमुदीपर भट्टोजी दीक्षितने प्रौढ़ मनोरमा नामकी एक टीका भी लिखी थी।

सिद्धान्त-कौमुदीको छोटा करके वरदराजने मध्यकौमुदी और लघुसिद्धान्त-कौमुदी लिखी। फिर भी व्याकरण लिखनेवालों-का मन नहीं भरा और बहुतसे लोगोंने पाणिनिका सहारा लेकर उसीपर न जाने कितनी पोथियाँ लिख डालीं जिनमेंसे कुछ ये हैं—परिभाषा, परिभाषा-वृत्ति, लघुपरिभाषा-वृत्ति,

चन्द्रिका, परिभाषेन्दुशेखर, उसकी काशिका, कारिका, वाक्य-पदीय, व्याकरण-भूषण, भूषणसार और व्याकरण-सिद्धान्त-मंजूषा। पिछले चार ग्रन्थ वाक्य-पदीयकी टीकाके रूपमें हैं। वाक्यपदीय नामकी व्याकरणकी ऐसी पोथी है जिसमें व्याकरणको कुछ ऐसे अनूठे ढंगसे समझाया है जैसे वह इस लोकसे परेका हो और बोल-चालको ठीक ढंगसे चलानेका नियम भर न हो। लघुभूषण-कान्ति, लघुव्याकरण-सिद्धान्त-मंजूषा-कला, गण-पाठ, गण-रत्न-महोदधि सटीक, धातु-प्रदीप, पाणिनिधातु-पाठ, माधवीवृत्ति और पदचन्द्रिका, ये सब और ऐसी-ऐसी न जाने कितनी व्याकरणकी पोथियाँ पाणिनिके सूत्रोंपर लिखी जा चुकी हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि यहीं तक आकर व्याकरण लिखनेवालोंने अपने कलम रोक दिए हैं। इनके पीछे भी इतनी पोथियाँ व्याकरणपर लिखी गई हैं कि हम गिनाकर उनका पार नहीं पा सकते।

§ २१—सरस्वती-प्रक्रिया और अनुभूतिस्वरूपाचार्य: कामधेनु और शाकटायन।

पाणिनिके पीछे भी कुछ लोगोंने अपने अलग ढंगसे व्याकरण लिखे हैं जिनमें अनुभूतिस्वरूपाचार्यका लिखा हुआ सरस्वती-प्रक्रिया नामका व्याकरण उत्तर-प्रदेशमें बहुत चलता है और जिसपर सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी टीका भी लिखी जा चुकी है। इसमें कुल सात सौ सूत्र हैं। कहा जाता है कि इन्होंने सरस्वतीकी बड़ी पूजा की जिसपर प्रसन्न होकर सरस्वतीजीने यह पोथी ही इन्हें दे दी थी। एक नए शाकटायन भी हो गए हैं जिन्होंने काम-धेनु नामका एक व्याकरण लिखा है।

§ २२—**प्राकृत-व्याकरण**

संस्कृतका सहारा लेकर बहुतसे पंडितोंने प्राकृत भाषाओंके व्याकरण बना डाले। इनमेंसे हेमचन्द्रका प्राकृत व्याकरण जैनियोंमें बहुत चलता है और उसका बड़ा नाम है। वररुचिने प्राकृत-प्रकाशके नामसे प्राकृत भाषाओंका व्याकरण लिखा था, जिसपर प्राकृतमनोरमा नामकी बड़ी अच्छी टीका है। वाल्मीकिने भी प्राकृतव्याकरणके सूत्र लिखे थे, जिनपर लक्ष्मीधरने संस्कृतमें षड्भाषाचन्द्रिका नामकी टीका लिखी है।

§ २३—**कलाप या कातन्त्र व्याकरण**

बंगालमें एक कलाप नामका व्याकरण बहुत चलता है, जिसे कातंत्र व्याकरण भी कहते हैं और जिसके ढंगपर उसीकी देखा-देखी न जाने कितने व्याकरण बंगालमें लिखे जा चुके हैं जिनमेंसे पच्चीसके नाम तो आज भी मिलते हैं।

§ २४—**बोपदेव**

इन व्याकरण लिखनेवालोंमें बोपदेवने भी मुग्धबोध नामका एक व्याकरण लिखकर बड़ा नाम कमाया पर इसका चलन बंगालमें ही है। जैसे पाणिनिपर बहुतसी टीकाएँ लिखी गईं वैसे ही इसपर भी बहुतसी टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। काशीश्वर और नन्दिकेश्वरने इसपर अपने-अपने परिशिष्ट (बची हुई बातोंके ब्यौरे) लिखे हैं। बोपदेवने व्याकरण ही नहीं वरन् कविकल्पद्रुम नामका गण-पाठ और काव्यकामधेनु-नामका धातुपाठ भी लिखा है। इन दोनों पोथियोंपर चार-पाँच और भी पोथियाँ लिखी जा चुकी हैं। इधर कुछ और लोगोंने नये ढंगके व्याकरण लिखे हैं जिन्हें यहाँ गिनाना अकारथ होगा।

§ २५ – व्याकरण कबसे चला और क्यों ?

व्याकरणोंका यह झमेला कबसे चला यह तो ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता फिर भी गोपथ-ब्राह्मणमें यह लिखा मिलता है—"ओङ्कारः पृच्छामः। को धातुः, किम् प्रातिपदिकम्, किम् नामाख्यातम्, किम् लिङ्गम्, किम् वचनम, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरउपसर्गोनिपातः, किम् वै व्याकरणम, को विकारः, को विकारी, कतिमात्राः, कतिवर्णाः, कत्यक्षराः, कतिपदाः, कः संयोगः, किम् स्थानानुप्रदानकरणम्, शिक्षिकाः किम् उच्चारयन्ति, किम् छन्दः को वर्ण इति पूर्वप्रश्नाः।"

[ॐ की छानबीन करना चाहते हैं। यह किस धातु से निकला है ? इसमें क्या प्रातिपदिक है ? क्या नामाख्यात है ? कौन सा लिंग है ? कौन सा वचन है ? क्या विभक्ति है ? कौन सा प्रत्यय है ? कौन सा स्वर है ? कौन सा उपसर्ग, कौन सा निपात है ? उसका क्या व्याकरण है ? क्या विकार है ? कौन विकारी है ? कितनी मात्राएँ हैं ? कितने वर्ण हैं ? कितने अक्षर हैं ? कितने पद हैं ? क्या संयोग है ? स्थानके अनुप्रदानका क्या कर्म है ? शिक्षक लोग इसको किस ढंगसे बोलते हैं ? इसमें कौन सा छन्द है और कौनसा वर्ण है, यह सबसे पहले समझनेवाली बातें हैं।]

ऊपर गोपथ-ब्राह्मणसे जो दिया गया है इसमें धातु, प्रातिपदिक नाम, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय और स्वर—ये सब शब्द व्याकरणके आए हैं और ऊपर कहा भी गया है कि ओंकार (ॐ) शब्दकी जब हम छानबीन करेंगे तो पहले ये ही बातें पूछी जायँगी। जहाँ 'शिक्षिकाः शब्द भी ठीक-ठीक बोलनेके ढंगकी शिक्षा देनेवालेके अर्थमें आया है वहाँ व्याकरण शब्दसे भी यह जानने-समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि गोपथ ब्राह्मण-

के बननेसे बहुत पहले वेदका अच्छा पूरा व्याकरण बनाया जा चुका था। यह भी जान लेना चाहिए कि पीछे ब्राह्मण ग्रन्थ इसलिये बनाए गए कि वेदका अर्थ ठीक-ठीक समझनेमें कोई झंझट या अटकाव न हो। इससे यह समझा जा सकता है वेदोंका पूरा ब्यौरेवार अच्छा बड़ा व्याकरण तो ब्राह्मण ग्रन्थ बननेके बहुत पहले ही बन चुका होगा।

व्याकरणकी बनावट देखनेसे ही यह समझमें आने लगता है कि व्याकरण भी उतना ही पुराना है जितनी वेदोंकी भाषा क्योंकि जहाँ यह समझाया गया है कि व्याकरण किस काम आता है और क्यों बनाया जाता है वहाँ यह भी समझाकर बताया गया है कि—१. वेदकी भाषाको इधर-उधरकी बोलियोंके मेलसे बचानेके लिये, २. वेदका ठीक-ठीक अर्थ समझनेके लिये, ३. शब्दोंकी जानकारीके लिये, ४. कोई शब्द समझमें न आता हो उसका ठीक-ठीक रूप जानकर संदेह दूर करनेके लिये, ५. अशुद्ध शब्द छोड़नेके लिये, ६. यज्ञ, हवन आदि कामोंमें ठीक शब्द लानेके लिये, ७. यज्ञका काम करानेवाला (ऋत्विज) बननेके लिये, ८. अपने बच्चोंके नाम ठीक-ठीक रखनेके लिये और किसी भी बातके सच या झूठकी परखके लिये व्याकरण जानना ही चाहिए इसीलिये पहले जनेऊ होते ही ब्राह्मणके बच्चेको शिक्षा और व्याकरण नामके दो वेदांग पढ़नेमें लगा दिया जाता था।

§ २६—अष्टाध्यायी

पाणिनि मुनिने जो व्याकरण लिखा है उसे अष्टाध्यायी या पाणिनि अष्ट भी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय है और एक-एक अध्यायमें चार-चार पाठ हैं। इसमें कुल मिलाकर ३९९६

सूत्र हैं। व्याकरणमें आनेवाले जितनी बातें हैं उन सबके लिये कुछ शब्द तो पाणिनिने अपने आप गढ़े हैं और कुछ पहलेसे चले आते हुए शब्दोंको लेकर उनका नया अर्थ लगाकर उन्हें चलाया है।

§ २७ व्यालि

पाणिनिके पीछे व्याळि नामके एक व्याकरण लिखनेवाले हुए हैं। इनके लिये नागेशभट्टने लिखा है कि उन्होंने एक लाख श्लोकोंका व्याकरणका बड़ा सा पोथा लिखा था।

§ २८ पाणिनिपर टीकाएँ : कात्यायन (वररुचि) और पतञ्जलि

महाभाष्य लिखे जानेसे पहले पाणिनिके सूत्रोंपर कात्यायन-मुनिने वार्तिक लिखा जिसमें उन्होंने पाणिनिके बहुतसे सूत्रोंको खोलकर समझाया है।

पतञ्जलिने पाणिनिके सूत्रोंको ठीक-ठीक खोलकर समझानेके लिये जो महाभाष्य लिखा है वह बड़ी सीधी और समझमें आ सकनेवाली संस्कृतमें लिखा गया है। सच पूछिए तो भाषाकी ठीक-ठीक छानबीन करनेका ढंग किसीको समझना-सीखना हो तो उसे महाभाष्य पढ़ना ही चाहिए। इसमें जहाँ एक ओर व्याकरणकी उलझी हुई गुत्थियोंको छोटे-छोटे दिन-रात काममें आनेवाले शब्दोंका ब्यौरा देकर सुलझाया गया है वहीं इसमें शब्दशास्त्रपर बड़े सच्चे और अच्छे ढंगसे छानबीन भी की गई है। इसलिये भाष्यको भारतके नये ढंगके भाषाशास्त्र या भाषालोचनका पहला महाग्रन्थ समझना चाहिए।

पाणिनिके व्याकरणका इतना नाम फैला कि उनसे पहलेके

सब व्याकरण पीछे रह गए और पाणिनिके व्याकरणको ही सब लोग सबसे पुराना वेदांग ग्रन्थ मानने लगे।

§ २९—यह व्याकरणका पचड़ा क्यों?

यहाँ भाषालोचनमें व्याकरणका नाम सुनकर आप चौंक न पड़िएगा क्योंकि जब हम बहुत सी बोलियोंका मिलान करते हुए उनकी छानबीन या जाँच-परख करेंगे तो वह सब उनके अपने-अपने व्याकरणके सहारे ही तो की जा सकती है। इसलिये हमने व्याकरणको भी छोड़ा नहीं है और फिर व्याकरणमें हमारे भाषा-लोचनका एक अंग ध्वनिका तो पूराका पूरा ही ब्यौरा आ जाता है जिसमें यह दिया हुआ रहता है कि किस भाषामें कितनी ध्वनियाँ हैं, उन ध्वनियोंके किस ढंगके मेलसे कैसे अर्थवाले शब्द (या वाक्य जैसे चीनी भाषाओंमें) बनते हैं और इन अलग-अलग ढंगोंके शब्दोंकी कैसी सजावटसे वाक्य बनते हैं, कौन-सा शब्द किस भाषामें किस ढंगसे बनता है और वाक्यमें उसे कैसे काममें लाते हैं। ये सब बातें हम तभी जान सकते हैं और तभी इनकी परख भी कर सकते हैं जब उस भाषाका व्याकरण जानते हों। इसीलिये हमने भाषालोचनकी जाँच करते हुए व्याकरणकी सब पोथियाँ भी गिना दी है।

§ ३०—शब्दोंका कौन-सा अर्थ कैसे समझा जाय: निरुक्त

यास्कका निरुक्त ही सच पूछिए तो वेदके भाषालोचनकी सब-से पहली पोथी है. जिसमें अच्छे ढंगसे समझाकर यह बतलाया गया है कि वेदमें कितने ढंगके शब्द हैं, उनमें कैसे बिगाड़-बनाव होते हैं और उसके किस शब्दका कहाँ क्या अर्थ लगाना चाहिए। यों तो बहुतसे निरुक्त लिखे गए होंगे पर हमें जो सबसे पुराना

निरुक्त मिलता है वह यास्कका ही है। उस निरुक्तमें पाँच अध्याय हैं—

१—पढ़नेका ढंग (अध्ययन-विधि)

२—छन्दोंकी पहचान (छन्द-विभाग)

३—छन्दोंको काममें लानेका ढंग (छन्द-विनियोग)

४—कब क्या काम हुआ है उसका ब्यौरा देनेवाले बीते हुए समयकी जाँच (उपलक्षित कर्मानुकूल भूतकाल)

५—बताए हुए लक्षण (उपदर्शित लक्षण)

पंडित लोग निरुक्तको इसलिये बहुत मानते हैं कि वेदका अर्थ समझनेका यही तो एक सहारा है और बिना समझे-बूझे घोट लेना तो यों भी बुरा है। इसलिये पंडित लोग वेदका ठीक-ठीक अर्थ वही मानते हैं जो निरुक्तमें दिया गया है और इससे अलग कोई अर्थ निकालना या समझना वे ठीक नहीं मानते।

§ ३१ यास्कका निरुक्त

वेदका तीसरा अंग निरुक्त है। इसमें यह समझाया गया है कि वेदमें आनेवाले कितने शब्द हैं, वे शब्द कैसे बने, कहाँसे आए और कहाँ-कहाँ किस-किस अर्थमें काममें लाए जाते हैं। इसे वेद-का कोष समझना चाहिए। यों तो वेदपर बहुतसे निरुक्त लिखे गए होंगे पर जैसे पाणिनिका व्याकरण बन जानेपर उससे पहले-के सब व्याकरण तितर-बितर होकर खो गए वैसे ही यास्कने जो निरुक्त लिखा उसने और सभी निरुक्तोंको अँधेरेमें ढकेल दिया। इसमें यह बताया गया है कि कैसे शब्दोंके आगे-पीछे या बीचसे कोई अक्षर निकल जाता है या अक्षरोंमें अदला-बदली हो जाती है या उनका रूप बिगड़ जाता है। इस-

लिये आजके बहुतसे बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोग यह मानते हैं कि यास्कका निरुक्त ही भाषालोचन या बोलियोंकी छानबीन करनेका सबसे पहला काम है। पर हम पहले ही लिख चुके हैं कि वेदमें आए हुए शब्दोंकी ही छानबीन निरुक्तमें की गई है और कोई ऐसी कसौटी नहीं बनाई गई है कि उसपर कसकर हम दूसरी बोलियोंमें काम आनेवाले शब्दोंकी भी ठीक-ठीक परख कर सकें।

ऋगवेदकी अनुक्रमणिकामें लिखा है कि वेदके मन्त्रोंका ठीक-ठीक अर्थ समझनेके लिये निरुक्त ही सबसे बड़ा सहारा है। इसलिये वेद पढ़नेवाले लोग निरुक्तके बिना एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। यों भी जो लोग शब्दोंकी ढलन जाननेका ढंग सीखना चाहते हों उन्हें यास्कका निरुक्त एक बार भली भाँति देख ही लेना चाहिए।

यास्कसे पहले जितने लोगोंने निरुक्त लिखे हैं उनमेंसे शाकपूणि, ऊर्णनाभ और स्थौलष्ठिवी नामके तीन निरुक्त बनानेवालोंके नाम दिए गए हैं पर ये ग्रन्थ अभीतक मिल नहीं पाए हैं। यास्कका निरुक्त इतना चला कि उसपर उग्र, दुर्ग, स्कंदस्वामी, देवराज, यड्वन नामके बड़े-बड़े पंडितोंने टीकाएँ लिखी हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि —

१—हमारे देशमें वेदको ठीक समझने, बाहरी बोलियोंकी मिलावटसे बचाने और वेदमें आए हुए शब्दोंको ठीक-ठीक पढ़ सकनेके लिये प्रातिशाख्य, शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त लिखे गए।

२—बहुतसे ऋषियोंने वेद पढ़नेके जो अपने-अपने ढंग निकाले उन्हें प्रातिशाख्य कहते हैं। एक-एक वेदकी सब शाखाओंके अलग-अलग प्रातिशाख्य हैं।

३—वेद पढ़ते समय बैठने, मुँह खोलने और बोलनेके ठीक-ठीक ढंगका ब्यौरा जिन पोथियोंमें दिया गया है उन्हें शिक्षा कहते हैं। इनमेंसे शौनक, पाणिनि और याज्ञवल्क्यकी शिक्षा बहुत मानी जाती है।

४—शब्दोंका ठीक-ठीक रूप बनाने और वाक्यमें उन्हें ठीक ढंगसे सजानेका ब्यौरा व्याकरणमें मिलता है। संस्कृतमें बहुत लोगोंने व्याकरण लिखे पर पाणिनि उनमें सबसे बड़े माने जाते हैं। पाणिनिके व्याकरणपर बहुत लोगोंने उसे खोलकर समझानेके लिये पोथियाँ लिखी हैं, जिनमें कात्यायनका वार्तिक और पतञ्जलिका महाभाष्य बहुत अच्छे माने जाते हैं।

५—निरुक्तमें यह बताया जाता है कि वेदमें आनेवाले कौनसे शब्द किस ढंगसे बने हैं। ये कोषके ढंगसे लिखे गए हैं जिनमें वेदमें आनेवाले सब शब्दोंका पूरा ब्यौरा मिल जाता है और यह भी जाना जाता है कि कहाँ, कौन शब्द किस अर्थमें काम आता है।

६—सबसे पहले भारतमें ही संस्कृतमें काम आनेवाले शब्दोंकी छान-बीनका ब्यौरेवार काम हुआ।

३

बोलियोंकी छानबीन

भारतसे बाहर क्या काम हुआ ?

यूनान और इतालियामें : अरस्तू, अफ़लातून, सुकरात—अठारहवीं सदी : रूसो, कोन्दिलाक, हेर्डर, ज़ैनिश—उन्नीसवीं सदी—संस्कृत : कूर्दो : जोन्स : श्लेगेल-बन्धु—रास्क : बौप : ग्रिम—विलहेल्म फ़ौन हम्बोल्ट : कुछ और लोग : राप : ब्रेड्स-डौर्फ़ : श्लौइरुेर : कुर्टिअस : माड्विग—माक्सम्यूलर और ह्विटनी—स्टाइन्थेल : ब्रुगमान : डेलब्रुक : पाउल : मेइए : वान्द्रि-याज़ : दऊजा : ऊँड्ट : हर्ट : लासकिन : स्क्रिप्चर : ब्लूमफ़ील्ड : जोन्स : जेस्पर्सन—भारतमें योरोपीय-पद्धतिपर : भंडारकर : चाटुर्ज्या : श्यामसुन्दरदास आदि ।

§ ३१—यूनान और इतालियामें : अरस्तू, अफ़लातून, सुकरात ।

योरोपमें सबसे पहले यूनानवालोंने अपनी यूनानी बोलीपर कुछ थोड़ा-बहुत सोचने-समझनेका लग्गा लगाया। सबसे पहले यूनानमें अरस्तूने यूनानीमें बाहरसे आकर मिले हुए शब्दोंको छाँट-छाँटकर अलग किया। प्लेटो (अफ़लातूनने) यह बताया कि हमारे मनमें जो बहुत सी बातें उठती हैं, उनका हमारी बोलीसे भी बहुत मेल है। यहाँतक कि हमारे मनकी बातें और हमारी बोली दोनों एक होकर दूध-पानी जैसे इतने घुलमिल गए

है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अफलातूनने यूनानी बोलीकी सब ध्वनियोंको अलग-अलग करके एक ढंगसे सजाया। सुकरात (सोक्रतेस, सोक्रेटीज़) को ऐसा जान पड़ा कि बोलीमें और मनमें उठी हुई बातमें कोई सीधा मेल नहीं है पर वह समझता था कि ऐसा सीधा मेल रखनेवाली कोई बोली बनाई जा सकती है। इन सब लोगोंने अलग-अलग ढंगसे व्याकरणपर थोड़ा-थोड़ा काम किया पर ठीक ढंगका सबसे पहला यूनानी व्याकरण थ्राक्सने (ई० पू० दूसरी सदी) बनाया।

यूनानी सभ्यता जब यूनानसे हटकर रोममें जा पहुँची तब लातिन और यूनानी दोनोंको मिलाकर लोग पढ़ने लगे और इन्हें मिलाकर पढ़ते हुए ही उनके मनमें यह बात आई कि इन बोलियोंमें बहुतसे शब्द ऐसे हैं जो एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं। जब धीरे-धीरे ईसाई धर्म योरपमें फैलने लगा तब लातिन और यूनानीके साथ-साथ हिब्रू भी लोग पढ़ने लगे क्योंकि वही ईश्वरकी बोली या स्वर्गकी भाषा समझी जाने लगी थी। ज्यों-ज्यों यूनान और योरपके लोग हाथ-पैर फैलाने लगे त्यों-त्यों वे लोग अरबी, सुरिया (सीरिया) की भाषाएँ भी पढ़ने लगे। पर धीरे-धीरे जब रोमका राज दूर-दूरतक फैल गया तब लातिन ही सबकी मुँहचढ़ी हो गई और वही सबकी बोली मानी जाने लगी। अलग-अलग देशोंमें जाकर यह लातिन भी बोलनेवालोंके मुँहमें पड़कर न जाने कितने रंग बदलने लगी यहाँतक कि एक देशकी लातिन दूसरे देशकी लातिनसे कुछ अलग सी ही हो गई। सबसे बड़ी बात यह हुई कि लातिनने सब बोलियोंपर अपनी ऐसी छाप डाल दी कि न जाने कितने लातिनके शब्द आज भी योरपकी सब बोलियोंपर अपना सिक्का जमाए बैठे हैं।

§ ३९—अठारहवीं सदी : रूसो, कोन्दिलाक, हेर्डेर, ज़्यैनिश

अठारहवीं सदीने योरपको इतने झटकेसे झकझोरकर जगाया कि अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे समझदार लोगोंने पुराने ढंगसे सोचने-समझनेकी बान छोड़कर सब बातोंपर नये ढंगसे सोचने-विचारनेका ढर्रा चलाया।

रूसो —

ऐसे लोगोंमें सबसे पहले रूसोने यह बात समझाई कि जैसे लोगोंने आपसमें मेल-जोल बढ़ाकर एक दूसरेका बचाव करनेके लिये, एक दूसरेके काममें हाथ बटानेके लिये बनी-बिगड़ीमें एक दूसरेका साथ देनेके लिये समझौता किया और समाज बनाया वैसे ही लोगोंने आपसमें समझौता करके बोलियाँ भी बना लीं। रूसोकी यह बात किसी पढ़े-लिखेके मनको ठीक जँच नहीं सकती थी क्योंकि जिन लोगोंको कोई भी बोली बोलने न आती हो, उन्होंने आपसमें कोई भी समझौता किया कैसे होगा, किस ढंगसे बात चलाई होगी, इन सब बातोंपर रूसोने ध्यान नहीं दिया।

कोन्दिलाक—

कोन्दिलाकने रूसोवाली अटकल न लगाकर कुछ बड़ी सूझबूझसे काम लिया है। वह मानता है कि सबसे पहले एक अनबोलता आदमी और एक अनबोलती स्त्री आपसमें मिले होंगे और एक दूसरेने एक दूसरेको अपने मनकी तड़पन, चाव और चाह समझानेके लिये जो हाँ, हूँ या चिल्लपों की होगी, वही पहली बोली बनकर निकल पड़ी होगी। फिर धीरे-धीरे इन बेढंगी चिल्लपोंवाली बोलियोंमें उतार-चढ़ावके साथ ऊँचे-नीचे बोलनेका

ढंग भी आने लगा होगा। धीरे-धीरे उनके बच्चोंकी बोलियोंमें यह उतार-चढ़ाव बढ़ता चला गया होगा और इस ढंगसे कुछ पीढ़ियोंमें चलकर उनके नाती-पोतोंने अपने-अपने मनकी बात समझानेके लिये बहुतस नए-नए शब्द और बोलनेके बहुतसे ढंग निकाल लिए होंगे जिससे धीरे-धीरे बोली बन गई।

योहान गौट्फ्रीड हेर्डेर—

अठारहवीं सदीमें बोलीके निकासपर सबसे गहरा सोच-विचार *योहान गौटफ्रीड हेर्डेरने* किया। इसीने सबसे पहले बोलियोंकी छान-बीन करनेकी नई और ठिकानेकी बटिया बनाई। उन दिनों *सुसम्लिख* नामके एक जर्मनने यह बात चलाई थी कि बोली मनुष्यने नहीं निकाली है, वह तो उसे सीधे ईश्वरसे मिली है। हेर्डेरने इस बातको काटते हुए यह बताया कि "यदि ईश्वरने बोली बनाई होती और उसे लाकर मनुष्यके मुँहमें भरा होता तो वह इतने रंग-ढंगकी, बेसिर-पैरकी और ऊटपटाँग न होती जैसी आज-कलकी बहुत-सी बोलियाँ दिखाई पड़ती हैं।" हेर्डेरने यदि संस्कृत पढ़ी होती और यदि उसने संस्कृतकी ध्वनियोंका ठीक-ठीक ब्यौरा जाना होता तब वह इतना तो मान ही लेता कि संसारकी और बोलियाँ भले ही ईश्वरकी देन न हों पर संस्कृत तो सचमुच ईश्वरकी देन है और इसलिये उसका देववाणी (देवताओंकी बोली या ईश्वरकी दी हुई बोली) नाम सचमुच ठीक है। हेर्डेर मानता है कि बोलियाँ मनुष्योंने बनाई नहीं है। जैसे-जैसे मनुष्यका काम बढ़ता गया और उसके रहन-सहनमें नयापन आता चला गया, वैसे-वैसे बोलियाँ भी बढ़ती-पनपती और फैलती चली गईं। जैसे माँके पेटमें बच्चा बाहर आनेके लिये मचलता है वैसे ही बोली भी मनकी बातको सामने लानेके लिये अपने आप उबल पड़ती है।

४

ज़ैनिश—

सन् १७९४ में बर्लिन अकाडामीने उस लेखकको भेंट देनेकी ठहराई जो इस बातका पूरा ब्यौरा लिखकर दे सके कि कोई भी भाषा पूरी कैसे बन सकती है, उसमें पूरापन लानेके लिये कौन-कौन-सी बातें होनी चाहिए और फिर उस कसौटीपर योरपकी बोल-चालमें बहुत काम आनेवाली बोलियोंको कसकर उनकी अच्छाई-बुराईकी जाँच कर सके। यह भेंट *बर्लिनके डी० ज़ैनिशको* दी गई जिसने बहुत गहरी पैठके साथ यह बताया कि संसारकी जो भी बोली ले ली जाय, उसमें मनुष्यके मन और उसकी समझका पूरा ब्यौरा भरा रहता है। इसी काँटेपर *ज़ैनिशने* सच्ची या 'पूरी' बोलीकी एक कसौटी ही बनाकर खड़ी कर दी और उसीपर कसकर लातिन, यूनानी और योरपकी दूसरी बोलियों-के साथ मिलान करके उनकी जाँच की। सचमुच देखा जाय तो सबसे पहले अठारहवीं सदीमें हेर्डेर और *ज़ैनिशने* ही बोलियोंकी छान-बीन करनेकी पहली और सच्ची नींव बैठाई।

§ ३३—**उन्नीसवीं सदी**

अठारहवीं सदीमें बोलियोंकी जाँच-परखके सिलसिलेमें जितना कुछ काम हुआ था उसमें यही देखा जा रहा था कि कब, कैसे और कहाँ किस बोलीका कौनसा ढाँचा किस ढंगसे काममें लाया जाता था, पर जब उन्नीसवीं सदीमें बहुतसी बोलियोंको पढ़-सीखकर उनका आपसमें मिलान करके अच्छे पढ़े-लिखे लोग उनकी जांच करने लगे तब इस बातपर भी लोग सोचने-विचारने लगे कि किसी भी बोलीने बन-सँवरकर यह आजका-सा रूप-रंग कैसे बना लिया। अब वे इस खोजमें लगे कि कबसे कोई बोली बोली जाने लगी, उसमें बाहरकी बोलियाँ और बाहरकी

बोलियोंके शब्द किस ढंगसे घुलने-मिलने लगे, क्यों, कैसे और कब उसके पुराने ढाँचेमें हेर-फेर हुए। इसी उन्नीसवीं सदीमें बोलियोंकी जाँच-परखमें मनुष्यकी सब हलचलोंका ब्यौरा भी जोड़ दिया गया जिससे बोलियोंकी जाँच करनेके लिये वह नया ढंग ही अपना लिया गया जिसमें अब यह देखा जाने लगा कि कोई बोली जिस एक बँधे हुए ढाँचेमें दिखाई पड़ती है वह पहले जैसी नहीं है. न जाने कितने उलट-फेर, कितनी अदला-बदली और कितने हेर-फेरसे उसने अपना यह नया आजका बाना बनाया और आगे भी न जाने यह कितने रंग बदलकर कितने चोले पलटती रहेगी।

§ ३४—संस्कृत सीखकर : कूर्दो : जोन्स : श्लेगेल बन्धु

जब योरपवालोंने भारतमें अड्डा जमाया और वे संस्कृत पढ़नेकी ओर झुके तब संस्कृतके शब्दोंमें उन्होंने अपनी बोलियोंके शब्दोंकी झाँकी पाई और उन्हें यह बात सूझने लगी कि हो न हो संस्कृतका योरपकी बोलियोंसे कुछ न कुछ गहरा मेल है ही।

सबसे पहले फ्रांसीसी पादरी कूर्दोने सन् १७६७ ई० में फ्रेंच इन्स्टिट्यूटको एक चिट्ठी भेजी जिसमें बहुतसे संस्कृत और लातिन शब्दोंका मिलान करके उनका आपसी मेल दिखाया गया था।

सर विलियम जोन्स—

फिर *सर विलियम जोन्सने* सन् १७९६में यह कहा कि—"संस्कृत भाषा हो चाहे जितने पुरानी, पर उसकी बनावट बड़ी अनोखी है। यह भाषा यूनानीसे कहीं बढ़कर पूरी है और लातिनसे कहीं बढ़-चढ़कर इसका भंडार है। सजावटमें भी इन दोनों ही भाषाओंसे वह कहीं बढ़कर मँजी हुई है और इन दोनों

बोलियोंसे वह इतनी मिलती-जुलती है कि उसे देखकर यह अटकल नहीं लगा सकते कि यह मेल योंही ऊपर-ऊपरका होगा। देखा जाय तो यह मेल इतना गहरा है कि बोलियोंकी छानबीन करनेवाला कोई भी मनुष्य उन तीनोंको एक ही खानसे निकला हुआ बिना माने उनकी ठीक-ठीक जाँच-परख कर ही नहीं सकता पर आज वे इतनी अलग-अलग हो गई हैं कि जिस एक घाटसे वे निकली थी उसका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिल रहा है। इतना ही नहीं, हम तो यह भी मान सकते हैं कि *गोथिक* और *कैल्टिक* बोलियाँ भी उसी घाटसे फूट निकली हैं जिससे *संस्कृत* निकली है, यहाँतक कि पुरानी *फ़ारसी*को भी बिना किसी हिचकके हम उसीके साथ नाँध सकते हैं।" पर अचरजकी बात ही यह है कि *विलियम जोन्स* इतना सब कुछ कह-सुनकर भी इन बोलियोंका मिलान करनेके लिये बहुत-कुछ कर नहीं पाए।

फ़्रीड्रिख़ फ़ौन श्लेगेल—

फ़्रीड्रिख़ फ़ौन श्लेगेलने सन् १८०७ में संस्कृत पढ़कर और योरपकी अच्छी-अच्छी बोलियोंसे उसका मिलान करके यह बताया कि जर्मन, यूनानी और लातिन भाषाओंमें ऐसे बहुतसे शब्द हैं जो संस्कृतसे ज्योंके त्यों आ गए हैं। *श्लेगेलने* मनुष्योंकी सब बोलियोंको दो पालियोंमें बाँट दिया है—एकमें संस्कृत और उससे मेल खानेवाली सब बोलियाँ और दूसरीमें बची हुई सब बोलियाँ। श्लेगेलके भाई ए. डब्ल्यू. *श्लेगेलने* भी इसी ढंगपर कुछ बोलियोंकी परखका एक अपना नया ढंग निकाला और बोलियोंका आपसमें मिलान करके उनकी परख की।

§ ३५—रास्क : बौप : ग्रिम

उन्नीसवीं सदीके चढ़ते-चढ़ते योरोपमें तीन ऐसे पंडित हुए जिन्होंने बड़े ठिकानेसे, नये ढंगसे बोलियोंकी छानबीनका काम

चलाया। इनमेंसे एक थे जर्मनीके फ़ान्त्स बौप (१७९१ ई०), दूसरे थे जर्मनीके ही याकोब ग्रिम (१७८५ ई०) और तीसरे थे डेनमार्क [हौलेंड] के रास्मस रास्क। इनमेंसे *ग्रिमने* तो *रास्कके* ढंगपर काम किया था और रास्कके ही ढंगपर बोलियोंका मिलान करके उनकी जाँचका काम चलाया था पर *बौपका* ढंग अपना निराला था।

रास्मस रास्क—

रास्क मानता था कि हमें यदि किन्हीं लोगोंका पूरा ब्यौरा इकट्ठा करना और जानना हो तो हम उनकी बोलीसे उनके पूरे ब्यौरेके ठीक और पूरे आँकड़े इकट्ठे कर सकते हैं क्योंकि किन्हीं भी लोगोंका रहन-सहन, खान-पान, करम-धरम चाहे जितना भी अदल-बदल गया हो पर उनकी बोली ज्योंकी त्यों बनी रहती है, उसमें हेरफेर नहीं हो पाता क्योंकि बोलियोंमें जो थोड़ा बहुत हेरफेर होता भी है वह इस ढंगसे होता है कि सैकड़ों बरस पीछेतक भी वह जाना-पहचाना जा सकता है। इसलिये हमें किसी बोलीकी जाँच करनी हो तो हमें उसमें काम आनेवाले शब्दोंके फेरमें बहुत नहीं पड़ना चाहिए, हमें तो उसकी बनावट या गढ़नपर ही ठीक-ठीक ध्यान देना चाहिए क्योंकि शब्द तो अदलते-बदलते, आते-जाते, बनते-मिटते, बढ़ते-घटते और चलते-घिसते रहते हैं, पर बोलीकी बनावट या गढ़नमें बहुत हेर-फेर नहीं होता है। हमें यह भी समझ लेना चाहिए जिस बोलीका व्याकरण जितना ही अधिक उलझा हुआ होगा वह अपने निकासके उतने ही पास भी होगी। यदि किन्हीं दो बोलियोंके बहुतसे सदा काम आनेवाले शब्द आपसमें मिलते-जुलते हों तो समझना चाहिए कि ये एक ही डालकी दो टहनियाँ हैं।

रास्कने बहुत देश छान मारे, बहुत देशोंकी बोलियाँ सीखीं

और उनका आपसमें मिलान किया पर वह सदा खटिया पकड़े रहता था और पैसा भी उसके पास बहुत नहीं था इसलिये वह आगे बहुत कुछ न कर पाया। फिर भी उसने इतना तो किया कि जितनी बोलियाँ उसने सीखीं उनमेंसे बहुत-सी बोलियोंके व्याकरण लिखे जिनमें उसने उन-उन बोलियोंकी बनावट या गढ़नपर ही बहुत ध्यान दिया है। सच पूछिए तो उसने जिस लगन और सच्चे मनसे बोलियोंकी छान-बीनका काम किया उससे उसे बोलियोंकी जाँच-परख करनेवालोंका सरदार समझना चाहिए।

याकोब ग्रिम—

याकोब ग्रिम बड़े बापका बेटा था, पैसे-रुपएकी उसे कमी न थी और छुटपनमें ही उसे पुरानी जर्मन कविता पढ़नेका चसका लग गया था। धीरे-धीरे उसको यह चसका बढ़ता गया। उसका भाई *विलहेल्म* भी जी-जानसे उसीमें जुटा हुआ था इसलिये इन दोनों भाइयोंने पुरानी कविताओं और कहानियोंमें काम आनेवाली बोलियोंकी छान-बीन करनेका एक नया ढंग ही निकाल लिया और पहलेके जिन लोगोंने पुरानी कथा-कहानियों, गीतों, लोरियों, और गाँव-बस्तियोंके लोगोंके मुँहसे कही-सुनी जानेवाली बातोंके भंडारपर नाँक-भौं सिकोड़ी थी उनकी ओर ध्यान न देकर सबके मुँहसे कहे-सुने-गाए जानेवाले इस अनलिखे भंडारको खोज-बटोर-कर उसकी जाँच-परख की। इतना ही नहीं, उन्होंने इस धरतीपर रहनेवाले सब ढंगके लोगोंकी जाँचका एक ऐसा सच्चा ढाँचा खड़ा किया जिससे इस धरतीपरके रहनेवाले मनुष्योंके मनमें उठने और आनेवाली सब बातोंका मिलान करके उनकी परख की जा सके, क्योंकि संसारमें जितना कुछ लिखा हुआ मिलता है, वह तो इस समूचे भंडारका एक नन्हाँ-सा कोना है। *याकोब ग्रिमने*

पहलेसे चले आते हुए बोलियोंकी छान-बीनके ढंगके लिये कुछ अलग बटिया तो पकड़ी पर एक बात तो उसने उनकी मान ही ली और वह थी उनकी वह कसौटी, जिससे अलग-अलग बोलियोंकी यह जाँच भी की जा सके कि कौन बोली कितनी

बर्लिन विश्वविद्यालयका आचार्य होकर *ग्रिमने* बोलियोंकी जाँचका काम और भी आगे बढ़ा दिया। उन दिनों वाक्योंकी बनावटपर जो कुछ उसने लिखा है, वह उसका सबसे बड़ा काम समझना चाहिए क्योंकि उससे यह जानने-समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती कि उसने कितना पढ़ा था, उसमें कितनी समझ थी और वह कितने ढंगसे काम कर सकता था।

फ्रान्त्स बौप —

उन्नीसवीं सदीकी पहली चौथाईमें जिन बहुतसे लोगोंने बोलियोंकी जाँच-परखका बीड़ा उठाया उनमें सबसे बड़े समझे जाते हैं फ्रान्त्स बौप (जन्म १७९१)। वे जब इक्कीस बरसके थे, तभी वे पारी (पैरिस) में पुरानी बोलियाँ सीखनेके लिये चले गए और वहीं उन्होंने संस्कृत भी पढ़ी। बौप चाहते थे कि बोलियोंके व्याकरणोंके जितने ढाँचे मिलते हैं उन सबके निकासकी टोह लगावें। इस कामके लिये उन्होंने संस्कृतका पल्ला पकड़ा। वे कहते थे—'मैं यह नहीं मानता हूँ कि यूनानी, लातिन और दूसरी योरोपकी बोलियाँ उसी संस्कृतसे निकली हैं जो हमें भारतकी पोथियोंमें मिलती हैं। मैं समझता हूँ कि ये सब किसी एक आदिम बोलीके बहुत पीछेके ढाँचे हैं जिनमेंसे संस्कृतने तो आदिम निकासकी बोलीसे अभीतक पूरा-पूरा मेल बनाए रक्खा है पर उसकी साथिन बोलियाँ उससे बहुत दूर जा पड़ी हैं।"

बौपने चाहा तो यह था कि आपसमें मिलती-जुलती बोलियोंके

निकासका आदिम रूप खोज निकाला जाय पर इस फेरमें उसने तुलनात्मक व्याकरण (अलग-अलग बोलियोंके व्याकरणोंका मिलान) खोज निकाला। इस ढंगका काम तो *रास्क* भी पहले कर चुका था फिर भी जितना और जिस सच्ची लगनसे बौपने यह काम किया उतना दूसरा कोई नहीं कर पाया।

§ ३६—**विलहेल्म फ़ौन हम्बोल्ट**।

बोलियोंकी छान-बीन करनेवाले जिन तीन पण्डितोंकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है उनके साथ जर्मनीके विलहेल्म फ़ौन हम्बोल्ट (१७६७-१८३५) का नाम भी जोड़ देना चाहिए जिन्होंने अपने निराले ढंगसे बोलियोंकी परखकी एक लीक चलाई थी। वे मानते थे—"बोलीकी जाँच करते समय यह देखना चाहिए कि वह लगातार किस ढंगसे काममें लाई जाती रही है, क्योंकि बोलीकी इस दुहरान-तिहरानसे ही उस बोलीकी ठीक-ठीक बनावट और उसमें होनेवाले हेर-फेरका ठीक-ठीक ब्यौरा जाना जा सकता है क्योंकि बोली कोई खड़ी या ठहरी हुई वस्तु नहीं है, वह तो चलती-ढलती हुई या बढ़ती-चलती हुई वस्तु है. लिखे जाने भरसे ही वह बँध नहीं जाती। उसे बने रहनेके लिये बोला और समझा जाना चाहिए ही।" *हम्बोल्टने* बोलियोंको दो साँचेमें देखा है—एक पूरी बोली और दूसरी अधूरी। पर वे यह भी मानते हैं कि किसी बोलीको इसीलिये बुरा और अधूरा नहीं समझना चाहिए कि वह जंगली लोगोंकी बोली है। वह यह भी मानता है कि सब बोलियोंमें कुछ ऐसा अलग अपनापन होता है जिससे हम उस बोलीके बोलनेवालेका रंग-ढंग पहचान सकते हैं क्योंकि उससे उन लोगोंके मनकी चालकी ठीक-ठीक पहचान हो जाती है।

§ ३७—कुछ और लोग : राप : ब्रेड्सडोर्फ़ : श्लोइखेर : कुर्टिअस : माडविग ।

ऊपर जिन चार महारथियोंके नाम दिए गए हैं, उन्होंने भाषाओंकी जाँच-परख और मिलान-छानबीन करनेकी जो लीक चलाई उस पर चलनेवालोंकी कमी न रही।

राप—

उनके पीछे के० एम्० रापने ध्वनियोंकी देख-भाल, उनके मिलान और उनकी बनावटका ब्यौरा देकर उन्हें एक नये अनोखे ढंगसे इकट्ठा करके सजाया।

ब्रेडसडौर्फ़—

हौलेण्डके रहनेवाले जे० एच० ब्रेड्सडोर्फने बोलियोंकी छानबीन इस बातपर की कि बोलियाँ बदलती क्यों हैं, कौन सी ऐसी बातें हैं, जिन्होंने संस्कृत, लातिन और फ्रेंचके बीच इतनी चौड़ी खाई ला खड़ी की है।

श्लोइखेर—

आइगुस्ट श्लोइखेर—(१८२१-१८६८) ने भी इसी लीकपर चलते हुए बहुत सी बोलियोंके मिलान करनेका एक अपना ढंग निकाला, क्योंकि वह कई बोलियोंका अच्छा पंडित था और उसे ऐसे काममें बड़ी लगन थी।

कुर्टियस और माडविग—

उसके पीछे जिसका नाम बिना हिचकके लिया जा सकता है वह है श्लोईखेरका साथी गेऔर्ग कुर्टियस जिसने यूनानी बोलीकी बड़े अच्छे ढंगसे छानबीन की थी। उसका दूसरा जोड़ीदार था योहान निकोलाई माडविग जिसने भाषाओंकी छानबीन करनेमें बड़ी लगनसे काम किया और इसके लिये उसने कुछ अपने नये ढंग भी निकाले।

§ ३८—माक्सम्यूलर और ह्विटनी

अभीतक जितना भी काम हुआ था वह सब इस ढंगका नहीं था कि वह सबकी समझमें आ सकता और सब लोग उसकी थाह पा सकते।

माक्सम्यूलर—

सबसे पहले १८६१ में जर्मन पण्डित माक्सम्यूलरने अपने आप तो बहुत कुछ नहीं किया पर बोलियोंकी छानबीनपर इतना कहा-सुना कि बहुतसे लोग इस काममें आ जुटे।

ह्विटनी—

श्लोइखेरके पीछे अमेरिकाके रहनेवाले विलियम ड्वाइट ह्विटनीने बोलियोंकी छानबीनके कामको और आगे बढ़ाया और जैसे माक्सम्यूलरने राह-चलते लोगोंका ध्यान भी इधर खींचा था वैसे ही ह्विटनीने भी इस ढंगसे इन बातोंपर लिखा और कहा कि बहुतसे लोगोंको यह काम बहुत अच्छा और लुभावना लगने लगा और बहुतसे लोग मन लगाकर संसारकी बोलियोंका मिलान करके उन्हें पढ़ने-समझने लगे। ह्विटनी समझता था कि आपसी समझके लिये जब मनुष्योंको जैसा काम आ पड़ा वैसे-वैसे बोली बनती और बढ़ती चली गई।

§ ३९—स्टाइन्थेल : वर्नर : ब्रूगमाँ : डेलब्रुक : पाउल : मेइए : वान्द्रियाज़ : दऊज़ा : ऊँड्ट : हर्ट : लासकिन : स्क्रिप्चर : ब्लूमफ़ील्ड : जोन्स : जेस्पर्सन।

इसके पीछे बहुतसी नई-नई खोजें हुई, बोलियोंमें अलग-अलग काम आनेवाली ध्वनियोंको ठीक-ठीक परख-समझकर उन्हें एक नये ढंगसे मिलान करके सजाया जाने लगा और

यह समझा गया कि अब पुरानी कसौटीसे काम नहीं चलेगा, बोलियोंकी जाँच करनेके लिये नई कसौटियाँ बनाई जायँ। इन लोगोंमें *स्टाइन्थेल* (१८२५-६६), *कार्ल वर्नर* (१८८०), *ब्रूगमान*, *डेलब्रुक* *आस्टोफ़*, *हरमान पाउल*ने इस काममें जितना हाथ बँटाया उससे बोलियोंकी छानबीनका काम बहुत आगे बढ़ा। पहले तो जर्मनीमें ही यह सब काम होता रहा पर पीछे पैरिसमें मेइए, वान्द्रियाज्ञ और दऊज़ाने इसका बीड़ा उठाया और उसी लगनसे काम उठाया जैसे जर्मनवाले कर रहे थे। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जर्मनीमें काम कुछ मन्दा पड़ गया हो, वहाँ भी ऊँड्ट, हर्ट, *लासकिन* और *स्क्रिप्चर* इस काममें जी-जानसे जुटे हुए थे। अमेरिकाके *ब्लूमफ़ील्ड*, इंगलैण्डके *डेनियल जोन्स* और हौलैण्डके *ओटो जेस्पर्सन*का नाम भी इन्हीं लोगोंमें लिया जा सकता है।

§ ४०—भारतमें योरोपीय ढंगपर : भंडारकर : चाटुर्ज्या : श्यामसुन्दरदास तथा अन्य लोग।

भारतमें भी जो लोग बोलियोंकी छानबीनमें नाम पा चुके हैं वे हैं—*रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर* और *सुनीतकुमार चाटुर्ज्या* यों भारतकी अलग-अलग बोलियोंपर कुछ लोगोंने काम किया है पर वह चलता सा है और योरोपीय ढंगकी लकीरपर है।

जबसे ऊँची कक्षाओंमें हिन्दी पढ़ाई जाने लगी तबसे हिन्दी और उसकी बोलियोंकी परखके लिये *आचार्य श्यामसुन्दरदास*ने भाषाविज्ञान और भाषा-रहस्य लिखा और फिर तो बहुत लोगोंने योरोपीय ढंगपर भारतकी बहुत सी बोलियोंपर अच्छी पोथियाँ लिखी हैं। फिर भी किसीने बोलियोंकी जाँच-परखका अपना कोई ढंग नहीं निकाला, योरोपवालोंकी लकीर पीटते रहे।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—योरोपमें भी पहले यूनान और इतालियामें बोलियोंकी छानबीनका काम चलाया गया।

२—संस्कृत पढ़नेपर कुछ योरोपके पंडितोंको बोलियोंका मिलान करके उनकी छानबीन करनेका चाव बढ़ा।

३—बौप, ग्रिम और हम्बोल्टने इसपर बहुत काम किया।

४—फिर तो बहुत लोगोंने इसपर काम करनेका लग्गा लगाया।

५—भारतमें भी योरोपके इस ढर्रेपर कुछ काम किया गया।

॥ इति भाषालोचन-प्रस्तावना ॥

—:-०-:—

पहली पाली

[बोलियाँ क्यों और कैसे आईं, उनकी बनावट और उनका फैलाव]

१

बोलियाँ कहाँ जनमीं ?

यह धरती

कैसे बनी हमारी धरती—ईश्वरने संसार बनाया—न्याय-जैन-वैशेषिक मतसे नन्हें कनकोंसे संसार—सदासे हैं ईश्वर संसार—अपने-आप बनी है धरती—जलते गोलेसे बन निकली।

§ १—**कथं संसारोत्पत्तिः।** [**कैसे बनी हमारी धरती ?**]

ईश्वरने यह धरती कब और कैसे बनाई या यह अपने-आप बन गई, इसपर सब धर्मोंकी पोथियोंमें अलग-अलग ढंगसे कही हुई बड़ी अनोखी-अनोखी कहानियाँ मिलती हैं।

§ २—**ईश्वरः कारणम्।** [**ईश्वरने संसार बनाया।**]

वेदने कहा है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—शुक्ल यजुर्वेद : अध्याय १३, कंडिका ४, मंत्र १

[सबसे पहले सोनेके जैसा दमकता हुआ एक चमकदार गोला था। उसी चमक-दमकवाले पुरुषने ही आगे होनेवाले सारे संसारको अपने मनसे चलाया, उसीने इस धरती और आकाशको अपनेमें सँभाले रक्खा। उस संसारके बनानेवालेकी हम हवनकी सामग्रीसे पूजा करते हैं (या बताइए ऐसे चमक-दमकवाले किस देवताकी हम हवनकी सामग्रीसे पूजा करें या जब ऐसा देवता

हमें मिल गया है तो हम और किस देवताको हवनकी सामग्री देकर उसकी पूजा करें।)।

वेद—

अनगिनत सिर, आँख और हाथ-पैरवाले विराट् पुरुषने कैसे-कैसे इस संसारका पसारा किया, इसका बड़ा लम्बा-चौड़ा ब्यौरा देते हुए वेदने बताया है कि उस विराट् पुरुषने ही यह धरती और इस धरतीपर जो कुछ है सबको जन्म दिया।[1]

मनु—

मनुने संसारके जन्मकी बात समझाते हुए कहा है कि सबसे पहले चारों ओर अँधेरा-गुप्प छाया हुआ था। तब अपनेमें अपने-आप दिखाई पड़नेवाले, बिना रूपवाले भगवान्ने धीरे-धीरे वह अँधेरा दूर किया और संसार बनानेके लिये अपनी देहसे चारों ओर पानी फैलाकर उसमें बीज डाल दिया। उस बीजसे सोनेके जैसा दमकता हुआ और सूर्यके जैसा चमकता हुआ एक अंडा-सा उठ आया। उसी अंडेमें भगवान् ही इस संसारके बनानेवाले ब्रह्माके रूपमें दिखाई पड़े।

वेदान्त—

वेदान्तवाले मानते हैं कि जो कुछ है सब ब्रह्म ही है। हम लोगोंकी समझपर ऐसा अजानपनका परदा पड़ गया है कि हम संसारमें दिखाई देनेवाली सब बातोंको सच मान बैठे हैं। यह सब ब्रह्म ही है, उसीमें लहर, बुलबुले और जैसे अलग-अलग नाम लेकर उठ खड़े होते हैं और फिर उसीमें समा जाते हैं।

---

१ ततो विराडजायत विराजोऽअधिपूरुषः।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥
—शुक्ल यजुर्वेद : अ० ३१, मन्त्र ५।

§ ३—परमाणुरेव कारणमिति न्यायवैशेषिकजिनागमेषु।
[न्याय-जैन-वैशेषिक कहते, नन्हें कनकोंसे संसार।]

न्याय और वैशेषिक—

न्याय और *वैशेषिक* शास्त्रवालोंका कहना है कि जब यह सारा संसार सिमट और मिटकर चूर-चूर हो जाता है, तब एक परमेश्वर ही बचे रह जाते हैं। वे जब फिरसे संसार बनाना चाहते हैं तब उस दिखाई न देनेवाले परमात्माके मेलसे बयारके नन्हें-नन्हें कनकोंमें हलचल होने लगती है। धीरे-धीरे इन कनकोंके मिलनेसे बयार बढ़ती चलती है और आकाशमें फैलने लगती है। इस बयारके साथ-साथ पानीकी छोटी-छोटी बूँदें बढ़ती चलती हैं, फिर बढ़ते-बढ़ते पानी फैल जाता है और वह बयारके सहारे हिलता-काँपता हुआ पानीमें ही समाया रहता है। यों ही धरतीके छोटे-छोटे कनके मिलकर बढ़ते-बढ़ते पानीमें बैठते रहते हैं और धीरे-धीरे संसार बन जाता है। न्याय और वैशेषिकवाले इन नन्हें-नन्हें कनकों (परमाणुओं) से ही इस संसारका होना मानते हैं।

जैन—

जैनियोंका कहना है कि द्व्यणु-त्र्यसरेणु नामके नन्हें-नन्हें कनके पहले उठते हैं और समूचे आकाशमें फैल जाते हैं। उन्हींसे पहले बयार, बयारसे आग, आगसे पानी और पानीसे धरती बनने लगती है।

सांख्य और योग—

सांख्य और *योगवाले* मानते हैं कि प्रकृति और पुरुषके मेलसे यह संसार बना है।

पुराण—

पुराणोंमें तो लगभग एक ही बात दुहराई गई है कि एक ही

देवता है जिन्होंने यह स्वर्ग, पृथ्वी, रसातल, जीवजन्तु और पेड़-पौधोंसे भरा संसार बनाया है और जो इसे पालते हैं।

§ ४—नित्यत्वमीश्वरसंसारयोः। [सदासे हैं ईश्वर-संसार।]

यूनानवाले—

यूनानी अरस्तू मानता है कि संसारका यह ढाँचा और उसका इस ढंगसे सौर मंडल (सूर्यके चारों ओर घूमनेवाले पिंडोंके साथ) में बना रहना सदासे चला आया है और सदा रहेगा। वह कहता है कि हम संसारको जैसा देखते हैं, वैसा ही था, वैसा ही है और वैसा ही रहेगा। *अफ़लातून* (*प्लेटो*) मानता है कि न जाने कबसे न बदलनेका जो एक ढंग इन बदलनेवाली वस्तुओंके साथ घुला-मिला चला आ रहा है उसीकी सदासे चली आनेवाली और सदा रहनेवाली बाहरी चमक ही यह संसार है। छठी सदीमें *अलेक्सेन्द्रियामें* जो *नये अफ़लातूनी* (*न्यू प्लेटोनिस्ट*) लोग आए वे मानते हैं कि ईश्वर और संसार दोनों ही सदासे हैं और सदा रहेंगे। दूसरा मत यह है कि भगवानके साथ-साथ संसारका सब कुछ सदासे रहता आया है और सदा रहेगा। इन लोगोंका कहना है कि पहले यह सारा संसार बिखरा-बिखरा हुआ-सा पिंड था। इसीसे पहले *एरियस* और *वायु* और पीछे *वायु-दिवा* उत्पन्न हुए। एपिकुरसने भी सबसे पहले नन्हें-नन्हें कनकोंको ही इस संसारका बनानेवाला माना था। तीसरा मत यह है कि सबसे पहले एक भगवान ही थे। उन्होंने कहा—'उजाला' हो और उजाला हो गया। इस ढंगसे जो कुछ उन्होंने चाहा वह होता गया। सबसे पहले *आनाक्सागोरसने* ही यह बात चलाई। पीछे एत्रस्कनों, पारसियों, यहूदों और ईसाइयोंने भी यही बात मान ली।

यहूदी—

संसार के जन्मपर बड़ी अटकलें लगाई हैं। इनमेंसे एकका कहना है कि जैसे सतवाड़े (सप्ताह) में सात दिन होते हैं, वैसे ही ब्रह्मांड भी सात हज़ार वर्षतक रहता है, फिर पुराना संसार मिट जाता है और नया जन्म लेने लगता है। दूसरोंका कहना है कि यह संसार सदासे है, सदा रहेगा। तीसरे कहते हैं कि यह ब्रह्माण्ड बनाया हुआ नहीं है, यह उसकी फड़कन भर है।

मिस्रवाले—

पुराने *मिस्र*के लोग भी वही मानते थे जो *मनु* मानते थे कि सबसे पहले चारों ओर घना अँधेरा छाया हुआ था, फिर ईश्वरकी शक्तिसे इसमें पानी और एक बड़ी महीन चमक पैठती है। उससे एक पवित्र लपट उठती है और वह भाप जैसी लपट घनी होकर इस ब्रह्माण्डके रूपमें ढल जाती है। तब देवता लोग इस जीव-जन्तुवाले और पेड़-पौधोंवाले संसारको बनाते हैं।

स्कन्दिनेविया—

स्कन्दिनेवियाके *बलास्या* नामके काव्यमें लिखा है कि पहले एक बड़ा भारी सूनापन चारों ओर फैला था। इसके उत्तरमें कुहासे और ओलेसे ढँका हुआ अँधेरा भर था। यहाँके गर्म जलके गड्ढेसे लगातार बारह नदियाँ बहती रहती थीं और किसी एक उजालेवाले देशसे एक किरण आकर इसके दक्खिनी भागमें उजाला करती रहती थी। धीरे-धीरे इस गरम देशसे एक बहुत ही गर्म लहरा चलकर उत्तरकी ओर बहता हुआ इस जमे हुए पानीको पिघलाने लगा। उस पानीसे मनुष्य जैसा दिखाई देनेवाला *जमीर* नामका एक दैत्य निकल पड़ा और तभी *आउधूमवला* नामकी एक गाय भी उसमेंसे निकल पड़ी जिसका दूध पी-पीकर

जमीर बड़ा हुआ। तब नमक और घने कुहरेसे ढके हुए पत्थरोंको चाट-चाटकर इस गायने तीन दिनमें *बुधि* नामका एक मनुष्य उपजाया। *बुधिके* लड़के *बोरका* ब्याह एक दैत्य लड़कीसे हुआ जिसके गर्भसे तीन देवता हुए जिन्होंने *जमीरको* मार डाला और उसके मांससे धरती, लहूसे समुद्र और नदी, हड्डियोंसे पहाड़ और खोपड़ीसे आकाश बनाया। फिर एक दिन समुद्रके किनारे घूमते हुए इन तीनों देवताओंने जलमें बहते हुए दो लकड़ीके टुकड़े देखे। एक देवताने उन लकड़ियोंमें साँस और प्राण डाले, दूसरने फड़कन और आत्मा, तीसरेने बोलने-देखने और सुननेकी शक्तिके साथ सुहावनापन दिया, ये ही दोनों पहले पुरुष और पहली स्त्री हुए।

मुसलमान—

मुसलमान भी यही मानते हैं कि पहले-पहल खुदा या ईश्वरने चाहा कि यह संसार हो जाय और यह हो गया। वे मानते हैं कि बाबा आदम ही संसारके सबसे पहले मनुष्य थे।

§ ५—विश्वस्य स्वयमुत्पत्तिः। [अपने-आप बनी है धरती।]

वेदोंमें जहाँ इस ढंगसे एक हिरण्यगर्भ या एक विराट् पुरुषसे सारे संसारके जन्म लेनेकी बात इतने ठाठकी उठानके साथ कही गई है वहीं आजकलके उन लोगोंकी समझमें आनेवाले ढंगसे भी धरतीके जन्मकी बात वेदोंमें समझाई गई है जो ईश्वरको या तो मानते ही नहीं हैं या मानते भी हैं तो उसे इस बखेड़ेमें डालकर उलझाना नहीं चाहते। इसीलिये वहाँ यह भी कहा गया है कि—

आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई है।[1]

---

१ "आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेराप अद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते।"

पर इधर जबसे लोग सब बातोंकी आँखोंदेखी साख माँगने लगे हैं और सब बातोंमें विज्ञानकी दुहाई देने लगे हैं तबसे सभी लिखने-पढ़नेवाले चौकन्ने हो गए हैं। वे कोई ऐसी बात कहना या लिखना नहीं चाहते जिसे वे दूसरोंसे मनवा न सकें। पर धरती कैसे बनी, कहाँसे आई और उसपर अलग-अलग रूप-रंग, चाल-ढाल, बोल-चाल और ठाट-बाट लेकर इतने पेड़-पौधे, जंगल-पहाड़, झाड़-झंखाड़, नदी-नाले, चलते-उड़ते-तैरते जीव-जन्तु कहाँसे फूट निकले इसपर अभीतक अटकलें ही लगाते जा रही हैं, किसी माईके लालका किया अभीतक यह न हो सका कि ताल ठोंककर, ललकारकर, डंकेकी चोट यह कह सके कि धरती यों बनी और यहाँसे आई।

§—ज्वलत्पिण्डाद्विश्वोत्पत्तिः। [जलते गोलेसे यह निकली।]

ला प्ले—

अठारहवीं सदीमें फ्रान्सके ला प्ले (प्लेस) ने यह समझाया कि सबसे पहले जलता, धधकता और दमकता हुआ वायुका एक गोला सूने आकाशमें बवंडर बनकर बड़ी झोंकसे घूमता हुआ नाच रहा था। धीरे-धीरे वह गोला ठंडा होता गया, उसकी बाहरी तह धीरे-धीरे जमने लगी और झोंकसे घूमनेसे, उससे टूटकर, अलग होकर बहुतसे गोल पिंड इधर-उधर घूमने लगे। बीचका जलता हुआ गोला अभीतक सूर्य बनकर जल रहा है। उससे टूटकर अलग निकले हुए पिंड ही मंगल, धरती, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, नेपूचन यूरेनस और प्लूटो बनकर अबतक अपने पुराने पिंडके खिंचावमें बँधे उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं।

नौर्मन लौकयर और सौ—

सर नौर्मन लौक्यरका कहना है कि आकाशमें चमकनेवाले

जितने ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, धूम्रकेतु और तारे हैं वे सब उस ढंगके टूटे हुए तारोंकी छोटी-बड़ी या नन्हीं-नन्हीं कनियोंसे बने हैं जो कभी-कभी धरतीपर भी आकर बरस जाती हैं। जब आकाशमें चमकनेवाले दो पिंड टकरा जाते हैं तब वे चूर-चूर होकर सारे आकाशमें बिखर जाते हैं और जो टुकड़ा जिस ग्रहके खिंचावमें पड़ जाता है उसीसे मिल जाता है। आचार्य सौ मानते हैं कि ऐसी-ऐसी नन्हीं-नन्हीं कनियाँ आकाशमें छाई रहती हैं और उन्हींके मेलसे पिंड बनते रहते हैं।

जैफ़रे—

जैफ़रेका कहना है कि कभी न कभी इस सूर्यकी भी किसी बड़े नक्षत्र से भिड़न्त हो गई होगी जिससे बिखरी हुई धूल-मिट्टी मिलकर इस धरतीके रूपमें सिमटकर लिपट गई होगी।

इनमेंसे हम चाहे जो भी बात मानें पर उसका मिलान "हिरण्यगर्भ" से पूरा-पूरा और सच्चा हो जाता है कि पहले-पहल सोनेके जैसा दमकता हुआ एक गोला रहा है जिसमें यह धरती समाई हुई थी और जिससे यह धरती फूट निकली।

इन बातोंसे हमें यह समझनेमें झंझट न होगी कि धरती और संसारकी बनावटपर जितनी अटकलें लगाई गई हैं उन्हें हम तीन पालियोंमें बाँध सकते हैं—एक तो वे. जो मानते हैं कि ईश्वरने संसार बनाया; दूसरे वे. जो समझते हैं कि नन्हें-नन्हें धूलके कनकोंसे या पानीकी या बयारकी नन्हीं-नन्हीं बूँदोंके मिलनेसे यह संसार बन गया; तीसरे वे, जो मानते हैं कि यह संसार सदासे ऐसा ही है और सदा ऐसा ही रहेगा। इनमेंसे पहली और तीसरी पालीकी बात मान लें तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि मनुष्य भी सदासे है और रहेगा और वह सदासे बोलता चला आ रहा है और सदा बोलता रहेगा। दूसरी पालीवालोंकी

बात माननेसे हमें यह भी मानना पड़ेगा कि धीरे-धीरे छोटे जानवरोंसे बड़े जानवर बनते गए उनमें मनुष्य भी योंही बढ़ते-बढ़ते बना और उसकी बोली भी धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते अपने-अपने ढाँचेमें आ बँधी। विज्ञानकी खोद-खोज करनेवाले लोग मंगलपर धावा मारकर मंगलवालोंसे मेल-जोल बढ़ानेकी बात सोच रहे हैं पर अभी दिल्ली दूर है। अभी तो हम अपनी इस धरतीपर बोलनेवाले मनुष्योंकी ही बोलियोंकी जाँच-परख करेंगे।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—कुछ लोग यह मानते हैं कि संसारको ईश्वरने बनाया।

२—कुछ कहते हैं कि ईश्वर और संसार दोनों सदासे हैं और सदा रहेंगे।

३—कुछ मानते हैं कि बयार, पानी या धूलके नन्हें-नन्हें कनकोंसे संसार बना।

४—कुछ मानते हैं कि एक धधकते हुए बयारके या आगके गोलेसे छिटककर यह संसार बना।

—:-o-:—

२

यह बोलनेवाला

पहला मनुष्य

कहाँसे आया कहो मनुष्य—डेढ़ करोड़ बरसका बूढ़ा—भोजन, घर, बच्चोंको लेकर झुण्ड बनाकर रहता मानव—पान-फूल-फल यही रहा मानवका भोजन—बहुधन्धी जब बना तभीसे करना हमें विचार—अलग बनावट-रंगके अलग झुण्डके लोग—नदी तीरपर पहली बस्ती—पिछड़े रहे घुमन्तू लोग—नदी तीरपर बसनेवाले आगे बढ़ते चले गए।

§ ७—अथ मानवोत्पत्तिः। [कहाँसे आया कहो मनुष्य।]

ऊपर तो हम बता ही चुके हैं हमारी यह धरती सूरजके चारों ओर घूमनेवाले अनगिनत चमकदार गोलोंमेंसे ही एक गोला है। इस गोलेपर हम कितने दिनोंसे रहते आए हैं और इस गोलेने अपने जन्मसे लेकर अब तक कितने-कितने भेस बदले हैं इसकी कहानी बड़ी अनोखी है। जिन लोगोंने धरतीके तहोंकी छानबीन की है, उनका कहना है कि यह धरती कम-से-कम दो अरब (२०००००००००) बरस पुरानी है। पहले यह भी सूरज जैसी गरम थी। धीरे-धीरे यह ठंढी होती गई, सिकुड़ती गई, बादल, पानी और आँधीसे इसके ऊपर धुन्ध छाता रहा और फिर धीरे-धीरे इसपर पेड़, पौधे, जीव-जन्तु और मनुष्य दिखाई देने लगे।

§ ८—**सार्द्धकोटिसमवृद्धमानवः। [डेढ़ करोड़ बरसका बूढ़ा।]**

जिन लोगोंने मनुष्य और उसकी बनावटपर खोज की है उनका कहना है कि कुछ नहीं तो कम से कम डेढ़ करोड़ बरस पहले मनुष्यकी बनावट दूसरे जानवरोंसे अलग दिखाई देने लगी होगी और साढ़े बारह लाख बरस पहलेसे तो वह बड़े-बड़े हाथी जैसे जीवोंसे जूझता चला आ रहा है। इधर चट्टानोंके बीच जो पथराई हुई खोपड़ियाँ मिली हैं, उनके सहारे यह कहा जाता है कि उस खोपड़ीवाला मनुष्य कम-से-कम साढ़े बारह लाख बरस पहले रहा होगा। शिवालक पहाड़में जो खुदाई हुई और उसमें जो हड्डियोंके ढाँचे मिले हैं उनसे भी यही जान पड़ता है कि लाखों बरस पहले यहाँ मनुष्य रहते रहे होंगे।

§ ६—**आहारावाससंततिसंघोयो मनुष्यः। [भोजन, घर, बच्चोंको लेकर, झुंड बनाकर रहता मानव।]**

ये मनुष्य जबतक पहाड़ोंकी गुफाओं और खोहोंमें रहते रहे और पेड़परसे फल-फूल तोड़कर खाते-पीते रहे तबतक वे दूसरे जीवधारियोंसे किसी बातमें अलग न थे, न रहे होंगे। आप लोग जंगली चौपायों और पक्षियोंको भी ध्यानसे देखें तो आपको समझनेमें देर नहीं लगेगी कि वे इतना काम तो करते ही हैं—

(क) *खाना और खाना जुटानेके लिये दौड़-धूप करना*—इनमेंसे कुछ जीवधारी खाना जुटाकर भी रखते हैं जैसे चींटी; कुछ ऐसे हैं जो भूख लगनेपर खाना जुटाते हैं, इकट्ठा करके नहीं रखते जैसे बाघ, हाथी, गाय, भैंस। इनमेंसे कुछ पत्ते-फूल-फल

खाते हैं कुछ मांस दूसरा कोई इनका खाना लेने आवे तो मार-पीटपर तुल जाते हैं।

(ख) *घरमें रहना*—कुछ जीवधारी अपने आप घोंसले, बिल, बांबी, खोंते और भीटे बना लेते हैं जैसे चिड़िया, बया, चूहा, दीमक, सेह। कुछ ऐसे हैं जो दूसरोंके बनाए घरोंमें घुसकर बैठ जाते हैं जैसे साँप और सिंह। कुछ ऐसे हैं जो पहाड़ों, पेड़ों और जंगलोंमें बनी हुई गुफाओं, खोखलों और कुञ्जोंमें जा रहते हैं, अपने हाथ-पैर चलाकर घर नही बनाते जैसे बन्दर। कुछ-को घर बनानेका काम ही नहीं पड़ता जैसे पानीके जीव।

(ग) *अंडे, बच्चे देना और उनकी देख-भाल करना या परिवार बनाना*—कुछ जीवधारी अंडे देते हैं, कुछ बच्चे जनते हैं, पर इन सभीमेंसे कुछमें एक नर और एक नारी होती है, जैसे सिंह। कुछ ऐसे हैं जिनमें नर और नारी दोनों ही अपने बच्चोंकी देखभाल करते और उन्हें बाहरी संकटोंसे बचानेके लिये जी-जानसे तैयार रहते हैं। कुछमें कई नर-नारियाँ होती हैं जैसे हाथी घोड़ा, गौ, कुत्ता, बिल्ली, बकरा। इनमें नर तो संग करके अलग हो जाता है, नारी ही बच्चोंकी देख-रेख करती और पालती है। कुछ ऐसे हैं जो अपने अंडे-बच्चे खा भी जाते हैं जैसे मछली और साँप।

(घ) *इकट्ठे रहना*—जल, थल और आकाशके जीवधारियोंमें कुछको छोड़कर लगभग सभी ऐसे हैं जो झुण्ड बाँधकर रहते हैं, कभी संकट पड़े तो सब एक साथ चिल्ला उठते हैं या संकट देने वालेका सामना करते हैं जैसे मधुमक्खी, चिड़ियाँ, कौवे, बन्दर, भेड़िए, और गौ।

§ १०—शाकाहारी मनुष्यः। [पान-फूल-फल यही रहा मानवका भोजन।]

इस ढंगपर मनुष्यके रहन-सहनकी छानबीन की जाय तो जान पड़ेगा कि अभी तक भी संसारमें जो निरे जंगली लोग हैं, उन्हें देखनेसे जान पड़ता है कि मनुष्य खाता है, खानेके लिये दौड़ धूप करता है और खाना भी इकट्ठा करता है। देहकी बनावटपर खोज करनेवालोंमेंसे कुछका कहना है कि मनुष्य साग-पात-फल-फूल खानेवाला जीव है क्योंकि बनावटमें वह जिन जीवोंसे मिलता-जुलता है उनमेंसे कोई भी मांस नहीं खाता और मांस खानेवाले जीवोंकी दाढ़ोंमें जो फाड़नेवाले नोकीले दो-दो दाँत नीचे ऊपर होते हैं, वैसे दाँत मनुष्यकी दाढ़ोंमें नहीं होते और उसके नख भी इतने पैने नहीं होते हैं कि उनसे आखेटको फाड़ सके। पत्थर और धातुयुगके जो बहुतसे हथियार मिले हैं, वे आखेटके लिये न होकर भालू, सिंह, भेड़ियोंको मारनेके लिये होंगे।

§ ११—विचारणीयो बहुव्यापारशीलो मानवः। [बहु-धन्धी जब बना तभीसे करना हमें विचार।]

ममुष्य घर बनाकर भी रहता है, खोहों और गुफाओंमें भी रहता है। एक नर अपने साथ एक नारी या कई नारियाँ रखता है या एक नारी कई नर रखती है और अपने बच्चोंकी देखभाल उन्हें पास रखकर करती है। वह इकट्ठा भी रहता है पर अपने खाने-पीने या बाल-बच्चेपर आँच आते देखकर आपसमें भी लड़ने-भिड़नेपर उतारू हो जाता है। वह चारों हाथों पैरोंपर कभी चलता था या नहीं, यह कोई ठीक-ठीक नहीं कह सकता। पर यह कोई अचरजकी बात नहीं है। टुंड्राका

एस्किमो अपने इगलू (बरफके घर) में चारों हाथों-पैरोंसे बन्दर बनकर घुसता है। आस्ट्रेलिया और अफ्रीकाकी जंगली जातियाँ सकरे मुँहवाली अपनी गोल झोपड़ियोंमें भी इसी ढंगसे घुसती हैं। भेड़ियोंके भीटोंसे जो मनुष्यके बच्चे जीते पकड़कर लाए गए हैं वे भी चारों हाथों-पैरोंपर ही चलते-दौड़ते मिले हैं। सच पूछिए तो लाखों बरसतक उसके रहन-सहनकी बातें एक सी ही रही हैं। इसलिये वे हमारे बहुत कामकी भी नहीं। पर जबसे मनुष्य अपना तन ढकनेके लिये पेड़ोंकी छाल काममें लाने लगा, सोचने-विचारने लगा. खोह छोड़कर पत्थरोंको एकपर-एक रखकर या पत्तोंसे छाकर घर बनाने लगा, दो पत्थरोंको एक दूसरेसे टकराकर आग जगाने लगा, अकेले रहनेकी बात छोड़कर दो चार दसके साथ झुंड बनाकर एक दूसरेके सुख-दुखमें साथ देता हुआ रहने लगा. अपने खानेके लिये बीज बोकर अनाज उपजाने लगा, पत्थरोंसे अनाज पीसकर आगपर पकाने लगा, अनाज रखनेके लिये बर्तन-भाँड़े पकाने और बनाने लगा, तन ढकनेके लिये कपड़ा बनाने लगा, अपना परिवार पालनेके लिये ढोर रखने लगा, खेतोंके लिये हल, इधर-उधर आने-जानेके लिये गाड़ी और नाव बनाने लगा और अपने झुंडकी रखवालीके लिये हथियार सजाने लगा तबसे वह मनुष्य कुछ अपना-सा लगने लगा और तभीसे उसकी बोलीका इतिहास हमें जानना भी चाहिए क्योंकि इससे यह समझनेमें झंझट न होगी कि मनुष्यने भोजन और परिवारके लोगोंका भेद और नाम समझानेवाले शब्द बनाए होंगे फिर अस्त्र-शस्त्र. खेती-बारी, ढोर-डंगर. पेड़-पौधे, नाव-गाड़ी, संगी-साथी और गाँव-समाज बनानेके लिये शब्द बटोरे या बनाए होंगे।

§ १२–भिन्नाकराः भिन्नवर्णनराः। [अलग बनावट रंगके अलग झुण्डके लोग]

एक ही झुंडसे संसार भरमें सब मनुष्य फैले या अलग-अलग देशोंमें वे अलग-अलग हुए, यह कोई ठीक नहीं कह सकता। पर काले, पीले, गोरे और लाल रंगोंसे, ऊँचे लम्बे, चौड़े, ठिगने ढाँचोंसे और लम्बे, गोल, चौड़े, चपटे मुँहकी बनावटसे ऐसा जान पड़ता है कि अलग-अलग देशोंमें अलग-अलग ढंगसे मनुष्य रहते चले आए होंगे। आजकल जो बड़े-बड़े देश हम धरतीपर देखते हैं, उनमें पाँच बहुत बड़े धरतीके टुकड़े दिखाई पड़ते हैं। ये हैं—एशिया, योरप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका। इनमें एशियाका मनुष्य ही सबसे बढ़कर समझदार और सब बातोंमें बढ़ा-चढ़ा मिला है, इसके पीछे अफ्रीका है, जो एशियासे मिला हुआ ही है और योरप भी इसीका एक टुकड़ा ही है। अमेरिका और आस्ट्रेलियावालोंको पहले इधरवाले नहीं जानते थे और जब योरपके लोग इन देशोंमें जाकर बसने लगे तो वहाँ उन्हें कुछ जंगली जातियाँ पहलेसे रहती हुई मिलीं। इधर मैक्सिकोमें जो खुदाई हुई है, इससे जान पड़ता है कि उनका भारतवालोंके साथ भी बहुत पुराना मेल-जोल रहा होगा।

धरतीके इन बड़े-बड़े देशोंमें फैलनेसे अलग-अलग झुंडोंमें बँटे हुए मनुष्योंने कैसे अलग-अलग अपना रहन-सहन, खान-पान और राज-समाज बनाया और चलाया, यह हम सबको इसलिये जानना चाहिए कि इन्हींके सहारे हम उनकी बोलियोंके भेदोंको ठीक-ठीक समझ पावेंगे।

§ १३—आदिवासस्तटिनीतीरे। [नदी-तीरपर पहली बस्ती।]

मनुष्य जैसा आज है और जैसे वह आज रहता है, यह

उसकी लाखों बरसोंकी कमाई है। आज भी हम देख रहे हैं कि रेगिस्तानमें, घने पहाड़ोंमें, जंगलोंमें और ठंडे देशोंमें मनुष्य कम रहते हैं। जहाँ उन्हें खाने-पीने रहनेका अच्छा ठिकाना मिलता है, वहीं वे जाकर बसते हैं और बहुत बढ़ जानेपर भी उसीमें रहते चले आते हैं। पहले भी मनुष्य ऐसी ही ठिकानोंकी खोजमें रहता था जहाँ उसे खाने-पीनेका पूरा सुपास हो, जहाँ वह फल-फूल और अनाज उपजाकर अपना, अपने बच्चोंका और अपने ढोरोंका पेट पाल सके। धरतीकी बनावट देखनेसे यह बात समझमें आ जाती है कि ऊँचे-ऊँचे ऊबड़-खाबड़ पथरीले पहाड़ों-पर पानी और खेतीका डौल नहीं बैठता। यही बात रेगिस्तान और ठंडे देशोंकी भी है। घने जंगलोंमें भी इतने जंगली जानवर रहते हैं और इतने बड़े-बड़े पेड़ होते हैं कि पेड़ काटकर उपजाऊ धरती बनाना और जंगली जानवरोंसे उसकी रखवाली करना टेढ़ी खीर है। पर नदियोंकी कछारोंमें और उनके बीचके समथलमें ये झंझटें नहीं होतीं। हाँ, कभी-कभी बाढ़ आ जानेसे कुछ भागादौड़ी हो जाती है, यहाँतक कि खेत भी बह जाते हैं पर उससे यह तो होता ही है कि अच्छी मिट्टी आती रहती है और आगेकी उपज अच्छी हो जाती है। इसलिये जबसे मनुष्य सोच-समझकर काम करने लगा, हाथ-पैर चलाकर, ढोर पालकर, खेत जोत-बोकर, ठिकाना जमाकर रहने लगा तबसे वह नदियोंकी कछारोंमें ही अपनी बस्तियाँ और अपने खेत बनाता चला आ रहा है। इसलिये हम देखते हैं सब बातोंमें आगे बढ़े हुए, अच्छी बस्तियोंमें रहनेवाले सबसे पुराने सुलझे हुए लोग नदियोंकी कछारोंमें ही रहते मिलते हैं।

§ १४—विकासहीना चंक्रमणशीलाः [पिछड़े रहे घुमन्तू लोग।]

इनमें कुछ ऐसे भी लोग थे जो इधर-उधर घूमते-फिरते थे

और बारह महीने अपने ढोरोंको लिए हुए अपने बाल-बच्चोंके साथ जहाँ हरी घास या हरियाली मिली वहीं चले जाते थे और सूखा पड़ते ही वहाँसे डेरा-डंडा उठाकर किसी दूसरी हरियालीकी खोजमें चल देते थे। इस उठा-चली और भाग-दौड़में वे पेट पालने और लड़ने-भिड़नेकी बात तो सोचते रहे पर मिल-जुलकर रहने, घर-बार बनाने, गाँव-बस्ती बसानेकी बात वे नहीं सोच पाए और इसीलिये पढ़ना-लिखना, सोचना-विचारना, और अच्छे रहन-सहनकी बातें सोचने-समझनेपर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। उनके पास इतनी छुट्टी भी कहाँ थी।

§ १५—**तटिनीतीरवासिनो मुख्याः। [नदी तीरपर बसने वाले आगे बढ़ते चले गए।]**

पर जो लोग नदियोंके कछारोंमें बसते थे, उन लोगोंने धरती छीली, खेतोंमें अनाजकी बालियाँ उपजाईं, बस्तियाँ बनाईं, गाँव बसाए, घर खड़े किए, उन्हें सजाया-सँवारा, कूएँ और तालाब खुदवाए, गिरस्ती जोड़ी, गिनती सीखी, इन कामों और खेतीसे बचे हुए समयमें अपना, अपने बाल-बच्चोंका, अपने गाँव या बस्तीका और टोलीका फैलाव और जमाव करते रहे। सबसे पहले घर बने। तब उन्हें यह सूझी कि इन्हें सजाया कैसे जाय। इसी जतनमें उन्होंने देखा कि पत्तोंसे बढ़कर लकड़ी और लकड़ीसे बढ़कर पत्थर कड़े होते हैं। इसीलिये पत्थरके या पत्थर और लकड़ीके मिले हुए या आधे पत्थर और आधे लकड़ीके घर बनने लगे। जब वे मिट्टी पकाना सीख गए तब उन्होंने बर्तन बनाए, ईंट पकाकर घर उठाना सीखा और चूने-बरीसे जोड़कर वे बड़ी-बड़ी अटारियाँ खड़ी करने लगे। इन पत्थर और ईंटोंकी पुरानी-अटारियोंपर न जाने कितने धावे हुए, भूकम्पोंके धक्के लगे, इनमें तोड़-फोड़ भी हुई फिर भी अपने-अपने दिनोंकी कहानी लेकर

वे आजतक डटे खड़े हुए हैं, अपने खंडहरोंसे अपने बनानेवालोंके रहन-सहन, खान-पान, साज-सिंगार सबकी सच्ची-सच्ची कहानी सुना रहे हैं और इन्हीं सबके सहारे हम मनुष्यकी बोलीका भी बहुत सा ब्यौरा भली भाँति पा रहे हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—डेढ़ करोड़ बरससे मनुष्य अपनी समझ बढ़ जानेसे दूसरे जीवोंसे अलग हो गया था पर लगभग साढ़े बारह लाख बरससे वह हम-आप जैसा सोच-समझकर काम करता चला आ रहा है।

२—पहले मनुष्यके चार काम थे—भोजन जुटाना घर बनाना, परिवार जुटाना, मिल-जुलकर रहना।

३—जबसे वह जंगलीपनको छोड़कर अनाज उपजाने लगा, बर्तन-भाँडे, नाव-गाड़ी, घर-झोंपड़ी बनाने लगा, ढोर-डंगर, बाल-बच्चे, पालने लगा तबसे वह हमारे बहुत पास आ गया है और तभीसे उसकी बोलियोंकी छानबीन करनी भी चाहिए।

४—एक ही जोड़ेसे मनुष्योंके झुण्ड नहीं बने और फैले, अलग-अलग देशोंमें अलग बनावटके जोड़ोंसे मनुष्य उपजे और फैले।

५—नदियोंकी कछारोंमें पहली बस्तियाँ बसीं।

६—घुमन्तू लोग पिछड़े रह गए।

:-०-:

३

मनुष्य क्या बोला होगा और क्यों ?

पहली बोली

बोलियोंका काम क्या आ पड़ा—पहली बोली क्या और क्यों—ईश्वरने ही बोली दी है [दैवी उत्पत्ति] संकेतसे बोलियाँ निकलीं [संकेतवाद]—रीसपर बोलियाँ बनीं [अनुकरणवाद या बाउ-वाउवाद]—मनकी बात कहनेकी चाहसे बोलियाँ निकली [मनःप्रेरणावाद]— खटपट-ढमढमसे बोलियाँ बनीं [डिग-डँगवाद या अनुरणनवाद] —ये हे हो से बोलियाँ निकलीं [श्वासोछ्वासवाद या ये हे हो वाद]—धातुओंसे बोली बनी [धातुवाद] बेढंगी ध्वनियोंसे सँवरकर सुघरबोलियाँ बनीं [विकासवाद]—लोगोंने मिलकर बोलियाँ बना लीं [विमर्शवाद]—सब बातोंके मेलसे बोलियाँ बनीं [समन्वयवाद] आचार्य चतुर्वेदी यह नहीं मानते—अपने आप बोली निकली [स्वाभाविकोन्मेषवाद]

§ १५—अथातो नृवाग्जिज्ञासा। [बोलियोंका काम क्या आ पड़ा ?]

अपने चारों ओर चींटीसे हाथी तक, न जाने कितने छोटे-बड़े जीव हम देखते हैं और यह भी देखते हैं कि वे सब अपना-अपना काम बिना किसी बँधी और सधी बोलीके आज तक चलाते आ रहे हैं। कुछ पोथियोंमें ऐसी भी बातें देखनेको मिली हैं कि चिड़ियों-की भी कुछ अपनी बोलियाँ होती हैं जिनमें वे अपनी मनकी बात

एक दूसरीसे कह लेती हैं और उस बोलीको मनुष्योंने भी सीखा, सीखकर उनकी बातें भी सब समझने लगे और कभी-कभी उनसे बातें भी करने लगे। आज-कल भी सरकसवाले अपने घोड़ों, हाथियों और दूसरे जीवोंको वैसे ही अपनी बोली सिखा देते हैं जैसे बन्दर नचानेवाला बन्दरको अपनी बोली सिखा देता है और जैसा-जैसा मनुष्य कहता जाता है वैसा बन्दर करता जाता है। जब और सब जीवोंका काम अपनी अटपटी बोलीसे ही चल गया तब मनुष्यका ही ऐसा कौन-सा काम रुका हुआ था कि उसे अपनी बोली एक ढंगसे बाँधनी और सँभालनी पड़ी? क्यों नहीं उसने भी बन्दर, कुत्ते, हाथी, या घोड़ेके समान घुड़क-भोंककर या चिंघाड़-हिनहिनाकर अपना काम चला लिया?

§ १६—**कथमाद्यावाणी। [पहली बोली क्या और क्यों?]**

बोलियोंकी इधर जबसे छानबीनका लग्गा लगा है तबसे न जाने कितने लोग इस बातपर अटकल लड़ा चुके हैं कि पहले-पहल मनुष्यने कैसे और क्या बोलना सीखा। हम यहाँ सबकी जानकारीके लिये उन सभी अटकलोंका ब्यौरा दे देना ठीक समझते हैं।

§ १७—**दैवप्रत्तं हि वाङ्मयम्। [ईश्वरने ही बोली दी है।]**

कुछ लोग यह मानते हैं कि बोलियाँ मनुष्यने नहीं बनाई है वे तो उसे सीधे ईश्वरसे मिली है। जैसे हम लोग संस्कृतको ईश्वरकी भाषा मानते हैं वैसे ही ईसाई लोग हिब्रूको और मुसलमान अरबीको मानते हैं। पर यदि ईश्वर ही बोलियाँ देता या

बनाता तो वह सबके लिये एक ही बोली क्यों न बना देता। जैसे उसने एक आग, एक पवन, एक आकाश बनाया, वैसे ही एक बोली भी बना देता। हम भी मानते हैं कि बोली हमें ईश्वरने ही दी, पर हम उससे यह समझते हैं कि ईश्वरने हमारे गलेमें जितनी लोच भर दी है उतनी दूसरे जीवोंके गलेमें नहीं भरी। इसी लोचके सहारे हम वीणा या सारंगीके तारोंपर गूँजनेवाली मीड़को अपने गलेमें ढाल सकते हैं और न जाने कितनी ध्वनियाँ अपने गलेसे निकाल सकते हैं। इन ध्वनियोंमेंसे बहुत सी तो ऐसी हैं जो हम बात-चीत और लिखने-पढ़नेके काममें लाते हैं और बहुत सी ऐसी हैं जिन्हें कभी-कभी हम मुँहसे निकालते तो हैं पर बोल-चाल और लिखने-पढ़नेके काममें नहीं लाते, जैसे ओठ आगे निकालकर या मुँहमें उँगली डालकर सीटी बजाना, गाय, बैल या घोड़ा हाँकते हुए जीभको मुँहके भीतर एक ओर लगाकर चटखारी देकर क्लै-क्लै करना या दुःख जतानेके लिये नीचेके दाँतके पीछे जीभ लगाकर चटखारेका शब्द करना। भाषाकी छानबीन करनेवालोंने एक बातपर अभीतक ध्यान नहीं दिया कि मनुष्यने अपनी बोलीसे जो बड़प्पन पाया है वह भाषा और बोली बनाकर नहीं, यह बड़प्पन उसने पाया है गाने-की तानें बनाकर या गानेके स्वर गलेसे निकालकर, क्योंकि गलेकी लोचकी जितनी बारीकी हम गानेमें पाते हैं उतनी बोलियोंमें नहीं। इससे यह बात कहीं तक ठीक ही है कि बोलियाँ ईश्वरने दी है क्योंकि यदि ईश्वरने हमारे गलेमें भी गये या बन्दरके गलेकी ध्वनिवाली डिबिया लगा दी होती तो हम भी चीपों या खों-खों तो कर लेते पर न हम गा सकते और न इस ढंगसे बोल सकते। पर ईश्वरने सीधे कोई बोली बनाकर किसीको दे दी हो यह झोलकी बात है।

§ १८—संकेतप्रभवा हि वाक् । [संकेतसे बोलियाँ निकलीं ।]

कुछ लोगोंका कहना है कि पहले मनुष्य सब कामोंके लिये कुछ हाथ-पैर, उँगली चलाकर मनकी बात बताता होगा जैसे पानी पीनेके लिये अपने मुँहपर हाथकी ओक बनाकर लोग अब भी संकेत करते हैं और फिर इन्हीं संकेतोंसे 'वह' और 'यह' के लिये ओ, ए, जैसी ध्वनियाँ निकाल लीं और इन्हींसे फिर भाषा बन गई। पर यह बात मानी नहीं जा सकती क्योंकि संकेत तो बोलीसे पहलेकी या बोली न होनेपर या बोलनेके बदले मनकी बात कहनेका अधूरा सहारा है। अब भी गूँगे और गूँगेसे बात करनेवाले लोग हाथ-पैर और देह हिला-चलाकर बात-चीत कर लेते हैं और उसके साथ आँ-ऊँ और गाँ-गूँ भी कर लेते हैं। इससे बोली निकलनेकी कोई बात ही नहीं उठती।

§ १९—अनुकरणमत्र कारणम् । [रीसपर बोलियाँ बनीं ।]

कुछ लोग यह कहते हैं कि पहले-पहल मनुष्यने पशु-पक्षियोंकी बोलियोंकी रीस करके ही बोलनेकी बान बढ़ाई और फिर कौवेकी काँव-काँव और कुत्तेकी भौं-भौं सुनकर इन जीवोंकी बोलियोंपर उनके नाम रक्खे और इस ढंगपर शब्द बनाए। पर संसार भरकी बोलियोंकी खोज करनेपर यह जान पड़ता है कि सभी बोलियोंमें जीवोंकी बोलियोंसे मिलते-जुलते ऐसे शब्द गिने-चुने ही हैं इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि जीवोंकी बोलियाँ सुन-सुनकर ही लोगोंने अपनी बोलियाँ बनाईं। पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, चाँद-तारे, ये तो बोलते नहीं फिर इनके लिये क्या वे चुप रहे होंगे। इसलिये इतना ही माना जा सकता

है कि जीवोंकी बोलियाँ सुनकर भी कुछ शब्द बनाए गए होंगे पर पूरी बोली ऐसे ही शब्दोंके सहारे बन गई हो यह बात ठीक नहीं है। इस मतको लोग भौं-भौंवाद 'बाऊ-वाऊ' वाद (बाउ-वाउ थियरी) या अनुकरणवाद कहते हैं।

§ २०—**विवक्षाप्रेरिता हि वाक्। [मनकी बात कहनेकी चाहसे बोलियाँ निकलीं।]**

कुछ लोग यह मानते हैं कि मनुष्यने पहले-पहल जो शब्द बोले होंगे वे डर, चिढ़, खीझ, घिन, डाह जैसे मनमें उठनेवाले भाव बतानेके लिये ही बोले होंगे जैसे ओह, आह, हुश्, हाँ, हुँम् पूह, छिः। ऐसे सब शब्द तभी निकले होंगे जब मनुष्यको अपनी देहपर चोट लग गई हो या लगनेवाली हो या जब इतना बेबस हो गया हो कि चिल्लानेको छोड़कर वह और न कुछ कर पा सक रहा हो या अपनी जोड़के या छोटे जीवोंको डाँटना-डपटना चाहता या उनसे घिनाता हो। पर जो लोग ऐसा मानते हैं, वे यह नहीं समझ पाए कि संसार भरकी सब बोलियोंका लेखा जुटाया जाय तो ऐसे आह, ऊहवाले शब्द इतने कम निकलेंगे कि उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं।

§ २१—**डिंडिमध्वनितो वागिति मोक्षमूलरोभट्टः। [खट-पट, ढम-ढमसे बोलियाँ बनीं, डिंगडैंगवाद।]**

कुछ लोगोंका यह कहना है कि पहले मनुष्यको अपने कानमें बाँसोंकी रगड़की खट-खट, पुराने सूखे हुए पत्तोंमेंसे बयार चलनेपर चर्र-मर्र, पत्थरपर पत्थर पटकनेसे खटखट जैसी जो ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं उन्हींके सहारे उसने ढमढम, खटपट, चर्रमर्र, छलछल जैसे शब्द बना लिए पर जैसे-जैसे बोलियाँ बढ़ती गईं वैसे-वैसे यह बात कम पड़ती गई। माक्सम्यूलरने इसे डिंगडैंग-

वाद कहा, जिसे हम खटपटवाद या ढमढमवाद कह सकते हैं। पर यह बात भी इसलिये नहीं मानी जा सकती कि सब बोलियों-में ऐसे शब्द भी बहुत इने-गिने ही हैं।

§ २८—**श्वासोच्छ्वासवेगाद्वाग्विवृतिः। [ये हे होसे बोलियाँ निकलीं। ये-हे-हो वाद]**

कुछ लोगोंका कहना है कि जब मनुष्य जी-तोड़ काम करता है तब उसकी साँस बड़ी झोंकसे चलने लगती है। इससे हमारे गलेकी भीतरी नसें ऐसे काँपने लगती हैं कि अपने आप कुछ शब्द निकल पड़ते हैं जैसे धोबी कपड़ा पछाड़ते समय या पहल-वान कसरत करते हुए मुँहसे ऐसे शब्द निकालते हैं जैसे हे, ये, आ, हो, बस इन्हींसे बोलियाँ निकल पड़ीं। इसको लोगोंने 'ये हे हो वाद' कहा है जिसे हम साँस-धुनवाद कह सकते हैं। पर यह भी बात मानी नहीं जा सकती क्योंकि इससे कहीं बढ़कर ध्वनियाँ तो अनेक जीव बोलते रहे हैं पर वे आजतक कोई बोली नहीं बना पाए।

§ २३—**धातुसंग्रहाद्वाक्। [धातुओंसे बोली बनी।]**

बहुतसे लोग यह मानते हैं कि संसारमें सबसे पहले मनुष्यमें कुछ ऐसी एक अनोखी बात आ गई कि उसने अचानक चार-पाँच सौ ऐसी ध्वनियाँ बना लीं जो धातु बनकर पीछे बहुतसे शब्द बनानेके काम आईं और फिर इन्हीं धातुओंसे भाषाका पहाड़ खड़ा कर लिया गया। सबसे पहले आचार्य हेजने यह बात कही और माक्सम्यूलरने इसे आगे बढ़ाया। पर यह बात कुछ समझमें नहीं आती कि इस संसारमें अचानक पहले-पहल मनुष्यको क्यों पाँच-सात सौ ध्वनियोंका काम पड़ा और वे ध्वनियाँ कैसे, कहाँसे, क्यों मनुष्यको मिल गईं। संसारकी बोलियोंमें

बहुत सी ऐसी बोलियाँ भी हमें मिलती हैं जिनमें धातुका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। यह धातु तो संस्कृत जैसी इनी-गिनी भाषाओं मिलती हैं। जिन लोगोंने बोलियों पर गहरी छानबीन की है वे जानते हैं कि व्याकरण लिखनेवालोंने ही बोलियोंमें काम आनेवाले शब्दोंकी परख करके धातुओंको खोज निकाला। इसलिये यह पाँच सात-सौ धातुओंके अचानक फूट पड़नेकी बात कुछ समझ में नहीं आती।

संस्कृत भाषाका जब हम दूसरे देशोंकी बोलियोंसे मिलान करते हैं और उन शब्दोंको छोड़ देते हैं जो उनमें संस्कृतसे मिलते-जुलते हैं तो हमें एक बात देखनेको मिलती है कि जहाँ सस्कृतमें सब शब्द एक ढंग और एक साँचेसे बनाए गए हैं वहाँ दूसरी कुछ बोलियोंमें सब शब्द अललटप्पू बनाए गए हैं। हो सकता है कि कभी किसी एक ऋषि या बहुतसे ऋषियोंने मिलकर बेढंगी बोली जानेवाली सब लोगोंकी बोलीको साज-सँवारकर सबमें काम-आने वाली धातुओंको जोड़कर इकट्ठा किया हो और सबको एक ढंगसे सजाकर ठीक करके उसका नाम संस्कृत रख दिया हो। यह भी हो सकता है कि यह भाषा देवताओंकी पूजाके लिये ही बनाई गई हो और उसका नाम देवभाषा रख दिया गया हो या जैसे बौद्धोंने बुद्धकी वाणीको सबसे अलग रखनेके लिये संस्कृत-मागधीसे मिली हुई उनकी बोलीको पालि कहकर अलगा दिया वैसे ही संस्कृत भी देवताओंके लिये अलगा दी गई होगी। हमारे यहाँ जलप्रलयकी कथाओंमें यह ब्यौरा मिलता है कि हिमालयकी दक्खिनी तलहटीमें देव रहते थे जो उस भयावनी बड़ी बढ़ियामें डूब गए और जिनमें से एक मनु भर बचे रह गए। हो सकता है कि यह सँवारी हुई बोली उन्हीं देवोंकी हो और इसीलिये वह देवभाषा कहलाती हो। जो कुछ भी हो पर

यह तो मानना ही पड़ेगा कि संस्कृत भाषा संसार भरकी सब बोलियोंमें सबसे अच्छी, पक्की, गठी हुई और मँजी हुई है और यह धातु इकट्ठा करनेका काम भी उसीमें हुआ है।

§ २४—**क्रमशोविकासः। [बेढंगी ध्वनियोंको सँवारकर बोलियाँ बनी। विकासवाद]**

बहुतसे लोग जो यह मानते हैं कि धीरे-धीरे यह सारा संसार बना और एक-एक करके छोटेसे बड़े जीव, पेड़-पौधे इसमें निकल पड़े वे यही मानते हैं कि पहले मनुष्य कुछ ऊटपटाँग बेसिर-पैरकी ध्वनियाँ मुँहसे निकालता होगा और ज्यों-ज्यों उसकी समझ बढ़ती गई त्यों-त्यों वह इसे सुधारता, सँवारता और माँजता गया। पर यह बात भी इसलिये नहीं जँचती कि उसने ऊटपटाँग नाम रक्खे क्यों होंगे। नाम रखनेकी बात तो तब आई होगी जब वह अपना जंगलीपन छोड़कर बहुत आगे बढ़ गया होगा और जब उसकी समझ इतनी ठोस और पक्की हो गई होगी तब उसे अटकल-पच्चू नाम क्यों रखने पड़े, तब तो वह समझकर नाम रख सकता था और शब्द बना सकता था।

§ २५—**परस्परविमर्शोद्वाणी। [लोगोंने मिल-जुलकर बोलियाँ बना लीं।]**

कुछ लोगोंका यह कहना है कि अपना काम-धाम बढ़ता देखकर बहुतसे लोग जुटे होंगे और उन्होंने मिल-जुलकर काममें आनेवाली सब वस्तुओंके नाम रख दिए होंगे। पर यह बात ही उलटी है क्योंकि जब वे कोई बोली जानते ही नहीं थे तब नाम रखनेकी बात और इकट्ठे होनेकी बात उन्होंने चलाई कैसे होगी।

§ २६—**सर्वमतसमन्वयाद्वागुत्पत्तिः। [सब बातोंके मेलसे बोलियाँ बनीं। समन्वयवाद]**

स्वीट जैसे कुछ लोग मानते हैं कि ऊपर जितने मत दिए गए

हैं ये सब अपनेमें पूरे नहीं है। इनमेंसे सबके मेलसे जहाँ जैसा काम आ पड़ा, वहाँ उस ढंगसे काम लेकर बोली बना ली गई। जो लोग यह समझते हैं कि बोलियाँ धीरे-धीरे बढ़ीं वे यह मानते हैं कि पहली बोलीमें इतना दम नहीं था कि वह फुर्तीसे आगे बढ़ सके इसलिये उसमें तीन ढंगके शब्द थे—

१—एक तो वे, जो चिढ़, घिन, टीस, खीझ या रीझसे हुँ, छिः, सी, आह बनकर मुँहसे निकलते होंगे।

२—दूसरे वे, जो खड़खड़ाहट, फड़फड़ाहटको सुनकर खड़खड़, खटपट, फड़फड़ बनकर और कुछ कौवे, कोयल और बिल्लीकी बोली सुनकर काँव-काँव, कू-कू और म्याऊँ-म्याऊँ जैसे शब्द बन गए होंगे।

३—तीसरे वे शब्द, जो किसी ध्वनिके साथ होनेवाले कामके साथ जुड़ जानेसे उसी अर्थमें काम आने लगे जैसे खानेके लिये खा-खा किया गया तो खाना बन गया, पानीके लिये ओठ मिलाकर पी-पी किया गया उससे 'पानी' या 'पीना' या 'पिब्'। इन्हीं तीनोंके सहारे न जाने कितने शब्द बने, कुछ काममें न आनेसे रगड़-घिसकर जाते रहे, कुछ नये शब्द उनके बदले काममें आते रहे और यों धीरे-धीरे बोली बनकर पूरी हो गई होगी।

§ २७—**नेत्याचार्याः। [आचार्य चतुर्वेदी यह नहीं मानते।]**

पर यह सब भी कोरी अटकल ही है क्योंकि इसका सीधा-सादा अर्थ तो यह है कि मनुष्य पहले गूँगा रहा होगा, कुछ बोलता ही नहीं रहा होगा। यह अटकल ही बेढंगी है क्योंकि सभी जीवोंमें हम कुछ बातें बराबर देख पाते हैं—वे हैं (१) भोजन ढूँढ़ना, (२) अपने या अपने बच्चोंके बचावके लिये डरना, छिपना, बचना, (३) जोड़ा बनाकर घरमें रहना, (४) काम पड़नेपर इकट्ठे

हो जाना, (५) अपने बैरीको मारकर हुलाससे उछलना-कूदना। इनमेंसे भोजन ढूँढ़नेका काम और अपने बचावके लिये डरकर भागनेका काम तो उसने चुप होकर किया पर और कामोंके लिये बन्दरों, कौओंके जैसे या जैसे बिल्लीको देखकर चिड़ियाँ अपनी साथिनियोंको सँभल जानेके लिये चहचहा उठती हैं वैसे ही मनुष्यने ऐसे भी समय खुलकर हो-हल्ला मचाया और यह सब पहलेसे ही होने लगा। इसके लिये उसे सोचने-समझने, बैठक करने, समझौता करनेकी बात ही कुछ नहीं थी। यह तो अपने-आप देहके साथ उसे मिल गई है।

मनुष्य पहलेसे ही बोलता रहा होगा यह ठीक-ठीक बताया जा सकता है। हम थोड़ा ध्यान देकर सोचें तो यह बात कुछ-कुछ हमारी समझमें आने लगेगी। अभी हालमें लखनऊके अस्पतालमें एक लड़का भेड़ियेकी माँदसे पकड़कर लाया गया है जो भेड़िये जैसा ही चारों हाथ-पैरोंपर चलता है, भेड़िये जैसा ही चिल्लाता और गुर्राता है। वह न कुछ बोलता है, न हँसता है न रोता है। बहुत दिन हुए मेदिनीपुरमें भी एक पादरीको ऐसी ही एक लड़की भेड़िएकी खोहसे मिली थी। वह भी ऐसे ही चिल्लाती-गुर्राती थी और हँसती-बोलती नहीं थी। इससे हमें तीन बातें समझमें आती हैं—

१—मुँह खानेके लिये बनाया गया था, मनुष्यने अपनी सूझसे अपनी जीभको मुँहके भीतर इधर-उधर चला-फिरा-और अटकाकर, जबड़े और ओठको आगे-पीछे नीचे-ऊपर सिकोड़-फैलाकर, अपने चारों ओर बोलनेवाले चौपायों और पंछियोंकी रीस करके उनकी बोलियोंके साथ-साथ बोलकर न जाने कितनी नई ध्वनियाँ बना लीं।

२—मनुष्य भी पहले चोट लगनेपर कराहता होगा और गुर्राता होगा, सामने अपनेसे बड़े जीवको देखकर डरके मारे घिघियाता होगा, बन्दरके जैसा घुड़कता और खो-खो करता होगा, किसीसे सताए जानेपर खीझसे दाँत किटकटाता हुआ झपटता होगा, अपने बच्चोंपर या अपने खानेपर झपटनेवाले दूसरे जीवोंपर बिगड़कर हुंकारता और गुर्राता होगा।

३—मनुष्य हँसता नहीं होगा, क्योंकि हँसनेकी बात तब थी ही नहीं। उसे जो कुछ खानेको मिलता होगा उसे दाँतसे काटकर या चीर-फाड़कर खा जाता होगा और गुफा या झाड़की ठौर देखकर वहाँ घुसकर या टेक लगाकर सो रहता होगा। इससे भली भाँति समझा जा सकता है कि पहले-पहल मनुष्यको भोजनसे काम पड़ा। फिर अपनी साथिन स्त्रीको देखकर बकरे, कुत्ते, या साँड़के समान मनुष्य भी अपनी चाह दिखानेके लिये हूँ-हाँ, ऊँ-आँ, करता रहा या जैसे हाथी अपनी प्यारी हथिनीको सालकी टहनी या कमलकी नाल लाकर देते हुए कुछ घरघराता है वैसे ही मनुष्य भी में-माँ करता रहा। अपनेसे बड़े जीवोंसे डरकर चिल्लाकर उसे भागना या छिपना पड़ा, अपनी जोड़के जीवोंसे डटकर जूझना पड़ा और अपनेसे छोटे जीवोंसे सताए जानेपर उन्हें मारनेके लिये उनपर दाँत किटकिटाना पड़ा। यही मनुष्यकी सबसे पहली बोली रही होगी। मनुष्यने अपने चारों ओर बोलनेवाले चौपायों और पंछियोंकी बोलियोंको सुन-सुनकर उनके जैसा बोलना भी सीखा और जैसी जिसकी बोली रही उसीपर उस जीवका नाम भी रक्खा। काक-काक करनेवालेको किसीने काक कहा और किसीने उसके कर्र-कर्रको सुनकर उसे 'क्रो' कहा, कुत्तेके घुरघुरानेको सुनकर उसका नाम कुक्कुर रक्खा,

गया, कोयलकी कूक सुनकर उसे कोकिल या कक्कू कहा गया, मछलीको छपाकके साथ जलमें उछलने कूदनेसे उसे मत्स या मच्छ कहा गया और पत्तेके पटसे गिरनेको सुनकर उसे पत्र कहने लगे। एक बार जब उसने अपना यह अनोखा करतब देखा तो उसका चाव बढ़ता गया और एक-एक करके नये-नये शब्द बनाता गया। धीरे-धीरे जैसे-जैसे मनुष्यकी बोली खुलती गई वैसे-वैसे वह अपनी समझसे जिस वस्तुका जो नाम ठीक समझता गया उसके रूप, स्वाद, गंध या दूसरी वस्तुसे उसका मिलान करके उसका नाम रखता गया। जैसे ईश्वरने किसी जीवको बड़ी देह दी, किसीको डरावने जबड़े और नख, किसीको सींग दी वैसे ही मनुष्यको और जीवोंसे कहीं बढ़कर समझ दी इसलिये उसने अपनी बोली बड़ी फुर्तीसे बना और बढ़ा ली।

बोलीकी डिबिया—

हमारे गलेमें एक डिबिया लगी हुई है जिसमेंसे भीतरका पवन धक्का मारकर निकलते हुए वैसे ही ध्वनि उपजाता है जैसे बाँसुरीमें फूँक मारते ही एक ध्वनि निकल आती है। पर जैसे बाँसुरी बजानेवाला बाँसुरीमें बने हुए छेदोंपर उँगलियाँ चलाकर एक ही बाँसुरीसे न जाने कितनी ध्वनियाँ निकाल लेता है वैसे ही हम भी अपनी जीभको मुँहके भीतर अलग-अलग ठौरपर अटकाव देकर बहुत सी ध्वनियाँ उपजा लेते हैं। जीभ अटकानेकी यह लचक और गलेकी डिबियामें स्वर उतारने-चढ़ानेकी जो चमक मनुष्यके गलेमें होती है वह और जीवोंके गलेमें नहीं होती। पालतू जीवोंमें सुग्गा (तोता) और मैना दो ऐसे पंछी हैं जो अपने मुँहके भीतर ऐसा ही जीभका अटकाव देकर वैसे ही बोल लेते हैं जैसे मनुष्य बोलता है, पर उनमें और मनुष्योंमें भेद यही है कि वे तो जैसा सुनते हैं वैसा ही बोल सकते हैं, किसी बातका हेरफेर

नहीं कर सकते हैं पर मनुष्य उसमें जो चाहे वह हेर-फेर भी कर लेता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सुग्गोंको समझ नहीं होती। वह सिखानेपर यह भी समझ जाता है कि कौनसी बात कब कहनी चाहिए। पर मनुष्यमें सुग्गे या मैनासे कोई बात बढ़कर है और वह है उसकी समझ या बुद्धि, जो होती तो कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, हाथी और कबूतर जैसे बहुतसे जीवोंमें भी है, पर बोलनेका ढंग न आनेसे यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि उनकी समझ किस ढंगकी और कहाँतक होती है। अपना भोजन पाने, घर-खूँटे और रखवालको पहचानने और अपने बैरियोंसे बचनेकी समझ बहुतसे जीवोंमें होती है और कभी-कभी तो उनकी यह समझ मनुष्योंसे कहीं बढ़कर होती है। कुत्तेकी समझ तो इतनी पैनी होती है कि वह कपड़ा सूँघकर मनुष्यको पकड़ लाता है इसीलिये पुलिस वाले चोरों और डाकुओंको पकड़नेके लिये ऐसे आखेटवाले कुत्ते पालते हैं।

पहले चिल्लाहट-गुर्राहटसे आगे बढ़कर भी मनुष्यने दूसरे जीवोंकी बोलियोंकी रीस करके उन्हें चिढ़ाने या धोखेमें डालकर फँसानेके लिये उनकी बोलियाँ सीखीं, अपने गलेसे बहुतसी ध्वनियाँ निकालीं, फिर इन ध्वनियोंसे उसने शब्द बनाए और धीरे-धीरे उन्हें अपनी बोलीमें मिला लिया। समझ होनेसे इस काममें देर नहीं लगी और बहुत पहले ही मनुष्यने बोलियाँ बना लीं। कभी-कभी यह भी हुआ कि लोगोंने मिलकर कुछ वस्तुओंके नाम रख दिए जैसे आज-कल भी नये शब्द मिलकर गढ़े जाते हैं। कभी कोई बड़ा बूढ़ा कोई शब्द चला देता था तो उसके साथी और उसके पीछे चलने वाले लोग वही चलाते रहे। आज-कल तो लोग किसीके नामपर भी किसी वस्तु या कामको

पुकारने लगते हैं—जैसे बिजलीकी बत्तीके भीतर जलनेवाली जोत 'वाट'से नापी जाती है जो उस मनुष्यका नाम है जिसने नापका यह ढंग निकाला। ऐसे ही दूधको जब बाहरी छूत-छात और गड़बड़ीसे बचाव करके रक्खा जाता है तो उस रखनेके ढंगको लुई पाश्चरके नामपर पाश्चराना (पाश्चराइज़ करना या कीटाणुओंसे बचाकर रखना) कहते हैं। इसलिये यह नहीं समझना चाहिए कि बोलीका निकास किसी एक ढंगसे हुआ है। हम ऊपर बता आए हैं कि बहुत-सी वस्तुओंके नाम उनके रंग, गंध और रूपपर भी रक्खा गया है जैसे—अश्वगंध) घोड़ेकी गंधवाली), शंखपुष्पी (शंख जैसे रंगके फूलवाली), ताम्रपर्णी (ताँबे) जैसे रंगकी पत्तीवाली बूटी।

§ ८८—स्वाभाविकोन्मेषाद्वागित्याचार्यचतुर्वेदिनः ।

[अपने आप बोली निकली।]

हम ऊपर बता आए हैं कि मनुष्यके गलेमें कुछ ऐसी लोच और लचक ईश्वरने भर दी है कि वह अपने गलेसे न जाने कितने ढंगके जीवोंकी बोलियाँ तो बोल ही सकता है साथ ही अपने स्वरको ऊँचा-नीचा करके, चढ़ा-उतारकर गमक और मींड़ खींच सकता है, तान ले सकता है। अपने गलेकी इस लचककी पहचान तो उसे पहले ही हो गई होगी इसलिये उसने सुनी-सुनाई ध्वनियोंकी रीस करके अपने गलेमें उन्हें साधा होगा, माँजा होगा, फिर उन बहुत सी ध्वनियोंको मिलाकर उसने नई-नई ध्वनियाँ बना ली होंगी। अपनी इस नई सूझकी उमंग और चावमें उसने इन नई-नई ध्वनियोंको उलटे-सीधे जोड़-तोड़कर नये-नये ऊटपटाँग शब्द गढ़ लिए होंगे जैसा हम लोग आज भी करते हैं कि अपनी कन्या 'शीला' को प्यारसे पुकारते-पुकारते सिल्ली, सिल्लो, टिल्लो, मिल्लो तक पहुँचा देते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्यने पहलेसे ही अपने चारों ओर न जाने कितने ढंगकी ध्वनियाँ सुनीं जिनमें बादलकी गरज, बिजलीकी कड़क, बयारकी सरसराहट, पक्षियोंके पंखोंकी फड़फड़ाहटसे लेकर हाथियोंकी चिंघाड़, बाघकी दहाड़, सियारोंकी हुआँ-हुआँ सूअरकी गुरगुराहट, साँड़की डकार, गाय-भैंसका रँभाना भेड़-बकरीका मिमियाना, कुत्तेकी भौं-भौं, बिल्लीकी म्याऊँ-म्याऊँ, चिड़ियोंकी चहचहाहट, कोयलकी कूक, कौवेकी काँव-काँव और न जाने ऐसी कितनी सैकड़ों ध्वनियाँ उसके कानमें बराबर पड़ीं जिन्हें वह अपने गलेकी लोच और जीभके घुमाव-फिराव अटकावकी लचकके सहारे उन्हें चिढ़ाने, डरानेके या अपना मन बहलानेके लिये फिर वैसी ही ध्वनियाँ निकालता रहा और वैसे ही धीरे-धीरे अपने आप बोलियाँ बनती चली गईं। यही मनुष्यकी पहली बोलीकी कहानी है।

बहुत दिनोंतक तो यही झगड़ा चलता रहा कि हम जो कुछ सोचते हैं या समझते हैं वह सब शब्दके सहारे ही सोचते-समझते हैं या बिना शब्दके। इस झगड़ेकी जड़ ही खोखली है क्योंकि चोरके घरमें घुसनेपर हमारा कुत्ता हमारे पास आकर हमारे कपड़े दाँतोंसे खींचकर हमें उधर ले जाता है तो क्या चोरके आने और हमें उसकी टोह देनेकी बात शब्दोंमें सोचता-समझता तो है इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि मनमें जो कुछ सोचते हैं वह शब्दोंके सहारे ही। जिन लोगोंने मनुष्यके मनकी परख की है उनका कहना है कि मनुष्य जब कोई नई बात सुनता है, कुछ नई या अनोखी बात देखता है तो उसके मनमें वैसा ही कहने और करनेकी गुदगुदी होने लगती है। इसीके साथ-साथ मनुष्यमें अपने मनसे नया काम करने या किसी वस्तुमें नयापन लानेका भी चाव होता है। इन दोनों मनकी

चालोंका सहारा पाकर मनुष्यने बोलियोंमें भी नया-नयापन निकालकर उसे इस रूपमें ला खड़ा किया जिस रूपमें हम उसे देखते है। कभी-कभी जब मनुष्य कोई नई अनोखी वस्तु, नया अनोखा काम, नई अनोखी बात देखता-सुनता है तो वह उसे दूसरोंको सुनाने-बतानेके लिये भी उतावला होता है और जैसे बनता है वैसे उसे समझानेका डौल बाँधता है। आज भी जब हमें खीरेका नाम नहीं आता है तब हम उसे ऐसे समझाते है—'लम्बी-लम्बी हरी-हरी केलेकी जैसी फलियाँ होती हैं' या 'आलूबुखारे'के लिये कहते हैं 'गोल-गोल, लाल-लाल, कुछ मीठा-खट्टा सा। ऐसे ही कुछ लोग जब रेलका टिकट लेने जाते हैं और उन्हें गाँवके ठौर-ठिकानेका नाम नहीं आता तब वे इस ढंगसे टिकट माँगते हैं—जगतगंजके बाबू साहबके गाँवका टिकस दे दीजिए। इन सब बातोंसे हमें यह समझनेमें अड़चन नहीं रही कि मनुष्यके मनमें कुछ कहनेकी या अपने मनकी बात समझानेकी झोंक होती है और इसी झोंकमें मनुष्यकी बोली खुल जाती है। इसलिये पहली बोली इस झोंकमें निकली कि मनुष्य कुछ अपने मनकी बात दूसरोंको समझाना चाहता था। इतने ब्यौरेसे यह समझनेमें कसर नहीं रही होगी कि दूसरोंकी रीस करने, अपने मनसे उनमें नयापन लाने और अपनी देखने-सुननेमें नई अनोखी बातको दूसरोंसे कहनेकी उतावलीसे अपने आप पहली बोली जनमी होगी।

चारों ओर हमें जितने पंछी-चौपाए दिखाई देते हैं, वे सभी अपने-अपने गलेसे बिना सिखाए कुछ न कुछ बोलते हैं, यहाँतक कि छोटे-टिड्डे और झींगुर भी चिर्र-मिर्र कर लेते हैं और मक्खी, भौंरे, मच्छर तक भिनन-भिनन कर लेते हैं फिर यह क्यों सोचा जाय कि गलेमें बोलीकी इतनी लोच लेकर मनुष्य बहुत दिनोंतक

गूँगा बना रहा होगा। वह भी अपने-आप बोलता रहा है, पर जैसे हमारा सुग्गा हमारी अटारीपर बैठे हुए कौवेकी काँव-काँव सुनकर अपनी बोली बदलकर, उसकी रीस करके काँव-काँव कर लेता है और उसे जो सिखाया जाय वह सुन-सीखकर वैसा ही बोलने भी लगता है, वैसे ही मनुष्य भी, अपनी बोली बोलनेके साथ उसे बराबर नई-नई ध्वनियोंके मेलसे बढ़ाता रहा है। यह ऐसी सीधी-सादी बात है कि इसपर बहुत अटकल लगानेकी कोई बात ही नहीं थी। जैसे ईश्वरने बहुतसे दूसरे जीवोंको बोलियाँ दीं वैसे ही मनुष्यको भी बोली दी और जैसे अलग-अलग देशोंमें पाए जानेवाले कुत्ते अलग ढंगसे भोंकते और गुर्राते हैं वैसे ही अलग-अलग देशोंके लोग अलग-अलग ढंगसे बोलते भी रहे हैं। क्योंकि और जीवोंके गलेमें एक-दो चार स्वर निकालने तककी समाई होती है इसलिये उनकी बोलीमें एक-दो-चार ध्वनियाँ ही मिलती हैं, हमारे गलेमें सैकड़ों ध्वनियाँ निकालनेकी समाई है इसलिये हम सैकड़ों निकाल सकते हैं। इससे यह समझमें आ गया होगा कि बोलियाँ अपने आप बनी हैं। इसे हम अपने-आप उपज (या स्वाभाविकोन्मेषवाद) कह सकते हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—बोलीकी उपजके लिये दस अटकलें लगाई गई हैं कि बोली—

क—ईश्वरने दी (दैवी उत्पत्तिवाद)

ख—संकेतसे निकली (संकेतवाद)

ग—सुनकर रीस करनेपर बनीं (अनुकरणवाद या बाउवाउवाद)

घ—मनकी चाह बतानेको निकलीं (मतःप्रेरणावाद)

ङ—खटपट ढमढमसे निकली (डिंगडैंगवाद)

च—साँसकी झोंकसे निकली (ये हे-होवाद)

छ—धातुएँ इकट्ठी करके बनाई गई (धातु-संग्रहवाद)

ज—बढ़ते-बढ़ते बनी (विकासवाद)

झ—लोगोंने मिलकर बनाई (विमर्शवाद)

ञ—सब बातोंके मेलसे बनी (सर्वसमन्वयवाद)

यह दोहा घोट लीजिए—

ईश्वर, इंगित, बाउवउ, मनःप्रेरणा, धातु ।
ये हे हो, डिगडैंग दस, विकसित, मिलकर, बातु ॥

२—आचार्य चतुर्वेदी मानते हैं कि दूसरे जीवोंमें जैसे बोली अपने आप उपजती है वैसे ही मनुष्यमें भी उपजी । (स्वाभाविकोन्मेषवाद)

—:—

४

बोलियाँ कैसे ढलती चलती हैं ?

बोलियोंकी चाल-ढाल ।

बोली जन्मके साथ नहीं मिलती —वह पास-पड़ोसवालोंसे सीखी जाती है—सुननेवालेके साथ बोली ढलती है—जैसा सुनते हैं वैसा बोलते हैं—लिखी और बोली जानेवाली दो ढंगसे बोलियाँ चलती हैं—बोली बँध भी जाती है. खुली भी रहती है—चलती बोली सीधी होती है—मुँहसे जो कुछ भी निकले वही बोली नहीं कहलाती—बोलीमें कभी-कभी संकेत भी काम आता है—सात बातोंसे बोली पूरी होती है [कहनेवाला, मनकी बात, मुँह, संकेत करनेवाले अंग, सुननेवाला, कान, सुननेवालेकी समझ ।]

§ २६—**जन्मसंस्कारे भाषाऽभावः । [बोली जन्मके साथ नहीं मिलती ।]**

पीछे बताया जा चुका है कि बोली अपने आप फूटती, है वह कहींसे आती नहीं है। बहुतसे लोग यह मानते हैं कि बोली देहके साथ-साथ बपौती बनकर मिलती है. पर ऐसी बात नहीं है। जो बच्चा जहाँ जैसे बोलनेवालोंके बीच रहेगा, उनकी बोली अपना लेगा, यहाँतक कि जो बच्चे कई बोली बोलनेवालोंके बीच पलते हैं वे कई बोलियाँ अपने-आप बोलने लगते हैं। हमारे एक साथी हैं, जिन्होंने बम्बईमें एक गुजराती लड़कीसे ब्याह किया है। उनकी नन्हींसी बच्ची अपने माँसे गुजराती बोलती है,

बापसे हिन्दी और मराठिन धायसे मराठी बोलती है। इसलिये बोली बपौतीमें नहीं मिलती है।

§ ३०—परिक्षेपप्रभावाच्च। [वह पास-पड़ोसवालोंसे सीखी जाती है।]

जब बपौतीमें बोली नहीं मिलती तो बच्चा बोलना सीखता कैसे है ? हम ऊपर अभी बता चुके हैं कि मनुष्य जैसी बोली आस-पास सुनता चलता है वैसी बोली सीखता चलता है। कई बोलियाँ बोलनेवालोंके बीच रहनेवाले लोग कई बोलियाँ सीख जाते हैं। इसलिये सीखनेसे कोई भी बोली आ सकती है, वह सीखी जा सकती है। मनुष्य लम्बा, मोटा, बड़ी आँखवाला, भूरे बालवाला और गोरा नहीं हो सकता। यदि वह नाटा, गुचमुची आँखवाला, काले बालवाला और साँवला हो तो यह सब उसे माँ-बापसे जन्मके साथ मिलते हैं, पर वह चीनमें जन्म लेकर भी पुर्त्तगालियोंके साथ रहकर पुर्त्तगाली सीख लेता है और जी लगाकर जो भी बोली सीखना चाहे उसे सीख सकता है।

§ ३१—संबोध्यानुगता भाषा। [सुननेवालेके साथ बोली ढलती है।]

ऊपर गुजराती लड़कीसे ब्याह करनेवाले अपने जिस साथी-की हमने चर्चा की है उनकी नन्हीं सी लड़कीकी बोलीका ब्यौरा पढ़कर आप यह भी समझ गए होंगे कि आप जिससे बात कर रहे हैं उसकी जैसी और जितनी बोलीकी समझ होती है वैसी ही हमारी बोली भी ढल जाती है। अच्छे संस्कृत पढ़े लिखे पंडितसे बातचीत करते हुए हम संस्कृत छाँटने लगेंगे, मौलानासे अरबी और फ़ारसीका पुट देकर बातचीत करेंगे, अँगरेजी पढ़े-लिखेसे अँगरेज़ीके शब्दोंसे लदी बात करेंगे और अपने अनपढ़

नौकरसे जब कुछ कहना होगा तो हम अपनी संस्कृत, अरबी, फ़ारसी. अंग्रेज़ी सबको छोड़-छाड़कर सीधी-सादी चलती बोलीमें बात कहेंगे। इसलिये सुननेवालोंकी ढलनपर बोली ढलती है।

§ ३२—अनुकरणाच्च। [जैसा सुनते हैं वैसा बोलते हैं।]

हम अपने घरमें बड़े-बूढ़ोंको जैसा चलते, बैठते, सोते, हँसते देखते हैं वैसे ही हम भी चलने, बैठने, सोने और हँसने लगते हैं। इतना ही नहीं, हम उनको जैसा बोलते सुनते हैं वैसे ही बोलने भी लगते हैं। सच पूछिए तो हम अपने जीते जी जो कुछ बहुत सा सीखते हैं वह सब दूसरोंकी देखा-देखी ही सीखते हैं इसलिये हम दूसरोंकी बोली सुनकर ही उनकी बोली भी सीख लेते हैं इसलिये दूसरोंकी सुनासुनी ही हम बोली सीखते चलते हैं।

§ ३३—भाषा द्विविधा—लेखसिद्धावाग्बद्धाच। [लिखी और बोली जानेवाली दो ढंगसे बोलियाँ चलती हैं।]

'बोली' शब्दसे ही आप समझ सकते हैं कि यह मुँहसे बोली जाती है और जो मुँहसे बोली जाय उसे ही बोली कहते हैं, पर कोई भी बोली पहचाननी हो तो उसके लिखे हुए ढंगसे ही हम उसकी सच्ची परख या पहचान कर सकते हैं क्योंकि लिखी हुई बोली अपने सच्चे अनमिल ढंगमें निखरी हुई दिखाई देती है। जहाँतक बोलचालकी बोलीकी बात है, वह तो जितने मुँह उतने ढंगकी होती है क्योंकि उसमें एक तो कहनेवालेकी अपनी समझ, बोलनेका ढंग और मुँहकी बनावटसे कुछ अपना निरालापन आ जाता है और दूसरे सुननेवालेकी सूझ-समझको देखकर भी हमारी बोली अपना रंग-ढंग बदलती चलती है। इसलिये बोलचालकी बोली कोई ठहरी हुई, बँधी हुई या जकड़ी हुई वस्तु नहीं है, वह तो सदा बदलनेवाली, सदा लहरानेवाली है। वह बराबर बदलती रहती है।

§ ३४—स्थिरास्थिरस्वरूपा हि वाक् । [बोली बँध भी जाती है, खुली भी रहती है ।]

बोलचालकी बोली यों तो सदा बदलनेवाली रहती है पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई बोली व्याकरणके फन्देमें ऐसी कसकर जकड़ दी जाती है कि फिर अपने बोलनेवालोंके पास उसीमें फेरा देनेको छोड़कर उसके पास दूसरा चारा नहीं रह जाता। अब संस्कृतको या एस्परेंटोको ही ले लीजिए। ये भाषाएँ ऐसी जकड़ दी गई हैं कि जबतक ये संस्कृत और एस्परेंटो बनाकर बोली जायँगी तबतक इनमें कोई अदला-बदली, हेरफेर नहीं हो सकता। आजसे चौबीस सौ बरस पहले यहाँ जो संस्कृत बोली जाती थी वही संस्कृत ज्योंकी त्यों आज भी बोली जाती है। फ्रांसमें बोली जानेवाली एस्परेंटो और चीनकी एस्परेंटोमें कोई भेद नहीं है। फिर भी यह तो हो ही सकता है कि संस्कृतमें जिन वस्तुओंके नाम नहीं थे उनके लिये शब्द गढ़े जायँ जैसे रेलगाड़ीके लिये बाष्पयान; पर यह नहीं हो सकता कि 'राम जाता है' के लिये 'रामः गच्छति' के बदले 'रामु गच्छाति' हो जाय। इसलिये व्याकरणमें बहुत जकड़ देनेपर बोलीका साँचा पक्का हो जाता है, उसके रंगमें हेरफेर भले हो जाय पर रूपमें नहीं हो सकता। पर जो बोलियाँ व्याकरणके चंगुलमें बहुत कसी हुई नहीं रहतीं, वे अपना साज बराबर बेरोक-टोक बदलती रहती हैं इसलिये ऐसी बोलियोंके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि बस इस बोलीका यही सच्चा ढाँचा है, अब इसमें कोई हेरफेर न होगा। बहुतसे लोगों, देशों और जातियोंसे मिलने-जुलने और मेलजोल रखनेवालोंकी बोलियाँ तो बराबर बदलती रहती हैं पर जंगली लोगों और अकेले झुंड बनाकर सबसे अलग रहनेवाले लोगोंकी

बोली बँध जाती है, उसमें हेरफेर नहीं होता। इसलिये हम यह मान सकते हैं कि जो बोलियाँ व्याकरणसे कसकर जकड़ दी गई हैं और जो अकेले सबसे अलग जंगल-पहाड़ोंमें रहनेवालोंकी बोलियाँ हैं वे तो एक साँचे-ढाँचेमें बँधी पड़ी रहती हैं पर जो लोग सबसे हेल-मेल बढ़ाए और बनाए रखते हैं उनकी बोली बराबर अपना रंग-ढंग बदलती चलती है।

§ ३५—**अज्ञानात्सारल्यमस्थिरायाम्।** [**चलती बोली सीधी होती रहती है।**]

जो बोलियाँ व्याकरणके फन्देमें नहीं बँधी हैं और जो बराबर बदलती रहती हैं उनमें यह देखा जाता है कि बोलनेवाला सदा उनमें अपनी नासमझी और हड़बड़ीसे बोलनेका सुभीता देखता चलता है। ऋग्वेदके पहले सूक्तमें कहा गया है—

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।'

इसमें आए हुए शब्दोंमेंसे *अग्नि*, *पुरोहित*, *यज्ञ* और *रत्न* हमारी बोलियोंमें आजतक काम आ रहे हैं पर संस्कृतमें अपना रूप ज्योंका त्यों बनाए रखते हुए भी हमारी हिन्दीमें आकर वे *आग*, *आगि*, *अगिया*; *परोहत*, *पुरोहत*, *प्रोहत*; *यग्य*, *जग्य*, *जग्यँ*, *याग*, *जाग*; और *रतन* बनकर चल रहे हैं। एक *कृष्ण*ने हिन्दीमें आकर *कन्ह*, *कान्हा*, *कान्हरो*, *काँधा*, *कन्हैया*, *कनैया*, *किशन*, *किसन*, *किस्न* बनकर न जाने कितने नाच नाचे हैं। इसलिये चलती बोलियोंकी एक यह भी बान होती है कि वे सीधेपनकी ओर ढलती रहती हैं और धीरे-धीरे अपना कड़ापन उलझाव और अटपटापन छोड़कर सुलझती चलती हैं। पर इसके साथ-साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि जहाँ एक ओर राह-चलते लोग बोलियोंकी उलझन और उसके अटपटेपनको छोड़कर उसे हलका

और सीधा बनानेके फेरमें लगे रहते हैं वहीं पढ़े-लिखे लोग उसे अपनी आपसकी बातचीत और लिखने-पढ़नेमें ठीक ढंगसे लिखते-बोलते भी चलते हैं जिससे वह राहचलतोंकी बोलियोंसे अलग बनी रहे। हम अपनी हिन्दीको ही देखें तो जान पड़ेगा कि इसमें जहाँ एक ओर यह बोला जा रहा है—

तड़का हो गया है, पूरबमें लाली छा गई है, चिड़िएँ चहचहाने लगीं।'

वहाँ हिन्दीके विद्वान् कहेंगे और लिखेंगे—

'प्रातःकालका समय हो गया है, पूर्वमें अरुणकी लालिमा व्याप्त हो गई है, पक्षिगण कलरव करने लगे हैं।'

पर इस ढंगकी सधी हुई बोलीको उसकी अपनी चाल नहीं समझनी चाहिए, यह तो पढ़े-लिखे लोगोंके मनकी लहर है कि वे अपनी बोलीको औरोंसे सुथरी और सुघर बनाए रक्खें। पर यह सबके बोलचालकी घिसी हुई बोली नहीं है।

बोली किसे कहते हैं?

§ ३६—**परबोध्य-निरुक्ताभिव्यक्तिर्भाषा। [मुँहसे जो कुछ निकले वह बोली नहीं कहलाती।]**

यों तो जो कुछ मुँहसे बोला जाय उसीको बोली या भाषा कह सकते हैं पर यह बात है नहीं। हम जब भी बोलते हैं तो दूसरेके लिये बोलते हैं। हम ऐसा बोलते हैं और ऐसा बोलना चाहते हैं कि हम दूसरोंको अपनी बात समझा सकें। यदि हम ऐसा न कर सकें तो वह बोली नहीं होगी। काशीके रहनेवाले किसी पंडितजीसे पोथी लेकर आप उन्हें जर्मन बोलीमें 'फ़ीलेन् डान्के', जापानीमें 'आरिगातो', चीनीमें 'हि्वए-हि्वए' कहिए तो वे समझेंगे कि आप उनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं, उन्हें बना रहे

हैं क्योंकि धन्यवादके लिये काममें आनेवाले उन-उन भाषाओंके शब्द पंडितजीके लिये बेकाम हैं। उन्हें आप 'धन्यवाद' कहिए तभी उनका जी खिलेगा। इसलिये जो बोली सुननेवालेकी समझमें न आवे वह अकारथ है। वह उसके लिये बोली नहीं है, गिटपिट है। इसलिये मुँहसे निकलनेवाली ध्वनियोंके उस मेलको बोली कहते हैं जिसका सुननेवाला ठीक-ठीक वह अर्थ समझ सके जो सुनानेवाला या कहनेवाला समझाना चाहता है।

कभी-कभी हम लोग किसीको कोई काम करनेसे रोकनेके लिये हाँअ, हुँअ कह डालते हैं और वह उसका अर्थ समझ भी जाता है। गाय-बैल-घोड़ा हाँकते हुए भी हम क़्लै-क़्लै, हुर्र-हुर्र करते हैं, जिससे वे जीव भी समझ जाते हैं कि हमें आगे बढ़ना चाहिए। पर ये सब ध्वनियाँ मुँहसे निकलनेपर भी हमारी बोलीकी मानी हुई (निरुक्त) ध्वनियाँ न होनेसे बोलीमें नहीं आतीं। **इसलिये मुँहसे बोली जानेवाली पर सबकी मानी हुई ध्वनियोंके उस मेलको बोली या भाषा कहते हैं जो कहनेवालेके मनकी बात सुननेवालेको समझा पावे।**

§ ३७—संकेतापेक्षाऽपि। [बोलीमें कभी-कभी संकेत भी काम आता है।]

कुछ लोग समझते हैं कि बोलनेसे पहले मनुष्य उँगलियाँ दिखाकर, सैन मटकाकर, हाथ-पैर पटककर, सिर-कमर हिला-डुलाकर अपने मनकी बात समझाता था। हम पीछे समझा आए हैं कि यह सब कोरी अटकल भर है। हाँ, इतनी बात मानी जा सकती है कि बोलीके साथ-साथ लोग हाथ, पैर या सिर भी हिलाते डुलाते होंगे और वे ही क्यों, हम लोग भी जब किसीपर बिगड़ते हैं तो

पैर पटकते हैं, भवें तानते हैं, नथुने फुलाते हैं, दाँत पीसते हैं; जब 'नहीं' करना होता है तो 'नहीं' कहनेके साथ-साथ दाएँ-बाएँ सिर डुलाते है, 'हाँ' कहनेके साथ-साथ नीचे ऊपर सिर हिलाते हैं। हमारे मनमें जैसी भड़क उठती है वैसे ही हमारी देह भी फड़कने लगती है और हमारे हाथ-पाँव, मुँह, आँख और सिर सब चलने लगते हैं। इस बातको जाने दीजिए। मान लीजिए कि आप किसीको कोई तारा दिखाना चाहते हैं तो आप सिर नीचा करके चाहे जितने भी ढंगसे बोली बनाकर किसीसे कहिए कि ऊपर वह तारा देखिए जो पूरब और दक्खिनके बीच कुछ बाईं ओरको सरका हुआ दिखाई दे रहा है तो सुननेवाला इससे कुछ नहीं समझ पावेगा। उसे ही आप हाथ उठाकर, उँगलीसे दिखाकर कहिए— 'वह तारा देखो, मंगल है,' तो देखनेवाला पल भरमें उसे देख लेगा। कभी-कभी हम लोग हाथ चौड़ाकर कहते हैं—'वह इतना बड़ा था।' ये सब बातें बोलीमें या तो समझाई नहीं जा सकतीं या समझानेमें बड़ी कठिनाई होगी। इसलिये कभी-कभी बोलीके साथ उसका ठीक अर्थ झटसे समझानेके लिये हाथ-पैर चलाना या संकेत करना पड़ ही जाता है।

इस संकेत या हाथ-पैर-उँगली-आँख चलानेकी बानसे हमारा बहुत बड़ा काम तो यह निकला कि हमने दूसरोंकी बोलियाँ इसीके सहारे सीख लीं। अँग्रेजने पानी दिखाकर कहा '*वाटर*', हम समझ गए '*वाटर*' *पानी*को कहते हैं। फिर उसने हाथसे '*लाओ*'का संकेत करके कहा—'*ब्रिंग वाटर*'। '*वाटर*'का अर्थ जान लेनेपर *ब्रिंग*'का अर्थ '*लाओ*' भी समझमें आ गया। बोली सिखानेके लिये आज-कल यही सीधा ढंग (*डाइरेक्ट मेथड*) ही सबसे अच्छा समझा जाता है जिसमें सब वस्तुओं और कामोंको सामने संकेतसे दिखाकर बोली सिखा दी जाती है।

§ ३८—सप्तयोगाद्वाक्सिद्धिः। [सात बातोंसे बोली पूरी होती है।]

अब हम यह समझ सकते हैं कि बोलीको पूरा करनेके लिये—

१—एक कहनेवाला मनुष्य होना चाहिए।

२—उसके मनमें कोई बात होनी चाहिए जो वह दूसरेको समझाना या कहना चाहता हो।

३—मनुष्यका मुँह होना चाहिए जिसमेंसे वह कहनेवाली बातकी सब ध्वनियाँ निकाल सके।

४—आँख-सिर-हाथ-पैर (देहके अंग) चाहिएँ, जिनके सहारे कहनेवाला अपनी बात समझाता चल सके।

५—सुननेवाला मनुष्य हो, जिसे वह बात कही जानेवाली हो।

६—सुननेवाले मनुष्यका कान हो, जिससे वह सब सुन सके।

७—सुननेवालेके पास समझ या बुद्धि हो, जिससे वह कही हुई बातका अर्थ ठीक-ठीक समझ सके।

बातचीतमें काम आनेवाली बोली इन सात बातोंसे पूरी होती है। इन सातोंमेंसे कहने और सुननेवाले मनुष्यका तो कोई ब्यौरा देना ही नहीं है क्योंकि हम आप सभी कहने-सुननेवाले हैं, अपनी जाँच-परख अपने-आप कर सकते हैं। बोलनेवाले मुँह और सुननेवाले कानका ब्यौरा हम ध्वनिके साथ देंगे। संकेतकी बात हम समझा ही चुके हैं। मनकी बात और सुननेवालेकी समझका ब्यौरा हम वहाँ देंगे जहाँ हम बोलियोंमें काम आनेवाले शब्दोंके अर्थकी चाल समझावेंगे।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—बोली जन्मके साथ नहीं मिलती, पास-पड़ोस और साथवालोंसे सुन-सुनकर सीखी जाती है।

२—सुननेवालेकी जैसी समझ होती है वैसे ही कहनेवाला बोलता है।

३—कुछ बोलियाँ व्याकरणमें बँध गई हैं, कुछ खुलकर बढ़ती और बदलती जा रही हैं और ये बोलनेवालोंके अयानपन और हड़बड़ीसे बराबर सीधी होती और सुलझती जाती हैं।

४—सुननेवालेको कहनेवालेकी बात समझा देने वाली मानी हुई ध्वनियोंके मेलको ही बोली या भाषा कहते हैं जिसमें कभी-कभी संकेत भी काम आ जाता है।

५—बोली पूरी करनेके लिये सात बातें चाहिए—बोलनेवाला, उसके मनकी बात, मुँह, संकेत, सुननेवाला, उसके कान और सुननेवालेकी समझ।

-:-०-:-

५

बोलियोंमें इतना उलट-फेर कैसे होती है ?

बोलियाँ बढ़ती और बदलती हैं ।

बोलियाँ रंग बदलती रहती हैं—कुछ लोग कहते हैं कि बहुत काममें आने. बहुत बल देने. रीझ-खीझसे, सुविधा ढूँढ़ने, मनकी चाल बदलने. ठीकसे न सुनने. धरती-पानी-बयार. रहन-सहन, संस्था बड़े लोग, जातियोंमें मेल और बोलनेके ढंगमें अलगाव होनेसे बोलियाँ बदलती हैं—अलग या सजग रहनेवालोंकी बोलियाँ नहीं बदलतीं—ज्योंके-त्यों शब्द, बिगड़े हुए. देशी परदेसी या नए गढ़े हुए शब्दोंके मेलसे बोली बढ़ती चलती है—शब्दोंमें नए अर्थोंका बल भर देनेसे भी बोली बढ़ती और खिलती चलती है—खुल, खिल घिस, मिट, रुक, मिल, सुधर या बिगड़कर बोली अपना रंग-ढंग बदलती चलती है—ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ सभीमें हेरफेर होता है- समुद्र, पहाड़, नदी और बालूपाटके बीचमें पड़नेसे बोलियाँ अलग-अलग पनपीं—बोलियाँ सब अलग-अलग हैं—एक-एक बोलीकी धौंससे बोलियोंका एक-एक परिवार बना एक बोलीसे सबका पसारा नहीं हुआ—जीतने वाले, पढ़े लिखे. या बड़े लोग बोलियाँ बदल देते हैं ।

§ ३१—परिवर्तनशीलत्वं भाषायाः । [बोलियाँ रंग बदलती चलती हैं ।]

आप अपने घरमें एक गमला लेकर उसमें बरसात बीतनेपर

एक सेमका बीज डालकर पानी देते रहिए तो आप देखेंगे कि उस बीजसे पहले अँकुवा फूटेगा. फिर पत्ते निकलेंगे और बड़ी झोंकसे उसकी बेल लम्बी-लम्बी फुनगियाँ बढ़ाती हुई सैकड़ों टहनियोंमें फूटकर फैलने लगेगी, उसकी गाँठ-गाँठपर फूलोंके गुच्छे झूलने लगेंगे, फूल सूखकर फलियोंका बाना पहन लेंगे, फलियाँ बढ़ेंगी और वसन्त ढलते-ढलते इस बेलके पत्ते पियराने लगेंगे, लगातार पानी मिलनेपर भी बेल मुरझाने लगेगी, सूखने लगेगी। अपने चारों ओर जितना कुछ ईश्वरका पसारा हम देखते हैं सब इसी बनाव, सजाव, ढलाव, मिटावके चक्करमें घूमता चल रहा है किसीको उससे छुटकारा नहीं है फिर बोली ही उसकी लपेटसे कैसे बच सकती है। भेद इतना ही है कि बोलियों-में जो उलटफेर होता है वह कई ढंगसे होता है। कुछ लोग इन सब ढंगोंके उलटफेरको विकास या बढ़ाव कहते हैं, कुछ विकार या बिगाड़ कहते हैं, पर बात ऐसी है नहीं।

§ ४०—**व्यवहारप्रयोगातिशयघातभावातिरेकयत्नलाघवमानसभावापूर्णत्वभूमिवायुजलसंस्कारसंस्थाव्यक्तिसंपर्कोच्चारणानि विकासहेतव इति केचित्। [कुछ लोग कहते हैं कि बहुत काममें आने, बहुत बल देने, रीझने-खीझने, सुविधा ढूँढ़ने, मनकी चाल बदलने, ठीकसे न सुनने, धरती-पानी-बयार, रहन-सहन, संस्था, बड़े लोग, जातियोंके मेल और बोलनेके ढंगमें अलगाव होनेसे बोलियाँ बदलती हैं।]**

बहुतसे लोगोंने इस बातपर बड़ी अटकलें लड़ाई हैं कि बोलियाँ क्यों बदलती हैं या उनमें क्यों हेर-फेर होता है। वे कहते हैं कि बोलियोंमें कुछ हेर-फेर तो अपने आप होता चलता

है उसे भीतरी उलट-फेर (*आभ्यन्तर विकास*) कहते हैं, जैसे (१) बोलनेमें आलस (*प्रयत्न-लाघव, सौकर्य या मुख-सुख*), (२) बोलते-बोलते उसे घिसकर इतना सीधा और चिकना कर लेना कि फिर उसे और घिसना बचा न रहे। (३) किसी ध्वनिको या शब्दके किसी अर्थको बहुत काममें लाना (*प्रयोगातिशय, बल या स्वराघात*); (४) मनकी मँजाई (*मानसिक संस्कार*); (५) सुनने-बोलनेमें कमी (*अनुकरणकी अपूर्णता*)। इन्हें खोलकर समझा देना ठीक होगा।

बोलनेमें आलस प्रयत्न-लाघव, मुख-सुख, सौकर्य)

हम आप सभी सदा यह चाहते हैं कि हमें जीभ कम डुलानी पड़े और हमारी बात दूसरा समझ ले, हाथ-पैर कम हिलाने पड़ें और हमारा काम हो जाय। हमारे यहाँके व्याकरण लिखनेवाले पंडितोंके लिये तो यह बात जगजानी हो गई है कि यदि वे कोई बात एक मात्रा कम करके कह सकें तो उन्हें ऐसा हुलास होता है मानो उनके घर लड़का हुआ हो। आपने रेखागणितमें पढ़ा ही होगा कि किसी तिकोन (त्रिभुज)के दो हत्थे (भुजा) मिलकर तीसरेसे बड़े होते हैं। इसे 'गधेकी बटिया' (*ऐसेज़ प्रोब्लेम*) भी कहते हैं क्योंकि गधा भी कहीं पहुँचनेके लिये चक्करदार बटियाको छोड़कर सीधी और छोटी बटिया पकड़ लेता है। यही काम हम लोग बोलीमें भी करते हैं। पर यह गधेकी बटिया तमिल, तेलुगु, जर्मन या मुंडामें क्यों नहीं है ? यह बात होती तो अबतक उनकी तीखी ध्वनियाँ सीधी हो जातीं।

बहुतर काममें लाया जाना [प्रयोगातिशय]

कुछ लोग कहते हैं कि जैसे बोलनेमें हमें सुविधा हो, मुँह, जीभ, ओठ गलेको कम चलाना-कँपाना पड़े वैसे ही हम बोलने लगते हैं पर यह बात नत्थू-बुद्धू के लिये ही लागू होती है,

पंडित और गुनी लोग तो तनकर जैसा ठीक हो वैसा बोलते हैं। उर्दूवालोंकी बोलीमें हम समझावें तो कहेंगे कि वे 'शीन-क़ाफ़से दुरुस्त' होकर बोलते हैं। हाँ, तो बोलीमें यह सीधापन कई ढंगसे लाया जाता है। कभी तो यह बहुत काममें आनेसे बिगड़ जाता है जैसे—

मनुष्य — मानुस
दंडवत् — डंडौत
पाँवलागूँ — पालागन
सौगन्ध — सौंह, सौं सूँ
परिक्रमा — परकरमा, परखंभा
यज्ञ — जग्य, जाग
अग्नि — आगि, आग, अगिया
मास्टर साहब — मास्साब, माट्साब
प्रणाम — परणाम, पन्नाम
प्रतिपदा — पड़िवा, पड़वा
पूर्णिमा — पूनो, पुन्नो
पहचान — पिछान

कभी-कभी किसी शब्दके किसी अक्षरको लंबा करके, खींचकर या उसे बहुत ऊँचा करके बोलते हैं तो वह अपने आस-पासकी ध्वनियोंको ले बीतता है जैसे पच्छिमी उत्तरप्रदेशमें *उतावलाका तावला* और *उठा लाओको ठा लाओ* कहते हैं इनमेंसे 'उ' उठ गया। ऐसे ही वहाँ *मुस्तफ़ाबादका मुस्ताबाद* और *मोहिउद्दीनपुरका 'मोहद्दीपर'* हो गया और उनमेंसे फ़ और न खेत आए। पर इस ढंगके शब्द पढ़ेलिखोंकी बोलचालमें बहुत गिने-

चुने हैं। कभी-कभी पीछेके अक्षरको लंबा करके भी बोलते हैं जैसे कविको कवी और *जीजीको जिज्जी* कहते हैं।

दुलार और खीझ [भावातिरेक]—

कभी-कभी जब हम किसीका बहुत दुलार करने लगते हैं तब भी हम शब्द बदलते-बिगाड़ते हैं जैसे प्यारमें *बचवा, ललन, लल्ला,* या *संजयको संजी, गुंजी* या *शीलाको सिली, सिल्लो*।

जब हम किसीपर बिगड़ते हैं तब भी हम ऐसे ही शब्द बिगाड़ देते हैं जैसे 'उस *पंजबिएको* बिना मारे न छोड़ूँगा।' पर यह बात नागरी और पढ़े-लिखोंकी बोलीमें नहीं होता, वे खीझ और चिढ़में भी अपनी बोलचालका ढंग ठीक बनाए रखते हैं, 'शीन-क़ाफ़से दुरुस्त रहते हैं'। पर सबकी बोलचालकी बोलियोंमें ऐसे बिगाड़ हो ही जाते हैं। हमारे यहाँ काशीमें तो *कोट* और *टिकट* जैसे शब्द भी *कोटवा, टिकटवा* बनकर बढ़ जाते हैं और *मुजफ्फरनगरमें 'हाँ'* का *'हम्बैं'* और *'है'* का *'हैगा'* हो जाता है।

कम बोलना (प्रयत्नलाघव)—

लंबे शब्दोंको या दो मिले हुए शब्दोंको छोटा करके बोलनेकी भी हमारी बान पड़ गई है। हमने *घोड़ा-सवार* को *घुड़सवार* बनाया, *रेलवे स्टेशनको स्टेशन* या *टेसन* कहा, *मत्स्यहारको मछुआ* बना लिया, *जगत्प्रकाशको प्रकाश* कहकर पुकारने लगे, *सेंट्रल हिन्दू हायर सेकेंडरी स्कूलको हिन्दू स्कूल* बनाकर रख दिया। कम बोलनेकी इस झोंकमें बहुत ढंगोंसे ध्वनियोंमें हेरफेर हो जाता है जैसे—

(क) *आपसी अदला-बदली [परस्पर विनिमय, मैटाथीसिस]*

जिन शब्दोंमें *स्, र्* या *ल* आते हैं उनमें ऐसी अदला-बदली बहुत होती है पर औरोंमें भी ऐसी अदला-बदली हो जाती है।

ऐसा घपला पहले तो अनपढ़, गँवार लोग अनजानमें चलाते हैं पर जब वह बहुत चल पड़ता है तो सब लोग उसको मान लेते हैं जैसे—*लखनऊका नखलऊ हिंसका सिंह, गदलाका दगला, पहुँचानाका चहुँपाना, चाकूका काचू, पतीलीका तपीली, सरपटका रपसट, कनैरका करैन, नहानाका हनाना।*

कभी-कभी एक-सी ध्वनियाँ जब पास-पास आ जाती हैं तब भी ऐसी अदला-बदली हो जाती हैं जैसे—

'पक्की कुप्पी पके कूपपर पकी' को पढ़ेंगे *'पक्की पुक्की पके पूकपर पकी'*

(ख) छूट [*ध्वनिलोप या अक्षरलोप, सिनकोपे और हैप्लोलौजी*]

जब कभी दो-एक सी ध्वनियाँ पास-पास आ जाती हैं तो बोलचालके झटकेमें एक ध्वनि या अक्षर अपने आप छूट जाता है जैसे *बनारसीमें सुन्दरका सुन्नर, अंग्रेज़ीमें कपबोर्डका कबर्ड (कुठला), बेस्ट टायरका बेस्टायर,* ।

(ग) *मेल [समीकरण, एसिमिलेशन]*

जब दो अलग-अलग ध्वनियाँ एक साथ मिलकर आती हैं तो बोलनेके झटकेमें उनमेंसे एक रह जाती है। इनमेंसे कभी तो पहलेवाली ध्वनि रह जाती है (*पुरोगामी* होती है) जैसे *पद्मका बँगलामें पद्दो, चक्रका चक्का, पक्वका पक्का, सूत्रका सुत्त, धन्यका धन्न, पुण्यका पुन्न* ।

कभी पीछेवाली ध्वनि रह जाती है (*पश्चगामी* होती है) जैसे—*मास्टरका माट्टर, कलक्टरका कलट्टर, धर्मका धम्म, सर्वका सब्ब, मुग्धाका मुद्धा, गल्पका गप्प, खड्गका खग्ग, सक्तुका सत्त* ।

(घ) *अनमेल (विषमीकरण, डिस्सिमिलेशन)*

कभी-कभी पास-पासकी दो-एक सी ध्वनियोंको एक साथ बोलनेमें अड़चन होती है तो उनमें कुछ हेरफेर करके अनमिल अलग कर लेते हैं जैसे—*प्रयोजनका परोजन, मुकुटका मउड़ और मौर* ।

(ङ) जोड़ (*स्वरभक्ति, ऐनैप्टिक्सिस*)

जब दो ध्वनियोंसे मिला हुआ कोई अक्षर होता है और उसे बोलनेमें कुछ अटकाव जान पड़ता है तो उन दोनों मिली हुई ध्वनियोंके बीचमें एक स्वर डालकर उसकी उलझन दूर कर देते हैं जैसे *यत्नका जतन, कर्मका करम, वर्षका बरस, पंक्तिका पंगत, प्रकारका परकार।* कभी-कभी ऐसी मिली हुई ध्वनियोंके बीच ह, न या र व्यंजन भी आ जाते हैं जैसे *पौसराका पहोसरा, बड़ोदाका बड़ोदरा, सच्चका साँच।*

(च) *पहले जोड़* (*अग्रागम, प्रोथीसिस*)—

जब किसी शब्दका पहला अक्षर दो ध्वनियोंसे मिलकर बनता है और उसे सीधे बोलनेमें अड़चन होती है तो उसके पहले कोई स्वर लगा लेते हैं जैसे अंग्रेजीके *स्टारका इस्टार, स्नानका असनान, स्थानका अस्थान, स्कन्धका अस्कन्ध स्तब्धका अस्तब्ध, स्त्रीका इस्त्री; स्तुतिका अस्तुति, स्थलका अस्थल, स्थितिका इस्थिति, स्पर्शका अस्पर्श, स्मृतिका इस्मृति।* यों भी बोलनेमें हमें जहाँ रुकावट जान पड़ती है वहाँ हम अपने आप अनजाने ही उसे सीधा करते चलते हैं जैसे *लैंटर्नको लालटेन, बौक्सको बकस, हौस्पिटलको अस्पताल, कौलेजको कालिज,*

देह अलग होनेसे बोली अलग होना (शरीर-भेद)

कुछ लोग कहते हैं कि संसारमें जितने लोग हैं सब एक दूसरेसे अलग बनावटके हैं और इसलिये उनके मुँहकी बनावट भी अलग होती है। यह बनावट अलग होनेसे बोलियाँ बदल जाती हैं। पर बोलियोंका अर्थ गलेसे निकलनेवाली ध्वनिकी मोटाई, पतलेपन, घरघरेपन या झोंझरेपनसे नहीं है। बोली तो ध्वनियोंके उस माने हुए मेलको कहते हैं जिसका अर्थ एक सी बोली बोलनेवाले लोग समझते हों। 'मैं जा रहा हूँ।' इस

बातको कोई रोगी बड़े धीरेसे कहे या कोई मोटा-ठाढ़ा पहलवान स्वर चढ़ाकर कहे पर उसका अर्थ एक ही होगा। ऊँचे-नीचे बोलनेसे उसके अर्थमें कोई भेद नहीं पड़ जाता।

देश अलग होनेसे बोलीमें भेद (देश-भेद)

कुछ लोग मानते हैं कि अलग-अलग देशोंके पानी-बयारसे भी बोलियाँ बदलती है और इसीलिये दो देशोंकी बोलियाँ अलग-अलग हो जाती हैं। पर यह बात ठीक नहीं है। अमेरिकामें पाँच पीढ़ीसे रहनेवाले पंजाबी लोग अभीतक ठेठ पंजाबी बोलते हैं और वहाँके हबशी ठाठसे अंगरेज़ी या पुर्त्तगाली बोल रहे हैं। हम आगे समझावेंगे कि बोलियोंका धरती-पानी-बयारसे कोई नाता नहीं।

मनका भेद (जातीय मानसिक भेद)

कुछ लोग मानते हैं कि कुछ जातियाँ पढ़-लिखकर निखर-सँवरकर बहुत आगे बढ़ गई हैं और कुछ पीछे पड़ी रह गई हैं। इस चढ़ा-उतरी और बढ़ाव-पछाड़से भी बोलियोंमें हेरफेर हो जाता है। जो लोग जितने बढ़ते चलते हैं उनकी बोलीमें उतना ही नयापन, सुहावनापन, कनमिठास (श्रुतिमधुरता), बहाव और सुघरपन होता है। जो लोग पिछड़े हुए होते हैं उनकी बोलीमें पुरानापन, छिछलापन, बेढंगापन, कनफोड़पन, उलझाव और फूहड़पन होता है। पर यह बात भी ठीक नहीं है।

यह मत ठीक नहीं है।

सच पूछिए तो इन सब बातोंसे बोलीमें हेरफेर नहीं होता, बोलियाँ नहीं बदलतीं। इन बातोंसे तो कुछ शब्द बढ़ते हैं, कुछ ध्वनियोंमें हेरफेर और बढ़ाव-घटाव होता है, बनावटमें कुछ उलट-फेर हो जाता है, अर्थोंमें अदला-बदली हो जाती है, बोली कुछ बढ़ जाती है, उसके शब्दोंके भंडारमेंसे कुछ सूख या गल जाते हैं, कुछ नये आ पहुँचते हैं। इसलिये यह नहीं

समझना चाहिए कि इनसे बोलियाँ बदल जाती हैं। हाँ, हम कह सकते हैं कि इन सब बातोंसे बोलियाँ बढ़ जाती हैं, उनमें नया पानी मिलता है, उनके रंग-ढंगमें कुछ चटक आती है पर यह कहना भूल है कि वे बदल जाती हैं।

उपजाऊ धरतीमें बोलीका बढ़ाव और आपसका मेल

बहुत लोग यह भी मानते हैं कि उपजाऊ धरतीपर रहनेवालोंको अपनी बोलियाँ सँवारने, माँजने और बढ़ानेका बहुत समय मिलता है जो ऊबड़-खाबड़, धरतीवालोंको नहीं मिल पाता, इसलिये उनकी बोली पिछड़ी रह जाती है। कुछ लोग यह मानते हैं कि जो लोग रहन-सहन, राग-रंग, पढ़ाई-लिखाईमें आगे बढ़ जाते हैं वे अपनेसे पिछड़े हुए लोगोंपर झटसे अपना रंग चढ़ा देते हैं। कभी-कभी ऐसी बढ़ी-चढ़ी दो जातियोंमें मेल-जोल बढ़ जाता है तो उनकी बोलियोंका भी मेल-जोल हो जाता है। पर यह बात भी ठीक नहीं है। यह तो हो सकता है कि दो जातियोंके आपसी मेल-जोलसे उनमें कुछ विचारोंका अपने-अपने सोचने-समझनेके ढंगका लेन-देन हो जाय और उसके साथ कुछ शब्द भी एक दूसरे ले लें पर बोलीकी बनावटपर इस मेल-जोलकी कोई छाँह नहीं पड़ती। चीनवालोंसे हमारा कितना मेल रहा, यूनानवालोंसे हमारा कितना गठ-बन्धन हुआ, उत्तर और दक्खिन भारतका आपसका कितना मेल रहा पर दोनोंने एक दूसरेको संस्कृतकी बटियासे परखा-समझा, आपसमें अपनी चलती बोलियोंको नहीं सिखाया-समझाया।

हम आगे समझावेंगे कि बोलियाँ कैसे बदलती हैं, कैसे एक बोली मर मिटती है या कैसे एक बोलीके रहते हुए दूसरी बोली उसपर लाद दी जाती है या एक ऐसी नई बोली चला दी जाती है कि सब उसे मान लें और उसे काममें लाने लगें।

§ ४१—**एकाकित्वमवधानत्वमपरिवर्त्तनत्वे । [अलग और सजग रहनेवालोंकी बोलियाँ नहीं बढ़तीं या बदलतीं ।]**

यह हम ऊपर भी कह आए हैं कि बोलियोंमें यह बढ़ाव-फैलाव भी तभी आता है जब वे दूसरी-दूसरी जातियों या देश-वालोंसे अपना हेल-मेल बढ़ावें। जो लोग एस्किमो या जंग-लियोंके ढंगसे सारे संसारसे अलग अपने नन्हेंसे संसारमें घिरे-मुँदे रहते हैं उनकी बोली ज्योंकी त्यों बँधी-घुटी-जकड़ी रहती है, आगे नहीं बढ़ पाती। इसी ढंगसे जहाँ लोग अपनी बोली ठीक बनाए रखनेके लिये चौकन्ने रहते हैं, भूल होते ही टोक देते हैं (जैसे वेद-पाठवाले) या व्याकरणके फन्देमें ऐसा कस देते हैं कि वह टससे मस न हो और जो उसमें हेर-फेर करनेको चले उसका गला नापा जाय, उसकी खिल्ली उड़ाई जाय (जैसे संस्कृतवाले) तब भी बोलीमें बढ़ाव-छँटाव नहीं होता। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे सिमिट-सिकुड़कर भोंड़ी बनी रह जाती है। वे खिलती हैं और अपनेमें ही नया-नया सुहावनापन लेकर फलती-फूलती चलती हैं।

§ ४२—**तत्समतद्भवदेशिविदेशिनवशब्दात्मकं वर्द्धनम्। [ज्योंके त्यों, बिगड़े हुए, देशी, परदेसी या नए गढ़े हुए शब्दोंसे भाषा बढ़ती है।]**

हम बता चुके हैं कि बोलीके बढ़ावको बदलना नहीं कहते। यह बढ़ाव ऐसे होता है कि (क) किसी बोलीका कोई शब्द ज्योंका त्यों चलाया जाय जैसे *कृष्ण*। (ख) अपना शब्द चलनमें आकर बदल जाय जैसे *कृष्णका कान्हा*, (ग) बिगाड़कर रक्खा हुआ नाम ही सुधार लिया जाय जैसे *सेगाँवका सेवाग्राम*, (घ) देशी चलते शब्द ले लिए जायँ जैसे *छाछ*, (ङ) विदेशी शब्द अपना

लिए जायँ जैसे *कोट*, *टिकट*, *बटन*, (च) नये शब्द गढ़े जायँ जैसे अपना राज चलानेके लिये बनी हुई नियमकी पोथीका नाम रक्खा गया *संविधान*। बोलियोंके बढ़ावका एक तो ढंग यह होता है।

§ **४३—शब्दशक्तियोजनापि संवर्द्धने। [शब्दोंमें बल भर देनेसे बोली बढ़ती चलती है।]**

पर किसी भी बोलीका सच्चा बढ़ाव तब होता है और बोली तभी खिलती है जब अच्छे सुलझे हुए कवि, शब्दोंमें नया जादू भर दें, उनमें कुछ सलोनापर भर दें, ढंग-ढंगके मेलसे शब्दोंके अर्थोंमें नयापन ला दें या एक ही बातको कई ढंगसे कहनेकी चलन निकालें। '*बयार चल रही है*' वाक्यको इतने ढंगोंसे कहना बोलीका खिलाव और बढ़ाव ही है—

(१) *पवन घूमने निकल चला*, (२) *वृक्षोंकी शाखाओंपर पवन झूलने लगा*, (३) *फूलोंकी सुगन्ध पवन बाँटता फिरता है*, (४) *मलयका दूत आ पहुँचा है*, (५) *तनमें फुरफुरी जागने लगी है।*

§ **४४—विकासलासह्रासनाशविराममेलसंस्कारविकारैः। [खुल, खिल, घिस, मिट, रुक, मिल, सुधर या बिगड़कर बोली अपना रंग-ढंग बदलती चलती है।]**

खुलना : विकास—

संसार भरकी बोलियोंकी देखभाल करनेपर जान पड़ता है कि कुछ बोलियाँ तो बराबर खुलकर बढ़ती गईं जैसे केलेका गाछ होता है कि उसमेंसे बराबर पत्तेपर पत्ता निकलता चलता है, पुराने पत्ते सूखते-मुरझाते चलते हैं, नये निकलते चलते हैं जो पहलेके पत्तेसे बड़े और चौड़े होते हैं। देखो—*प्राकृत भाषाएँ*।

खिलना : विलास—

कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जो एक रूपमें ढली होनेपर भी अपनेमें ही बराबर वैसे ही नयापन लाती रहती हैं जैसे बरगदका पेड़ अपनेमें ही नई-नई जटाएँ बढ़ाकर सदा नयापन भरता रहता है। देखो—*संस्कृत* ।

रुकना : विराम—

कुछ बोलियाँ ऐसी होती हैं जो किसी नामी मनुष्यके नामपर चलती तो हैं पर उसकी आँख मुँदते ही वे भी बँधी पड़ी रह जाती हैं, उस नामी मनुष्यके पीछे चलनेवाले दो-चार मनुष्य उसे चलाए रखना चाहते हैं। ऐसी बोलियाँ रजस्थान (रेगिस्तान)के खजूर जैसी हैं। कोई कारवाँ उधरसे आ निकला तो दो-चार खजूर तोड़ खाए नहीं तो सुनसानमें खड़ा है, कोई पूछनेवाला नहीं। देखो—*पालि* ।

घिसना : ह्रास—

कुछ ऐसी भी बोलियाँ हैं जो वैसे ही घिसती-घिसती ढाँचा बदल लेती हैं जैसे हिमालयकी पथरीली चट्टान गंगाजीके बहावमें पड़कर रगड़ती-घिसती, लुढ़कती-पुढ़कती, गोल और चिकनी होती चलती है। देखो—*हिन्दी* (जिसमें *संस्कृत*का '*कर्म*' *पालि* और *प्राकृत*में *कम्म* होकर *हिन्दी*में *काम* हो गया, संस्कृतके '*रामः*, *रामौ*, *रामाः* के तीन वचनोंके बदले दो ही वचन रह गए।

मिटना : नाश—

कुछ बोलियाँ जाड़ेके विलायती फूल बनकर खिलती तो बड़े तपाकसे हैं पर फिर अपने बोलनेवालोंके साथ ही ऐसी मर-मिटती हैं कि उनका नामलेवा पानीदेवा कोई नहीं बच रहता, जैसे *मिस्र*की पुरानी बोली।

बिगाड़ : विकार—

कुछ ऐसी भी बोलियाँ हैं जो गँवार, उज्जड्ड, अपढ़ और नत्थू-बुद्धूके पल्ले पड़कर बिगड़ जाती हैं जैसे *पिडगिन अंग्रेज़ी* या पूर्वी उत्तरप्रदेशके गाँववालोंकी *हिन्दी*, जो कहेंगे—'*तनी लोटवा* उठा दीजिए, *बिल्डिंगिया* अभी नहीं बनी है, हम उन्हें देखे रहे, हाथी जा *रही* है या बैसवाड़ीमें जैसे *कोट* और *लोटा* भी क्वाट और *ल्वाटा* हो जाते हैं।

मिलावट : मेल—

कभी-कभी कई बोलियोंके मेलसे बोली अपना रंग-ढंग बदल लेती है जैसे उत्तरप्रदेशका रहनेवाला भी बंबईमें जाकर कहने लगता है—*एकवींकूँ पगार मिलनेका है, तबी खोलीका भाड़ा तुमकू देगा।* [पहलीको वेतन मिलनेवाला है, तभी कोठरीका किराया तुम्हें दूँगा।]

सुधार : संस्कार—

कभी-कभी जब पढ़े-लिखे लोग देखते हैं कि कोई बोली बहुत बिगड़ी हुई है तो वे उसे अपने ढंगसे सुधार भी देते हैं जैसे डोमराँवके रहनेवाले एक कविने अपने गाँवका नाम *द्रुमग्राम* रख लिया। कभी कभी हम उन शब्दोंको बदलकर भी उनका सुधार कर लेते हैं जिनसे हमारी चिढ़ होती है या जो फूहड़ लगते हैं जैसे *विल्सनगंजको* बदलकर *मालवीयगंज* बना लिया, *चिरकुट रामका* नाम *चिरंजीलाल* रख दिया या *लाहोर* (ला + होर = और लानेवाला, अधिक लानेवाला, समृद्ध) को सुधारकर *लवपुर* कहने लगे।

§ ४५—परिवर्त्तनं ध्वनिशब्दवाक्यार्थेषु। [ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ, सभीमें हेर-फेर होता है।]

बोलियोंमें इतना उलट-फेर उनकी ध्वनि, शब्द, वाक्योंकी

बनावट और अर्थ सभीमें होता है। यह उलट-फेर, अदला-बदली कैसे, क्यों और किस ढंगकी होती है यह तो हम आगे चलकर जहाँ-जहाँ ध्वनि, शब्द, वाक्य या अर्थ बदलनेका ब्यौरा देंगे वहाँ ठीक ढंगसे समझाकर उसकी जाँच-परख करेंगे। यहाँ तो हम इतना ही समझाना चाहते हैं कि बोलियाँ और उनकी बनावट कैसे बदल जाती है ? क्यों एक ही देशमें एकसे रहन-सहन, करम-धरमवाले लोग *पंजाबमें पंजाबी*, *राजस्थानमें राजस्थानी*. *गुजरातमें गुजराती*, *महाराष्ट्रमें मराठी*, *उत्तरप्रदेशमें ब्रज*. *अवधी* और *भोजपुरी*, *बिहारमें भोजपुरी*, *मगही* और *मैथिली*, उड़ीसामें *उड़िया*, *बंगालमें* कई प्रकारकी *बँगला*, *आसाममें असमिया*, *हिमालयकी* तराई और उसकी ढालपर न जाने कितने रंग-ढंगकी *पहाड़ी* बोलियाँ बोलते हैं। आप *योरपमें* चले जाइए तो वहाँ आपको एक *कैस्पियन* सागरके चारों ओर *उक्रानी* (*रूसी*). *काकेशी*, *आर्मीनी*, *तुर्की*. *बलगेरी* और *रूमानी* बोलियाँ सुनाई पड़ेंगी। *स्पेनमें* जाइए तो उसके पूरबमें समुद्रके किनारेकी पट्टीपर *कतलान* बोली जाती है, पच्छिमी समुद्रकी पट्टीपर *पुर्त्तगाली* और *गलीकन* और पूरब-उत्तरके कोनेपर *फ्रांस* और *स्पेनके* बाड़पर *बास्क* बोली जाती है। *जिब्राल्टरके* समुद्रमेलके उत्तर *स्पेनमें स्पेनी* और दक्खिन अफ्रीका-में *अरबी* और *बेरबेर* बोली जाती है। इससे यह समझनेमें कठिनाई नहीं होगी कि एक देशमें भी बहुत पास-पास रहनेपर भी बोलियाँ बदली हुई हैं। उधर *अफ्रीकामें* आपको एक नई बात देखनेको मिलेगी कि धुर दक्खिनी अफ्रीकामें बन्तूका बोलबाला है। *अफ्रीकामें* पच्छिमसे लगभग पूरबतक *सूदानी* और *गिनिया* और उत्तरमें *सेमेटिक-हेमेटिक* बोलियाँ बोली जाती हैं। क्या बात है कि इतने बड़े अफ्रीकामें कुल गिनी-चुनी पाँच-

छः बोलियाँ और यूरोपमें पचासों बोलियाँ। कभी आपने सोचा है ऐसा क्यों हुआ ?

§ ४९—**सिन्धुनगनद्यमरुस्तेषां भेदकाः। [समुद्र, पहाड़, नदी और बालूघर (मरुभूमि) के बीचमें पड़नेसे बोलियाँ अलग-अलग पनपीं।]**

अभी सौ-दो-सौ बरससे संसारके सब देशोंमें आपसमें मेल-जोल, आना-जाना बढ़ा है। इससे पहले भी एक देशके लोग दूसरेपर कभी-कभी धावा-चढ़ाई करते रहे और ब्योपारी लोग तो चीन, भारत, अरब, मिस्र, रोम सबको एक किए हुए थे, पर ऐसे लोग बहुत थोड़े होते थे जो अपने प्राण हथेलीपर लेकर जलसे या थलसे, पालवाली नावों या ऊँट-घोड़ोंपर चलकर, समुद्री डाकुओं, चोरों और बटमारोंसे लड़ते-भिड़ते एक देशका माल दूसरे देशमें लाते-ले जाते थे। इन्होंने इतना तो किया कि एक देशके कुछ ब्योपारमें आनेवाले शब्द दूसरे देशमें ला पहुँचाए। उन लोगोंके सामने तो बात भी बस एक थी और वह था पैसा। पैसा कमाना और बटोरना छोड़कर न वे कुछ जानते ही थे, न कुछ जानना ही चाहते थे। इसलिये उनसे यह आस तो थी ही नहीं कि वे दो देशोंकी बोलियाँ एक कर सकेंगे या दो देशोंके रहन-सहनको मिला सकेंगे। यों भी देखा जाय तो मैदानोंकी घुमन्तू जातियोंको छोड़कर दूसरे लोग समुद्र, पहाड़, नदी और रेतीले मैदानोंको लाँघते तक नहीं थे। अपने घेरेमें, अपने खाने-पीने-रहनेका सुपास बनाकर कुएँके मेंढक बने पड़े रहते थे। इसीलिये हम देखते हैं कि जहाँ अफ्रीका जैसे लंबे मैदान हैं वहाँ दूरतक एक बोली है, जहाँ बहुतसे नद, पहाड़, समुद्र हैं वहाँ बोलियाँ भी बहुत हैं और एक घेरेमें रहनेसे उतने घेरेकी बोली भी एक हो गई है चाहे वह घेरा छोटा रहा हो या बड़ा रहा हो।

§ ४७—**भिन्नत्वं प्रकृतिः । [बोलियाँ सब अलग-अलग हैं ।]**

बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोग यह मानते हैं कि बोलियाँ बोलनेवालोंके कुछ इने-गिने ठट्ट, परिवार या टोलियाँ हैं जैसे *हिन्द-योरोपी*१, *हेमिटी-सैमिटी, ऊराल-अल्ताई चीन-तिब्बती, जापान-कोरियाई, द्राविड़ी, मलायवी-पोलिनेशियाई, सूडानी-गिनाई, बन्तू, होतेनतोत-बुशमेनी, आस्ट्रेलियाई और पापुआँ, अमरीकी-हिन्दियाई और एस्किमो, मुंडा-मोन ख्मेर, बास्क, हाइपरबोरी, काकेशियाई, ऐनू* । पर यह बात ठीक नहीं है । हम *हिन्द-योरोपी* बोलियोंको ही ले लें तो हमें कुछ अनोखी बातें देखनेको मिलती हैं । इन *हिन्द-योरोपी* बोलियोंमें बहुतसे *पिता माता, भ्राता, गऊ* जैसे नाम कुछ घिसे-रगड़े रूपमें मिल जाते हैं । इसीपर बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोगोंने अटकल लगाई कि हो न हो ये सब एक ठट्टके लोगोंकी ही एक बोली रही होगी । सच पूछिए तो अलग-अलग देशोंमें अलग-अलग बोलियाँ अपनेसे उपजी हैं, पर उन सभीपर एक ऐसी बोली बोलनेवालोंका हाथ रहा है जो उनसे बहुत समझदार, पढ़े-लिखे, कामकाजी और सब बातोंमें बढ़े-चढ़े रहे हैं जिन्हें या तो और देशवालोंने बुलाया या उन्होंने औरोंपर चढ़ाई की या संसार भरको भला, सुखी, समझदार और सुघर बनानेके

१—हिन्द-योरोपी बोलीके परिवारका नाम कुछ लोग इन्डो-योरोपीयके साँचेपर ढालते ढालते 'भारोपीय' कह डाला पर यह शब्द अशुद्ध है, इसका कोई अर्थ नहीं है । अंग्रेजीके इंड और योरोपीय दोनों पूरे शब्द हैं, भारोपीयमें एक भी पूरा नहीं । यह भार और ओपीय क्या बला है ?

लिये वे ही अलग-अलग देशोंमें पहुँच गए हों। मनुस्मृतिका यह श्लोक यों ही नहीं लिख मारा गया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

[इस देश (भारत) में जन्म लेनेवाले ब्राह्मणोंने धरतीपरके सब लोगोंको अपनी चाल-ढाल सिखाई ।]

इस पर हम ध्यानसे सोच-विचार करके सब बोलियोंकी देखभाल करें तो समझमें आ जायगा कि यहाँ के लोग दूसरे देशोंमें गए और उन्हें अपना रहन-सहन, चाल-ढाल, सिखानेका जतन करते रहे। इस जतनमें वे लोग जहाँ-जहाँ तक पहुँच पाए वहाँ-वहाँ घरेलू काम-काज और घर-गिरस्तीमें काम आनेवाले सब शब्द देते आए। इसलिये यह कहना भूल है कि एक बोली बोलनेवाले लोग ही फैलकर जहाँ-जहाँ जिस-जिस देशमें रहने लगे वहाँ-वहाँ के पानी-बयारकी छायामें उनकी जीभने वैसा-वैसा रंग पकड़ लिया और एक ही बोलीसे बहुतसी कुछ-कुछ मिलती-जुलती बोलियाँ बन गईं। सच्ची बात यह है कि नदी पहाड़, बालूपाट (मरुभूमि) और समुद्रसे घिरे एक-एक घेरेके रहनेवाले लोगोंकी बोलियाँ पहलेसे ही अलग-अलग थीं, पर उनपर चढ़ाई करके उन्हें जीतनेवाले लोगोंने या बाहरसे आकर उन्हें सिखाने-पढ़ानेवाले लोगोंने उन्हें कुछ शब्द दे दिए और कहीं-कहीं तो पूरे देशकी बोली बदल दी जैसे अमेरिकाके हबशियोंकी बोली योरोपवालोंने बदल दी। इसलिये जिन

बोलियोंमें आपसे मिलते-जुलते बहुतसे शब्द दिखाई-सुनाई पड़ते हैं उन्हें एक परिवारका माननेकी भूल नहीं करनी चाहिए, वे एक बोली या भाषाकी धौंसमें कभी रह चुकी हैं।

§ ४८—**प्रभावात्परिवारसिद्धिर्नत्वेकमूलत्वात्।** [**एक-एक बोलीकी धौंससे बोलियोंका एक एक परिवार बना, एकसे सबका पसारा नहीं हुआ।**]

हमारी यह बात सुनकर आप चौंक उठेंगे कि यह नई बात कहाँसे आ निकली। अभी तक तो सब यही मानते थे कि एशियाके बीच *पामीरके पठारसे* आर्य लोग जब ठंढसे ऊबकर, बढ़कर इधर-उधर फैले तब अपने साथ अपनी बोलियाँ ले गए और जहाँ-जहाँ बसे वहाँ-वहाँकी धरती, पानी और बयारसे बोलियोंमें हेर-फेर हो गया। पर यह सब ठीक नहीं है। *कैस्पियन सागरके* चारों ओर एक सी धरती-बयार होनेपर भी वहाँ कई बोलियाँ बोली जाती है और इसीलिये कि पहाड़ों और नदियोंने उनके बीच भेद डाल दिया है। इसे हम दूसरे ढंगसे भी समझा सकते हैं। आप हिन्दीमें कहते हैं *रामका घोड़ा।* इसे उत्तर भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें इस प्रकार कहा जाता है।

सिन्ध — रामजो घोरो
पंजाब — रामदा घोड़ा
राजस्थान — रामरो घोड़ो
गुजरात — रामनो घोड़ो
ब्रज — रामकौ घोरौ
बैसवाडी — रामकै घ्वारा
भोजपुरी — रामकै घोड़ा
बँगला — रामेर अश्व
मराठी — रामचा घे

इसमें *राम* और *घोड़ा* तो नाम हैं पर इनका आपसका मेल बतानेवाली ध्वनियोंमेंसे सिन्धीके 'जो'को छोड़कर दा रो, नो, कौ, कै, एर, चा क्या संस्कृतके '*स्य*' के बिगड़े रूप हैं। इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि ये सब बोलियाँ अपने-अपने घेरेमें अपने-अपने ढंगसे बोली जाती रही हैं और उनकी बनावट भी अपनी अलग ही रही पर संस्कृत बोलनेवाले आर्योंने उनपर अपनी ऐसी धाक जमाई कि उन्होंने संस्कृतसे न जाने कितने शब्द ले लिए, यहाँतक कि बँगलामें संस्कृतके अस्सीसे पचासी सैकड़ेतक शब्द भर गए और हिन्दीमें अब भरते जा रहे हैं पर मराठी और गुजराती अपना अपनापन यहाँतक बनाए हुए हैं कि *कुर्सी* जैसा बहुत मुँहचढ़ा शब्द भी मराठी बोलीकी अपनी ढलनमें' *खुरची* बन पड़ा है और गुजरातमें *घड़ी* अब भी *घड़ियाल* बनी हुई है।

आप योरपकी कुछ बोलियोंमें *बिदा*के लिये शब्द देखिए—

स्वेडनी — *आदजो*
हुलाँश (डच) — *डाग्*
अंग्रेजी — *गुडबाइ*
जर्मन — *वीडेरज़ेहन्*
फ्रांसीसी — *एद्य*
स्पेनी — *हास्तो ला विस्ता*
पुर्त्तगाली — *एदेउ*
इतालवी — *अरिवेदेर्ची या चियाओ*
बलगेरी — *सुवोम् (शुभम्से मिलता-जुलता है)*

इससे भी यह समझमें आ सकता है कि योरप की सब बोलियोंमें भी अपने सगे-प्यारे लोगोंके लिये अलग-अलग ढंगसे *बिदा* कहते हैं।

बहुतसे लोग यह मानते हैं कि अलग-अलग देशोंके पानी-बयारसे भी बोली बदलती है। यह बात भी ठीक नहीं है। जो लोग कई पीढ़ीसे दक्खिनी अमरीका, डच गायना, ब्रिटिश गायना, नैटाल, मौरीशस, फ़िजी, अमरीका, अफ्रीकामें जा बसे हैं, वे वहाँकी बोली भी बोल लेते हैं और जब हिन्दी बोलते हैं तब ठीक वैसे ही बोलते हैं जैसे हम लोग। हाँ, यह अवश्य है कि अपनी बोली बोलते-बोलते हमारे मुँहके भीतरके सब अंग ऐसे ढल जाते हैं कि दूसरी बोलियोंकी ध्वनियोंको हम अपनी बोलीकी ध्वनियोंसे मिलती-जुलती ध्वनिसे मिलाकर बोलते हैं जैसे बंगाली पंडित लोग संस्कृत श्लोक पढ़ते हुए बोलते हैं—

'जों ब्रोह्मा बोरूणेन्द्रो रुद्रो मोरुतोश्तुन्वोन्तू दीब्बैश्तोबैर् ।'

[यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवैर् ।]

इसलिये कहींका भी रहनेवाला हो, कैसी भी धरती-बयारमें पला या पलता हो, उसे सिखानेवाले जैसे होंगे और वह जैसी बोली सुनेगा वैसा ही बोलने लगेगा। यदि *स्वित्सरलैंड*में हिन्दीकी चटसाल खोल दी जाय और छुटपनसे बच्चोंको वैसे ही हिन्दी पढ़ाई-सिखाई जाय जैसे यहाँ हमें सिखाई जाती है तो वहाँके बालक भी वैसी ही हिन्दी बोल-पढ़ और लिख सकते हैं जैसी हम। जब *इंगलिस्तान*में फ्रांसीसीका बोलबाला था तब वहाँके लोग फ्रांसीसीका *त थ द ध* सीधे बोलते ही थे पर जबसे फ्रांसीसी वहाँसे निकाल बाहर की गई तबसे अंग्रेज लोग '*त थ द ध*' को '*ट ठ ड ढ*' ही पढ़ते-बोलते हैं। उसी अमरीकामें, जहाँ *लाल-हिन्दयाई* अपनी जंगली बोलियाँ बोलते रहे, वहीं *अंग्रेजी*, *स्पेनी*, *पुर्त्तगाली* डेढ़ सौ बरससे अपनी-अपनी बोलियाँ फर्राटेके साथ बोल रहे हैं? क्यों नहीं वहाँकी धरती या बयारने उनकी बोली बदल दी? पिछले अट्ठाइस बरससे मैं काशीमें

रहता आया हूँ पर यहाँकी बोली मुझपर जादू नहीं डाल सकी क्योंकि मैं सबसे सदा नागरीमें बोलता हूँ। इसलिये मेरे छोटे बच्चे मुझसे नागरी बोलते हैं पर और सबसे बनारसी भोजपुरी।

कभी-कभी यह तो हुआ कि किसी एकने या कइयोंने मिल-जुलकर यह समझा कि जो बोलियाँ चल रही हैं वे ठीक नहीं, इन्हें बदला जाय। यदि बहुतसे लोग उधर झुक जायँ तो एक नई बोली चल निकलती है जैसे *ज़मेनाफ़*ने *एस्पेरेंटो* चलाई।

कभी-कभी कोई इतना बड़ा धाकड़ मनुष्य हो कि उसकी बातको लोग आँख-मूँदकर मान लेते हों तो वह भी नई बोली बनाकर चला सकता है, जैसे *गौतम बुद्ध*ने *संस्कृत-मागधी*को मिलाकर *पालि* चला दी और *गाँधीजी* भी *हिन्दी*, *उर्दू*, *फ़ारसी*का रलगड्डम करके *हिन्दुस्तानी* चलाना चाहते थे। पर ऐसी बनावटी बोलियाँ एक घेरेमें भले ही बोली-लिखी जाती रहें पर वे बहुत पनपती नहीं।

इसी ढंगसे कभी-कभी कुछ पढ़े-लिखे लोग अपनी नई सूझ-बूझके बलपर कोई नई बोली बनाकर चला देते हैं जैसे जर्मनीमें *श्लेयर*ने *वोलाप्यूक* नामकी बोली बनाकर चलाई, *इतालिया*के रहनेवाले *पेआनो*ने *इंतरलिंगुआ* (या *लातिनो सिने फ़्लेक्सिओने*) चलाई, *जेस्पर्सन*ने *नोवियाल* बनाई और *हौग्बेन*ने *इन्तेरग्लोसा* ढाली। पर ऐसी बोलियाँ भी बनकर रह गईं, चल नहीं पाईं। हाँ, जब बहुतसे लोग अनजानमें किसी बोलीको बिगाड़कर चलाने लगते हैं तब वह चल निकलती है जैसे कैंटनमें '*पिडगिन*' अंग्रेज़ी (चीनी अंग्रेज़ी), पर वह भी कुछ व्यापारियोंके घेरेमें ही बँधी रह गई, उसका पसारा नहीं हो पाया।

§ ४१—जेताबुधमहज्जनप्रभावाद्भाषापरिवर्त्तनम्।

[जीतनेवाले, पढ़ेलिखे या बड़े लोग बोलियाँ बदल देते हैं।]

ऊपर जो ब्यौरा दिया गया है उससे यह समझनेमें कोई

अड़चन नहीं रही कि पानी-बयार या धरती बदलनेसे बोली नहीं बदलती। बोली तो तब बदलती है जब कोई जाति दूसरोंको जीतकर वहाँ अपनी बोली चला दे या पढ़े-लिखे सुघर लोग अपने रहन-सहन और पढ़ाई-लिखाईसे दूसरोंपर धाक जमाकर उनकी बोली सँवार-सुधार या बदल दें या कोई बड़ा मनुष्य अपनी धाकसे नई बोली बना दे या कुछ लोग मिलकर सबके काममें आनेवाली बोलियोंको मिला-जुलाकर एक नई बोली गढ़ दें। बोलियोंके बदलते रहनेकी बस इतनी कहानी है। ये जो थोड़े-बहुत शब्द इधर-उधरसे आते-जाते चलते-मिटते रहते हैं इनसे कोई बोली बदलती नहीं, इनसे तो बोली मोटी होती है और नई रंगत पकड़ती चलती है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—बहुतसे लोग यह मानते हैं कि शब्दोंको बहुत काममें लानेसे, किसी ध्वनिपर बल देनेसे, रीझने-खीझनेसे, बोलनेकी सुविधा ढूँढ़नेसे, मनकी चाल बदलते रहनेसे, ठीक-ठीक सुन न पानेसे, धरती-पानी बयार, रहन-सहन, संस्था, बड़े लोग, जातियोंके मेल और बोलनेके ढंगमें अलगाव होनेसे बोलियाँ बदलती हैं। पर आचार्य चतुर्वेदी यह सब नहीं मानते।

२—अलग रहनेवाले और बोलचालमे चौकन्ने रहनेवाले लोगोंकी बोलियाँ नहीं बदलती।

३—किसी बोलीके ज्योंके त्यों शब्द काममें लानेसे, बिगड़े हुए शब्दोंको चलानेसे, देसी-परदेसी या नए गढ़े हुए शब्दोंके मेलसे भाषा बढ़ती चलती है।

४—शब्दोंमें नए अर्थोंका बल भर देनेसे भी बोली बढ़ती और खिलती चलती है।

५—समुद्र, पहाड़, नदी और रेतीले मैदानोंमें अलग-अलग बसनेवाले लोगोंकी बोलियाँ अलग-अलग रहीं और बोलियाँ सब अलग-अलग ही हैं।

६—किसी एक बोलीकी धाकसे दूसरी बोलियोंके शब्दोंमें हेरफेर हुआ पर उनका निकास एक बोलीसे नहीं हुआ।

७—जीतनेवालोंने, बड़े लोगोंने और अच्छे पढ़े-लिखे पंडितोंने बोलियोंमें हेरफेर भी किया है और नई बोलियाँ भी चलाई हैं।

—:-०-:—

६

एक बोली कितने रंग पकड़ती है ?

बोलीके साँचे

आप कई ढंगसे अपनी बोली बोलते हैं—कुछ लोग भाषा, विभाषा और बोली ये तीन रूप मानते हैं—कुछ लोगोंने बोलीके चार साँचे माने हैं : भाषा बोली, विशिष्ट और विकृत—कुछ लोगोंने मूलभाषा. बोली राष्ट्रभाषा. आदर्शभाषा, विशिष्टभाषा और कृत्रिम-भाषा नामसे बहुतसे रूप गिनाए हैं—ये सब भेद अललटप्पू हैं—भरतने अतिभाषा, आर्यभाषा. जातिभाषा और जात्यन्तरीभाषा ये चार रूप बताए हैं—बोलीके दो साँचे : भले लोगोंकी और सबके बोलचालकी—भलोंकी बोलीके दो भेद : लिखने की और बोलने की—सबकी बोली भी दो ढंगकी : एक अपने घेरेकी, दूसरी परदेसियों की—पासकी बोलियाँ सहेली होती हैं, बहन नहीं।

§ ५०—बहुरूपभाषाभाषी नागरिकः। [आप कई ढंगसे अपनी बोली बोलते हैं।]

आप कभी ध्यान लगाकर अपनी एक दिनकी बोलीकी छानबीन करें तो आपको जान पड़ेगा कि आप दिन भरमें न-जाने कितने ढंगकी बोलियाँ बोल लेते हैं। मान लीजिए आप काशीके रहनेवाले हैं और अपने घर मुझसे बातचीत करना चाहते हैं तो आप कहेंगे—

(१) आपने अत्यन्त कृपा की। मैं क्या सेवा करूँ ?

इसी बीच आप अपने नौकरको पुकारेंगे—

(२) अरे भगेलुआ ! तनी जा तऽ चार बीड़ा मघई लगवौले आवऽ। तनी लपकके जायऽ।

इसी बीच आपके कोई अंग्रेजी पढ़े-लिखे मित्र आते हैं जिन्होंने आपको कुछ काम सौंपा था, तो आप कहेंगे—

(३) ट्यूसडेको बैंक-हौलीडे था इसलिये वैन्सडेको मैंने सब पेपर्स निकलवाकर ऐग्ज़ामिन करा लिए हैं। उनपर मैंने एक नोट ड्राफ़्ट कराया है, उसपर आप सिगनेचर कर दीजिएगा।

उनसे अभी आप निपट भी न पाए थे कि आपके मुंशीजी आ पहुँचे और आप उनसे कहने लगे—

(४) जितने इज़ाफ़ा-लगान हुए हैं उनका तमस्सुख-पट्टा कराकर फ़ौरन् बन्दोबस्त कर दीजिए और जाकर वकील साहबसे भी सलाह-मशविरा कर लीजिए।

इतनेमें आपके बंगाली वैद्यजी आ पहुँचे और उन्होंने कहा—

(५) हाम बोला था जे आप ओ दावाको फीन-फीन ओइ जाइगा लागाइए तो फ़ुरती आच्चा होने शाकता है।

और आपने भी उन्हें समझाया—

आप जिस माफ़िक बोला ओइ माफ़िक हम बहुत बार लगाया पर वह अच्छा नहीं होना माँगता।

हम लोगोंके चले जानेपर आपकी धर्मपत्नीजीने आकर सुनाया कि लड़का खाना नहीं खा रहा है और मुँह फुलाए बैठा है, चलिए मना लीजिए। इसपर आपने अपने लड़के सुधीरको पुकारकर कहा—

(६) करे सुधिरवा ! तैं भकोसबे की नाहीं जायके। सरऊ ! ढेर टिरैंबऽ त देख अइसन दुइ हाथ की मुँहे घूम जाई।

इसी बीच एक आपका पुराना नौकर आया जो कलकत्ते

जा रहा है और जो टूटी-फूटी नागरी (खड़ी बोली) बोल रहा है। उसे आप कलकत्तेकी कहानी ऐसे समझाने लगे—

(७) कलकत्तामें टरामगाड़ी चलती है: जो चार पैसा टिकसमें कलाइव-फलाइव सब इस्टीट घुमा देती है। बिसवास न होय तो जायके परतच्छ देखियाओ।

और जब आप आपेसे बाहर हो जाते हैं तो आपकी बोली कुछ दूसरा ही रंग पकड़कर चल निकलती है और आप कहने लगते हैं—

(८) जाकर उस गधेको समझा देना कि बहुत चीं-चपड़ न करे, नहीं तो बड़े घरकी हवा खानी पड़ जायगी और चार दिनमें नानी याद आने लगेगी।

कहिए! जब सन् १९५१ में लोगोंकी गिनती हो रही थी तब तो आपने तावमें आकर लिखवा दिया कि हमारी बोली *हिन्दी* है। अब बताइए! यही आपकी *हिन्दी* है जो आप बोल रहे थे? अब कभी भूलकर भी न कहिएगा कि आप हिन्दी बोलते हैं। और यदि इस बातपर आप अड़े ही हुए हैं कि हम हिन्दी ही बोल रहे हैं तो आपको झख मारकर मानना पड़ेगा कि आप एक नहीं, कई रंगकी हिन्दी बोलते हैं।

§ ५१—भाषाविभाषाबोलीति केचित्। **[कुछ लोग भाषा, विभाषा और बोली ये तीन रूप मानते हैं।]**

बोलियोंकी छानबीनपर जिन्होंने पोथियाँ लिखी हैं उनमेंसे कुछने यह बताया है कि किसी भी बोलीके तीन साँचे मिलते हैं—*भाषा, विभाषा* और *बोली*। हम आपसे पूछते हैं कि *भाषा* और *बोलीमें* भेद क्या हुआ? भाषा संस्कृतका शब्द है, बोली उसका अर्थ है, उल्था है, भाषाका देसी नाम है। यह तो ऐसा ही हुआ कि बादल तीन ढंगके होते हैं—एक *मेघ*, दूसरा *जलधर* तीसरा

बादल। इससे छोटे-मोटे लोगोंके लिये ही नहीं, अच्छे पढ़े-लिखे सुलझे हुए लोगोंके लिये भी उलझन उठ खड़ी होती है। हम अभी देख चुके हैं कि हम-आप दिनमें न जाने कितने रंग देकर अपनी बोली बोलते हैं, फिर यह कहना कहाँतक ठीक होगा कि (१) एक तो पढ़े-लिखे लोगोंकी आपसकी बोली है जिसे *भाषा* कहते हैं. (२) दूसरी एक बँधे हुए घेरेमें बोली जानेवाली या प्रदेशकी बोली है, जिसे *विभाषा* कहते हैं और (३) तीसरी एक घरेलू बोली है जिसे *बोली* कहते हैं।

इन लोगोंका कहना है कि बोलियोंके जो ठट्ठ या परिवार बाँधे गए हैं उनमेंसे एक-एक ठट्ठ या परिवारमें कुछ *भाषाओंके* घेरे होते हैं। एक-एक *भाषाके* घेरेमें आपसमें बहुत-सी मिलती-जुलती *भाषाएँ* होती हैं। इन भाषाओंमेंसे एक-एक भाषाकी बहुत सी एक-दूसरीसे मिलती-जुलती (सजातीय) *विभाषाएँ* होती हैं. और फिर एक-एक *विभाषाकी* बहुत सी *बोलियाँ* होती हैं।

बोली—

बोली उस बोलचालके ढंगको कहते हैं जो हम अपने घरमें बिना मिलावट, बनावट या सजावटके बोलते हैं या बिना किसी ढोंग या दिखावटके अपने साथियों. नौकरों या बहुत मेल-जोलके लोगोंसे बोलते हैं। इसे अंग्रेजीमें लोग *पटवा* (*पेटवा* नहीं) कहते हैं।[1]

---

1. 'पटवा' शब्द फूहड़ (ग्राम्य तथा अश्लील) या किसी एक छोटेसे घेरे (प्रदेशमें) काम आनेवाली बोलीको कहते हैं। अंग्रेज़ीमें इसे 'वल्गार एँड प्रोविंशयल डायलेक्ट' कहा है जैसे—'चलकर भोजन कर लीजिए' को मेरठकी ग्राम्य भाषामें कहेंगे 'चलकऽ हूर क्यूँ नी लेत्ता।' यह पटवा है।

विभाषा—

विभाषाका घेरा *बोलीके* घेरेसे बड़ा होता है। धरतीके एक बड़े घेरेमें (प्रान्त या उपप्रान्तमें) बोलचाल और पोथी लिखनेके काममें आनेवाली भाषाको *विभाषा* कहते हैं। इसे अंग्रेजीमें *डायलेक्ट* कहते हैं। हिन्दीके कुछ लेखक इस *विभाषाको उपभाषा, बोली या प्रान्तीय भाषा* भी कहते हैं।

राष्ट्रीय भाषा या टकसाली भाषा—

अलग-अलग अपने-अपने घेरेमें अपनी-अपनी *विभाषा-को* काममें लाने वाले लोगोंमेंसे पढ़े-लिखे लोग जब आपस-की लिखा-पढ़ी, चिट्ठी-पत्री, काम-काजके लिये किसी एक *विभाषाको* अपना लेते हैं तब वही *भाषा* [*राष्ट्रीय भाषा या टकसाली भाषा या लैंग्वेज या कोइने भाषा*] कहलाने लगती है। यह *भाषा* पढ़े-लिखे लोगोंके हाथमें पड़कर इतनी पक्की होकर मँज जाती है कि यह *विभाषाओंपर* भी अपना रंग चढ़ाने लगती है और कभी-कभी तो किसी एक *विभाषाको* पूरा गड़प जाती है। विभाषाएँ भी अपनी इस रानी *भाषाका* भण्डार भरती रहती हैं और जब किसी हलचल या उथलपुथलसे *भाषाकी* कड़ियाँ बिखरने लगती हैं तब *विभाषाएँ* अपने-अपने घेरेमें फिर अपनापन लेकर उठ खड़ी होती हैं। *विभाषाका* अपने घेरे (प्रान्त) में पूरा राज होता है *भाषा तो* दूसरोंके बनाए तभी बनती और बड़प्पन पाती है जब कोई राजा उसे गद्दीपर बैठा दे या लोग मिलकर उसे तिलक दे दें या लिखने-पढ़नेवाले उसे सिर चढ़ा लें या कोई नया धर्म चलानेवाले लोग उसे अपने काममें लाने लगें।

भाषा, विभाषा और बोली—

इनका कहना यह है कि एक ठौरपर आपसमें घरेलू और आपसी ढंगसे बोलचालमें काम आनेवाली बोलीको *बोली*, एक

बँधे हुए घेरेमें बोली जानेवालीको *विभाषा* और राज-काजमें, पढ़े-लिखे लोगोंके बीच लिखा-पढ़ीकी बोलीको *भाषा* कहना ठीक होगा। इस कसौटीसे हिन्दी, बँगला, मराठी और गुजराती तो भाषाएँ हैं; अवधी, ब्रज, भोजपुरी और राजस्थानी विभाषाएँ हैं; बनारसी और बैसवाड़ी बोलियाँ हैं।

§ ५२—**भाषा बोलीविशिष्टाविकृतेत्यपरे। [कुछ लोगोंने बोलीके चार साँचे माने हैं—भाषा, बोली, विशिष्टा और विकृता।]**

भाषा और बोली—

कुछ लोगोंका कहना है कि बहुतसे गाँव मिलकर जो एक सी बोली बोलते हैं, उसे *बोली* कहते हैं और इन सब अलग-अल बोली बोलनेवालोंमें पढ़े-लिखे लोग आपसकी चिट्ठी-पत्री और लिखा-पढ़ीमें जो बोलते-लिखते हैं उसे *भाषा* कहते हैं। मान लीजिए आप हिन्दीमें यह समझाना चाहते हैं कि मुझे कहीं बाहर जाना है तो *भाषा*में आप कहेंगे—

मैं आज ही जा रहा हूँ।

इसीको अलग-अलग बोलियोंमें ऐसे कहेंगे—

१. मैं आजी जान्यो ऊँ। (*राजस्थानी*)

२. मैं आजु ई जाय रह्यौ हूँ। (*ब्रज*)

३. मैं आजी जाहरा। (*मेरठी*)

४. हम आजे जाइ रहा हईं। (*अवधी*)

५. हम आजै जात हइ। (*बनारसी*)

६. हम अजुवे जान बानी। (*भोजपुरी*)

इन लोगोंका कहना है कि जब एक दूसरीसे मिलती-जुलती बोलियोंमेंसे कोई बोली इतनी चलने लगे कि राजकाज,

चिट्ठी-पत्री, लिखा-पढ़ी, कथा-कहानी और पढ़े-लिखे लोगोंकी बोलचाल उसीमें होने लगे तो वह *भाषा* बन जाती है। पहले *ब्रजभाषा*का बड़ा बोलबाला था। कथा कहनेवाले पंडित लोग उसीमें कथा कहते थे, पोथियाँ उसीमें लिखी जाती थीं, पढ़े-लिखे लोगोंमें उसीका चलन था, वही *भाषा* हो गई। फिर मेरठ-मुजफ्फ़रनगरमें और उसके आसपास जो *नागरी* बोली बोली जाती थी, वह दिल्लीवालोंने माँज-सँवारकर दरबारमें चलाई तो वही *नागरी हमारी भाखा, रेख़ता, हिन्दुई, हिन्दवी* नामसे चल पड़ी जिसमें *फ़ारसी-अरबीके* शब्द डालकर मुसलमान सिपाहियोंने अपनी छावनीमें एक बनावटी उर्दू गढ़ ली पर जिसकी एक ठेठ देसी बनावट भी बनी रही जिसमें संस्कृतके ज्योंके त्यों शब्द डाल-कर पंडित लोग बोलते और पोथी लिखते रहे। इसके कुछ साँचे तो ऐसे हैं जो इसके तीनों रंगोंमें ज्योंके त्यों खप जाते हैं जैसे—

आइए। मैं जा रहा हूँ। आप कहाँ जा रहे हैं? आप कहाँसे आ रहे हैं?

ये लोग मानते हैं कि कोई *बोली* तब *भाषा* बन जाती है जब—

१. *वह राजदरबारकी, राजधानीकी और राजकाजकी बोली हो जाय*, क्योंकि राजा जो बोले वही प्रजा भी कभी डरसे, कभी चापलूसीसे, कभी अपना काम साधनेके लिये और कभी औरोंपर अपने बड़प्पनका रंग चढ़ानेके लिये बोलने लगती है।

२. *उस बोलीमें बहुत-सी पोथियाँ लिखी गई हों*, क्योंकि अच्छी पोथियाँ पढ़ने और उस पोथीकी बात औरोंको समझानेका लोभ होता ही है। उसीसे दूसरे लोग जान सकते हैं कि यह भी बड़ा भारी पंडित है, इसने भी पोथियाँ पढ़ी हैं।

३. *उस बोलीके बोलनेवाले लोग दूसरोंपर अपनी धाक जमा लें*, जैसे *ब्रजभाषा* बोलनेवाले सन्तोंने समूचे भारतमें *ब्रजभाषाको*

बोलचाल और कथाकी बोलीमें चलाकर *भाषा* बना दिया।

४. पुरोहित लोग उस बोलीको बहुत चलाते हों जैसे रोमके पादरियोंने इतालवी बोलीको भाषा बना दिया।

भाषा और बोलीमें भेद—

इन लोगोंने भाषा और बोलीमें चार भेद बताए हैं—

१. बोलीका घेरा छोटा होता है, भाषाका बड़ा।

२. एक भाषाके घेरेमें बहुत-सी बोलियाँ आ सकती हैं पर एक बोलीके घेरेमें भाषा नहीं आती।

३. एक भाषाकी दो बोलियाँ बोलनेवाले आपसमें एक दूसरेको समझ लेते हैं पर एक *भाषा* जाननेवाला दूसरी *भाषाको* कठिनाईसे समझ पाता है।

४. कोई *बोली* बहुत बढ़-चढ़कर *भाषा* बन जाती है जैसे *ब्रज भाषा* कभी रही, पर *भाषा* बढ़कर *भाषा* ही रह जाती है, वह घटकर *बोली* नहीं बन सकती।

सबकी बोली [प्रामाणिक या स्टैंडर्ड भाषा]—

जब कई *बोलियाँ* बोलनेवाले मिलकर आपसकी लिखा-पढ़ी, चिट्ठी-पत्री, कथा-कीर्त्तनके लिये कोई एक बोली अपना लेते हैं तब वह *सबकी बोली [प्रामाणिक भाषा]* बन जाती है। इस *सबकी बोलीको* बनाने-सँवारनेमें पोथी लिखनेवालोंका बड़ा हाथ रहता है। ये लोग जैसी बानी गढ़ते चलते हैं वह लोगोंके मुँहमें पहुँचकर एक कानसे दूसरे कानमें जा-जाकर सधती चलती है।

सबकी बोली या भाषा—

कभी-कभी राज चलानेवाले भी अपने राजको कुछ चकों (प्रान्तों, प्रदेशों) में बाँट देते हैं और एक-एक चकके राजकाजके लिये किसी बोलीको अपना लेते हैं। बस उतने चकके लिये वही *सबकी बोली या भाषा* बन जाती है। ऐसी भाषाएँ अपने-अपने

घेरेमें बँधी रहती हैं और जैसे-जैसे ये घेरे छोटे-बड़े होते रहते हैं वैसे-वैसे उस *भाषा*का घेरा भी छोटा-बड़ा होता है।

कभी-कभी किसी *भाषा*के बोलनेवाले जब किसी राजाकी चढ़ाई, भूकम्प, भुखमरी, बाढ़, लूट-पाट, मार-काट-जैसी उथल-पुथलोंमें इधर-उधर भटककर जा पड़ते हैं तो उनकी *भाषा* भी बिखर जाती है जैसे पाकिस्तान बननेपर *सिन्धी भाषा* बिखर गई। जो सिन्धी जिस *भाषा*के घेरेमें पहुँचा उसने उस *भाषा*को अपनालिया।

जब कोई *भाषा* सबकी बोली बन जाती है तब वह अपने चारों ओरकी छोटी-मोटी बोलियोंको अपनेमें समा लेती है क्योंकि सबको यह लोभ होने लगता है कि हम भी दूसरोंसे अच्छे, पढ़े-लिखे, सुलझे हुए और सुघर समझे जायँ। इसलिये वे लोग अपनी घरकी बोली छोड़कर *भाषा*में कामकाज करने और बोलने-चालने लगते हैं। हाँ. इतना तो होता है कि ये नये मुँड़े हुए चेले *भाषा*पर अपनी बोलीका रंग चढ़ाए रहते हैं जैसे मेरठ-वाला '*पानी गिरा दो*' को कहेगा—'*पानी गेर दो*'। यह अपने-पनकी छाप लग ही जायगी।

भाषा या सबकी बोली बहुत बोल-चालमें आनेसे अपना पुरानापन बनाए रखती है और जितने ही बड़े घेरेमें वह बरती जाती है उतना ही उसका पुरानापन बना रहता है। अपनी *नागरी* बोलीको लीजिए तो इसकी अपनी धरती (मुज़फ्फ़रनगर, मेरठ) पर इसके बोलनेवाले कहेंगे—

'*ले उठ जा, घणाइ दिन चढ़ियाया*'

इसे माँजकर *हिन्दी* बोलने-वाले लोग कहेंगे—

'*उठो! बहुत दिन चढ़ आया है।*'

और पोथियाँ लिखनेवाले लिखेंगे—

शैयाका परित्याग कीजिए। सूर्य भगवान्‌का रथ आकाशमें बहुत ऊपरतक आरोहण कर चुका है।

तो आपने देखा कि बोल-चालमें घिसे हुए शब्दोंके बदले ज्योंके त्यों संस्कृतके शब्द डालनेका चलन लिखनेवालोंमें बढ़ रहा है।

जब कोई *भाषा*, लिखनेवालोंके हाथमें पड़कर अपनी बनावट और गढ़न ठीक कर लेती है तब उसमें बहुत हेरफेर नहीं होता और वह अपना पुरानापन बराबर बनाए रखती है। हाँ, इतनी बात होती रहती है कि जब-तब लिखने-बोलनेवाले अपने-अपने समयकी छाप भी डालते रहते हैं जैसे *जावैगा*, *जाएगा* और *जायेगा* के बदले अब *जायगा* चलने लगा।

कभी-कभी किसी *भाषाके* बोलनेवाले इतने चौकन्ने और सचेत रहे हैं कि उन्होंने अपनी *भाषाकी* गढ़न और बनावट ठीक रखनेके लिये ऐसे गुर बनाए या जुगत निकाली और उन्हें एक गलेसे दूसरे गलेमें ऐसा ढाला कि सैकड़ों सदियोंमें भी वह आज-तक ज्योंकी त्यों बिना बिगड़े बनी चली आई है जैसे वेदकी संस्कृत।

पर *बोलचालकी* और *लिखी हुई भाषामें* भी बड़ा भेद पड़ जाता है। *बाणभट्टने* जिस *संस्कृतमें कादम्बरी* लिखी है वह बोलचालकी संस्कृत नहीं होगी। उसका साँचा ढूँढ़ना हो तो पातञ्जल महाभाष्य पढ़िए। जयशंकर प्रसादजीने अपने नाटकों-में, काव्योंमें, कहानियोंमें जो *भाषा* लिखी है उस *भाषामें* वे दो मिनट भी नहीं बोल सकते थे। हम पीछे समझा भी आए हैं कि बोलचालकी भाषा तो सुननेवालेकी समझके साथ-साथ ढलती है।

तो *पोथियोंकी भाषा* और *बोलचालकी भाषामें* बड़ा अलगाव होता है। पोथियोंकी भाषा बहुत उलझी होतीहै, बोलचालकी बहुत

सुलझी। इसीलिये *पोथियोंकी भाषा* एक ठिकानेपर पहुँचकर रुक जाती है पर *बोलचालकी भाषा* बराबर बढ़ती रहती है यहाँतक कि वह एक दिन इतनी बढ़ जाती है कि वह *पोथियोंकी भाषाको* धकेलकर उसकी गद्दीपर अपने आप जा विराजती है। कोई वह भी दिन था कि *ब्रजभाषावाले, मुज़फ़्फ़रनगर-मेरठकी नागरीको खड़ी बोली* या *जट्ट-बोली* कहकर उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे पर आज वह दिन आ गया कि ब्रजभाषाकी गद्दीपर वही *नागरी* सबकी मुँहचढ़ी बनकर आ बैठी है।

विशिष्ट भाषा—

हम लोगोंमें पढ़े-लिखों, गाँववालों और हाट-बाटके लोगोंकी बोलियोंसे अलग उन लोगोंकी *बोली* भी बन जाती हैं जो किसी एक धन्धेमें लगे रहते हैं जैसे—जनेऊ-ब्याह करानेवाले पंडितोंकी, वकीलोंकी, पंडोंकी, ब्योपारियोंकी या रेलवालोंकी बोली। इन बोलियोंकी गढ़न तो किसी एक बोलीके साँचेपर होती है पर उनमें शब्द अपने-अपने ढंगके होते हैं—

(अ) *यज्ञोपवीत संस्कारके लिये संस्कार-पद्धतिकी पोथी, पंच-पल्लव, धूप दीप नैवेद्य, कलश, रोरी नारा, दक्षिणा, ऋतुफल, पंचगव्य, पलाशदंड. मृगछाला, आदिका प्रबन्ध कर लेना।*

[पंडितोंकी भाषा]

(आ) *मुहर्रिरसे अर्ज़ीदावा लिखवाकर उसपर स्टाम्प लगवा लीजिए और अपने पैरोकारसे कह दीजिए कि गवाहानको तलब करानेके लिये सम्मन निकलवाए क्योंकि फ़रीक़ अव्वलने जो जुर्म लगाए हैं उनकी सफ़ाईके लिये पुख़्ता बयान होने चाहिएँ।*

[कचहरीवालों या वकीलोंकी बोली]

(इ) *माझी ठिला है, हत्थूका डौल है।* (यजमान फँसा है पाँच रुपयेकी आशा है।)

[पंडोंकी बोली]

(ई) *पाँचपर सौदा हो गया है। अधन्नी बट्टेपर माल निकाल दिया। वाड़ीका चलान आनेपर दुअन्नी रुपयेकी बचत है, उसमें जो मिल जाय। कच्ची बही, रोकड़ बही और खाता मुनीमजीसे मिलवा लो, जो दो-चार पाई न मिले उसे बट्टे खाते डाल दो।*

[ब्योपारियोंकी बोली]

(उ) *टू डाउनका लैन क्लीअर हो गया है। गोला तैयार है। पैंटमैनसे कहो सिंगल दे दे। ब्रेकके चारों अदद अलग करो।*

[रेलवालोंकी बोली]

इन सब वाक्योंकी गढ़न तो एक *नागरी* बोलीके साँचेकी है पर धन्धोंके अलग-अलग होनेसे शब्दोंकी भरत अलग-अलग है। हममेंसे ही जो लोग बहुत अंग्रेजी पढ़-लिख गए हैं वे अपने अंग्रेजी पढ़े-लिखे साथियोंसे कहते हैं—

'सन्डेके एअर-मेलसे जो मैंने अपने फ़ोरेन् फ्रेन्ड्ससे लैटर्स रिसीव किए हैं उनके कन्टेन्टसको केअरफ़ुली स्टडी करके मैंने यह कन्क्लयूज़न ड्रौ किया है कि काश्मीर-प्रौब्लम अब इन्टरनैशनल लैविल पर ही सैटिल हो सकेगा।

इस वाक्यमें *की, से, जो, मैंने, अपने, किए हैं, उनके, को, करके, यह, किया है, कि, अब, पर ही, हो सकेगा* को छोड़कर *नागरीपन* कुछ भी नहीं है फिर भी शब्दोंका मेल बनानेवाले और क्रिया समझानेवाले शब्दोंने इसकी गढ़न नागरीकी ही बनाए रक्खी है। इसे यों समझिए कि जैसे कोई भारतका रहनेवाला हैट, कोट, टाई, पैंट, बूट पहननेपर भी

भारतका ही कहलाता है वैसे ही कुछ नामों, कामों या नाम और कामका गुण समझानेवालों शब्दोंसे किसी बोलीकी गढ़न नहीं बदल जाती, वह तो उस बोलीके शब्दों और वाक्योंके बीच मेल दिखानेवाले शब्दों और क्रियाकी बनावटसे ही जानी-मानी जाती है। अलग-अलग काम-धन्धोंमें काम आनेवाले शब्दोंकी भरतसे उसमें एक अपना निरालापन (विशिष्टत्व) भले ही जान पड़ता हो पर उससे बोलीके ढाँचेमें कोई हेर-फेर नहीं होता।

विकृत बोली [बिगाड़ी हुई]—

इन अलग-अलग काम-काज करनेवाले लोगोंमें ही जान-बूझकर हँसी-ठट्ठेमें कुछ शब्दोंको तोड़-मरोड़कर चलानेकी बान पड़ जाती है जैसे—*खटोलेको खटोलना, नाकको नकिया, बड़ी पगड़ीको पग्गड़, पैरोंको चरनदास कहने लगते हैं।*

रहस्यात्मक प्रभाव [भेदभरी बनावट]—

अपनेसे बड़ोंका आदर दिखानेके लिये और कभी-कभी अपने बड़प्पन या छोटेपनको अलग रखनेके लिये भी बोलीमें कुछ भेद पड़ जाता है जैसे *करीब* नामके जंगली लोगोंमें पुरुषोंकी बोली अलग और स्त्रियोंकी अलग होती है; जावाके बड़े घरोंके लोग *क्रोको* बोलते हैं और छोटे लोग *क्रोमो*।

§ ५३—**मूलभाषा-बोली-राष्ट्रादर्श-विशिष्टा-कृत्रिमेति केचित्।** [**कुछ लोगोंने मूलभाषा, बोली राष्ट्रभाषा, आदर्श-भाषा, विशिष्ट भाषा और कृत्रिम भाषाके नामसे बहुतसे रूप गिनाए हैं।**]

मूलभाषा—

कुछ लोग यह मानते हैं कि एक *मूलभाषा* या सबसे पहली बोली रही। वहाँके लोग जब खाने-पीनेकी कमीसे और बहुत बढ़

जानेसे ऊब चले तो वे इधर-उधर फैलने लगे और जहाँ-जहाँ वे पहुँचे वहाँके पानी-बयारने उनकी बोलियोंमें हेर-फेर कर दिया।

बोली (डायलेक्ट या उपभाषा)—

ये मानते हैं कि *बोली* या *उपभाषा* उस छोटे घेरेकी बोलीको कहा जाता है जिसके बोलनेवालोंके बोलनेका ढंग एक-सा हो और जिसमें शब्दों और वाक्योंकी बनावट, काममें आनेवाले शब्दोंका भंडार और शब्दोंके अर्थोंमें कोई अलगाव न दिखाई देता हो।

राष्ट्रभाषा—

जब कोई *बोली* बढ़ते-बढ़ते राजकाजके काममें भी आने लगती है, यहाँतक कि एक देशके उन घेरों (प्रदेशों) में भी राज-काजमें काम आने लगती है जहाँ दूसरी बोलियाँ बोली जाती हैं, तब वह राष्ट्रभाषा बन जाती है जैसे—हिन्दी आज *राष्ट्रभाषा* हो गई।

आदर्श भाषा—

अलग-अलग बोलियाँ बोलनेवाले लोग आपसकी लिखा-पढ़ी, चिट्ठी-पत्री, काम-काजके लिये जो बोली अपना लेते हैं वह *आदर्श भाषा* हो जाती है जैसे—*राजस्थानी*, *पंजाबी*, *ब्रज*, *अवधी*, *मगही*, *भोजपुरी* बोलियाँ बोलनेवालोंने *नागरीको आदर्श भाषा* मान लिया है।

विशिष्ट भाषा—

अलग-अलग काम-धन्धे करनेवालोंकी एक अपनी बोली अलग बन जाती है जिसे *विशिष्ट भाषा* कहते हैं जैसे—कचहरी वालोंकी, ब्यौपारियोंकी, पंडितोंकी।

कृत्रिम भाषा—(१) गुप्तभाषा (चोर-बोली)—

चोर, डाकू, या राजकाजी लोग अपनी बातको सबकी समझसे दूर रखनेके लिये या खेलवाड़में लोग अपनी-अपनी एक अलग

बनावटी बोली बना लेते हैं वह *कृत्रिम* या *बनावटी* बोली कहलाती है, जैसे काशीके पंडोंकी बोली—

खा बरी कऽ बरँगा बिलौले आवऽ ।

[एक अधेलेका पान लगवाते आओ ।]

(२) *सामान्या (सबकी भाषा)*—

कभी-कभी सबके काममें आनेवाली एक पूरीकी पूरी बनावटी बोली बना ली जाती है, जैसे डाक्टर *ज़मेनाफ़की एस्पेरेंटो* या *श्लेयरकी वौलाप्यूक* ।

§ ५४—भ्रमात्मकोऽयं विभेदः । [ये सब भेद अलल-टप्पू हैं ।]

जिन लोगोंने बोलीके इतने साँचे समझाए हैं उन्होंने, जान पड़ता है, कुछ हड़बड़ी करके अटकलसे काम लिया है. नहीं तो वे किसी बोलीके साँचोंकी गिनती कराते हुए न तो *भाषा, विभाषा* और *बोली* नामके भेद बताते, न *आदर्श भाषा,कृत्रिम भाषा, विशिष्ट-भाषा* और *राष्ट्रभाषा*को इस झमेलेमें घसीटते ।

पहली बात तो समझनेकी यह है कि आप *भाषा*के ही तो भेद बताने चले हैं और कहते हैं कि उसका पहला भेद है भाषा, दूसरा है विभाषा और तीसरा है बोली । यह तो ऐसा ही हुआ कि किसीने पूछा—दाड़िम कितने ढंगके होते हैं, तो दूसरेने झट कह दिया—एक तो दाड़िम, दूसरा रक्तबीज, तीसरा अनार । उसे कहना चाहिए था—एक बेदाना, दूसरा कन्दहारी, तीसरा देशी । हम पहले ही समझा आए हैं कि *बोली* तो *भाषा*का उल्था या देसी नाम है. यह भेद कैसे हो सकता है ।

रही *राष्ट्रभाषा*की बात, वह भी कोई भेद नहीं है । वह तो बोलीके साँचेमेंसे ही एक ऐसा साँचा है जिसे राजकाजके लिये

राजभरके लोग अपना लेते हैं। हाँ, जब यह बताना पड़ जाय कि एक *बोली* कितने ढंगसे काम आती है, तब आप भले कह लीजिए कि वह *राष्ट्रभाषा* बनकर राजकाजके काम भी आ सकती है।

तब किसी बोलीके साँचे कैसे पहचाने जायँ?

§ ५५—अत्यार्यजातिजात्यन्तरीभाषाचतुर्धेति भरतः ॥ [भरतने अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा और जात्यन्तरी भाषा : ये चार रूप बताए हैं।]

*भरत मुनि*ने अपने *नाट्यशास्त्र*के अट्ठारहवें अध्यायमें भाषाके चार रूप बताए हैं—

१—*अतिभाषा* : देवताओंकी भाषा।

२—*आर्यभाषा* : पढ़े-लिखे लोगोंकी (राजाओंकी) वह बोली जो चिट्ठी-पत्री और राजकाजमें काम आती हो, जो मँजी हुई और मुहावरेवाली हो।

३—*जातिभाषा* : वह बोली जो एक जातिके, एक घेरे (प्रदेश) के या एक सा काम-धन्धा करनेवाले आपसमें बोलते हों।

इस जातिभाषाके भी दो साँचे होते हैं—

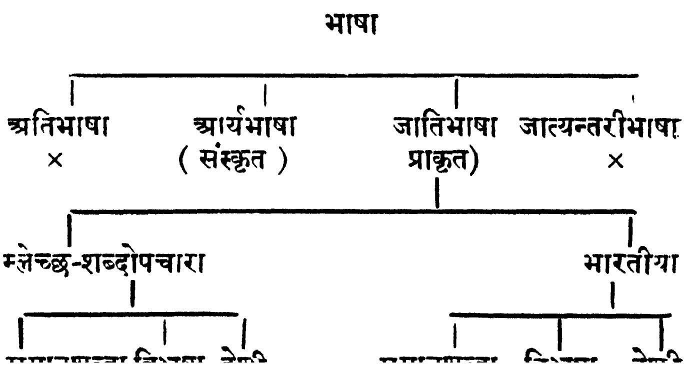
(क) *म्लेच्छशब्दोपचारी* : वह बोलचालकी बोली, जिसमें भारतसे बाहरकी म्लेच्छ जातियोंके शब्द भी मिले हुए हों।

(ख) *भारतीय* : वे सब भारतके भीतर अलग-अलग घेरों (प्रदेशों) में बोली जानेवाली बोलियाँ जिनमें भारतसे बाहरकी बोलियोंके शब्दोंका मेल न हो।

इस ब्यौरेमें भरतने नायक, ब्राह्मण, संन्यासी. मुनि, राजवेश्या और रानीसे तो *संस्कृत*में बुलवानेको कहा है और सबसे *प्राकृत*में। इस *प्राकृत*के उन्होंने तीन साँचे बताए—१-*समान*

शब्द (*तत्सम*) [या ज्योंके त्यो संस्कृतसे लिए हुए *कमला*. *अमल*, *रेणु*. *सुरंग*, *लोल*, *सलिल* जैसे शब्दोंसे भरी], २—*विभ्रष्ट* [जो ठीक न बोले जानेसे बिगड़े हुए *गिम्हो* (*ग्रीष्म : गर्मी*), *कण्हो* (*कृष्ण*) और *पल्लंक* (*पर्यङ्क : पल्यङ्क : पलँग*) जैसे शब्दोंसे भरी हुई] और ३—*देशी* [ठेठ देशी शब्दोंवाली जैसे *'रोटी खा लीजिए'* के लिये *'टिक्कड़ भान ले'*]।

इसे हम काठा खींचकर यों समझा सकते हैं—



इसी सिलसिलेमें उन्होंने अलग-अलग घेरों (प्रदेशों) में बोली जानेवाली सात बोलियोंके नाम गिनाकर उन्हें *भाषा* कहा है। वे हैं-*मागधी*. *अवन्तिजा*, *प्राच्या*, *शूरसेनी*. *अर्धमागधी*, *वाल्हीका* (*बलखकी बोली*) और *दाक्षिणात्या*।[१] निरे जंगलियोंकी बोली को उन्होंने *विभाषा* (*बिगड़ी हुई*. *पराई बोली*)[२] बताया है। इससे

---

१. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शूरसेन्यर्धमागधी।
वाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्त्तिताः॥

२. हीनां वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृता॥

यह समझनेमें तनिक भी कोर-कसर नहीं रह जाती कि जिन्हें आज बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोग *भाषा* कह रहे हैं उन्हें *भरतने आर्यभाषा* बताता है; जिन्हें ये लोग *विभाषा*, *उपभाषा* या *बोली* (*डायलेक्ट*) कहते हैं उन्हें *भरतने भाषा* कहकर गिनाया है और जंगली बोलियोंको *विभाषा* बताया है। भरतने जो *भाषाके* नामसे बोलियाँ गिनाई हैं वे सब *आर्यभाषासे* अलग समझानेके लिये *जातिभाषा* कहकर बता दी गई हैं।

§ ५६ **पौर जानपद-भेदेन भाषा द्विधा। [बोलीके दो साँचे : बस्तीके लोगोंकी और गाँवोंके बोलचालकी।]**

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है उससे यह समझनेमें कोई कठिनाई न होगी कि बहुतसे लोगोंने *बोलीके* साँचोंके जो भेद गिनाएँ हैं, वे न तो ठीक ही हैं और न तो उनके नाम ही ठीक हैं। अपनी बात समझानेसे पहले लोगोंके मनसे हम यह भूत भगा देना चाहते हैं कि *नागरी* या *खड़ी बोली हिन्दी* तो *भाषा* है और *ब्रज अवधी. भोजपुरी*, ये सब उसकी *बोलियाँ* हैं। कभी वह भी दिन था कि लोग चिट्ठी-पत्री और कथा-पूजामें ब्रजभाषा काममें लाते थे। अब उसके बदले लोग *नागरी* [जिसे भूलसे लोग *खड़ी बोली* कहते हैं] काममें लाने लगे। सच पूछिए तो जैसे ब्रज मंडलकी बोली *ब्रज* है वैसे ही ब्रज-मंडलके उत्तरमें हरिद्वार-से मेरठतक गंगा-यमुनाके बीचकी पट्टीमें और गंगाजीसे पूरबकी ओरकी रुहेलखंडवाली पट्टीमें बोली जानेवाली *बोली* ही *नागरी* बोली है। लिखने-पढ़नेके काममें आनेसे उसके अपनेपनमें ऐसी कोई नई बात नहीं आ गई कि वह *बड़ी बोली* बन गई और उसके आस-पासकी दूसरी बोलियाँ *छोटी बोलियाँ* रह गईं। जब हम बोलियोंके साँचे-ढाँचेकी परख करें और इसलिये करें कि उससे

हम किसी बोलीके सभी साँचोंका ठीक-ठीक ब्यौरा समझ सके तो हमें दूसरे ही ढंगसे सोचना-विचारना होगा।

अब आप संसारके किसी भी देशमें चले जाइए और वहाँ की किसी एक बोलीके घेरेको सँभालकर परखिए तो आपको झट उस *बोली*के दो-दो साँचे दिखाई पड़ने लगेंगे—१. एक तो उन भले लोगोंकी बोलीका साँचा जो बड़ी बस्तियोंमें रहते हैं और २. दूसरी उन लोगोंकी बोलीका साँचा जो अपढ़ हैं. गाँवोंमें रहते हैं और कभी-कभी बड़ी बस्तियोंमें भी लेन-देन, कीन-बेंचके लिये आते-जाते रहते हैं। बड़ी बस्तियोंमें रहनेवाले भले लोगोंकी *बोली*का साँचा बहुतसे काम-काजमें बरत जानेसे अच्छा मँजा हुआ और बोलचालके बहुतसे बनावटी लटकोंसे सजा और भरा हुआ रहता है। गाँववालोंकी बोली कुछ बेढंगी, ऊबड़-खाबड़, एक रंगकी और भोली होती है। उसमें बनावट-सजावटका नाम नहीं होता। इस ढगसे देखा जाय तो संसारकी किसी भी बोलीके दो साँचे होते हैं—

१. एक भले लोगोंकी या बस्तीमें रहनेवालोंकी बोली जिसे हम *शिष्ट-भाषा* या *पौर-भाषा* कह सकते हैं और जो कभी देश भरकी (जैसे *हिन्दी*). कभी महाद्वीपकी (जैसे *फ्रान्सीसी*) और कभी संसारके बहुतसे देशोंकी (जैसे *अंग्रेज़ी*) बोली बन जाती है पर उसके *राष्ट्रभाषा*. *महाद्वीप-भाषा* या *विश्व-भाषा* बननेसे उसकी गढ़न, बनावट, रूप या साँचेमें भेद नहीं आ जाता है। यह तो उसके काममें लानेवालोंके घेरेका ब्यौरा भर है। यही बोली जब लिखने-पढ़नेके काममें आकर इतनी मँज जाती है कि राजाकी ओरसे या देश भरके लोगोंकी ओरसे उसका एक साँचा लिखने-पढ़नेके लिये अपनालिया जाता है तब वही *टकसाली बोली*, *सबकी बोली* (*स्टैण्डर्ड भाषा*)

कहलाने लगती है। वही बोली जब अलग-अलग ढंगके काम करनेवालोंके काममें आनेवाले शब्दोंसे भर जाती है तब भी उसका साँचा वही रहता है, भले ही उसमें और बोलियोंके शब्दोंकी मिलावट हो जाय। पर इससे हम उसे बोलीका कोई अलग ढंग या विशिष्ट भाषा कहकर अलगा नहीं सकते।

२. दूसरी हुई गाँववालोंकी, अपढ़ोंकी बोली या *जानपद भाषा*।

तो बोलीके दो ही साँचे हुए—एक भले लोगोंकी *शिष्टभाषा* या *पौरभाषा* और दूसरी गाँववालोंकी या अपढ़ लोगोंकी *लोकभाषा* या *जानपद भाषा* ।

§ ५७—**शिष्टाऽपि लेखवाक्प्रयोगाद्द्विधा । [भलोंकी बोलीके भी दो भेद : लिखनेकी और बोलनेकी ।]**

भले लोगोंकी बोली भी जब लिखने-पढ़नेके काम आने लगती है तब उसके दो साँचे हो जाते हैं—एक तो *लिखनेका* और दूसरा *बोलनेका*। लिखनेके काममें आनेवाली बोली कुछ बनावटी होती है और उसमें लिखनेवाला अपने ढंगसे दूसरोंपर अपनी पंडिताई दिखाने और रंग जमानेके फेरमें रहता है। जो लोग पोथियाँ लिखते हैं वे तो और भी ऐसा सजा-सँवारकर लिखते हैं जिसमें कभी तो वे ठेठ बोली, कभी मँजी हुई बोली, कभी ऊँची बोल-चालके शब्दोंसे भरी हुई और कभी मिली-जुली बोली काममें लाते हैं। एक वाक्य लीजिए—

मेरी पुस्तकें दीमकोंने खा डाली हैं। (*ठेठ बोली*)

२—मेरी पोथियाँ दीमक चाट गई हैं। (*मँजी हुई या मुहावरेदार*)।

३—कीटोंने मेरे ग्रन्थ नष्ट कर डाले हैं। (*ऊँचे शब्दोंसे लदी हुई*)।

४—मेरी किताबें दीमकोंने डेस्ट्राय कर दीं हैं। (*मिली-जुली या संकर भाषा*)।

इनमेंसे चौथी या मिली-जुली बोली वे लोग लिखते हैं जिन्हें अपनी बोली ठीक-ठीक आती नहीं है। ऐसे लिखनेवाले लोग अच्छे नहीं समझे जाते।

वाक्योंकी बनावट और सजावटमें अपनापन—

बहुतसे ऐसे भी लोग हैं जो पोथी लिखते हुए अपने वाक्योंकी बनावट-सजावट और कहनेका ढंग कुछ अपना रखते हैं।

बनावट—

वाक्योंकी बनावट दो ढंगकी होती है—

१. एक तो वह, जिसमें एक क्रियावाले या सरल वाक्य होते हैं जैसे—

मैं गंगाजी गया था। वहाँ मैंने बहुतसे लोगोंको नहाते देखा। वे सब तैरते, कूदते और डुबकियाँ लेते हुए आनन्द ले रहे थे।

२. दूसरे ढंगके वाक्य वे होते हैं जिनमें कई वाक्योंको मिलाकर एक वाक्य बनाया जाता है जैसे—

मैं गंगाजी गया था, जहाँ बहुतसे ऐसे लोगोंको मैंने नहाते देखा जो तैरते, कूदते और डुबकियाँ लेते हुए आनन्द ले रहे थे।

सजावट—

वाक्योंकी सजावट भी चार ढंगोंसे की जाती है—

१. किसीमें अलंकारोंकी छटा होती है [*अलंकरण-शैली*];

२. किसीमें कहनेके ढंगमें अनूठापन होता है (*लाक्षणिक शैली*);

३ किसीमें अपनी बात दूसरों या बड़े लोगोंकी बातोंके सहारे समझाते चलते हैं [*समर्थनात्मक शैली*] और

४. किसीमें किसी दूसरेपर बात ढालकर कहनेकी सनक होती है (*प्रतीकात्मक शैली*)।

नीचे हम सबके साँचे उन्हीं ढंगोंमें दे रहे हैं जिससे समझनेमें कठिनाई न हो—

१. *अलंकरण शैली*--

अलंकरण-शैली वह है जिसमें पद-पदपर सुन्दर, शोभन शब्दावलीसे भरे अलंकार वैसे ही सजे होते हैं जैसे रेशमकी सतरंगी चादरपर गंगाजमुनी तारोंसे बेलबूटे काढ़ दिए गए हों। क्योंकि शैली वह अभिव्यक्ति-गंगा है जो अपने साथ न जाने कितनी भाव-धाराओंके विचार-जलको अपने अंकमें समेटकर अपनी भाव-धारा अविच्छिन्न बनाती हुई उद्देश्य-सिन्धु तक पहुँच जाती है। शैली वह अलौकिक भल्लिका है जो बिना फलके श्रोताको घायल कर दे, वह मधुबाला है जो बिना मधु पिलाए उन्मत्त बना दे, वह सुधाधर है जिसे कानसे पीकर मनुष्य अमरत्वको क्षुद्र समझने लगे। कलापूर्ण-शैली द्राक्षाके समान मधुर, हिमशिखरकी भाँति समुन्नत, सिन्धुतलके समान गंभीर, द्वितीयाके चन्द्रमाके समान निष्कलंक और माताके समान पवित्र होती है। सुन्दर अलंकृत शैली वह चन्द्र है जिसे राहुकी छाया स्पर्श नहीं कर सकती। इस अलंकृत कला-शैलीमें जो पारंगत हो जाता है वह नन्दन-काननके झूलोंपर पेंग मारता है, अप्सराओंके हाथकी गुँथी मालासे पुलकित होता है और सारा संसार उसकी पूजा करता है।

२. *लाक्षणिक शैली*--

लाक्षणिक शैलीका बल पाकर भाषा सरस, पुष्ट और समृद्ध होती है। वह वक्ताकी जिह्वापर चढ़कर जब लास्य करने लगती है तब उसकी भावमयी मुद्राओंकी गतिपर कभी तो श्रोताओंके नेत्र झरने बन उठते हैं, कभी हृदयकी कली खिलकर गुदगुदी उत्पन्न करने लगती है, कभी दन्तावलीकी चन्द्रिका ओठके कपाट खोल-कर चाँदनी बिखेर देती है, कभी माथेकी नसें तनकर भौंहोंका

धनुष चढ़ा देती हैं और कभी आँखें ऊपर चढ़ाकर अद्भुत रसका स्थायी भाव मूर्त्तिमान कर देती हैं।

३. *समर्थनात्मक शैली*--

समर्थन-प्रधान शैलीमें लेखक अपनी प्रत्येक बातका दूसरोंसे समर्थन कराता चलता है क्योंकि तुलसीदासजीने भरतसे कहलाया है--

'करब साधुमत लोकमत. नृप-नय निगम निचोरि।'

साधुमत और लोकमतका तो सदा सम्मान होता ही है। अँगरेजीमें कहावत है-शैली ही व्यक्ति है। शैलीमें मनुष्य अपना, अपने हृदयका पूरा परिचय दे देता है। अपना परिचय देनेके लिये, अपने मनकी बात स्पष्ट करनेके लिये वह सोच-समझकर मुँह खोलता है क्योंकि अरबकी लोकोक्ति है—'अपनी जीभ बाँधकर रक्खो, कहीं वह सिर न कटवा ले।' यही बात कबीरने भी दूसरे ढंगसे कही है—

जिभ्या मेरी बावरी, कहिंगी सरग पतार।,
आपु तो कहि भीतर गई. जूती खात कपार।

कहनेका तात्पर्य यह है कि सब जिस बातको ठीक समझें, वही बात ठीक है क्योंकि पंचोंकी वाणीमें परमेश्वरकी वाणी होती है। भगवान् श्रीकृष्णने भी भगवद्गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।

[श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा करते और कहते हैं वैसा ही दूसरे भी कहने-करने लगते हैं।] यही बात नीचे लिखे शैरमें भी मिलती है—

अवाज़े खल्कको नक्कारए खुदा समझो।

[जनताकी वाणीको परमेश्वरका डंका समझो।] अर्थ यह है कि संसार जो बात कहे वही सबको माननी पड़ती है। बड़ोंकी ओट लेकर आप जो बात कहेंगे वह सुनी भी जायगी. मानी भी जायगी।

४. प्रतीकात्मक शैली—

हे कवि ! तुम सरस्वतीके हंस हो। नीचेसे ऊपरतक श्वेततासे स्नात, अपने दोनों दुग्धधवल पक्ष फैलाकर तुम सरस्वतीको असूर्यम्पश्य लोकोंमें भी घुमा लाते हो किन्तु उसकी श्वेतता और गौरतामें कहीं भी कालिमा छू नहीं पाती। सबसे विचित्र बात तो यह है कि न जाने कितनी बार तुम्हारे आगे पानी मिलाकर दूध रख दिया जाता है किन्तु न जाने तुममें क्या शक्ति है कि तुम दूधका दूध और पानीका पानी कर देते हो।

लिखनेवालेकी बहक—

कभी-कभी लिखनेवाला ऐसे भी ढंगसे लिखता है कि आप झट पहचान जायँगे कि यह लिखनेवाला हँसोड़ होगा, चिड़-चिड़ा होगा, सोचने-विचारनेवाला होगा या बहुत तीखा होगा। ऐसे लिखनेवाले यों तो बहुत ढगके हो सकते हैं पर उनमेंसे पाँच ढंग बहुत चलते हैं—

१ *विनोदात्मक शैली—*

विनोदात्मक शैलीमें लिखनेवाले फागके दिन जन्म लेते हैं और बात-बातमें ऐसे कौशलसे गुदगुदाते हैं कि अच्छे-अच्छे मुहर्रमी खिल-खिलाकर बतीसी निकाल देते हैं। रेलके डब्बेमें सही-साँझ मुँह बाकर सोनेवाले साथी यात्रीकी घर्राती हुई नाकमें कागजकी बत्ती बनाकर डाल दीजिए और फिर वह जो शीर्षासन करे उसमें चमगीदड़वाले लटकौवलका आनन्द आपको न आवे तो मैं मूँछें मुड़वा दूँ और कलम घिसनेसे कान पकड़ लूँ। पर यदि मैं इस विनोदात्मक शैलीमें लिखनेकी सौगन्ध ले लूँ तो दोनों गालोंमें पानकी गिलौरी दबा रखनेवाले घसीटेमलका कुर्त्ता पीकसे कैसे रँगा जायगा और लफटंट साहब हँसीमें लोटपोट होकर अपना खोड़ा मुँह खोलकर उसमें दिल्ली दरवाजा कैसे दिखलावेंगे।

२. *व्यंग्यात्मक शैली—*

[व्यङ्गयात्मक शैलीमें आपके व्यंग्यका कोई लक्ष्य होना चाहिए। मान लीजिए कवि 'घंटाजी' ही आपके लक्ष्य हैं।]

रात जो कवि-सम्मेलन हुआ उसमें घंटा बड़ा टनटनाया, बड़ा गूँजा, बड़ा घहराया पर सुननेवालोंको केवल टनटनाहट ही हाथ लगी। उसकी घनघनाहट क्यों हो रही थी, क्यों वह इतनी देरतक टनटनाता रहा और लोगोंके ताली पीटनेपर भी क्यों घहराता रहा यह समझमें न आया। पर भाई वाह रे घंटे! तुम्हें तो सारनाथके विहारमें या विश्वनाथजीके मन्दिरमें लटकना चाहिए था कि जहाँ किसीने छेड़ा कि आप टनटनाए। भैया! कवि-सम्मेलनमें आप मत बजा कीजिए क्योंकि न तो घड़ीके घंटेका आपमें संयम है, न स्कूलके घंटेकी आपमें अवधि, न लन्दनकी बिगबेनके घंटेकी मधुरता। इसलिये आप अपनी घनघन-टनटन बन्द रखिए। आपकी घनघनाहट सहन करनेके लिये कानमें गैंडेकी खालके परदे होने चाहिएँ और ब्रह्माने भूलसे आपको बनाते समय आपके श्रोताओंके कानपर गैंडेकी खालके परदे नहीं बाँधे।

३. *दार्शनिक शैली—*

दार्शनिक शैलीमें दर्शनकी गंभीरता और सूत्रोंकी संक्षेप-वृत्ति होती है। दार्शनिक शैलीमें गंभीर विचारोंकी शृंखला तनकर बँधी रहती है जिसमें चिन्तन और मनन तथा बौद्धिक ऊहापोहके लिये आवश्यक अवसर रहता है। शैलीका तात्त्विक विवेचन मानव-मस्तिष्ककी सूक्ष्मतम क्रियाओंका संश्लिष्ट परिणाम है। इस परिणामकी प्राप्ति केवल बौद्धिक विश्लेषणसे नहीं वरन् आध्यात्मिक पर्यवेक्षणसे ही संभव है क्योंकि भावोंकी जटिलताको अध्यात्मसे सुलझाना उतना कठिन नहीं है जितना तर्कसे।

४. *तर्कप्रधान शैली*--

तर्कप्रधान शैलीमें किसी भी तत्त्व, पदार्थ या विषयके दोनों पक्षोंका तर्कोंके बलपर परीक्षण किया जाता है। तर्कप्रधान-शैली जहाँ एक ओर सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयोंके लिये उचित और अनुकूल है वहाँ वह वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तथ्योंके लिये अत्यन्त असंगत है क्योंकि सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयोंके दोनों पक्ष इतने प्रबल होते हैं कि उनपर अनेक दृष्टियोंसे, अनेक अवसरों और परिस्थितियोंके अनुसार विचार किया जा सकता है। किन्तु दो और दो चार हो सकते हैं या नहीं, आग छूनेमें ठंडी लग सकती है या नहीं, सूर्य पश्चिममें उग सकता है या नहीं, अकबर हुमायूँका पुत्र था या नहीं ये ऐसे प्रश्न हैं जिनपर किसी प्रकारका तर्क नहीं हो सकता।

५. *आवेगात्मक शैली*--

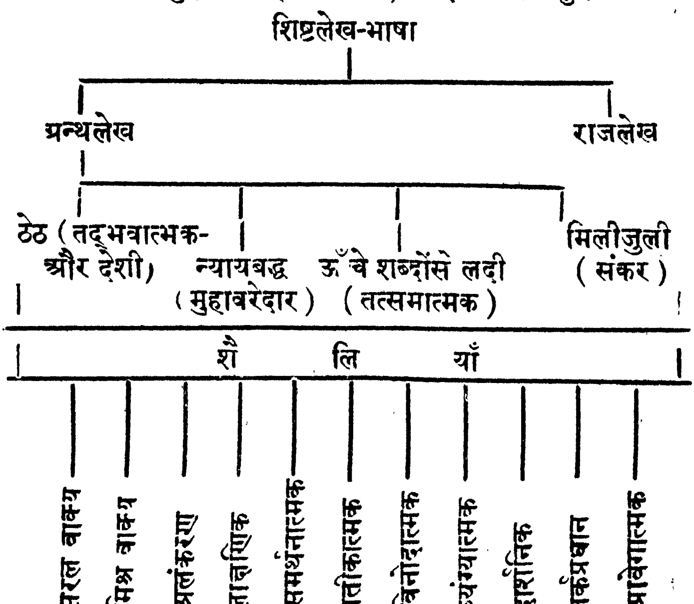
आवेगात्मक शैलीके संबंधमें आप मुझसे बात न कीजिए। यदि आपने साहित्य पढ़ा है? यदि आपने तुलसी, मीरा, सूर और रसखानकी काव्य-सरितामें अवगाहन करके उनका रस लिया है? यदि आप शब्द और अर्थके संबंधको ठीक-ठीक समझनेमें समर्थ हो सके हैं? तो आपको यह समझनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होगी कि आवेगात्मक शैलीका भी अपना अलग महत्त्व है। भाषणकार की भाषामें, विद्रोही राजनीतिककी ललकारमें, भावुक इतिहासकारकी लेखनीमें यदि आवेगात्मक शैलीका वास न हो तो वह क्षण भरमें विशाल ताजमहलको भी खँडहर कर देगा, व्यासकी विभूति महाभारतके पन्ने-पन्ने चीर-डालेगा और भारतीय वाङ्मयकी उदात्त निधिको भी प्रलय-सागर में डुबो देगा। क्या आपने सिसरोकी वाणी सुनी है? क्या आपने

एंटनीका भाषण पढ़ा है? क्या आपने विक्रमोर्वशीयके चतुर्थ अंकमें पुरूरवाका प्रलाप सुना है? यदि नहीं सुना, यदि नहीं पढ़ा, तो पुस्तकालयकी गुफामें बैठकर अध्ययन-तपस्या करके उन सब महानुभावोंसे सत्संपर्क प्राप्त कीजिए जिन्होंने अपनी भावमयी वाणीमें आवेग भरकर उसे उद्दीप्त, सजीव और सशक्त बना दिया है।

राज-काजकी बोली—

लिखनेकी एक बोली वह भी होती है जो राजकाजके काममें आती है। इसका एक बना-बनाया ढाँचा होता है जिसमें राज-काज चलानेका ढंग (*विधान*) और राजनियम बनाए जाते हैं।

तो लिखी हुई बोली (*लेखभाषा*) के इतने साँचे हुए—



इनमेंसे तत्सम और तद्भवका भेद सब बोलियोंमें नहीं होता। पर यह बात तो है ही कि कुछ लोग सबकी समझनेमें आनेवाले और बहुत चलते शब्द काममें लाते हैं और कुछ ऐसे हैं जो ढूँढ-ढूँढकर ऐसे शब्द लाकर उलझा देते हैं जो पुराने पड़ गए हैं. अब काममें नहीं आते हैं और कुछ इने-गिने लोगोंकी बोलियोंमें ही घिरे पड़े हुए हैं।

बोलचालकी बोली—

बोलनेकी भाषा भी दो ढंगोंकी होती है—

१. एक तो वह जो आपसमें लोग मिलने-जुलनेपर एक दूसरेसे कुछ बनकर बोलते हैं, और

२. दूसरी वह, जो घरेलू, अपने पनसे भरी, बात-चीतके काम आती है। इनमेंसे पहलीको *समाजिकी* और दूसरीको *व्यक्तिगत* कह सकते हैं।

लोगोंमें आपसमें काम आनेवाली या समाजमें बोली जानेवाली बोली भी *तीन* साँचोंमें पाई जाती हैं—१. एक तो वह जो हाटोंमें लोग बोलते हैं।

२. दूसरी वह, जो लोग आपसमें एक दूसरेकी आवभगतमें या सभा-बैठकोंमें काम लाते हैं, और

३. तीसरी वह. जो सुननेवाले (जिससे बात कही जाय) की समझको देखकर बोली जाती है।

हाटकी बोली—

इनमेंसे हाटकी बोली भी *तीन* ढंगकी होती है—

१. एक तो सधी-सधाई (रूढ़) जैसे—

दाम चढ़ गए हैं। गुड़ मन्दा है। देसावरका चलान नहीं है।

२. दूसरी हाटकी बोली मिलावट-भरी होती है जो गाहकको देखकर बोली जाती है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे गाहकसे कुछ अंग्रेज़ी

मिलेजुले शब्दोंसे भरी और गाँववालोंसे कुछ गँवारू बोली मिली हुई जैसे—

मार्केट डल है। [अँग्रेज़ी पढ़े लिखोंसे]

यो मिन्भा क्या भाव गेरा है? [मेरठके हाटकी बोली]

३. तीसरे साँचेकी हाटकी बोली वह आपसी समझकी (कूट या चोर-बोली) होती है जो ब्यौपारी ही आपसमें बोली समझ सकते हैं जैसे—

मंगल रहे।

इसका अर्थ बनारसके दलालोंकी भाषामें यह है कि गाहकको जो माल दिया जा रहा है इसमें दो आने रुपया दलाली हमारी रहेगी।

आवभगतकी बोली (औपचारिकी)—

आपसके मेल-जोलमें जो बोली अपना एक साँचा बना लेती है और जो आवभगत या बैठने-उठनेमें काम आती है वह बराबर काममें आते-आते सध जाती है। जैसे—

आपका शुभ नाम क्या है? आपने कैसे कष्ट किया? मेरी कुटिया कब पवित्र करेंगे? आपका दर्शन कबकरूँ? आपको बड़ा कष्ट हुआ। कष्टके लिये क्षमा। सभा या उत्सवमें पधारकर आपने मुझे कृतकृत्य किया है। धन्यवाद देते हुए मैं कृतज्ञताके भारसे दबा जाता हूँ।

सुननेवालेकी समझपर जो बोली ढलती है उसके साँचे हम ऊपर सबसे पहले ही बता आए हैं। जैसे मनुष्यसे बात करनी होती है उसीकी समझकी ढलनपर हमारी बोली अपने-आप ढल जाती है और ऐसा साँचा बना लेती है कि हमारी बात वह समझ जाय।

घरेलू बोली (व्यक्तिगत)—

घरेलू (*व्यक्तिगत*) बोली दो साँचोंमें मिलती है—एक चलती हुई (सामान्या) जो सुननेवालेकी समझपर ढलती चलती है और दूसरी वह, जो बहुत अपनेपन, प्यार या खीझमें लोग-काममें लाते हैं जैसे—

मैं मुँह थूर दूँगा।

अभी बिस्तर गोल कर रहा हूँ।

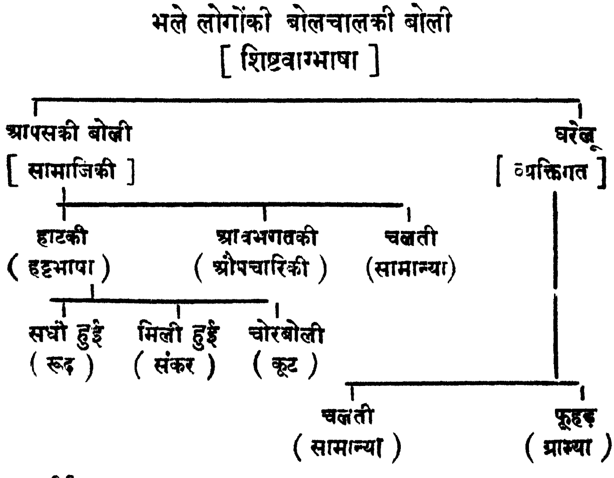
मारते-मारते काँच निकाल दूँगा।

अपने खसमसे जाके क्यों नहीं कहती।

आ जा मेरी कट्टो!

ये सब घरेलू और फूहड़ (*ग्राम्य*) ढंगसे बोलनेवाले लोग अपने वाक्योंमें साला-ससुरा जैसे गालीके शब्द भी काममें लाते हैं।

इसे हम यों समझा सकते हैं—



जंगली बोलियोंमें ये भेद नहीं होते—

ये सब भेद संसारकी बहुत आगे बढ़ी हुई बोलियोंमें ही होते हैं। जंगली बोलियाँ तो बहुत-सी ऐसी हैं जिनमें या तो एक ही साँचा होता है या कभी-कभी दो हो जाते हैं जैसे *करीब* नामकी जंगली लोगोंमें नर तो *करीब* बोली बोलते हैं और नारियाँ *अरोबक* बोली; [हो सकता है कि नारियाँ किसी दूसरे देश या जत्थेकी हों और वे अपनी बोली अभीतक चलाए जा रही हों।] या जैसे *जावा*में पढ़े-लिखे बड़े लोग *क्रोको* बोलते हैं और अनपढ़ छोटे लोग *कोमो*।

§ ५८—**लोकभाषाऽपि स्व-परप्रादेशिकभेदेन द्विधा। [सबकी बोली भी दो ढंगकी : एक अपने घेरेकी, दूसरी परदेसियोंकी।]**

सबकी बोली [लोकभाषा या जानपदभाषा]—

पढ़े-लिखों या भले लोगोंकी बोलीसे अलग वह सबकी बोली (जानपद भाषा) होती है जिसे किसी एक घेरेके अपढ़, गँवार या अनजान लोग काममें लाते हैं, या पढ़े-लिखे लोग भी गांव-वालोंसे बात करनेमें काम लाते हैं।

अपने घेरेकी (स्वप्रदेशिक)—

यह बोली एक तो ऐसी होती है कि उसे उस घेरेके रहनेवाले आपसकी बातचीत और काम-काजमें चलाते हैं। यह भी *तीन* *ढंगकी होती है—*

१—एक तो वह जो अपढ़ या गाँवके लोग आपसकी आवभगतके लिये काममें लाते हैं। *(औपचारिकी)*

२—दूसरी वह जो आपसकी बातचीतमें चलाते हैं। *सामान्या)*

३—तीसरी वह फूहड़ *बोली* जो लाड़में, खीझमें या बहुत अपनेपनमें बोली जाती है। (*ग्राम्या*)

इनमेंसे पहली *औपचारिकी*, दूसरी *सामान्या* और तीसरी *ग्राम्या* है। इन तीनोंमें भी कभी तो ठेठ गाँवकी बोली ही काममें आती है और कभी-कभी बड़ी बस्तियोंमें रहनेवालोंकी सुनी-सुनाई बोलीके सहारे बनाकर बोली जाती है। इनमेंसे पहलीको *देशी* और दूसरीको *विभ्रष्ट* कह सकते हैं। इन्हें हम नीचे लिखे वाक्योंमें यों समझा सकते हैं--

नागरी बोलनेवालोंके घेरे (मेरठ-मुज़फ्फ़रनगर) में इस ढंगसे बातचीत होती है—

१—आओजी तसरीप धरो। (*विभ्रष्ट औपचारिकी*)

२--आओजी बट्ठो। (*देशी औपचारिकी*)

१—ढेर कलेस ना करा करै। (*विभ्रष्ट सामान्या*)

२—ढेर राड़ ना मारा करै। (*देशी सामान्या*)

१--कौली भरकंड बोल्या सौहरेकू डुक दूँगा डुक। (*ग्राम्या*)

इस *ग्राम्या* या फूहड़ बोलीमें बहुत भद्दे ढंगसे गालियोंकी भरमार भी होती है।

दूसरे घेरेकी (परप्रादेशिक)—

यह सबकी बोली (जानपद भाषा) जब दूसरी बोली बोलनेवालोंके घेरेमें पहुँच जाती है तब वह कुछ दूसरा ही रंग-ढंग अपना लेती है जैसे—चीनमें कैंटनकी *पिडगिन अंग्रेज़ी* या *बम्बइया हिन्दी*। बोलीके इस साँचेको हम दूसरे घेरेका साँचा या *परप्रारदेशिक* कह सकते हैं। इसीको *भरत*ने अपने *नाट्यशास्त्र*में *म्लेच्छशब्दोपचारा* कहा है। बोलीका यह साँचा दो मेलका हो जाता है--एक तो वह जो उस बोलीके बोलनेवाले दूसरी बोली बोलनेवालोंसे मिलनेपर बना लेते हैं जैसे किसी बंगाली साथीसे मिलनेपर हम कहने लगते हैं—

क्यों माशाए किदर तुम जाता है ?

दूसरा मेल वह है जो अपनी बोली बोलनेवाले दूसरी बोली बोलते हुए काममें लाते हैं जैसे हमारी ऊपर कही हुई बातके उत्तरमें बंगाली साथी कहता है—'*हाम लौक्खीकुराड जाता है ।*'

इनमेंसे पहले वाक्यको हम *स्वदेशमुखी परप्रादेशिक* कह सकते हैं और दूसरेको *परदेशमुखी परप्रादेशिक* कह सकते हैं । ये दोनों भी तीन साँचोंमें पाई जाती हैं—१. एक तो दूसरी बोलीके शब्दोंसे मिली हुई (*संकर*); २. दूसरी, वाक्यको बिगाड़कर बोली हुई (*विकृत*); और ३. तीसरी, बुरे ढंगसे शब्दोंको तोड़-मरोड़कर बोली हुई (*दुरुच्चरित*)। इसे हम नीचे लिखे वाक्योंमें यों समझा सकते हैं—

१—*संकर स्वदेशमुखी*—

क—टिकट कटाकर बम्बई इस्प्रेससे चले जाओ।

ख—टिरेनसे भिड़कर एक बैलगाड़ी खलास (समाप्त) हो गई।

ग—खोलीके बाजूमें जो बाई रहती है उससे पगार लेनेका है। (घरके पास जो देवी रहती हैं उनसे वेतन लेना है।)

घ—तपास करो और बूम पाड़ो तो टपाल मिलेगा। (ढूँढ़ो और पुकारो तो पत्र मिलेगा)।

ङ— खूबसूरत भवनपर क़द्देआदम चित्र टंगा है।

२—*विकृत स्वदेशमुखी*—

क—कहो बाबू ! किदर जाने माँगता है ?

ख—तसरीप धरिए।

ग—हम उनसे बोला था।

३—*दुरुच्चरित स्वदेशमुखी*—

क—टेसन (स्टेशन)के लेटफारम (लेटफौर्म)पर जाय बइठो।

ख—गाड़ी कण्डम (त्याज्य) हो गई।

ग—अँधेरी कचहरी (ऑनरेरी कोर्ट) में जण्ट साहब (ज्वाइंट मजिस्ट्रेट) नहीं आते।

घ—यह बरदास (बर्दाश्त) से बाहर है।

इसी ढंगसे *परमुखी प्रादेशिक* बोली भी तीन ढंगकी होती है—

१—*संकर परमुखी*—

क—सूरदासकी कविता चाँलीग (अच्छी) है।

ख—इण्डियाका लोग बहुत फिलासफरका माफिक होता है।

ग—घड़ियाल (घड़ो) में कितना बजा है।

२—*विकृत परदेशमुखी*—

क—हम घोड़ाका मेम साहब माँगता है। (मुझे घोड़ी चाहिए)।

ख—तूम जाने शकता। (तुम जा सकते हो)।

ग—तुमकू कबी जानेका है। (तुम्हें कब जाना है)।

३—*दुरुच्चरित परदेशमुखी*—

क—जीस जाइगा हाम बाइटा है ऊसका मालिक हामको बोल दिया है जे माकानको काब्जामें करो। (जिस जगह मैं बैठा हूँ उसके मालिकने कह दिया है कि मकानपर क़ब्ज़ा कर लो)।

ख—संसकीरत (संस्कृत) भाशा बहोत मुस्किल है।

ग—हामारा डाँट डर्ड करने माँगटा है। (मेरा दाँत दर्द कर रहा है।)

ऊपर सबकी बोलचालके बोली (लोकभाषा) का जो ब्यौरा दिया गया है उसे हम इस ढंगसे समझा सकते हैं—

सबकी बोलचालकी बोली
[लोकभाषा]

- अपने घेरेमें बोली जानेवाली (स्वप्रादेशिक)
  - आवभगतकी (औपचारिकी)
    - बिगड़ी (विभ्रष्ट)
    - ठेठ (देशी)
  - चलती (सामान्या)
  - फूहड़ (ग्राम्या)
    - बिगड़ी (विभ्रष्ट)
    - ठेठ (देशी)
- दूसरे देशोंमें बोली जानेवाली (परप्रादेशिक)
  - स्वमुखी
    - मिली-जुली (संकर)
    - बिगड़ी हुई (विकृत)
    - ठीक न बोली हुई (दुरुच्चरित)
  - परमुखी
    - मिली-जुली (संकर)
    - बिगड़ी हुई (विकृत)
    - ठीक न बोली हुई (दुरुच्चरित)

§ ५६—परस्पर परिचिताऽन्योन्याभिज्ञा । [आस-पास-की बोलियाँ सहेली होती हैं, बहन नहीं ।]

इतनी बातें कह चुकनेपर कुछ लोग यह पूछ सकते हैं कि *ब्रज अवधी. मगही, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबीका* हम *नागरी (खड़ी बोली हिन्दी)* से क्या मेल समझें । ऊपरके ब्यौरेसे ही आपने समझ लिया होगा कि जैसे *बँगला, गुजराती, मराठी तमिल, तेलुगु, कन्नड़. मलयालम्* अलग-अलग बोलियाँ हैं, वैसे ही *ब्रज, अवधी, राजस्थानी. भोजपुरी* और *नागरी* भी अलग-अलग बोलियाँ हैं और इन सबमें अपनी *शिष्टभाषा* या *पौरभाषा* (पढ़े-लिखे

और भले लोगों या बड़ी बस्तीमें रहनेवालोंकी बोली) और *लोकभाषा* या *जानपदभाषा* (सबके बोलचालकी या गाँववालोंकी बोली) होती है। ये आपसमें सखी या सहेली ही हैं, बहन नहीं हैं।

हमने पहले ही समझा दिया है कि आठ कोसपर बोली बदल जाती है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि आठ कोसपर बोलीका साँचा या ढाँचा बदलता है। उससे तो बस इतना ही समझना चाहिए कि उसके बोलनेके ढंगमें, बोलीके लटकेमें हेरफेर हो जाता है। *राजस्थान*में हम देखते हैं कि *जैपुरिया*, *मेवाड़ी* और *जैसलमेरी* बोलीमें बहुत भेद है। *भोजपुरी*को ही लीजिए। इसमें कई ढंगसे एक वाक्य बोला जाता है—केहर जात हउवऽ। कहवाँ जात बाटऽ। कहवाँ जात बानी। कहँवा जाताणी। फिर भी उनकी बनावटका साँचा-ढाँचा एक ही है। *मेवाड़ी*में *साढ़े सात*को *हाड़े हात* कहते हैं। पर यह बात *राजस्थान*की दूसरे बोलियोंमें नहीं हैं। अलग-अलग होनेपर भी विन्ध्याचलके उत्तरके मैदानोंमें आपसमें इतना मेलजोल, लेन-देन और आना-जाना रहा है कि *ब्रज*का रहनेवाला *मगही* समझ लेता है और *बिहार*का रहनेवाला *राजस्थानी*। इन सब बोलियोंमें बहुत दिनों तक *ब्रजकी पुट* लिए हुए *नागरी* बोली कथा-कीर्त्तन और सन्तों-की बोली रही है। इसलिये बहुत दिनोंसे आपसके मेल-जोल, बात-चीत और लिखा-पढ़ीके लिये यही बोली काममें आती रही। गंगा-जमुनाकी धाराओंके बीचके पट्टे (अन्तर्वेद) की बोली पहले भी *संस्कृत*के रूपमें सबकी बोली रही है और आज भी वहाँकी बोली *नागरी* ही भारतकी *राजभाषा* *हिन्दी* बन गई है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—भाषा, विभाषा, बोली, प्रामाणिक भाषा, (स्टैण्डर्ड भाषा) विशिष्ट-भाषा विकृत भाषा, राष्ट्रभाषा, किसी बोलीके भेद नहीं होते।

२—किसी भी बोलीके दो भेद होते हैं: एक भले लोगोंकी (शिष्ट या पौरभाषा) और दूसरी सबके बोलचालकी (लोकभाषा या जानपद भाषा)।

३—भले लोगोंकी बोली भी दो ढंगकी होती है: एक लिखनेकी (लेखभाषा), दूसरी बोलनेकी (वाग्भाषा)।

४—लेखभाषा दो ढंगकी होती है: एक पोथी लिखनेकी (ग्रन्थभाषा) दूसरे राज-काज चलानेकी (राजभाषा)।

५—पोथी लिखनेकी बोली (ग्रन्थभाषा) में ठेठ, देशी, मँजी हुई (मुहावरेदार या न्यायबद्ध); बड़े-बड़े शब्दोंसे लदी हुई और कभी-कभी कई भाषाओंके शब्द भी होते हैं और लिखने-वालेका जैसा स्वभाव होता है उस ढंगसे वह अपने लिखनेका चलन (शैली) बाँधता है।

६—बोलनेकी भाषा (वाग्भाषा) दो ढंगकी होती है: एक तो लोगोंकी आपसकी सबकी बोली (सामाजिकी) और दूसरी घरेलू (व्यक्तिगत)। सबकी आपसकी बोली तीन ढंगकी होती है: एक हाटकी, जिसमें कुछ बँधी हुई (रूढ़), कुछ मिली-जुली (संकर) और कुछ छिपी (कूट) बातें भरी रहती है; दूसरी आवभगत या आदरकी बोली (औपचारिकी) होती है जिसके वाक्य बँधे-बँधाए होते हैं; तीसरी, वह सबकी बोली (सामान्या) होती है जो सुननेवालेकी समझको देखकर अदल-

बदलकर ढलती चलती है। घरेलू (व्यक्तिगत) बोली भी दो ढंगसे चलती है : एक तो सुननेवालेकी समझपर ढलती है और दूसरी फूहड़ (ग्राम्या) होती है।

७—गाँवोंमें बोली जानेवाली या अपढ़ लोगोंकी बोली (लोकभाषा या जानपदभाषा) दो ढंगोंमें चलती है : एक तो वह जिसमें उस घेरे (प्रदेश) वाले बोलते हैं और जिसमें आवभगतके आपसमें दिन-रात बोलचालके और फूहड़ वाक्य भरे रहते हैं। इस बोलीका दूसरा ढंग वह है जो उस बोलीके बोलनेवाले दूसरी बोली बोलनेवालोंसे बोलते हुए मिलाकर, बिगाड़कर या उलट-पलटकर बोलते हैं या जिसे दूसरी बोली बोलनेवाले मिलाकर, उलटकर या बिगाड़कर बोलते हैं।

८—आसपासकी जिन बोलियोंको लोग आपसमें समझ लेते हों उन्हें एक निकाससे निकला हुआ न समझकर इतना ही मानना चाहिए कि वे आपसमें एक दूसरीसे बहुत दिनोंसे मेलजोल होने-से आपसमें समझी जाती हैं (अन्योन्याभिज्ञा हैं) या उनका बराबर किसी एक बोलीसे ऐसा मेल रहा है जिसका रंग सबने बराबर ऐसा पकड़ा है कि वे मिलतीं-जुलती जान पड़ती हैं पर हैं वे अलग। वे सहेलियाँ हैं, बहन नहीं।

७

बोली कैसे पूरी होती है ?

बोलीकी बनावट

किसी जीव, वस्तु, स्थान, गुण, भाव और कामके नामवाले, दो शब्दों और वाक्योंका नाता समझानेवाले और अचानक रीझ, खीझ अचरजसे मुँहसे निकल पड़नेवाले शब्दोंसे बोली बनती है—नामके बदले सर्वनाम भी काम आते हैं—जो सुनाई दे वही ध्वनि है—ध्वनिका एक झटका ध्वन्यंश कहलाता है—लयके एक झटकेको लयान्विति या ध्वन्यक्षर कहते हैं—ध्वनियाँ दो प्रकारकी होती हैं—एक जिनसे अर्थ निकले; दूसरी, जिनसे अर्थ न निकले—मुँहमें अलग-अलग ठौरपर अलग-अलग जतनसे बोलनेपर ध्वनियाँ बदल जाती हैं—स्वरसे दिए हुए सहारेके लिये मात्रा काम आती है—ध्वनियोंके जिस मेलसे कोई अर्थ निकले उसे शब्द कहते हैं—प्रत्यय, उपसर्ग, मध्यगसे, समाससे और लकारसे मिलकर शब्द बनता है—शाब्दोंके समूहको वाक्य कहते हैं—एक शब्दका भी वाक्य होता है—चलती हुई अनोखी बोलचालको चलती बोली कहते हैं—किसी घटनाके सहारे चली हुई बातको कहावत कहते हैं अर्थवाले शब्दों और वाक्योंसे बोली बनतीहै—किसी बातसे जो समझा जाय उसे अर्थ कहते हैं—बोलने और गानेकी ध्वनिमें भेद है ।

§ ६०—**नामसम्बन्धोद्भावात्मकं वाङ्मयम । [किसी जीव, वस्तु, स्थान, भाव, गुण और कामके नामवाले, दो शब्दों**

और वाक्योंका नाता समझानेवाले और अचानक रीझ, खीझ, अचरजसे निकालनेवाले शब्दोंसे बोली बनती है ।]

रामायणकी कथा बाँचनेवाले एक व्यासजी कह रहे थे—

अहा ! जिस वीर रामने खारा समुद्र पत्थरके सेतुबंध पुलसे पार करके विश्वविजयी रावणको मारा और जो अयोध्यासे चलकर गौ ब्राह्मण और ऋषियोंको बचानेके लिये लंकामें आए. वे आज सबके पूज्य हो गए हैं क्योंकि यदि वे न होते तो आज कौन जाने इस देवभूमिपर राक्षसोंका ही राज्य होता और सबका मन दुःख और शोकसे पूरा भरा होता ।

ऊपर जो वाक्य दिया गया है, इसे पढ़नेसे जान पड़ता है कि इसमें तीन ढंगके शब्द आए हैं—

१. एक तो वे हैं जो किसी एक मनुष्य, स्थान, भाव या वस्तुके नाम हैं जैसे—

राम. रावण, सेतुबंध, अयोध्या, लंका, शोक ।

कुछ ऐसे शोक शब्द हैं जो एक ढंगके जीववाले या बिना जीववालोंकी जानकारी बताते हैं जैसे—

गौ, ब्राह्मण (जीववाले); समुद्र, पत्थर, पुल, भूमि (बिना जीववाले) ।

कुछ ऐसे शब्द हैं जो किन्हीं गुणोंका नाम बताते हैं, जैसे—

वीर, खारा, विजयी, पूज्य. पूरा ।

कुछ ऐसे हैं जो किसी कामका नाम बताते हैं जैसे—

मारना (मारा). चलना (चलकर), *आना* (आए), *होना* (होगए), *जानना* (जाने), *भरना* (भरा होता),

२. इसी वाक्यमें कुछ ऐसे शब्द हैं जो दो शब्दोंके बीचका या दो वाक्योंके बीचका जोड़ बैठाते हैं जैसे—

और, जो, क्योंकि, यदि।

३. कुछ ऐसे भी हैं जो मनकी उमंग या खीझसे अपने आप मुँहसे निकल पड़ते हैं जैसे—

'अहा'

इससे हम समझ सकते हैं कि हम चाहे कुछ भी कहें उसमें तीन ढंगके शब्द आवेंगे—

१–जीवका, वस्तुका, स्थानका, भावका नाम बतानेवाले (संज्ञा); गुणका नाम बतानेवाले (विशेषण) और कामका नाम बताने वाले (क्रिया)।

२–सम्बन्ध बतानेवाले (अव्यय)।

३–रीझ खीझ, या उमंगसे अचानक मुँहसे निकल आनेवाले (विस्मयादि बोधक)

यह बात सुनकर आप पूछ बैठेंगें कि आपने *मारा* (*मारना*) को भी *नाम* बता दिया और '*खारा*' को भी। इनमेंसे एक तो मारनेके बीते हुए कामका ब्यौरा बताता है और दूसरा समुद्रके गुणका। इनमेंसे पहलेको *क्रिया* और दूसरेको *विशेषण* कहना चाहिए। पर आपको जानना चाहिए कि आप अब बोलीकी जाँच-परख कर रहे हैं व्याकरण नहीं पढ़ रहे हैं। विशेषण भी किसी गुणका नाम है और क्रिया भी किसी कामका ही नाम है। इतना ही नहीं, आप जिन्हें कोरा *नाम* ही समझ रहे हैं वे भी कुछ अनोखी और अनूठी आन-बानके साथ यहाँ दिखाई पड़ रहे हैं। आप यह तो मानेगें ही कि *राम, पत्थर, पुल, रावण, अयोध्या* और *शोक* ये सब नाम हैं, पर ऊपरके

वाक्यमें हमें *राम*के साथ *ने*, *पत्थर*के साथ *के*, *पुल*के साथ *से*, *रावण*के साथ *को* और *लंका*के साथ *में* लगा हुआ मिलता है। यह सब क्या झञ्झट है?

बहुत सी बोलियोंमें यह झमेला नहीं भी होता। हिन्दीमें हम पूछते हैं—

दहीका क्या मूल्य है?

किन्तु *तमिल*में हम कहेंगे—

तइर् एन्न विलै? (दही क्या दाम)

पर वहाँ भी जब कहना होगा—

गोवर्धनको बुलाओ

तो कहेंगे—

गोवर्धनै कूप्पिडु

वहाँ— *गोवर्धन कूप्पिडु* नहीं होगा। पर कुछ ऐसी भी बोलियाँ है जिन में केवल शब्दका हेर-फेर करके ही बात बदल देते हैं जैसे चीनीमें।

पर यहाँ हम संसार भरकी सब बोलियोंकी छानबीन करने-की ठानकर ही यह ब्यौरा दे रहें है इसलिये हम यह बतलाना चाहते हैं कि संसार भरकी बोलियोंमें जो सबसे सुघर और पूरी बोलियाँ हैं उनमें वाक्योंकी बनावट कैसी होती है।

बहुत सी बोलियोंमें नाम भी वाक्यमें पहुँचकर कुछ अपनी बनावट बदल लेते हैं, जैसे *आगरा* एक बस्तीका नाम है। पर वाक्यमें ढालकर हम कहते हैं—

मैं *आगरे* जा रहा हूँ। या मैं *आगरे*से आ रहा हूँ।

ऐसे ही *वीरता* और *खारापन* गुणोंके नाम हैं, पर वे जब किसी दूसरे शब्दमें अपनापन समझाने लगते हैं तो अपनी बनावट बदल लेते हैं और *वीर*, *खारा* हो जाते हैं।

इसी ढंगसे हथियार लेकर किसीका गला काटनेके कामका नाम *मारना* है। यही *मारना* वाक्योंमें पहुँच कर *मारा*, *मारता है*, *मारता हूँ*, *मारो*. *मारेगा* बन जाता है। पर बात इतनी ही हुई कि ये सब भी किसी कामके नाम ही हैं। हिन्दी, संस्कृत जैसी बोलियोंमें *काम (क्रिया)* के नामके ये बहुत से रूप दिखाई पड़ते हैं पर *चीनी* बोलीमें *कामका नाम* वाक्यमें पहुँचकर भी सदा एकसा रहता है जैसे हिज़ए (*लिखना*) सदा '*लिखना*' ही रहेगा चाहे उन्हें *लिखा*, *लिखो*, *लिखता है*, *लिखेगा*, *लिखूँगा* कुछ भी कहना हो।

नाता जोड़नेवाले (अव्यय)—

क्योंकि यदि, *तो और*, *ही* जैसे कुछ शब्द और *आज*, *सदा* जैसे कुछ शब्द सदा ज्योंके त्यों वाक्योंमें आते हैं और दो शब्दों या वाक्योंके बीच का नाता जोड़ते या समझाते चलते हैं या बीचमें काम आ जाते हैं।

आह-वाहवाले (विस्मयादि बोधक)

तीसरे वे हैं जो अपने आप पीरमें *आह* बनकर, उमंगमें *अहा* और *वाह* बनकर, खीझमें *छिः* बनकर मुँहसे निकल पड़ते हैं।

§ ६१—**नामार्थे सर्वनामापि। [नामके बदले सर्वनाम भी काम आते हैं।]**

पर एक चौथे ढंगके भी शब्द होते हैं जो किसी *नाम*को बार-बार लानेकी झंझटसे बचानेके लिये अपने छोटे साँचेमें आ खड़े होते हैं (*सर्वनाम*) जैसे—

'*राम*' के लिये ऊपरके वाक्यमें आगे चलकर *जो* और *वे* आया है। ऐसे शब्द भी जैसा अवसर देखते हैं वैसा रूप बदलते चलते हैं जैसे—

यह का *ये इन, इन्होंने इसी, इसे, इसको, इसने; वह* का *उन, उन्होंने वे, उसी, उसे, उसको, उसने ।*

§ ६२—यच्छ्रूयते तद्ध्वनिः । [जो सुनाई दे वही ध्वनि है ।]

एक शब्द '*श्याम*' ले लीजिए। इसे तोड़ा जाय तो इसकी बनावटमें पाँच ध्वनियाँ मिलती हैं—

श् + य् + आ + म् + अ

इनमें से श्, य् और म् सीधी समझमें आनेवाली ध्वनियाँ हैं पर बोलते हुए आ और अ ठीक ठीक जान नहीं पड़ते। इसीलिये सब ध्वनियोंको लोगोंने दो पालियोंमें बाँट दिया है। एकमें वे ध्वनियाँ हैं जो ठीक-ठीक सीधे सुनाई पड़ती हैं *(व्यंजन या वर्ण)* और दूसरी वे जो इन ठीक-ठीक सीधे सुनाई देनेवाली ध्वनियोंको पूरा करके बैठाती भी हों और अलग भी बोली जा सकती हों *(स्वर या अक्षर)*। तो अब यह समझना रह गया है कि ध्वनि किसे कहते हैं और यहींसे चलकर हम समझ सकेंगे कि बोलियोंकी बनावट कैसी होती है।

ध्वनि—

जो कुछ कानसे सुनाई दे उसे ध्वनि कहते हैं। बहुतसे लोग कहा करते हैं कि जो कुछ मुँह से बोला जाय या दो वस्तुओं-की टक्करसे जो खटखट, टन्टन्, सुरसुराहट, झनझनाहट निकले उसको ध्वनि कहते हैं पर यह बात ठीक नहीं। क्योंकि कोई भी ध्वनि तभी ध्वनि कहलाती है जब वह किसीके कानमें सुनाई पड़े। विज्ञानवालोंने एक शीशेके डब्बेसे पूरा वायु निकालकर उसमें बिजलीकी घंटी लगाकर बजाई। वह बजनेका काम तो करती रही पर उसमेंसे ध्वनि नहीं निकली क्योंकि ध्वनि तो सदा वायुके कंधेपर चढ़कर चलती है इसलिये बजना सुननेके लिये वायु भी

चाहिए। इसीसे हम समझ सकते हैं कि दो वस्तुओंकी खटपट सभी ध्वनि बनती है जब वह वायुमें लहराती हुई कानोंतक पहुँच पावे। इसलिये जबतक वह सुनाई नहीं पड़ती तबतक उसे हम ध्वनि नहीं कह सकते। किसी भी वस्तु या मनुष्यकी सबसे पहली पहचान उसकी ध्वनिसे होती है। छलछलसे पानी, हरहरसे हवा, पैरोंकी धमकसे बोली या खाँसीसे मनुष्यकी पहचान होती ही रहती है। पर यह पहचान तभी होती है जब वह ध्वनि हमारे कानतक पहुँचे। यों तो हमारे सामनेकी पहचान करानेवाली हमारी आँखें भी हैं और छूकर भी हम पहचान कर लेते हैं पर दूरसे किसी बातको समझने या पहचान करनेके लिये कान ही सबसे बड़ा सहारा है। यों नाकसे सूँघकर भी कुछ पहचान हो ही जाती है पर जितनी दूरसे कान पहचानता है उतनी दूरसे हमारा कोई दूसरा अंग नहीं पहचान पाता। अँधेरेमें भी हम खटपटसे चूहे, बिल्ली और मनुष्यकी पहचान कर लेते हैं। पेड़ोंकी झुरमुटमें भी हम नदीकी चाल पहचान लेते हैं और घरके भीतर बैठे-बैठे उड़नखटोले (विमान)के अंजनकी या दूर सड़कपर चलनेवाली फटफटैया (मोटर बाइसिकिल) की पहचान कर लेते हैं। इससे हमें यह समझनेमें अड़चन न होगी कि कानसे हमें बहुत लाभ हुआ है और उसीने हमारी बोलीको परख-परखकर उसे बढ़िया, लोचदार, लच्छेदार, रसीला और सजीला बनानेमें हाथ बटाया है।

§ ६३—**एको ध्वनिक्षेपः ध्वन्यंशः। [ध्वनिका एक झटका ध्वन्यंश कहलाता है।]**

ध्वन्यंश (फ़ोनीम)—

इन ध्वनियोंकी भी जाँच पड़ताल करें तो जान पड़ेगा कि कभी तो एक ध्वनि एक झटका देकर ही चुप हो जाती है जैसे

तड़के-तड़के कोई चिड़ियाका बच्चा च् करके चुप हो जाता है। ऐसे ही कभी हम-आप भी घंटीसे एक टनक देकर छोड़ देते हैं या अपनी बोलीमें ही कुछ शब्दोंमें ऐसी अकेली ध्वनियोंके झटके भरते चलते हैं। इन झटकेवाली ध्वनियोंको ध्वन्यंश (*हलन्त व्यंजन या बिना स्वरके व्यंजन*) कहते हैं। जब ये झटके घंटेपर लगी हुई चोटके जैसे पूरे *टन्न* सुनाई पड़ते हैं तब इनकी ध्वनि पूरी हो जाती है। इसीको पूरी ध्वनि (*सस्वर ध्वनि*) कहते हैं। यह ध्वनिके पीछे सहारा देकर उसे जमानेवाली या ठहरानेवाली ध्वनि स्वर कहलाती है जो अलग भी बोली जा सकती हैं जैसे—अ, इ, उ। ये स्वर ही व्यंजनके साथ मिलकर उन्हें पक्का करते, ठहराते या पूरा करते चलते हैं जैसे क (क् + अ), कि (क् + इ), कु (क + उ)।

ध्वन्यक्षर या लयान्विति (*सिलेबिल्*)—

§ ६४—एको लयक्षेपः लयान्वितिः। [लयके एक झटकेको लयान्विति या ध्वन्यक्षर कहते हैं।]

आपने कोयलकी कूकमें सुना होगा कि उसमें पहला 'कु' तो एक झटकेके साथ सुनाई पड़ता है और दूसरा कुछ लम्बा हो जाता है—

कु कूSSS।

बोलचालमें भी कुछ ऐसे लयके लटके होते हैं जिनमें कई-कई स्वर लगी हुई ध्वनियाँ एक झोंकमें बोली जाती हैं जैसे—अंग्रेजीका *सन्—लाइट* या हिन्दीका *विश्-वास* शब्द। इन दोनोंमें लयके ऐसे दो-दो लटके हैं—*सन्-लाइट्*; *विश्-वास*। इनमें कुछ झटके हल्के और कुछ लम्बे हैं जैसे—*सन्लाइट* में *सन्*का झटका

हल्का है लाइटका लम्बा। ऐसे ही *विश्-वासमें विश्*का लटका छोटा है, हल्का है, पर *वास*का लटका लम्बा है। ऐसे लटकोंको ध्वन्यक्षर या *लयान्विति* (*सिलेबिल्*) कहते हैं। कुछ लोग इसीको भूलसे अक्षर भी कहते हैं।

ध्वनियाँ कितने ढंग की होती हैं—

§ ६५—**निरुक्ताऽनिरुक्ता । च । [ध्वनियाँ दो प्रकारकी होती हैं : एक, जिनसे अर्थ निकले, दूसरी, जिनसे अर्थ न निकले ।]**

इस पोथीमें हम मनुष्यकी ही बोलीकी छानबीन करनेके लिये चले हैं इसलिये हमें यह सोच लेना चाहिए कि हमारे काममें आनेवाली ध्वनियाँ कितने ढंगकी होती हैं। हम देखते हैं कि—

(१) एक तो वे ध्वनियाँ हैं जो बिना प्राणवाली वस्तुओंकी टक्करसे सुनाई पड़ती हैं।

(२) दूसरी वे हैं जो जीवोंके मुखसे सुनाई पड़ती हैं।

जीवोंके मुँहसे बोली जानेवाली ये ध्वनियाँ भी दो साँचोंमें मिलती हैं—(क) एक तो वे, जिन्हें मनुष्यने अपनी बोलीमें लाकर उनका अर्थ बाँध लिया है, और (ख) दूसरी वे, जिनका कोई अर्थ नहीं है।

इनमेंसे बादलोंका गरजना, बिजलीकी तड़प, बयारकी सर-सराहट, पानीकी छलछलाहट और भूकम्पकी गड़गड़ाहट ये सब भौतिक (धरती, पानी, वायु, आग और आकाशकी) ध्वनियाँ हैं। पार्थिव ध्वनि या जीवोंके मुँहसे बोली जानेवाली ध्वनियाँ दो ढंगकी होती हैं—१. जिन ध्वनियोंसे अर्थ निकाला जा सके और किसी बोलीके व्याकरणसे उसे साधा जा सके। वह *सधी हुई बोली* (*निरुक्ता वाक्*) कहलाती है।

२. पंछियों या चौपायोंकी जिस बोलीको हम व्याकरणसे न साध सकें, वे सब अटपट बोली (*अनिरुक्ता*) कहलाती हैं। यहाँ इतना समझ रखना चाहिए कि **जो बोलियाँ आपसमें समझी नहीं जा सकतीं वे भी एक दूसरेके लिये अनिरुक्ता ही होती हैं।**

नीचे दिए हुए वाक्योंको हम पढ़ें तो जान पड़ेगा कि हमने अपनी बोलीमें इनमेंसे सभी ढंगोंके लिये शब्द गढ़े हैं और उन्हें काममें लगाया है—

१—बिजली कड़क रही है।

२—चिड़िया चूँ चूँ कर रही है।

३—गाय *भाँ भाँ* कर रही है।

४—*शिः*, तुम्हें यहाँ किसने बुलाया था !

५—घंटा *टनटन* बोल रहा है।

ऊपर *कड़क*, *चूँ–चूँ*, *भाँ–भाँ*, *-छिः*, *टन्–टन्* अटपट (*अनिरुक्ता*) ध्वनियाँ हैं पर इनको समझानेके लिये हमने उन्हें उन ध्वनियोंसे मिलती-जुलती अपनी बोलीकी ध्वनियोंमें ढाल लिया है। हम अपनी बोलीमें घंटेकी ध्वनिको *टन्–टन्* कहते हैं, अंग्रेज लोग *डिंग-डौंग* कहते हैं। इससे जान पड़ता है कि सब बोलियोंमें अटपट (*अनिरुक्ता*) ध्वनियोंको भी अपनी बोलीकी ध्वनियोंके मेलमें लाकर बोलनेकी चाल सब देशोंमें सदा रही है।

संस्कृतवालोंने सधी हुई ध्वनि (*निरुक्ता वाक्*) को भी दो ढंगका माना है—

१—एक *व्युत्पन्ना*, जिसे अपने व्याकरण या बोलीके नियमोंसे तोड़कर, उसकी पूरी पहचान कराई जा सके जैसे—

खग = *ख* (*आकाश*) + *ग* (*चलनेवाला*) = *पंछी*।

२—दूसरी *अव्युत्पन्ना* जिसके शब्द, कहींसे बनकर ज्योंके त्यों चले आए हैं और हमारी बोलीमें घुलमिल गए हैं पर उनका ठौर-ठिकाना नहीं मिल पाता जैसे—

डित्थ. टका. सट्टा

सस्वर ध्वनि या मात्रावाली ध्वनि—

§ ६६—स्थान-प्रयत्न-भेदेन ध्वनिभेदः] मुँहमें अलग-अलग ठौरपर अलग-अलग जतनसे बोलनेपर ध्वनियाँ बदल जाती है ।]

आपको इस धोखेमें नहीं रहना चाहिए कि आपने मुँह खोला और ध्वनि बन गई। यह तो हम आगे समझावेंगे कि ध्वनि बनती कैसे है। यहाँ इतना ही समझना चाहिए कि कोई भी ध्वनि तब बनती है जब गलेमें लगी हुई बोलीकी डिबियासे भीतरका वायु निकलकर मुँहके भीतरके सब अंगोंके हटाने, बढ़ाने, चलाने, खींचने, खोलने, बन्द करने या छूनेसे टकराकर निकलता है। इसमें यह देखा जाता है कि कौन सी ध्वनि मुँहके किस ठौरपर बोलीकी डिबियासे निकले वायुके टकरानेसे उपजती है (*स्थान*)। फिर यह भी देखना पड़ता है कि उस ध्वनिको ठीक-ठीक बोलनेमें कितना *जतन* करना या बल लगाना पड़ता है (*प्रयत्न*)। इतना ही नहीं, उसमें यह भी देखना पड़ता है कि किस ध्वनि-को तालूसे ऊपर चढ़ाकर (*उदात्त*); किसे दबाकर (*अनुदात्त*) और किसे मुँहके बीचमें सँभालकर (*स्वरित*) बोलना पड़ता है। जर्मन भाषाकी कुछ अललटप (*उमलाउट*) ध्वनियाँ ऐसी भी हैं कि लिखा जाता है ऊ (Ü) किन्तु मुँह बढ़ाया जाता है ओ के लिये और ध्वनि निकाली जाती है ई। ऐसे ही चीनीमें —चिह्न के साथ '*शि*' का अर्थ है कि कुछ ऊँचा स्वर चढ़ाकर बोलो

जिसका अर्थ होगा —*खोना*। / चिह्नका अर्थ यह है कि नीचेसे ऊपर / स्वर चढ़ाकर '/*शि*' कहा जाय तो अर्थ होगा—*दस*। ‾V चिह्नका अर्थ है कि स्वर उतारकर फिर सहसा चढ़ाकर ‾V*शि*' बोला जाय तो अर्थ होगा—*इतिहास* और / चिह्नका अर्थ है कि स्वर अचानक ऊपरसे नीचे झटकेके साथ उतारकर / *शि*' कहा जाय तो अर्थ होगा *नगर* या *हाट*। यहाँ एक *शि* शब्द ही केवल स्वरके उतार-चढ़ावमें भेद पड़नेसे ही अलग-अलग अर्थ देने लगता है। हमारे यहाँ संस्कृतमें भी स्वरका बहुत ध्यान रक्खा जाता था। महाभाष्यमें लिखा है—

उदात्ते कर्त्तव्ये योऽनुदात्तः करोति, खण्डिकोपाध्यायः तस्मै चपेटां ददाति।

[उदात्तको जो अनुदात्त स्वरसे बोलता है उसे खड़ियासे पढ़ानेवाले पाधाजी चपेटा लगाते हैं]। शब्द बोलने या ध्वनिको ठीक-ठीक मुँहसे निकालनेको ही शब्दका ठीक जानना (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं और यह माना गया है—एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति। [एक ही शब्द यदि ठीकसे जाना जाय और ठीकसे काममें लाया जाय तो वह स्वर्गलोकमें इच्छित फल देनेवाला होता है।] इसी बातको हम वृत्रासुरकी कहानीसे भी समझा सकते हैं। वृत्रासुरने इन्द्रको हरानेके लिये एक यज्ञ किया। पर यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण लोग इन्द्रकी ही जीत चाहते थे। उन्होंने मंत्रमें आए हुए इन्द्रशत्रु[1] शब्दके इन्द्रका इ हल्का (*अनुदात्त*) करके मंत्र पढ़ा जिससे वृत्रासुर ही मारा गया—

१—इन्द्रशत्रुः = इन्द्रः एव यः शत्रुः (इन्द्र नामका ही जो शत्रु है।) यह अर्थ इ को खींचकर इन्द्रशत्रुः पढ़नेसे होता है। दूसरा अर्थ है इन्द्रस्य शत्रुः (इन्द्रका शत्रु), जो इ को हल्का पढ़नेसे होता है।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।

[यदि किसी शब्दका स्वर या वर्ण बिगाड़कर, बेढंगा करके बोला जाता है और ठीक अर्थमें काम नहीं लाया जाता है तब वही बोलीका वज्र यजमानको मार डालता है जैसे इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर स्वरकी गड़बड़ीसे ही मारा गया ।]

यह स्वरका हेरफेर शब्दमें भी होता है और वाक्यमें भी जैसे—

मैं आपसे कह रहा हूँ ।

मैं **आपसे** कह रहा हूँ ।

मैं आपसे **कह रहा हूँ** ।

इन तीनों वाक्योंमें *मैं*, *आपको*, और *कह रहा हूँ* को खींचकर कहने भरसे उनके अर्थमें बहुत फेर हो जाता है ।

ये ध्वनियाँ कभी अकेली रहती हैं, कभी स्वरसे मिली रहती हैं, और कभी आपसमें मिलकर रहती हैं—जैसे न् न् न् न् (बिना स्वरके) = नहीं; राम (स्वरसे मिलकर), *टक्कर क्लान्त*—(मिली-जुली, कुछ बिना स्वरके जैसे क् और न्, कुछ स्वरके साथ जैसे *ट क र ला त*) ।

§ ६७—स्वराश्रयाय मात्रा । [स्वरसे दिए हुए सहारेके लिये मात्रा काम आती है ।]

कोई भी ध्वनि या तो हल्की होती है या लम्बी होती है । वह कभी तो बिना स्वरके अकेली झटके भर सुनाई पड़ती है और कभी उसके साथ किसी स्वरकी मात्रा (दबाव, ठहराव या खिंचाव) भी लगी रहती है । यदि हम *पानी* कहें तो इसमें ध्वनियाँ *प्*, *न्* ही हैं पर प् में *आ* की मात्रा जोड़ दी गई है या यों कहिए कि *आ* का ठहराव या सहारा दे दिया

गया तो वह *पा* बन गया। ऐसे ही न् में ई का ठहराव या सहारा दिया गया तो वह *नी* बन गया। ऐसे ही '*निशि*' शब्दके न् और श् के साथ छोटी (ह्रस्व) इ का सहारा लगा हुआ है। इस सहारेको तौल (मात्रा) कहते हैं। जिस तौल (मात्रा) में कोई स्वर किसी वर्ण (व्यंजन) के साथ लगाया जायगा वैसा ही उसका रूप बन जायगा। नागरीकी अक्षर-कड़ी (वर्णमाला) में स्वरोंकी मात्राएँ (तौल) दिखानेके लिये लिखते हुए व्यंजनोंके साथ कुछ पाइयाँ आड़ी, तिरछी, सीधी लगा दी जाती हैं जैसे—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ अं अँ अः के लिये—

। ा ि ी ु ू ृ ॄ े ै ो ौ ं ँ :

अ के बिना कोई व्यञ्जन पूरा ही नहीं है अतः उसकी मात्रा । जोड़ना अकारथ समझा गया। यों भी सब वर्णोंमें जो ‾ या । पाई बनी हुई है वह अ की ही मात्रा है। बिना अ मात्राका वर्ण समझानेके लिये उसके नीचे हल् (्) लगा देते हैं जैसे—क्। पर बहुत सी बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें लिखते हुए पूरा स्वर (अक्षर) जोड़ दिया जाता है जैसे—अंग्रेजी में *राम* लिखते समय उसमें *आर + ए + एम् + ए* (R *A* M *A*) लिखकर अ और आ स्वरोंकी मात्राके लिये पूरा स्वर ही लिख देते हैं। सब बोलियोंकी छानबीन करनेपर यह जान पड़ेगा कि ऐसे अक्षर (स्वर) कुल गिने-चुने ही हैं जो सब बोलियोंमें काम आते हैं—अ, इ, उ ए, ओ आदि। पर तंत्रालोक, परात्रिशिका-विवरण और मात्रिकाचक्रविवेक लिखनेवालोंने यह माना है कि अ इ, ऋ ऌ, उ ही *नाद ब्रह्म* की पाँच शक्तियाँ हैं जो अलग-अलग चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया बनकर विश्वमें समाई हैं। उनका यह भी कहना है कि हमारी अक्षरकड़ीमें भी इन्हें इसी

सजावसे रखना चाहिए क्योंकि पाणिनिने भी मुँहके भीतर सब ध्वनियोंके बोलनेके ठौर समझाते हुए ध्वनियोंको इसी सजावसे रक्खा है—

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

इचुयशानां तालुः।

ऋटुरषाणां मूर्धा।

लृतुलसानां दन्ताः।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।

ये ध्वनियाँ बिना मिलावटके हैं और मुँह के भीतर अ, इ, ऋ, लृ, उ के सहारेसे या इन्हींको लम्बा करके और मुँह चौड़ाकर या फैलाकर या बढ़ाकर बोलनेसे आ, ई ॠ लॄ, ऊ बन जाते हैं और इन्हींके मेलसे ए, ऐ, ओ, औ, बन जाते हैं।

§ ६८—**भावव्यञ्जको ध्वनिसमूहः शब्दः। [ध्वनियोंके जिस मेलसे कोई अर्थ निकले उसे शब्द कहते हैं।]**

एक वाक्य लीजिए—

रामने संसारके उपकारके लिये सोनेकी नगरी लंकामें राक्षसोंके सामने विश्वविख्यात रावणको रथसे नीचे गिराकर वीरताके साथ बाणसे मारडाला।

इस वाक्यमें *रामने, संसारके, उपकारके लिये, सोनेकी, राक्षसों, विश्वविख्यात, मारडाला,* घोड़ेसे, *वीरता* सब अनोखे ढंगसे काममें आए हैं। देखा जाय तो इनमें शब्द सचमुच ये हैं—*राम, संसार, करना, सोना, राक्षस, विश्व, ख्यात,* घोड़ा, *वीर* और *मारना*। पर इनमें *राम*के साथ ने, *संसार*के साथ के, *करना*से बने हुए *कार* शब्दमें *उप*, *सोना*में ए और *की* लगाकर,

सोनेकी *राक्षसमें* ओं लगाकर *राक्षसों*, *विश्व* और *वि* जुड़े हुए *ख्यात* को एक साथ मिलाकर *विश्वविख्यात*, *वीर* में *ता* लगाकर *वीरता* और *मारना*को *मारडाला* बनाकर सबका रूप ही बदल दिया है।

यह सब क्या झंझट है? यह वाक्य ऐसे क्यों नहीं लिखा गया—

राम संसार उपकार सोना लंका राक्षस विश्व ख्यात रावण रथ गिराना वीर बाण मारना।

पर इससे कोई बात ठीक-ठीक समझमें नहीं आती। इससे जान पड़ेगा कि शब्दोंका एक अपना सच्चा रूप (*प्रातिपदिक*) होता है पर वे शब्द किसी वाक्यमें पहुँचकर अपने ठीक अर्थ समझानेके लिये और दूसरे शब्दोंसे अपना मेल बतानेके लिये अपने रूपमें कुछ थोड़ा सजाव-बनाव कर लेते हैं। कोई भी नाम (मनुष्य, वस्तु, झुंड, काम या गुणका) किसी वाक्य-में पहुँचकर जब दूसरे शब्दोंके साथ अपना मेल समझाने लगता है तब वहाँ उसका अर्थ बतानेवाला एक लटका उसके साथ जोड़ देते हैं जो उस शब्दके साथ चिमट जाता है जैसे—*अवधी* में *सीतहि* (*सीताको*)। (यह कभी अलग नहीं रहता है जैसे—सीता को।) इसे *विभक्ति* कहते हैं जैसे ऊपरके वाक्यमें *ने*, *में*, *को*, *लिये*, *से*।

कुछ बोलियोंमें ऐसे मेल दिखानेवाले लटके, शब्दसे पहले एक शब्द (प्रिपोजिशन) बनकर लगते हैं जैसे—'*गाड़ीपर*' के लिये अंग्रेजीमें कहा जायगा '*औन दि कार्ट*।'

सम्बन्ध-शब्द—

कभी-कभी दो शब्दोंमें आपसका जोड़ दिखानेवाली ध्वनियाँ भी इन शब्दोंके साथ लगा दी जाती हैं जैसे—*का*, *के*, *की*,। इसे जोड़नेवाला शब्द (*सम्बन्ध शब्द*) कहते हैं।

शब्द

§ ६६—**प्रत्ययोपसर्ग-मध्यग-समास-विभक्ति-लकार युक्तः शब्दः। [प्रत्यय, उपसर्ग, मध्यग, अविभक्ति और समाससे मिलकर शब्द बनता है।]**

प्रत्यय—

कुछ शब्दोंके पीछे ऐसे लटके जोड़कर कोई गुण समझा दिया जाता है जैसे—ऊपरके वाक्यमें *वीरता* में लगा हुआ *ता*, *वीर*के गुणको बताता है। ऐसी जुड़ीहुई ध्वनियोंको *प्रत्यय* कहते हैं।

स्त्री या पुरुष (लिंग)—

कभी कभी शब्दके साथ ऐसा लटका (प्रत्यय) जोड़नेसे वह बताया जाता है कि यह स्त्री है या पुरुष जैसे—*नगर*के पीछे टो हुई ई से यह जाना जाता है कि *नगरी* शब्द स्त्रीलिंगका है।

उपसर्ग—

कभी कभी काम (क्रिया) बतानेवाले शब्दोंके पहले कुछ ध्वनियाँ जोड़कर एक ही शब्दसे बहुतसे अर्थ निकाल लिए जाते हैं जैसे—*उपकार* में लगा हुआ *उप*, कामकी अच्छाई (भलाई) बताता है। उसके बदले *अप* लगा दिया जाता तो उसका अर्थ होता बुराई। शब्दके पहले लगे हुए ऐसे लटके या ध्वन्यक्षरको *उपसर्ग* कहते हैं।

मध्यग—

कुछ बोलियोंमें ऐसे लटके बीचमें भी आ घुसते हैं जैसे—'*मैंने सीतारामसे भी कहा था* के लिये बनारसी बोलीमें कहेंगे—*हम सीतौराम से कहले रहली*।' यहाँ *भी* का अर्थ समझाने वाला औ, *सीता* और *राम* के बीचमें आ गया। इसे *मध्यग* कहते हैं।

गिनती (*वचन*)—

कभी-कभी कुछ ध्वनियाँ शब्दके पीछे उसकी गिनती समझानेके लिये जोड़ा जाती हैं कि वह एक है, दो हैं या बहुतसे हैं, जैसे— *राक्षसोंमें* लगे हुए ों (ओं)से समझ सकते हैं कि वहाँ एक ही नहीं बहुतसे राक्षस थे।

काल (*लकार*)—

ऊपरके वाक्यमें क्रिया तो *मारना* है पर उसे *मारडाला*के रूपमें पढ़नेसे यह जाना जाता है कि *मारनेका काम* कभी पहले पूरा हो चुका है। ऐसे हेरफेरसे समय जाना जाता है।

छोटा करना (*समास*)—

कभी-कभी हम कई शब्दोंको मिलाकर छोटा कर लेते हैं जैसे *घोड़ेपर बैठे हुए सवार*को हम *घुड़सवार* कहने लगे हैं। ऐसे ही *विश्वमें विख्यात*के बीचमेंसे *में* निकालकर हमने उसे *विश्व-विख्यात* बनाकर छोटा कर लिया है। इस छोटा करनेको *समास* कहते हैं।

शब्दकी पहचान—

तो हमने देखा कि शब्द या पद उसीको कहते हैं, जो प्रत्यय, उपसर्ग, मध्यग, विभक्ति या सम्बन्ध बतानेवाले ध्वन्यक्षरोंके साथ जुटकर आपसका मेल, स्त्री-पुरुषका भेद (*लिंग*), गिनती (*वचन*) और समय (*काल*) बताता हो और कभी दूसरे शब्दोंसे मिलकर अपनी विभक्ति या सम्बन्धका शब्द छोड़कर अपना छोटा (समास किया हुआ) रूप दिखाता हो। इसे हम यों समझा सकते हैं कि राम, रावण, लंका, राक्षस, मारना तो *प्रातिपदिक* है पर *रामने*, *सोनेकी*, *रावणको*, *राक्षसोंके*, *लंकामें*, *मारडाला*, *विश्वविख्यात* सब पद या शब्द हैं क्योंकि ये अपने नये

रूपोंसे वाक्यमें अपना-अपना ठीक अर्थ समझाते हैं। पाणिनि मुनिने *सुप्तिङन्तं पदम्* लिखकर यही समझाया कि विभक्ति और लकार (समय बतानेवाले हेरफेरके क्रियाके रूप) के साथ ही शब्द बनते हैं। पर इसे माननेमें कठिनाई यह है कि उन्होंने यह नियम संस्कृतके लिये ही बनाया। जिन बोलियोंमें विभक्ति नहीं होती और एक दूसरेका मेल दिखानेवाली ध्वनियाँ अलग शब्दोंके रूपमें आती हैं उनके लिये यह नियम नहीं लग सकता। इसलिये आचार्य चतुर्वेदीको *शब्द* या पदकी यह पहचान बतानी पड़ी कि जो वाक्यमें अपना ठीक अर्थ बतावे वही *शब्द* है।

वाक्य

§ ७० – **शब्दोच्चयः वाक्यम्।** [**शब्दोंके समूहको वाक्य कहते हैं।**]

कुछ लोग यह मानते है कि योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति-वाले शब्दोंके मेलको वाक्य कहते हैं। पर जब हम पहले ही शब्द या पदकी पहचान यह बता आए हैं कि जो ठीक-ठीक अपना अर्थ समझा दे उसे शब्द कहते हैं तब इस पुछल्लेका क्या काम! इसलिये शब्दोंके इकट्ठे हो जानेको वाक्य कहते हैं। हम ऊपर बता आए हैं कि—*राम, संसार, उपकार, सोना लंका, राक्षस विश्व, ख्यात, रावण, रथ, गिराना, वीर, बाण, मारना,* कह देने भरसे हम कुछ भी नहीं समझ सकेंगे। हमें इनको इस ढंगसे बनाकर सजाना चाहिए कि हम जो अर्थ समझाना चाहें वह इसमेंसे निकले। यह शब्दोंकी बनावट और सजावट मिलकर ही वाक्य कहलाती है। इससे समझा जा सकता है कि उन्हीं शब्दोंके इकट्ठा होनेसे *वाक्य* बनता है जो एक दूसरेका मेल समझाते हुए अपने-अपने अर्थ ठीक समझाते हुए पूरे वाक्यका अर्थ ठीक-ठीक बता सकें। यहाँ

इतना और समझ लेना चाहिए कि वाक्यमें किस ढंगका शब्द कैसे सजाया जाय। ये ढंग सब बोलियोंके अलग-अलग हैं।

एक शब्दवाले वाक्य (वाक्य-शब्द)—

§ ७१—**एक शब्दात्मकमपि वाक्यम्। [एक शब्दका भी वाक्य होता है।]**

हम आपसकी बातचीतमें कभी-कभी कई शब्दोंसे बना हुआ वाक्य कहनेके बदले एक ही शब्दसे वाक्यका अर्थ बता या समझ लेते हैं जैसे किसीको कपड़े पहनकर बाहर जाते देखकर यह बातचीत चलती है—

१—*किधर ?* (आप किधर जानेके लिये तैयार हुए हैं ?)

२—*प्रदर्शनी।* [मैं प्रदर्शनी देखने जा रहा हूँ।]

३—*चलूँ?* [आप कहिए तो मैं भी चलूँ।]

४—चलो। [तुम चाहो तो चल सकते हो या तुम भी अवश्य चलो।]

ऐसे शब्दोंको *वाक्य-शब्द* कहते हैं।

अगली पालीमें हम समझावेंगे कि वाक्य क्या होता है, कैसे बनता है, उसके कितने भेद होते हैं, उसमें कौन-कौन-सी ऐसी बातें होती हैं जिससे वह अपना ठीक ढाँचा बना लेता है और कब-कब, कैसे-कैसे उसकी बनावटमें हेरफेर या अदल-बदल होता या हो सकता है।

चलती बोली (मुहावरा)—

§ ७२—**लोकप्रयुक्तविलक्षणोक्तिः रूढोक्तिः। [चलती हुई अनोखी बोलचालको चलती बोली कहते हैं।]**

कभी-कभी कुछ सुलझे हुए लोग हमारी बोलीमें कोई ऐसा शब्द इस ढंगसे किसी क्रियाके साथ चला देते हैं कि वह अपने

सच्चे अर्थको छोड़कर एक नया अर्थ पकड़कर चल निकलता है जैसे—

दाँत खट्टे करना।

इसका सीधा अर्थ तो यह होना चाहिए कि किसीको जँभीरी नीबू या खट्टा अनार खिलाकर उसके दाँत ऐसे खट्टे कर देना कि दूसरी वस्तु खानेमें उसे कठिनाई हो। पर अब दाँत खट्टे करनेका अर्थ हो गया है हराना, मारकर भगाना, तंग करना। इसमें तो फिर भी कुछ तुक है, पर '*आँख मारना*'में क्या तुक है? *मारना*के साथ *आँख* लग जानेसे उसका अर्थ होगा—'किसीकी ओर तिरछी चितवनसे आँखें मिलकाकर अपनी चाह दिखाना।'

कहावत (लोकोक्ति)—

§ ७३—**घटनाधिकृतोक्तिर्लोकोक्तिः। [किसी घटनाके सहारे चली हुई बातको कहावत कहते हैं।]**

जब कभी कोई कवि या सुलझा हुआ मनुष्य किसी कहानी या किसी बीती हुई बातके ब्यौरेके सहारे कोई बोल चला देता है जो किसी बातको समझाने, काटने या परखनेमें लोग बरतने लगें उसे *कहावत*, या *लोकोक्ति* कहते हैं। जैसे—

नाच न जाने आँगन टेढ़ा।

कभी किसी समय कोई ऐसा नाचनेवाला रहा होगा जिसे नाचना कम आता होगा और उसने अपनी झेंप मिटानेके लिये कह दिया होगा कि—*मैं तो बढ़िया नाचता, पर क्या करूँ आँगन ही टेढ़ा है।* उसपर किसीके मुँहसे तुक या छंदका टुकड़ा बनकर यह निकल पड़ा होगा—नाच न आवे आँगन टेढ़ा। यह लोगोंको इतना अच्छा जँचा कि यह वाक्य उस मनुष्यके लिये कहा जाने लगा जो अपनी कमी छिपानेके लिये या झेंप मिटानेके लिये दूसरोंपर दोष मढ़े।

§ ७४—**सार्थशब्दवाक्यशीला हि वाक्। [अर्थवाले शब्दों और वाक्योंसे बोली बनती है।]**

ऊपर जो बोलियोंकी बनावटका ब्यौरा दिया गया है उससे समझा जा सकता है कि किसी बोलीमें बस ध्वनियाँ ही भर नहीं होतीं। वे ध्वनियाँ स्वरों या उनकी मात्राओंसे मिलकर शब्द बनाती है और वे शब्द विभक्तियों, सम्बन्ध बतानेवाले शब्दोंसे मिलकर और प्रत्ययों, उपसर्गों, मध्यगोंसे सजकर, कई शब्दोंके मेलसे एक छोटा रूप (समास) बनाकर, स्त्री या पुरुष (लिंग), गिनती (वचन) और समय (काल) बतानेके लिये वाक्यमें पहुँचकर अपने सच्चे रूपमें थोड़ा हेरफेर कर अपने अनगिनत रूप बना लेते हैं जिससे उनके रूपोंके अर्थोंमें बहुत भेद पड़ जाता है पर *वाक्य*का अर्थ ठीक हो जाता है। ऐसे शब्दों और वाक्योंसे ही बोली बनती है।

§ ७५—**अर्थो भावप्रत्ययः। [किसी बातसे जो समझा जाय उसे अर्थ कहते हैं।]**

कभी-कभी तो अकेली ध्वनियों या ध्वन्यक्षरोंके भी अर्थ होते हैं जैसे संस्कृत और अरबीमें सब अक्षरोंके कुछ न कुछ अर्थ हैं पर और सब बोलियोंमें काम आनेवाली अकेली ध्वनियोंका कोई अर्थ नहीं होता। वे जब कई स्वरों या व्यञ्जनोंसे मिलकर बनती हैं तभी उनका अर्थ होता है जैसे—अंग्रेजीके *जी* (G) वर्णका कोई अर्थ नहीं है पर वह *ओ* और *डी* (O D)के साथ मिलकर *गौड* (G O D) शब्द बनाकर *देवता* अर्थ बताता है। ऐसे शब्दोंमें से कुछके तो एक ही एक अर्थ होते हैं और कुछके बहुत अर्थ होते हैं। जैसे—

अक्षिका अर्थ आँख ही है और कुछ नहीं। पर हरिके अर्थ हैं—*हरा, हरियाला, भूरा पीला, विष्णु, कृष्ण, यम, पवन, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, सिंह किरण, घोड़ा, शुक, वानर सर्प, शिव ब्रह्मा, अग्नि, कोकिल, हंस, मोर, इंद्रका घोड़ा भर्तृहरि और विद्वान्* । इतना ही नहीं, कभी-कभी एक ही वस्तुके बहुतसे नाम होते हैं और एक ही बोलीमें एक ही वस्तुके ऐसे बहुतसे नाम चलते हैं जैसे छोटे कटोरी जैसे पानी पीनेके मिट्टीके बर्तनको उत्तरप्रदेशमें ही *शकोरा, कसोरा, कुल्हड़, पुरवा, भुरका, डबकोरा, प्याली, पियलिया*, *करई* और *आबखोरा* कहते हैं।

कभी-कभी एक ही कामसे मेल-जोल रखनेवालेपर अलग-अलग छायावाले ढंगोंके लिये अलग-अलग शब्द बना लेते हैं जैसे अलग-अलग ढंगसे कपड़ा धोनेको हम कहते हैं—

पछाड़ना, धोना, फींचना, कचारना, सबुनियाना, साफ़ा देना ।

कभी-कभी कोई शब्द बुरा समझा जानेसे छोड़ दिया जाता जाता है और उसके बदले ठीक उससे उल्टे अर्थवाला चला दिया जाता हैं जैसे—*दीवा (दीपक)* बुझाने और *दूकान बन्द* करने के लिये *दीवा बढ़ाना* और *दूकान बढ़ाना* कहते हैं।

कभी कभी कोई शब्द एक अर्थमें काम आता था और धीरे-धीरे वह बहुत बड़े अर्थमें काम आने लगा जैसे—*कुशल* शब्द पहले *सँभालकर कुशा लानेवाले* के लिये काम आता था फिर धीरे-धीरे उन सब लोगोंके लिये काम आने लगा जो *किसी काम करनेमें पक्के हो गए हों* ।

कभी कभी कुछ शब्द ऐसे भी रहे हैं जो बहुत लम्बे-चौड़े अर्थमें काम आते रहे पर सिमटकर छोटे अर्थमें घिर गए जैसे-

मृग शब्द पहले *सब चौपायों*के लिये काम आता था फिर धीरे-धीरे सिमटते-सिमटते *हरिण*के अर्थमें बँध गया।

कभी ऐसा भी होता है कि किसी एक शब्दके एक अर्थमें काम आनेवाले शब्दको किसी दूसरे अनूठे अर्थमें काम लाने लगते हैं जैसे-*हरिजन* शब्दका अर्थ है *भगवान्‌का भक्त* किन्तु अब वह *अछूत* लोगोंके लिये काममें आने लगा।

इस ढंगसे देखा जाय तो शब्दोंने ही नहीं, अर्थोंने भी बहुतसे ढंग बदले हैं इसलिये इस पोथी की दूसरी पालीमें हम समझावेंगे कि किसी बोलीकी ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों और अर्थोंमें कैसे, कब, क्यों और किस ढंगके हेर-फेर और,अदल-बदल हुए, होते और हो सकते हैं।

इसके साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि कभी-कभी हम किसी शब्दका ठीक अर्थ न समझकर कुछ और ही समझ बैठते हैं, वह भी अर्थ ही है। जैसे किसीने कहा—वहाँ अंगूर बहुत थे। सुननेवालेने अंगूरको लंगूर समझा। ऐसी स्थितिमें सुनने-वालेने जो अर्थ समझा वही *अर्थ* होगा। कभी-कभी एक ही शब्द-से कई लोग अलग-अलग अर्थ समझते हैं जैसे किसी राजाने दतौन कर चुकनेपर अपने नौकरोंसे कहा—*ठीक करो*। इसपर एक पानी लाया, दूसरा कपड़े, लाया, तीसरेने पूजाका आसन लगाया। इससे यही बात निकली कि कहनेवाला जो अर्थ समझे वही ठीक अर्थ नहीं होता, जो सुननेवाला समझे वही ठीक अर्थ होता है इसीलिये बात ऐसी कहनी चाहिए कि उससे सुननेवाला वही अर्थ समझे जो आप समझाना चाहते हैं।

बोलनेकी और गानेकी ध्वनिमें भेद—

§७६ —**ध्वनिर्भिन्ना वाक्संगीतयोः।** [**बोलने और गानेकी ध्वनिमें भेद है।**]

यहींपर एक बात और भी समझ रखनी चाहिए कि ध्वनिका काम बोलीमें ही नहीं पड़ता, गानेमें भी पड़ता है। पर गानेकी ध्वनिमें और बोलीकी ध्वनिमें थोड़ासा भेद है। गानेमें ध्वनियोंका बँधा हुआ उतार-चढ़ाव होता है, जो हमारे यहाँ सात शुद्ध स्वरों, (*सा रे गा मा पा धा नी*), चार कोमल स्वरों, (*रे गा धा नी*), एक तीव्र स्वर (*मं*) और बाईस श्रुतियोंमें बँटा हुआ है। दूसरे देशोंमें शुद्ध, कोमल और तीव्र स्वर काम आते हैं, श्रुतियाँ नहीं। इन स्वरोंमें अलग-अलग रागोंकी बाँधपर स्वरोंका उतार-चढ़ाव होता है और ये सबके सब स्वर गलेकी *आ* ध्वनिके सहारे ही उतार-चढ़ाकर अलापे जा सकते हैं। पर बोलीकी ध्वनियाँ मुँहके भीतर तालु, मुँहके भीतरकी ऊपरी छतके बीच (मूर्द्धा), मसूड़े (वर्त्स) और दाँतपर अलग-अलग जीभका अटकाव देनेसे या ओठके खोलने-बन्द करनेसे या आगे बढ़ाने-सिकोड़नेसे निकलती हैं। उनके लिये यह कोई बन्धन नहीं है कि वे किसी उतार-चढ़ावके साथ बोली जायँ और यदि कोई अर्थ समझानेके लिये थोड़ा-बहुत उतार--चढ़ाव होता भी है तो वह अलग ढंगसे गलेमें लोच देकर पूरा कर लिया जाता है जैसे—बहकाकर हाट जानेवाले पिताको कपड़े पहनकर जाते हुए देखकर इस वाक्यको बालक गलेकी लोचका यह उतार चढ़ाव देकर यों कहेगा—

ऽ ऽ जाऽन
ऽ, मैं गया आप जा रहे

बातचीतके इस उतार-चढ़ावको भावस्वरता या सुस्वरता (इन्टोनेशन) कहते हैं। संगीतके उतार-चढ़ावको आरोहावरोह (ट्यून-पिच) कहते हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—शब्द, वाक्य, रूढ़ोक्ति और लोकोक्तियोंसे बोली बनती है और उनके एक-एक या कई अर्थ होते हैं। कुछ ध्वनियाँ ऐसी भी हैं जिनका अपना कोई अर्थ नहीं होता, दूसरी ध्वनियोंसे मिलकर शब्द बनाकर अर्थवाली होती हैं।

२—बहुतसी बोलियोंके शब्द जब वाक्यमें पहुँचते हैं तो लिंग, वचन और काल बतानेके लिये कुछ रूप बदल लेते हैं और कभी दो-चार शब्द मिलकर एक भी हो जाते हैं।

३—मिलकर अपना ठीक ठीक अर्थ समझानेवाले शब्दोंके इकट्ठे होनेपर वाक्य बनता है। कभी कभी एक-एक शब्द भी वाक्यका अर्थ दे देता है।

४—जब किसी क्रियाके साथ कोई शब्द अपना सच्चा अर्थ छोड़कर चल निकलता है उसे रूढ़ोक्ति, चलती बोली या मुहावरा कहते हैं।

५—किसी घटनाके सहारे किसी एक बँधे हुए अर्थमें चलनेवाली बातको कहावत या लोकोक्ति कहते हैं।

६—अर्थवाले शब्दों और वाक्योंसे बोली बनती है।

७—बोलने और गानेकी ध्वनियाँ अलग-अलग होती हैं।

८

बोलीने हमारा क्या बनाया—क्या बिगाड़ा ?

बोलीसे लाभ और हानि

बोलीसे चार लाभ : बड़े-बूढ़ोंकी आपबीती और जगबीती बातोंकी रखवाली; अपने मनकी बात औरोंसे कहना, औरोंकी समझना; दूसरोंसे अपनी बात मनवाना; मनबहलाव—बोलीसे बिगाड़ : कड़वा बोलनेसे झगड़ा होता है; ठीक बोलना न आनेसे मनुष्य फूहड़ समझा जाता है।

§ ७७—ज्ञानानुभवरक्षण-भावसंक्रमण-विभावन-विनोदश्च वाचा। [बोलीसे चार लाभ : बीतीकी रखवाली, मनकी बात औरोंसे कहना और दूसरोंकी समझना, दूसरोंसे अपनी बात मनवाना, और मनबहलाव]

पीछे समझाया जा चुका है कि यों तो सभी चौपाए और पंछी बोलते ही हैं और अपनी रीझ-खीझ आपसमें बता-समझा भी लेते हैं पर मनुष्यकी बोलीमें जितने अच्छे ढंगसे कोई बात कही या समझाई जाती है उतनी किसी दूसरे जीवकी बोलीमें बात समझाई नहीं जा सकती है। अपनी बोलीसे हम क्या क्या काम निकालते हैं उसका ब्यौरा इकट्ठा करें तो हम यह जान सकते हैं कि—

१—यदि भाषा न होती तो हमारे पुरखोंने जो बहुतसा ज्ञान, जो बहुतसी जगबीती जानकारी और आपबीती बातें सीखी या समझी थीं वे सब हमें एक न मिलतीं।

२—हमारे मनमें क्या पीर है, या हम किसी बातको कैसा और क्यों समझते हैं यह सब ब्यौरा हम भाषाके सहारे भली भाँति दे डालते हैं।

३—अपनी बोलीके सहारे ही अपने शब्दोंको एक ढंगसे मिला-सजाकर हम ऐसा बोलते हैं कि दूसरा सुननेवाला हमारी बात सुनकर हमारे मनकी-सी करने और कहने लगता है।

इसे हम यों समझा सकते हैं कि बोलीसे हमारा सबसे बड़ा भला यह हुआ कि हम अपने बड़े-बूढ़ोंकी आपबीती और जगबीती बातें सुनकर और समझकर उसके सहारे बहुत कुछ सीख-समझ जाते हैं और अपनी चाल-ढाल सुधार लेते हैं। सब काव्य और नीतिकी पोथियाँ, ज्ञान-विज्ञानके पोथे और और अपने गुरुओं और बड़ोंसे सुनी और सीखी कहावतें हमें इस बोलीके सहारे ही तो मिलती हैं।

कभी जब हमें सिर या पेटमें पीर उठती है, चोट लगती है, भूख या प्यास सताती है या कोई ऐसी वस्तु माँगनी होती है जिसके बिना हमारा काम न चल सके या कभी किसीको अपना दुखड़ा सुनाकर उससे अपना काम निकालना होता है या उससे सहारा माँगना होता है तो बोली ही हमारे आड़े समय काम आती है।

कभी-कभी हम यह चाहते हैं कि जो बात हम ठीक समझते हैं उसे दूसरे भी ठीक समझें और उसे माननेके लिये कमर कस कर खड़े हों; जिसे हम बुरा समझें उसे दूसरे भी बुरा समझें और उसे दूर करनेके लिये डटकर सामना करें तब भी बोली ही हमारे काम आती है।

पर इन सबसे अलग एक चौथी बात भी है जो इन ऊपरकी तीनों बातोंसे कम नहीं है, वह है—

४—हमारा मनबहलाव करनेके लिये भी बोली हमारे काम आती है। बहुतसी कहानियाँ, चुटकुले, कहावतें सब अकारथ हो जायँ यदि बोली, उनका हाथ थामकर, उन्हें सहारा देकर हमारे कानोंतक न पहुँचावे।

इसलिये भी हमें भाषाकी छानबीन करनी चाहिए और देखना चाहिए कि मनुष्यमें बोलीने कब-कब, कैसे-कैसे हमारा क्या भला किया है और यह भला करनेके लिये बोलियोंमें कैसे हेरफेर या घटा-बढ़ी की जाती है। जहाँ हम अर्थका ब्यौरा देंगे वहाँ हम इसे भली भाँति समझावेंगे कि यह हेरफेर क्यों, किस ढंगसे और कब किया जाता है।

बोलीसे हानि—

७८—कुवाचा कलहोग्राम्यत्वञ्च। [**कड़वा बोलनेसे झगड़ा होता है और ठीक बोलना न आनेसे मनुष्य फूहड़ समझा जाता है।**]

पर यह नहीं समझना चाहिए कि बोलियोंने हमार भला ही किया है। कभी-कभी हँसी-ठट्ठेमें कही हुई बातने दो घराने मिटा दिए, दो राज्य उलट दिए, दो भाइयोंके मनमें गाँठें डाल दीं, दो साथियोंको सदाके लिये एक दूसरेसे अलग कर दिया। ऐसी बोलीको कड़वी बात कहते हैं और इसीलिये यह कहावत चल पड़ी—

जिभ्या मेरी बावरी, कहिगी सरग पतार।
आपु तो कहि भीतर गई, जूती खात कपार॥

इतना ही नहीं; ठीक ढंगसे न बोलनेवाले लोग मनके सच्चे होते हुए भी दस जनोंके बीच फूहड़ और गँवार समझे जाते हैं।

वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धायते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

[यदि किसीको बढ़िया मीठा बोलना आता हो तो वही उसका सबसे बढ़िया गहना उसकी सबसे अनूठी सजावट है क्योंकि और सजावटें तो मिट जायँगी पर बोलीकी सजावट सदा रहेगी।]

इसलिये बोली कभी-कभी काम बनानेके बदले ऐसा बिगाड़ देती है कि फिर बननेकी कोई बाट ही नहीं रह जाती। इसीलिये कहा गया है—

जिभ्यामें अमृत बसै, जो कोई जानै बोल।
बिस बासिकका ऊतरै, जिभ्या काहि हिलोल॥

यदि किसीको ठीक बोलना आता हो तो समझना चाहिए कि उसकी जीभमें अमृत है क्योंकि ओझा लोग जीभ हिलाकर, मन्त्र पढ़कर ही साँपका विष उतार देते हैं।

अगली पालीमें अर्थके सब भेद समझाते हुए और अर्थमें सब हेर-फेर होनेका ब्यौरा देते हुए हम समझावेंगे कि कैसे कोई बात काम बिगाड़नेवाली या फूहड़ हो जाती है। सच पूछिए तो बोलियोंमें जो नई-नई बातें लोग बनाते और बढ़ाते चले जा रहे हैं वे इसीलिये कि हम अपनी बोलीसे दूसरोंपर जो रंग चढ़ाना चाहते हैं उसमें कोई कोर-कसर न रह जाय। देखा जाय तो हम बोलियोंमें शब्द बढ़ाते नहीं हैं। हम तो उन शब्दोंको ही ऐसा उलट-पुलटकर सजाते हैं कि उनमें हमारे चाहे हुए अर्थ समझानेकी लिये एक नई ढलन मिल जाय।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—*बोलियोंसे चार लाभ हुए हैं : बड़े-बूढ़ोंसे उनकी आपबीती और जग-बीतीकी जानकारी; अपने मनकी पीर या चाह औरोंको बतानेका भरोसा; अपनी बात औरोंसे मनवानेकी चमक; अपना मन-बहलाव।*

२—*बोलियोंसे यह हानि हुई है कि ठीक बोलना न जाननेसे या कड़वी बात बोलनेसे बिगाड़ होता है, लड़ाई-भिड़ाई हो जाती है और बना-बनाया काम बिगड़ जाता है। ठीक बोलनेका ढंग न जाननेवाला फूहड़ और गँवार समझा जाता है।*

॥ अनेकभाषावित्-साहित्याचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी-द्वारा विरचित भाषालोचन ग्रन्थकी पहली पाली आठ अध्यायों और ७८ सूत्रोंमें पूरी हुई ॥

दूसरी पाली

[ध्वनियों, शब्दों, अर्थों और वाक्योंमें क्यों और कैसे हेरफेर होते हैं ?]

१

ध्वनि कैसे उपजती है ?

मुँहकी बनावट

जीभ, ओठ और नाकसे रुकावट देकर बाहर निकाली हुई भीतरकी साँस ही ध्वनि उपजाती है—भीतर ली जानेवाली साँससे भी ध्वनि उपजती है—आत्मा और बुद्धि मनको उकसाते हैं, जो शरीरकी अग्निको भड़काकर वायु उठाता है, वही वायु हृदयमें गूँजकर सिरमें टकराकर मुँहसे बहुत-सी ध्वनियाँ उपजाता है—ध्वनिका सहारा कान ही है—अर्थवाली मनुष्यकी बोलीको ही बोलीकी ध्वनि कहते हैं—तान्त्रिक लोग कुंडलिनीसे ध्वनियोंकी उपज मानते हैं—वैखरी बोलीकी ही हम जाँच कर सकते हैं।

§ १—**जिह्वौष्ठनासिकाभिः स्वरन्यग्रोद्भवोच्छ्वासरोधनाद्वाग्ध्वनिः। [जीभ, ओठ और नाकसे रुकावट देकर निकाली हुई भीतरकी साँस ही ध्वनि बनती है।]**

पीछे यह बताया जा चुका है कि जो सुनाई पड़े उसीको ध्वनि कहते हैं। पर यहाँ हम उस ध्वनिकी भी चर्चा करेंगे जो मनुष्यके मुँहसे निकलकर कानको सुनाई पड़ती है।

भीतरकी साँससे ध्वनि—

हमारे गलेसे एक ध्वनि तो वह निकलती है जो कुल्ला करते हुए, जँभाई लेते हुए या गानेके लिये अलाप लेते हुए आऽऽऽऽ जैसी सुनाई पड़ती है। यह ध्वनि या स्वर या बोली गलेसे तब निकलती है जब भीतरकी साँस हमारे गलेमें बनी हुई बोलीकी डिबिया (स्वरयंत्र या लैरिंक्स) में लगी हुई दो पतली लचकदार तनियों (डोरियों या तन्त्रियों)को कँपाकर मुँहसे निकलती है।

इस ध्वनि या स्वरको बोलीकी ध्वनियोंसे अलग समझना चाहिए क्योंकि बोलीकी ध्वनियाँ तो तब बनती हैं जब हम बोलीकी डिबियासे होकर आनेवाली भीतरकी साँसको मुँहके भीतर जीभका अटकाव देकर या ओठोंको सिकोड़-फैलाकर या नकियाकर एक सधे हुए ढंगसे निकालते हैं।

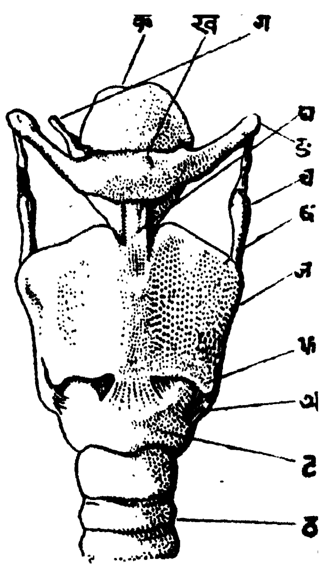
भीतरके मैले वायुसे बोली बनती है—

बाहरका वायु या भोजन-पानी मुँहमें पहुँचानेके लिये हमारे मुँह-पर दो छेद बने हुए हैं—एक नाक और दूसरा मुँह। नाकका काम है साँस लेना और सूँघकर किसी वस्तुको अच्छी या बुरी गंधवाला समझकर यह बताना कि यह खाई-पीई जा सकती है या नहीं। मुँहका काम भी है खाना या पीना, पर उससे हम बोलनेका भी काम लेते हैं। बच्चोंको प्यार करनेके लिये हम मुँहसे उन्हें चूमते भी हैं, सीटी भी दे लेते हैं, बीन या बाँसरी भी बजा लेते हैं, पर सबसे बड़ा काम जो हम मुँहसे लेने लगे हैं वह बोलना ही है। यह बोलनेका काम मुँहका उल्टा काम होता है क्योंकि मुँहसे जो कुछ हम खाते या पीते हैं वह बाहरसे हमारे पेटमें जाता है और केवल अपच होनेपर न पचा हुआ अन्न उल्टी बनकर मुँहसे निकल पड़ता है। यह रोग ही समझा जाता है और बुरा भी माना जाता है। पर बोलीमें एक बड़ी अनोखी बात होती है कि जो वायु नाकसे साँस लेनेके साथ भीतर जाकर भीतरकी सब मैल लेकर नाकसे बाहर निकल आता है वही भीतरका मैला वायु, बोलते समय नाककी बटिया छोड़कर हमारे गलेमें बनी हुई बोलीकी डिबियाके भीतरकी दो तनियोंको कँपाता और धकियाता हुआ मुँहके भीतर हमारी जीभके अटकाव या ओठके फैलाने, सिकोड़ने, आगे बढ़ाने या नकियानेसे ढंग-ढंगकी

ध्वनियाँ बनाता हुआ निकलता है। यह समझिए कि हमारी बोली भीतरके मैले वायुसे बनती है।

हमारा गला—

कभी हम गलेकी बनावट भली-भाँति परखें तो हमें यह देखकर कम अचरज नहीं होगा कि हमारे गलेके भीतर मुँहसे लगी हुई दो नलियाँ हैं। एकसे हमारे फेफड़ोंमें नाकसे खींची हुई साँस जाती है इसे *साँसकी नली* कहते हैं। इसीके पीछे *भोजनकी नली* है जो हमारे पेटमें मुँहसे खाया हुआ खाना या पानी पहुँचाती है। भोजनकी नलीके ऊपर साँसकी नलीकी ओर एक ओर ही खुल सकनेवाली एक ढपनी (वाल्व) बनी हुई है जिसे *बोलीकी डिबिया (स्वरयन्त्र या लैरिंक्स)* कहते हैं।



चित्र सं० १

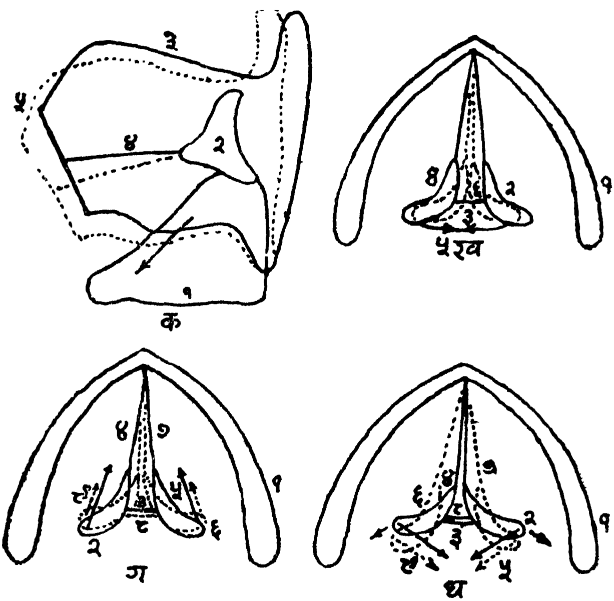
[बोलीकी डिबिया (स्वरयन्त्र या लैरिंक्स)की चबनी (कार्टिलेज) और झिल्लियाँ (लिगामेंट)। (क) स्वरयन्त्रका ढकना (एपिग्लौटिस); (ख, ग, ङ) स्वरयन्त्रकी भीतरी हड्डियाँ; (च, ज, झ, ञ) चबनी; (घ, छ, ट) चबनियोंको जोड़नेवाली झिल्लियाँ; (ट) साँसकी नलीका दूसरा छल्ला (उसके ऊपर पहला छल्ला है)।]

ढपनीका ढकना (एपिग्लौटिस)—

यह ढपनी साँसकी नलीकी सबसे बड़ी पहरेदार है। यह भी दो काम करती है—(१) एक तो यह कि मुँहसे आए हुए भोजन या पानीको देखते ही साँसकी नलीका मुँह बन्द कर लेती है कि भोजन-पानी कहीं साँसकी नलीमें पहुँचकर मनुष्यके प्राण न ले ले और, (२) दूसरा काम यह करती है कि भीतरसे आनेवाले वायुको अपने भीतर तनी हुई दो पतली लचकदार तनियों (बोलीकी डोरियों) को कँपाकर बोली निकालती है। इसीलिये हमारे यहाँ बताया गया है कि खाते समय बोलना और बोलते समय खाना ठीक नहीं होता।

चित्र १ में बनी हुई इस बोलीकी डिबियामें बहुतसी मांसकी भीतें या चबनियाँ हैं जो लचीली झिल्लियोंसे जुड़ी हैं। उसीमें भीतर दो लचीली पतली तनियाँ (डोरियाँ) हैं जिन्हें *बोलीकी डोरियाँ* (*वोकल कौर्ड्स*) कहते हैं। ये तनियाँ भीतरकी तनिक-सी साँसके झोंकेसे हटकर अलग हो जाती हैं और फिर मिल जाती हैं। इस डिबियामें तीन मांसपट्टियाँ हैं जिनमेंसे एक इस डिबियाका ढकना (एपिग्लौटिस) है जो साँसकी नलीकी ओर झुका हुआ जीभके जैसा है और यही भोजन या पानीको साँसकी नलीमें जानेसेरोकता है। इस बोलीकी डिबियामें जो दो बोलीकी डोरियाँ होती हैं उनकेबीचमें जो खुला हुआ खोखला है उसीमेंसे होकर वायुका आना-जाना होता है और यह छोटा-बड़ा होता रहता है। (देखो चित्र २)

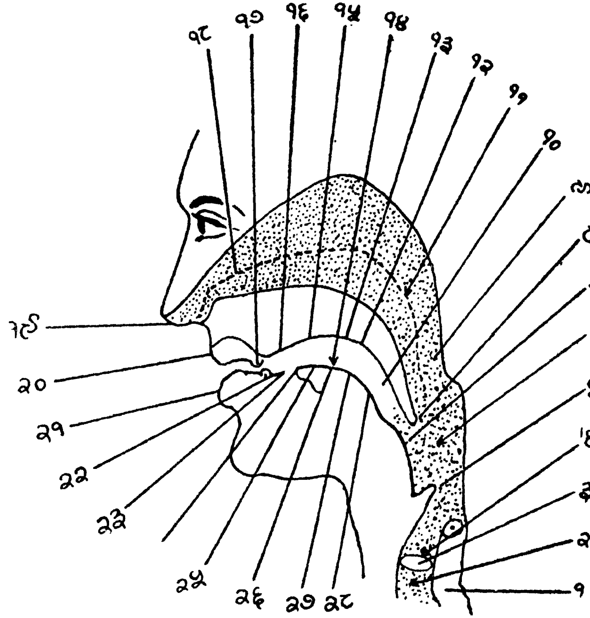
चित्र सं० २



बोलीकी डोरियोंके मान-चित्र

[बिन्दुवाली और बाणकी रेखाएँ यह बताती हैं कि बोलीकी डिबियों के भीतरकी चबनियों और बोलीकी डोरियों (वोकल कौर्ड) के तनाव, खिंचाव और मिलाव कैसे होते हैं। (क) में १, २, ३, ५ चबनियोंकी चाल और ४ बोलीकी डोरी। (ख)में १, २, ५, ६ चबनियाँ और झिल्लियाँ, ३ डिबियाका ढकना (एपिग्लौटिस), ४ बोलीकी डोरी। (ग) में वैसा ही जैसा क और ख में हैं, इसमें ४ और ७ बोलीकी डोरियाँ हैं और ८ ढकनेकी पिछाड़ी है। (घ) में (ग) का पीछेका भाग दिखाया है।]

चित्र सं० ३



[१—भोजनकी नली (गलेट); २—बोलीकी डिबिया (स्वरयन्त्र या लैरिंक्स); ३—ध्वनिकी डोरियाँ (वोकल कौर्ड्‌स या स्वरतंत्री); ४—बोलीकी डिबियाका मुँह (ग्लौटिस या काकल); ५—बोलीकी डिबियाका ढकना (एपिग्लौटिस या अभिकाकल); ६—साँसकी नली (विंड पाइप); ७—मुँहका खोखला (माउथ कैविटी या मुख-विवर); ८—कौवा (यूवुला); ९—नाकका खोखला (नैसल कैविटी या नासिका-विवर); गला (गटर या कंठ); ११—साँसकी बटिया; १२—कोमल

तालु (सौफ़्ट पैलेट); १३—मूर्धा (सेरेब्रल); १४—जीभ; १५—कड़ा तालु (हार्ड पैलेट या कठोर तालु); १६—ऊपरका मसूढ़ा (वर्त्स या अलवेओला); १७—ऊपरके दाँत (अपर टीथ); १८—साँस लेनेकी ठीक बटिया (नाकके भीतर); १९—नाक; २०—ऊपरका ओठ; २१—नीचेका ओठ; २२—नीचेके दाँत; २३—नीचेका मसूढ़ा (वर्त्स); २४—जीभकी नोक (जिह्वाग्र); २५—जीभकी अगाड़ी (पुरोजिह्वा); २६—जीभका बीच (मध्य-जिह्वा); २७—जीभकी पिछाड़ी (पश्चजिह्वा); २८—जीभकी जड़ (जिह्वा-मूल) ।]

मुँहके भीतर

कौवा (अलिजिह्वा या यूवुला)—

बोलीकी इस डिबियासे ऊपर चढ़कर हम मुँहके उस खोखलेमें पहुँच जाते हैं जहाँसे नीचे साँस और भोजनकी दो नालियाँ जाती हैं और ऊपर मुँह और नाकके दो खोखले खुल जाते हैं। ये दोनों खोखले जहाँसे फटते हैं वहाँ *कौवा* या एक छोटीसी जीभ नीचेको लटकी रहती है जो भीतरसे आनेवाले वायुको नाकमें या मुँहमें जाने या न जानेके लिये अटकावका काम करती है।

हमारी जीभ—

मुहके खोखलेमें हमारी *जीभ* हमारे सबसे बड़े कामकी है क्योंकि वही मुँहके खोखलेके भीतर ऊपरके ढलवाँ पाटनमें अलग-अलग अटकाव देकर अलग-अलग ध्वनियाँ निकालती है। मुँहके ऊपरी पाटनमें गलेसे उठते हुए हम दाँततक बढ़ चलें तो बोलते हुए हमें जीभके लगभग पाँच अटकाव देने पड़ते हैं—१. एक तो गलेसे थोड़ा-सा ऊपर चढ़कर जहाँ कोमल तालु है, २. दूसरा, मुँहकी छतके ठीक बीचों-बीच जिसे मुँहका सबसे ऊँचा सिरा (मूर्द्धा) कहते हैं, ३. तीसरा, कड़ा तालु

(कठोर तालु), जो ऊपरके मसूड़े और मूर्द्धाके बीचमें है, ४. चौथा अटकाव मसूड़े (वर्त्स) पर है, और ५. पाँचवाँ अटकाव दाँतपर है। इस अटकावमें जीभके पाँच ठौर हमारे काम आते हैं—१. एक, जीभकी जड़, २. दूसरे, जीभकी पिछाड़ी, ३. तीसरे, जीभका बीच, ४. चौथे, जीभकी अगाड़ी और ५. पाँचवें, जीभकी नोक। इनके आगे दाँत हैं जिनके या तो पीछे जीभकी नोक अटकाकर कुछ ध्वनियाँ बोली जाती हैं या जिनके सिरोंपर जीभ अटकाकर ध्वनियाँ निकली जाती हैं (जैसे अंग्रेजीके *थ़ौट्* शब्दका *थ़*)। कभी-कभी जीभको भीतर उलटकर जीभके नीचेके सिरेको मूर्द्धा या कोमल तालुपर अटकाना और रगड़ना पड़ता है जैसे तमिलका ऴ बोलते हुए।

ओठ—

इसके आगे हमारे ओठ हैं जिन्हें मिला, अलगा, फैला, सिकोड़ या तानकर बहुत सी ध्वनियाँ निकाली जाती हैं।

नाक—

जब किसी ध्वनिको कुछ नकियाना होता है (जैसे *आँख*, *पाँच*, *साँप*, *गाँवँ* शब्द बोलते हुए) तब मुँहके भीतरसे बाहर आनेवाली कुछ साँस नाकसे छोड़ दी जाती है और नाक भी हमारी बोलीमें हाथ बँटा लेती है। कभी कभी पाठ-पूजा करते हुए हम हँ हूँ जैसी ध्वनि मुँह बन्द किए हुए केवल नाकसे ही बोल जाते हैं।

§ २—**श्वासोऽपि ध्वनियोजकः। [भीतर ली जानेवाली साँससे भी ध्वनि बनती है।]**

पर यह नहीं समझना चाहिए कि भीतरसे बाहर निकलने वाली साँस ही ध्वनि उपजाती है। कभी कभी हम बाहरसे मुँह-में साँस खींचकर भी ध्वनियाँ निकालते हैं जैसे भैंस, गाय, बैल

या घोड़ेको हाँकते हुए क़्लै क़्लै करनेमें या सिन्धी बोलीके ब, द, ज, ग ध्वनियोंको बोलते हुए (जो बकरी दीअल, गपा और जिब्भ शब्दोंमें भीतर साँस लेकर बोली जाती हैं) या संस्कृतकी उपध्मानीय ध्वनियाँ बोलते हुए।

सच पूछिए तो मुँहके दो ही ऐसे अंग हैं जिन्हें चलाने-घुमानेसे ध्वनियाँ निकलती हैं—वे हैं जीभ और ओठ। तालु, दाँत और मसूड़े तो अपने अपने ठौरपर ज्योंके त्यों बैठे रहते हैं। चीनी, तिब्बती जैसी कुछ ऐसी बोलियाँ तो हैं जिनमें ओठ ही नहीं, गाल भी फैलाने-सिकोड़ने पड़ते हैं और जबड़े भी आगे पीछे चलाने पड़ते हैं।

§ ३—आत्मा—बुद्धिमनःकायाग्निमारुतसमन्वयादुरसि मूर्ध्नि मुखे च स्वरवर्णप्रभव इति पाणिनिः।

[आत्मा और बुद्धि मिलकर मनको उकसाते हैं, जो शरीरकी अग्निको भड़काकर वायु उठाता है। वही वायु हृदयमें गूँजकर, सिरमें टकराकर, मुँहसे बहुत सी ध्वनियाँ उपजाता है।]

पाणिनिने अपनी शिक्षामें बोलीकी उपज समझाते हुए बताया है कि जब हम कोई काम करना चाहते हैं तो पहले हमें उस कामकी जानकारी होती है, फिर उसके लिये चाह उपजती है और तब हम उसे पाने या पूरा करनेके लिये जतन करते हैं। ऐसे ही जब हम कुछ बोलते हैं—तो हमारे बोलनेसे पहले भीतर ही भीतर बहुत सी चहल-पहल हो चुकती है। इसीको समझाते हुए पाणिनि कहते हैं—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहत्य स प्रेरयति मारुतम्॥

मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः॥
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः।
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः ॥

[हमारा आत्मा जब बुद्धिके साथ मिलकर कोई भी बात समझता है और बोलनेकी चाहसे मनको जोड़ता है तब शरीर-के भीतरकी आगको मन भड़काता है और वह आग वायु-को झकझोरती है। वह वायु हृदयमें पहुँचकर धीरे-धीरे गूँजता है और तब वह वहाँसे ऊपर चढ़कर सिरसे टकराकर मुँहमें पहुँचकर बहुत सी ध्वनियाँ उपजाता है। ध्वनिके उतार-चढ़ाव (*स्वर*), बोलनेमें बिलमाव (*काल*), बोलनेका ठौर (*स्थान*) बोलनेमें किया हुआ जतन (*प्रयत्न*) और *अनुप्रदान*-के भेदसे पाँच ढंगकी हैं।] इसे हम आगे समझावेंगे। पर इसमें दो बातें समझनेकी हैं। एक तो मनका शरीरकी आगको उकसाना और उससे वायु उपजाना, दूसरे, उस वायुका हृदयमें जाकर गूँजना। ये काम बोलनेके साथ होते हैं या नहीं, इस-पर अभी तक खोज नहीं की गई फिर भी इसे हम अच्छे ढंगसे समझ या समझा सकते हैं। जब हम कोई भी अच्छी या बुरी वस्तु देखते हैं या अच्छी-बुरी बात सुनते-समझते हैं तो हमारे शरीरमें भीतर ही भीतर हलचल होती है। यह हलचल तभी हो सकती है जब भीतरकी आग या गर्मी सुलग खड़ी हो—इसी लिये जलना (डाह करना), आग-बगूला होना या जल उठना (बिगड़-खड़े होना) जैसे मुहावरे भी बन गए हैं। इसीपर जब हम कुछ बोलना चाहते हैं तो भीतरका वायु बाहर निकलता है।

हमारे कान—

§ ४—**श्रवणेन्द्रियो ध्वन्याधारः । [ध्वनिका सहारा कान ही है ।]**

ऊपर जो ब्यौरा दिया गया है उससे आप यही समझे होंगे कि बोलियोंकी ध्वनियाँ निकालनेका काम हमारा मुँह ही करता है। पर यह समझना बड़ी भारी भूल है। यदि भगवान्‌ने हमें कान न दिए होते और हम सुन न पाते तो हमारी बोलियाँ ही न बनतीं, हम गूँगे रह जाते और मुँहसे खाना खाने भरका काम लेते। कान न होते तो न हम गा सकते, न बजा सकते, न कुछ सुन सकते; क्योंकि कान इतना ही काम नहीं करता है कि वह अपने चारों ओर जो बहुत सी ध्वनियाँ उपजती हैं उन्हें सुनता रहे वरन् वह मुँहसे निकली हुई बोलियों और ध्वनियोंको भी सुनता, समझता, परखता, जाँचता और खोटे-खरेकी पहचान करके ठीक भी करता चलता है। इसीलिये यह देखा गया है कि जो बचपनसे बहरे होते हैं वे गूँगे भी होते हैं।

चित्र सं० ४ में दिए हुए कानके ढाँचेको हम ध्यानसे देखें तो हमें जान पड़ेगा कि इसके तीन कोठे हैं। पहलेको बाहरी कान, दूसरेको बीचका कान और तीसरेको भीतरी कान कह सकते हैं। बाहरी कानमें एक तो वह ऊबड़-खाबड़, ऊँचा-नीचा पंखे या सूप जैसा कनपटीपर उठा हुआ पंखा (लौर) है जो सामनेसे आनेवाली ध्वनिकी लहरको इधर-उधर बहककर निकल जानेसे रोकनेके लिये आड़ बनकर खड़ा है जैसे सिंधके हैदराबाद नगरमें सब घरोंकी छतोंपर बने हुए मंघे (मकानोंके कान) सामनेसे आनेवाले वायुको रोककर नीचे तीन खण्डोंतक

चित्र सं० ४

कानके तीन भाग और उनके चारों ओरके अंग

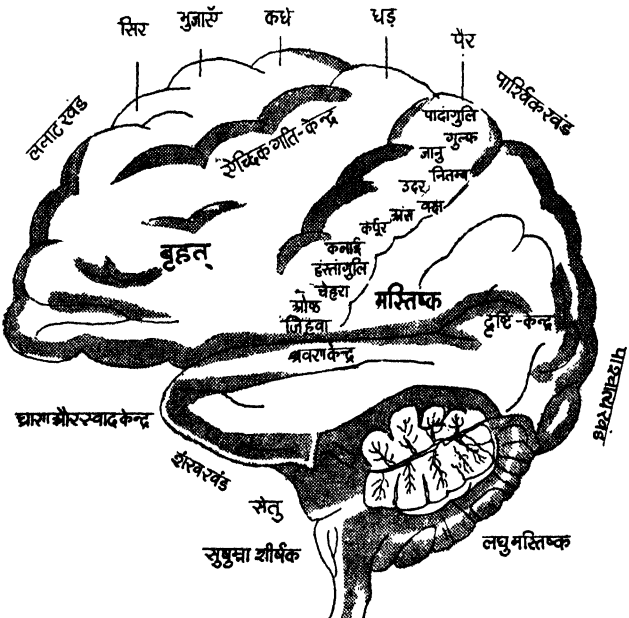


[बाहरी कान और उसके बीचके छेदमें कहीं हड्डी और कहीं चबनी हैं। बाहरी और बिचले कानके बीच एक झिल्लीका पर्दा है। बिचले कानकी सकरी कोठरीमें छोटी छोटी तीन हड्डियोंकी साँकल हैं जो एक ओर इस पर्देसे लगी रहती है और दूसरी ओर भीतरी कानकी भूलभुलैयाको घेरनेवाली हड्डीकी खिड़कीमें जुड़ी रहती है। बिचले कानको गलेसे जोड़नेवाली गला-कान-नली भी चित्रमें दिखलाई गई है।]

पहुँचा देते हैं। हमारे कानके ये उठे हुए पंखे बाहरसे आनेवाली ध्वनिकी लहरोंको रोककर कानके भीतर घुमा देते हैं और वे लहरें इसी ढकनेसे लगी हुई नली या छेदसे होकर भीतर उस झिल्लीतक पहुँच जाती हैं जो इस बाहरी कान और बीचके कानके बीचमें ओट बनकर खड़ी रहती है।

चित्र सं० ५

हमारे सिरके भीतर



[इसमें बुद्धिका वह लुचलुचा लहरिया भाग दिखाया गया है जिसके अलग-अलग जोड़ोंपर शरीरके अलग-अलग ठौरोंसे आनेवाली समझ पूरी होती है। इसे देखनेसे यह भी जान पड़ेगा कि जीभ और कानकी समझके ठौर पास-पास हैं।]

बीचका कान एक छोटी सी कोठरी जैसा है जिसमें हथौड़े (मुद्गर), निहाई और घोड़ेकी काठके पावदान (रकाब) की बनावटकी हड्डियाँ होती हैं। इन हड्डियोंका हथौड़ेवाला सिरा तो बाहरी और बिचले कानकी झिल्लीसे सटा रहता है और दूसरा सिरा भीतरी कानके बाहरी छेदसे मिला रहता है।

भीतरी कानमें शंखकी बनावट जैसा एक हड्डीका ढाँचा (कौक्लिया) होता है जिसके खोखलेमें झिल्लियाँ बनी रहती हैं। इन झिल्लियोंके बीच कुछ पनियल रस भरा रहता है। इस शंख जैसी हड्डीके ढाँचेके दूसरी ओर भीतरी सिरेकी झिल्लीसे मिली हुई पतली सी नली हमारी बुद्धिकी कोठरीसे जाकर जुड़ जाती है। कोई भी ध्वनि जब बाहरसे कानमें घुसती है तो वह बाहरी और बिचले कानके बीचकी झिल्लीको कँपा देती है। इस कँपनेसे बिचले कानकी तीनों हड्डियोंमें हलचल होती है और वे भीतरी कानके शंखमें बहते हुए पनियल रस-में लहरें उठाती हैं। वे लहरें बुद्धिकी कोठरीसे जुड़ी हुई नलीके सहारे हमारी समझ-तक सब ध्वनि पहुँचा देती हैं। (देखो चित्र ५) इसीलिये हमने पिछली पालीमें यह समझा दिया था कि जो सुना जाय उसीको ध्वनि कहते हैं।

सजातीय ध्वनि (या फ़ोनीम)—

पिछली पालीमें हम बता आए हैं कि सब बोलियोंमें दो ढंगके ध्वन्यंश या ध्वनिके झटके होते हैं जिन्हें लोग भूलसे ध्वनि-मात्र, ध्वनिश्रेणी, ध्वनि-ग्राम या ध्वनि-तत्त्व कहते हैं। इसे यदि एकस्वरी ध्वनि कहें या एक लहर ध्वनि कहें तब तो ठीक है किन्तु श्रेणी, ग्राम और तत्त्व कहनेसे बड़ा घपला

खड़ा हो सकता है। पिछली पालीमें ही हम बता आए हैं कि ध्वनिके झटके दो ढंगके होते हैं—एक अपने सहारे खड़े रहने वाले (स्वर) और दूसरे सहारा चाहनेवाले (व्यंजन)। यों तो एक ही ध्वनिका झटका कई मुँहोंमें पड़कर या एक ही मनुष्य के मुँहसे कई बोलियोंमें निकलकर अलग अलग-सा जान पड़ता है पर वह मुँहके भीतरसे एक गूँज जैसी बनकर ही निकलता है इसलिये उसके भारीपन, पतलेपन, खुले होने या चबाकर बोलनेसे चाहे जितना अलगाव जान पड़े पर उसकी झनकार या चोट कानके पर्देपर एक ही ध्वनिकी पहचान देती है जैसे— किसी मराठेके मुँहसे निकले अडचणाका च् और उत्तर-प्रदेशीके मुँहसे निकले अड़चनका च सुननेमें दो ढंगके खिंचाव और चबावके साथ सुनाई तो पड़ेगा पर कानपर जो ध्वनिकी चोट लगेगी उससे च की ध्वनि ही समझमें आवेगी दूसरा नहीं। यह वैसे ही होता है जैसे हम कई ढंगकी लकड़ियोंपर चोट मारें तो चोटकी ध्वनियोंमें अलगाव होते हुए भी समझमें यही आवेगा कि यह लकड़ीपर पड़ी चोट है। इस एक ही जातिकी ध्वनियोंको आपसमें एक लहरवाली या सजातीय ध्वनि कहते हैं।

बोलीकी ध्वनि (स्पीच-साउण्ड)—

§ ५—**व्यक्ता हि सार्था नृवाक्।** [**अर्थवाली मनुष्यकी बोली ही बोलीकी ध्वनि होती है**]।

हम यह भी पीछे समझा चुके है कि बोलियोंकी जाँच-परख-में हम बोलियोंमें काम आनेवाली उन्हीं ध्वनियोंका ब्यौरा देंगे जिन्हें मनुष्य, अपने मुँहके भीतर किसी ठौरपर जीभका अटकाव देकर या ओठोंके खिंचाव, तनाव या फैलावसे एक ढंगका जतन करके बोलता हो, जो बोलीमें मान ली गई हों,

जिन्हें बोलनेवाला कुछ समझानेके लिये बोले और उस बोलीको समझनेवाला उसे सुनकर उससे कुछ अर्थ समझ ले। यह ध्वनि बोलीकी ध्वनि भाषा-ध्वनि या स्पीच-साउण्ड) कहलाती है। इसीको हमारे यहाँ समझकी ध्वनि या सधी हुई ध्वनि (व्यक्त ध्वनि) कहते हैं जिसका मनुष्योंने कोई अर्थ बना लिया है जैसे संस्कृत या अरबीकी ध्वनियाँ या वे ध्वनियाँ जो अर्थवाले शब्द बनानेके लिये बहुतसी बोलियोंमें मान ली गई हैं।

अनगढ़ (अव्यक्त) ध्वनियाँ—

ऊपरकी इन सधी हुई ध्वनियोंको छोड़कर जो ध्वनियाँ लिखकर नहीं समझाई जा सकतीं उन्हें अव्यक्त या अनगढ़ ध्वनियाँ कहते हैं जैसे— दो पत्थरोंकी टक्करसे निकली हुई ध्वनि। ये सधी हुई और अनगढ़ ध्वनियाँ दो ढंगकी होती हैं—एक कनमिठ और दूसरी कनफोड़। कनमिठ बोलियाँ सुननेमें भली लगती हैं और यह जी करता है कि उन्हें सुनता चला जाय जैसे वीणाकी गूँज या कोयल की कूक या अपनी बोली में म न त ल जैसी ध्वनियाँ। कुछ ध्वनियाँ कनफोड़ होती हैं जैसे रेलगाड़ी-की सीटी, जहाजका भोंपा, चीलगाड़ी (विमान)की घड़घड़ाहट, बिजलीकी कड़क या ट ठ ड ढ ण र ब जैसे वर्ण।

कुण्डलिनीसे ध्वनिकी उपज—

§ ६—ध्वनिमूला हि कुण्डलिनीति तान्त्रिकाः। [तान्त्रिक लोग कुण्डलिनीसे ही ध्वनियोंकी उपज मानते हैं।]।

तंत्रशास्त्रके ग्रन्थ शारदातिलकमें आया है कि सब जीवों के मूलाधार (गुदा और लिंगके बीच दो अंगुल चौड़ा वह फैलाव

जिसे त्रिकोण कहते हैं, जहाँ चाह या इच्छा, समझ या ज्ञान, काम करनेकी ललक या क्रिया होती है और जहाँ करोड़ों सूर्योंके उजालेसे भरा हुआ, अपनेसे उपजनेवाला लिंग बैठा रहता है) में नागिन जैसी कुण्डली मारे हुए एक नाड़ी है। यही कुण्डली हमारी बोलीकी ध्वनियाँ उपजाती है। इस कुण्डलीसे शक्ति या उकसाव : इस उकसाव या शक्तिसे ध्वनि : ध्वनिसे नाद या जमी हुई ध्वनि : नादसे निबोधिका या जाननेकी शक्ति : निबोधिकासे अर्धेन्दु : अर्धेन्दुसे बिन्दु : और बिन्दुसे बयालीस वर्ण या ध्वनियोंवाली वर्णमाला उपजती है [१]। यही कुण्डलिनी नाड़ी सब वर्णोंमें मिलकर मंत्र जगाती है, शब्द और अर्थमें हेरफेर करती है और ऊँचे बोले जानेवाले (*उदात्त स्वर*), नीचे बोले जानेवाले (*अनुदात्त*) और बीचमें बोले जानेवाले (*स्वरित*) स्वरोंको ठीक समझाती है। यही चित् शक्ति या समझको उकसानेवाली शक्ति जब सत्त्वगुणसे मिलती है तब उसमें *शब्द* (*पद*) और *वाक्य* चमक उठते हैं। वही सत्त्वसे मिली हुई शक्ति आकाशमें पहुँचकर वहाँ रजोगुणसे मिलकर जो गूँज उपजाती है वही ध्वनि बन जाती है। यही ध्वनि जब अक्षर बनकर तमोगुणसे मिलती है तब वह पद और वाक्य बन जाती है।

१—द्विचत्वारिंशता मूले गुणिता विश्वनायिका।
सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः॥
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तमान्निबोधिका।
ततोऽर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः॥

—शारदातिलक

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—

योगशास्त्रके अलंकार-कौस्तुभ और पदार्थादर्श जैसे ग्रंथोंमें ये वर्ण चार ढंगके बताए हैं—*परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी।* जब मूलाधार (गुदा स्थान) से पहले पहल नाद बनकर वर्ण उपजता है तब उसे *परा* कहते हैं। यह ध्वनि योगियोंको ही तब सुनाई देती है जब वे अपने मनको जकड़ और बाँधकर ब्रह्मका ध्यान करते हैं। जब वह नाद बना हुआ वर्ण मूलाधारसे उठकर धीरे-धीरे हृदयमें पहुँचता है तब उसे *पश्यन्ती* कहते हैं। यह ध्वनि भी योगियोंको ही सुनाई पड़ती है। फिर जब वह हृदयसे उठकर बारी-बारीसे समझ (बुद्धि) और पक्की चाह (*संकल्प*) के साथ मिलती है तब *मध्यमा* और फिर जब वह समझ (बुद्धि) से उठकर गलेमें पहुँचकर मुँहसे निकल पड़ती है तब *वैखरी* कहलाने लगती है।

वैदिक साहित्यमें बोलियोंकी पहचान—

वैदिक साहित्यमें तीन ढंगकी ध्वनि (वाक्) बताई गई है—

१—*दैवी*, जो योगियोंको समाधि लगा लेनेपर सुनाई पड़ती है, जिसे अनाहत या अनहद नाद कहते हैं। *परा, पश्यन्ती* और *मध्यमा* इसीमें आती हैं।

२—*भौतिक*—जिसमें बादलका गरजना, भूकम्पकी गड़-गड़ाहट, बिजलीकी कड़क, वायुकी सरसराहट आदि हैं।

३—*पार्थिव* या जीवोंके मुँहसे बोली जानेवाली।

यह पार्थिव वाक् दो ढंगकी होती है—१. *निरुक्ता* और २. *अनिरुक्ता*। मनुष्यके मुँहसे बोली जानेवाली जिन ध्वनियोंके अर्थ बाँध दिए गए हैं उन्हें *निरुक्ता* और पशु-पंछियोंकी बोलियोंको

अनिरुक्ता कहते हैं क्योंकि उनका कोई अर्थ नहीं बाँधा गया है। ऊपर जो चार ढंगकी बोलियाँ बताई गई हैं उनमें *वैखरी* तो *निरुक्ता* होती है; *मध्यमा* कभी *निरुक्ता*, कभी *अनिरुक्ता*; *पश्यन्ती* और *परा* सदा *अनिरुक्ता* ही होती हैं। हमारी जाँच-परखके लिये वैखरी ही कामकी है, इसलिये हम उसीकी छानबीन करेंगे।

§ ७—**वैखर्याः जिज्ञासा।** [वैखरीकी ही जाँच-परख करते हैं।]

यह वैखरी बोली दो ढंगकी होती है—१. एक तो, बोलीके नियममें ढली हुई या *व्याकृता* और २. दूसरी, बोलीके नियमोंसे बाहर या *अव्याकृता*। मनुष्योंने जिन ध्वनियोंके अर्थ बाँध दिए हैं और जिन्हें वे अपनी बोलचालमें काम लाते हैं और किसी एक नियमके साथ उन्हें बोलते हैं उन्हें *व्याकृता* कहते हैं। इन्हें छोड़कर मुँहसे निकाली हुई सीटी या हुरैं-हुरैं, ल्लै-ल्लै जैसी अललटप या अनगढ़ ध्वनियाँ सब *अव्याकृता* हैं। यहींपर यह समझ रखना चाहिए कि जो बोली हम समझते न हों वह भी हमारे लिये *अनिरुक्ता* और *अव्याकृता* ही है भले ही वह उस बोली बोलनेवालोंके लिये *व्याकृता* हो। इस पोथीमें हम विश्व भर-की *व्याकृता* ध्वनियों और बोलियोंकी ही जाँच-परख करेंगे।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—गलेके भीतर बनी हुई बोलीकी डिबियाके भीतरकी डोरियोंको कँपाकर आती हुई भीतरकी साँस ही जीभके अटकाव या ओठके चलानेसे या नकियानेसे बहुत सी ध्वनियाँ उपजाकर

निकलती हैं। कभी-कभी भीतरको साँस लेते हुए भी ध्वनियाँ निकाली जाती हैं।

२- पाणिनि मुनि मानते हैं कि आत्मा और बुद्धि जब मनको उकसाते हैं तब शरीरकी अग्नि भड़कती है, उससे वायु उठकर हृदय और सिरमें गूँजकर मुँहसे ध्वनियाँ उपजाता हुआ निकालता है।

३—कान न होते तो बोलियाँ नहीं बन सकती थीं।

४—मनुष्यके मुँहसे निकली हुई अर्थ बतानेवाली ध्वनिको ही बोलीकी ध्वनि कहते हैं।

५—तान्त्रिक लोग मानते हैं कि कुंडलिनीसे ही परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी नामकी चार ध्वनियाँ उपजती हैं जिनमेंसे वैखरी ही सबको सुनाई देती है इसलिये उसपर ही सोच-विचार हो सकता है।

२

ध्वनियोंका मेल कैसे बैठाया जाय ?

ध्वनियोंकी पाँत-बन्धी (वर्गीकरण)

बोलीकी डोरियोंसे रगड़ खाकर निकली हुई ध्वनिको घोष और कम रगड़ खाई हुई ध्वनिको अघोष कहते हैं—क, च, ट, त, प वर्गोंके पहले-दूसरे अक्षर और श, ष स अघोष या धीमे होते हैं; बचे हुए व्यंजन और सभी स्वर गहरे (घोष) होते हैं; फुसफुसाहटसे बोले जानेपर सभी धीमे (अघोष) हो जाते हैं—फुसफुसाहटको बहुत धीमा या अत्यघोष कहते हैं—मुँहमें जहाँसे कोई ध्वनि बोली जाय उसे उसका स्थान कहते हैं—बोलते हुए जीभ और ओठसे भीतरकी साँसको टोककर निकालनेका ढंग प्रयत्न कहलाता है; जिन ध्वनियोंमें जीभ या ओठ छू भर जायँ उनमें स्पृष्ट; जिनके लिये पूरा मुँह खोलना पड़े उनमें विवार; कम खोलना पड़े उनमें संवार; साँसकी धौंक देनी पड़े उनमें श्वास; स्वर गुँजाना पड़े उनमें नाद प्रयत्न होता है—कुछ लोग आठ मूल स्वर मानते हैं—बहुतसे अक्षरोंके बोलनेके ठौर बदल गए हैं—पार्श्विक, लुंठित संघर्षी भेद ठीक नहीं है—ध्वनियोंमें तीन बातें देखनेको मिलती हैं : खिंचाव (मात्रा), उतार-चढ़ाव (स्वर) और ठोकर (घात)।

§ ८—अघृष्टाऽघोषा घृष्टा घोषा च। [बोलीकी डोरियोंसे रगड़ खाकर निकली हुई ध्वनिको घोष और बिना रगड़ खाए निकलीको अघोष कहते हैं।]

पीछे हम बता चुके हैं कि हमारे गलेमें जो बोलीकी डिबिया लगी है उसमें नन्हीं-नन्हीं पतली दो तनियाँ (डोरियाँ) फँसी हुई हैं । जब भीतरका वायु उन डोरियोंको बिना छेड़े, बिना रुकावटके ध्वनि बनकर निकल आता है तब उस ध्वनिको हम धीमी (अघोष) ध्वनि कहते हैं । पर जब भीतरके वायुके साथ ध्वनि निकालते हुए बोलीकी डिबियाकी भीतरकी डोरियाँ तन जाती हैं और वायुको उन डोरियोंसे भिड़ते हुए, रगड़ खाते हुए निकलना पड़ता है तब जो ध्वनि निकलती है उसे हम गहरी (घोष) ध्वनि कहते हैं । सब ध्वनियाँ इन दो पालियोंमें बँटी हुई हैं । अपने दोनों कान ढककर या गलेके टेंटुवेपर हाथ रखकर देखें तो हम इन दोनोंका भेद झट जान सकते हैं । विज्ञानवालोंने इसके लिये लैरिंगोस्कोप. स्ट्राबोस्कोप, एण्डोस्कोप, आउटोसोनोस्कोप. साँस लेनेकी झझरी (ब्रीदिंग फ़्लास्क), स्पाइरोमीटर, स्टैथोग्राफ़, न्यूमोग्राफ़, मानोमीटर, फ़ोनेटिक काइमोग्राफ़, स्ट्रौबीलैरिंगोस्कोप मानोमीट्रिक लपटें (फ़्लेम्स), ओल्सटेर फ़ोइफ़े, प्रतिध्वनिक (रैज़ोनेटर्स), स्वनग्राह (ग्रामोफ़ोन), ध्वनिविस्तारक (माइक्रोफ़ोन), ओसिलोग्राफ़ और रेडियोग्राम नामके बहुतसे यन्त्र बना छोड़े हैं । गलेके भीतरकी इस बोलीकी डिबियाकी झाँकी लेनी हो तो ई ऽ ऽ कहकर गाना प्रारम्भ कीजिए । उस समय हमारी जीभ दाँतके पीछे पट्ट पड़ जायगी और बोलीकी डिबियाके ऊपरका मुँह खुला हुआ दिखाई पड़ेगा ।

§ ९—**वर्गाणां प्रथम-द्वितीयौ शषसाश्चाघोषाः । शेषव्यञ्जनाः स्वराश्च घोषाः । अस्फुटोऽपवादः । [क च ट त प वर्गोंके पहले और दूसरे अक्षर, और श ष स अघोष या धीमे होते हैं । बचे हुए व्यञ्जन और सभी स्वर गहरे या घोष**

होते हैं; फुसफुसाहटसे बोले जानेवाले धीमे या अघोष हो जाते हैं।]

जितने स्वर हैं वे सभी घोष या गहरे हैं पर वे ही फुसफुसाहटके साथ बोले जायँ तो धीमे या अघोष हो जायँगे। व्यंजनोंमें क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ और श ष स ये धीरे या अघोष व्यंजन हैं। ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व और ह गहरे या घोष हैं। इन्हें बोलनेमें गहरा जतन करना पड़ता है और जो धीमी ध्वनियाँ हैं उन्हें बोलनेमें कम।

स्थान—

§ १०—ध्वनिनिर्गमक्षेत्रं स्थानम्। [मुँहमें जहाँसे कोई ध्वनि बोली जाय उसे उस ध्वनिका स्थान कहते हैं।]

कौनसी ध्वनि मुँहके किस ठौरसे निकाली या बोली जाती है इसका ब्यौरा देते हुए बताया गया है कि आगे दिए हुए अट्ठारहों ढंगके अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (:) को गले या कंठसे बोला जाता है; अट्ठारहों ढंगके इ, च, छ, ज, झ, ञ, य और श तालुपर जीभ अटकाकर बोले जाते हैं; ऋ, ट, ठ, ड ढ, ण, र, और ष, मुँहके ऊपरकी छतके बीच (मूर्धा) पर जीभका अटकाव देकर बोले जाते हैं। लृ, त, थ, द ध, न, ल और स ऊपरके अगले दाँतोंके पीछे जीभ अटकाकर बोले जाते हैं। अट्ठारहों ढंगके उ, प, फ, ब, भ, म और उपध्मानीय (⌣प ⌣फ) ओठोंको मिलाकर साँस छोड़ते हुए ओठ अलग करके बोले जाते हैं। ङ, ञ, ण, न, म नाकसे बोले जाते हैं पर ये बारी-बारीसे गले, तालु, मूर्धा, दाँत और ओठपर जीभके अटकाव देनेसे बोले जाते हैं। ए और ऐ गले और तालुसे; ओ और औ गले और ओठसे; व दाँत

और ओठसे; और जिह्वामूलीय, (≍क, ≍ख या भीतर साँस लेकर ≍क, ≍ख, कहना) जीभकी जड़से, और अनुस्वार (ं) नाकसे बोले जाते हैं। जिन ठौरोंसे ये ध्वनियाँ बोली जाती हैं ये उनके ठिकाने या स्थान कहे जाते हैं।

शिक्षा-सूत्रमें वर्णोंके आठ ठौर माने गए हैं[१]—छाती, गला, सिर, जीभकी जड़, दाँत, नाक, ओठ और तालु। जब हम अपनी बोली धीमी करके गाते या बोलते हैं तब हमारी छातीकी नसें काँपती हैं और छाती गूँजती है। जब हम ऊँचे स्वरसे गाते या चिल्लाते हैं तब हमारी खोपड़ीकी नसें काँपती हैं और खोपड़ी गूँजती है इसीलिए इन्हें भी बोलीकी ठौर कहते हैं।

शिक्षासूत्रवाले दाँतके मसूड़ेसे लेकर गले तक मुँहके भीतरकी ऊपरी पाटनको तालु ही मानते हैं इसीलिये उन्होंने मसूड़ा (*वर्त्स*), कोमल तालु, मूर्धा और कठोर तालुका टंटा ही नहीं रक्खा है। पाणिनिने मसूड़े (*वर्त्स*) को दाँतका ही अंग माना है। पाणिनिने यदि क च ट *त* प की पँचरावट (*वर्ग*) को मुँहके भीतर जीभके अटकावके लगातार सजाव (*क्रम*) से रक्खा है तो पाणिनिका च कठोर तालुसे बोला जाता रहा होगा। ऐसा न होता तो वे क च ट *त* प के बदले क ट च *त* प के सजावसे रखते। प्रपंचसारके तीसरे पटलमें बड़े अच्छे ढंगसे इसे समझाकर बताया है।

प्रयत्न—

§ ११—जिह्वाग्ररोधनं प्रयत्नम्। स्पर्शात्पृस्टः, जृम्भो विवारः, मुखसङ्कोचो संवारः, प्राणयोगो श्वासः, स्वरयोगो

१—अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलश्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालुका॥

नादश्च। [बोलते हुए जीभ और ओठसे भीतरकी साँसको रोककर निकालनेको प्रयत्न कहते हैं। जिन ध्वनियोंके लिये जीभ छू भर दे उनमें स्पृष्ट, जिनके लिये पूरा मुँह खोलना पड़े उनमें संवार, कम खोलना पड़े उनमें विवार, साँसकी धौंक देनी पड़े उनमें श्वास, स्वर गुँजाना पड़े उनमें नाद प्रयत्न होता है।]

हम बता आए हैं कि मुँहके भीतर जीभका अटकाव कहाँ देनेसे कौन सी ध्वनि निकलती है यही नहीं देखा जाता, वरन यह भी देखा जाता है कि उसके लिये हमारी जीभको या हमारे ओठको कितना जतन करना पड़ता है। यहींपर यह भी बता देना ठीक होगा कि धीमी बोली जानेवाली ध्वनियोंमेंसे कुछमें साँस डालकर बोलना पड़ता है और मुँह भी कुछ चौड़ा कर लेना या फैला लेना पड़ता है। इसीलिये यह बताया गया है कि इन धीमी ध्वनियोंमें मुँह चौड़ाना पड़ता है (*विवार*) और साँसकी धौंक (*श्वास*) देनी पड़ती है। इसीलिये इनके लिये तीन जतन करने पड़ते हैं—मुँह चौड़ा (*विवार*) करना, साँसकी धौंक (*श्वास*) देना और धीमे बोलना (*अघोष*)। दूसरी जो गहरी ध्वनियाँ हैं उनमें मुँह कम खोलना पड़ता है (*संवार*), पर स्वर कुछ गुँजाना (*नाद*) और भारी (*घोष*) करना पड़ता है।

पाणिनिने ध्वनियोंकी सजावट कैसे की—

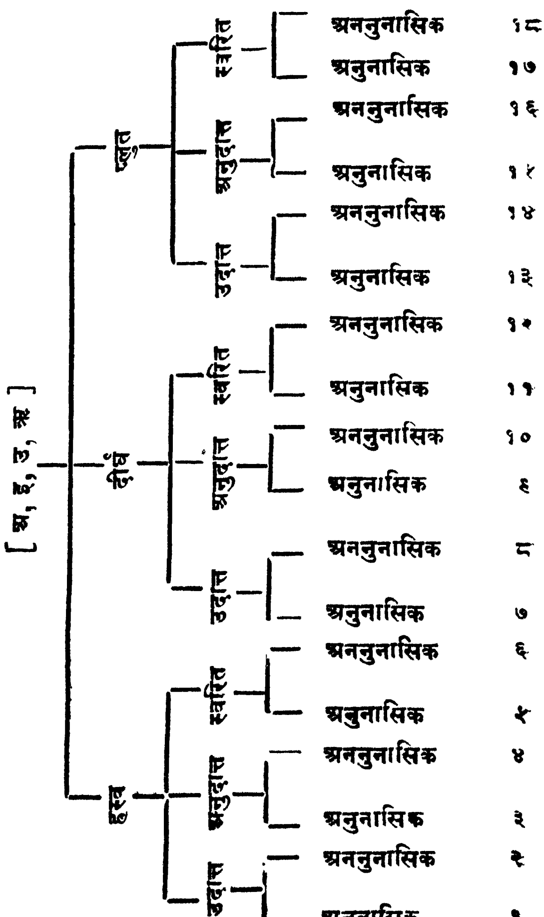
पाणिनि मुनिने बोलनेके ढंगको समझाते हुए बोलीकी ध्वनियाँ बड़े ढंगसे सजाकर रक्खी हैं और उन्हें खोलकर समझाया है कि कौनसी ध्वनि किस ठौरसे किस ढंगसे बोली जाती है।[1]

१—ऊकालोऽज्झ्रस्व-दीर्घ-प्लुतः। उच्चैरुदात्तः। नीचैरनुदात्तः। समाहारः स्वरितः। मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। तदित्थम्—अ, इ,

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित—

पहले उन्होंने यह बताया है कि अ, इ, उ, ऋ, ये सब एक झटकेके साथ (*ह्रस्व*), जमाकर (*दीर्घ*), लम्बा करके (*प्लुत*), बोले जाते हैं। इनमेंसे जो मुँहके ऊपरी खण्डसे ऊँचे बोले जाते हैं वे *उदात्त* कहलाते हैं; जो न धीरे, न ऊँचे (बीचमें) बोले जाते हैं वे *स्वरित* कहलाते हैं, और जो मुँहमें नीचेकी ओर धीमे बोले जाते हैं वे *अनुदात्त* कहलाते हैं।

उ, ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः। लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात्। अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इ-चु-य-शानां तालुः। ऋ-टु-र-षाणां मूर्धा। लृ-तु-ल-सानां दन्ताः। उ-पूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञ-म-ङ-ण-नानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालुः। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य। यत्नो-द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृत-विवृत-संवृत भेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीय-चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तस्थाः। शल ऊष्माणः। अचः स्वराः। ≍ क ≍ ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्ग-सदृशो जिह्वामूलीयः। ≍ प ≍ फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो उपध्मानीयः। तदेवम्—'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाऽननु-नासिकभेदेन य-व-ला द्विधा। तेनाऽननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।


[अ, इ, उ, ऋ]
प्लुत
दीर्घ
ह्रस्व
स्वरित
अनुदात्त
उदात्त
स्वरित
अनुदात्त
उदात्त
स्वरित
अनुदात्त
उदात्त
अननुनासिक १८
अनुनासिक १७
अननुनासिक १६
अनुनासिक १५
अननुनासिक १४
अनुनासिक १३
अननुनासिक १२
अनुनासिक ११
अननुनासिक १०
अनुनासिक ९
अननुनासिक ८
अनुनासिक ७
अननुनासिक ६
अनुनासिक ५
अननुनासिक ४
अनुनासिक ३
अननुनासिक २
अनुनासिक १

नकिआए हुए (अनुनासिक)—

जो ध्वनियाँ मुँह और नाक दोनोंके मेलसे बोली जाती हैं वे अनुनासिक कहलाती हैं । इस ढंगसे उन्होंने अ, इ, उ, ऋ इन एक एकके अट्ठारह भेद बताए हैं। जैसा पृष्ठ २२९ पर समझाया गया है—

लृमें दीर्घ नहीं होता ह्रस्व और प्लुत ही होते हैं इसलिये उसके बारह भेद होते हैं और ए, ऐ, ओ, औ में ह्रस्व नहीं होता इसलिये इनके बारह-बारह भेद होते हैं ।

हम ऊपर बता आए हैं कि ध्वनियाँ मुँहसे निकालते हुए जीभका अटकाव भर ही नहीं दिया जाता, उसके लिये कुछ जतन भी करना पड़ता है। पाणिनिने यह जतन या *प्रयत्न* दो ढंगका बताया है—

भीतरी (*आभ्यन्तर*) और बाहरी (*बाह्य*)।

भीतरी जतन पाँच ढंगका होता है—

१—जीभ या ओठ छूनेसे (*स्पृष्ट*), २—ओठ और जीभके थोड़ा-सा या हल्का-सा छूनेसे (*ईषत्पृस्ष्ट*), ३–थोड़ासा मुँह खोलनेसे (*ईषद्विवृत*), ४—मुँह चौड़ा खोलनेसे (*विवृत*), ५—बहुत कम मुँह खोलनेसे (*संवृत*); और ६—अक्षरोंके साथ मेल होनेसे कम मुँह खोलकर बोला जानेवाला (*संवृत*) स्वर भी मुँह खोलकर ही (*विवृत*) बोला जाता है। इस ब्यौरेकी जाँचसे क से म तक (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ड, ढ, ण, त, थ, द, ध न, प, फ, ब, भ, म) बोलनेसे जीभ या दोनों ओठोंका पूरा-पूरा लगाव होता है इसलिये इन्हें स्पर्श वर्ण कहते हैं और इनके लिये जो प्रयत्न या जतन किया जाता है उसे *स्पृष्ट प्रयत्न* कहते है। य, र

ल, व (*अन्तःस्थ*) बोलनेमें जीभ या ओठ बहुत कम लगाना पड़ता है, इसलिये इनका प्रयत्न *ईषत्स्पृष्ट* कहलाता है। श, ष, स, ह (*ऊष्मा*) बोलनेमें मुँह कुछ खुला रखना पड़ता है। इसलिये इनका प्रयत्न *ईषद्विवृत* (कुछ खुला हुआ) कहलाता है। आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ (*स्वर*) बोलनेके लिये मुँह खुला रखना पड़ता है इसलिये इसका प्रयत्न *विवृत* कहलाता है। हल्का अ (*ह्रस्व अ*) बोलनेमें मुँह बहुत कम खोलना पड़ता है इसलिये उसका प्रयत्न *संवृत* कहलाता है। पर यही हल्का अ जब दूसरे वर्णोंके साथ मिल जाता है तब इसका प्रयत्न भी *विवृत* हो जाता है।

बाहरी जतन ग्यारह ढंगके होते हैं—

१—मुँह खोलना (*विवार*)
२—मुँह सँकरा करना (*संवार*)
३—साँसकी धौंक देना (*श्वास*)
४—ध्वनिमें धमक देकर बोलना (*नाद*)
५—ध्वनिको भारी (*गंभीर*) करके बोलना (*घोष*)
६—धीमा करके बोलना (*अघोष*)
७—साँसकी कम-ठसक देना (*अल्पप्राण*)
८—जमाकर साँसकी ठसक देना (*महाप्राण*)
९—स्वर ऊँचा चढ़ाकर बोलना (*उदात्त*)
१०—नीचा करके बोलना (*अनुदात्त*) और
११—न ऊँचा न नीचा, बीचके स्वरमें बोलना (*स्वरित*)

इस ढंगसे हम अपनी अखरौटी (वर्णमाला) को पाणिनिके जतन (*प्रयत्न*) के नापसे ऐसे रखते हैं—

१—ख, फ, छ, ठ थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स—*विवार, श्वास, अघोष प्रयत्न*।

२—ह, य, व, र ल, ञ म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—*संवार, नाद, घोष प्रयत्न*।

३—क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र ल, व—*अल्पप्राण प्रयत्न*।

४—ख, छ, ठ थ, फ, घ, झ, ढ, ध, भ, श, ष, स, ह—*महाप्राण प्रयत्न*।

पाणिनिने क से म तकके वर्णोंको स्पर्श, य व र ल को अन्तःस्थ; श ष स ह को ऊष्मा; अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ को स्वर बताया है। भीतर साँस लेकर आधे विसर्गकी हचक गलेमें देते हुए : क, : ख, कहा जाय, वह हचक जिह्वामूलीय कहलाती है। ऐसे ही आधे विसर्गकी धौंक देकर : प और : फ कहा जाय तो वह धौंक उपध्मानीय कहलाती है, अं के ऊपर लगे हुए म (ं) को अनुस्वार और अ के आगे साँससे ह् बोलना विसर्ग (:) कहलाता है। आगे चलकर पाणिनिने बताया है कि अ, इ, उ सब अट्ठारह-अट्ठारह हैं। ऋ और लृ तीस-तीस हैं। ए, ऐ, ओ, औ, बारह-बारह हैं। य, व, ल, दो दो ढंगके होते हैं—अनुनासिक और अननुनासिक।

अत्यघोष—

§ १२—**अस्फुटाऽत्यघोषा । [फुसफुसाहटको बहुत धीमी या अत्यघोषा कहते हैं।]**

हम ऊपर बता आए हैं कि जो ध्वनियाँ हमारे मुँहके भीतरकी डिबियाके भीतरकी पतली डोरियोंसे रगड़ खाकर निकलती

हैं उन्हें घोष और जो कम रगड़ देकर निकलती हैं उन्हें अघोष कहते हैं। कभी-कभी हम किसीके कानमें काना-फूसी करते समय फुसफुसाकर बोलते हैं तो इस ढंगसे ध्वनि निकाली जाती है कि वह आस-पास किसी दूसरेको तो न सुनाई पड़े, पर जो बात कही जाय वह सुननेवालेकी समझमें ठीक आ जाय। यह ध्वनि गलेकी डिब्रियासे निकली हुई साँसको मुँहके भीतर बिना गुँजाए और बोलीकी डोरियोंको बिना कँपाए निकाली जाती है पर इसमें जीभ और ओठकी टेक बराबर देनी ही पड़ती है। यह ध्वनि अत्यघोष या फुसफुसाहटकी ध्वनि कहलाती है।

स्पर्श—

यह भी ऊपर बताया जा चुका है कि अ से लेकर औ तक जो स्वर हैं वे सीधे बिना रुकावटके बोले जाते हैं पर कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनमें जीभ और ओठकी रुकावट देनी ही पड़ती है। ये रुकावट देकर बोली जानेवाली ध्वनियाँ भी दो ढंगकी होती हैं—एकमें ओठ या जीभकी रुकावट पूरी दी जाती है जैसे *प* कहते हुए दोनों ओठ मिलाकर *प* बोला जाता है या ड़ कहते हुए जीभकी नोकके नीचेका भाग ऊपर मुँहके बीचमें अटकाया जाता है। पर कुछ ऐसी भी ध्वनियाँ हैं (जैसे *ओ*), जिनमें ओठ चलाया तो जाता है पर मिलाया नहीं जाता है। इसलिये जिन ध्वनियोंके बोलनेमें मुँहके भीतर किसी ठौरपर जीभ छूकर अटकाव देना पड़े या ओठोंको आपसमें छूना पड़े उन्हें ही छूई हुई या *स्पर्श* ध्वनियाँ कहते हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि हमारे यहाँ ओठ और जीभके रुकावटसे बोली जानेवाली ये स्पर्श ध्वनियाँ पाँच ढंगकी हैं—

१—*कंठ्य* (वेलर), जिसमें हम अपनी जीभका अगला भाग हाथीकी सूँड़की तरह मुँहमें आगे झुका लेते हैं और पीछेका भाग गलेमें अटकाकर साँस छोड़ते हैं। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने क, ख, ग, घ, ङ बोलनेकी ठौर जीभकी जड़को माना है[१]। आजकल क को कंठसे थोड़ा ऊपर कोमल तालुपर जीभकी पिछाड़ीको अटकाकर बोलते हैं पर हम ख और घ को पूरा-पूरा गलेमें ही अटकाव देकर ही बोलते हैं। इसलिये हमारा क और ग कोमल तालुवाला हो गया है, कण्ठ्य नहीं रह गया है। पर पाणिनिने इसे कण्ठ्य ही बताया है।

२—*मूर्धन्य* : जब हम अपने जीभकी नोकका निचला भाग ऊपर मुँहकी छतके बीच (*मूर्धामें*) अटका देते हैं तब जो ध्वनियाँ निकलती हैं उन्हें मूर्धन्य कहते हैं जैसे—ट, ठ, ड, ढ, ण।

३—*तालव्य* : जिसमें जीभकी नोक, ऊपरके मसूड़ेसे कुछ ऊपर तालुपर लगाकर ध्वनि निकालते हैं जैसे—च, छ, ज, झ, ञ। कुछ लोगोंने इन्हें भूलसे तालव्य-संघर्ष-स्पर्शी कहा है क्योंकि उनकी समझमें अब च केवल जीभके छूने भरसे नहीं निकलता, जीभको रगड़ना भी पड़ता है। जो लोग च को च् (च्य) कहकर बोलते हैं वे ही जीभ रगड़ते हैं इसलिये च को तालव्य ही मानना चाहिए। लोगोंका यह भी अनुमान है कि पहले च, छ, ज. झ का उच्चारण मूर्धा और कंठके बीचमें जीभके स्पर्श करनेसे होता था जैसा अब भी सिन्धीके जञ्ञा (बारात)के जमें।

४—*दन्त्य* (*डेन्टल*) : जब जीभकी नोक ऊपरके अगले दाँतोंके पीछे लगाकर बोली जाती है तब निकली हुई ध्वनि दन्त्य

---

१. जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः।

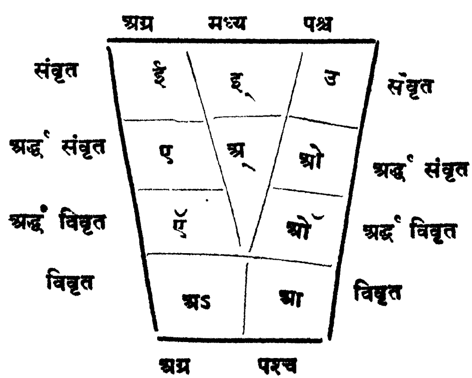
कहलाती है जैसे—*त, थ, द, ध, न*। इनमें *न* तो तालव्य भी हो चला है। और अब ये सब मसूड़ेके पीछे जीभ लगाकर बोली जाने लगी हैं इसलिये वर्त्स्य हो गई हैं।

५—*ओष्ठ्य*—जब दोनों ओठों से साँस टोककर ध्वनियाँ निकाली जाती हैं तब वे ओष्ठ्य कहलाती हैं जैसे—*प, फ, ब, भ, म*।

मूल स्वर (कार्डिनल वौवेल्स)—

§ १३—**मूलाष्टस्वरा इति केचित्। [कुछ लोग आठ मूल स्वर मानते हैं।]**

डैनियल जोन्सने मुँहके भीतर बोले जानेवाले सब स्वरोंको समझकर आठमूल स्वर या सच्चे स्वर माने हैं जिन्हें ओठोंके फैलाव या खिंचावके ढंगसे चौड़ा (*विवृत*) आधा चौड़ा (*अर्द्ध-विवृत*), कम सँकरा (*अर्द्धसंवृत*) और बहुत सँकरा (*संवृत*) बताया है। इनमेंसे *अ* तो बीचके तालुपर जीभका अटकाव देकर बोला जाता है; अऽ, ए॒, ए, ई, को जीभकी अगाड़ी (*पुरो-जिह्वा*)को कठोर तालुकी ओर थोड़ासा उठाकर भीतरकी साँस कठोर तालुपर टकराकर बोला जाता है; और आ, ओ॑, ओ , उ ये जीभकी पिछाड़ीको कोमल तालुकी ओर थोड़ा बढ़ाकर बोले जाते हैं।



कुछ लोगोंने इन मूल स्वरोंको भी दो पालियोंमें बाँटा है—एक प्रधान मूल स्वर (*प्राइमरी कार्डिनल वौवेल्स*) और दूसरे गौण मूल स्वर (*सेकेण्डरी कार्डिनल वौवेल्स*)। पर ये सब भेद ठीक नहीं है। क्योंकि आगे जो हमने संसार भरकी बोलियोंमें काम आनेवाली ध्वनियोंका ब्यौरा दे रहे हैं उससे जान पड़ेगा कि ये सब भेद किसी कामके नहीं हैं।

संसारकी बोलियोंमें ध्वनियाँ—

संसार भरकी बोलियोंमें जो ध्वनियाँ काम आती हैं उनका ब्यौरा नीचे दिया जाता है जिससे हमें ध्वनियोंको ठीक पाँतोंमें बाँधनेमें कठिनाई न हो। वे मुँहमें जिस ठौरपर जीभके अटकावसे, ओठोंके चलानेसे, या नकियानेसे बोली जाती हैं उनका भी ब्यौरा साथमें दे दिया जाता है। नकियाकर तो सभी ध्वनियाँ बोली जा सकती हैं इसलिये उन सबकी *नकियान* (नैसलाइजेशन) न देकर (अनुनासिक) का एक चिह्न (ँ) अ के साथ लगाकर (अँ) दे दिया गया है। जो व्यंजन मिलाकर बोले जाते हैं या दुहरे बोले जाते हैं वे भी नहीं दिए गए हैं।

ध्वनि	स्थान	ब्यौरा
अ॒	कण्ठ	
अ॑	कण्ठ	
अ़	(जिह्वामूल)	बोलनेके साथ मुँह और नाकके बीचका द्वार बन्द करके जैसे पुर्त्तगालीमें। अरबीमें भी ऐसा ही है।
अइ(ऐ)	कण्ठ + तालु	
अए(ऐ)	कण्ठ + तालु	

अउ(औ) कंठ + ओष्ठ

अओ(औ) कंठ + ओष्ठ

आ कण्ठ

आ जिह्वामूल (बोलनेके साथ मुँह और नाकके बीचका द्वार बन्द करके) जैसे पुर्त्तगालीमें,

आइ कंठ + तालु जैसे जर्मन और अंग्रेजीमें

आउ कण्ठ + ओष्ठ जैसे जर्मन और अंग्रेजीमें

इ तालु

इ (ओष्ठ्य) फ्रांसीसी (EU)

इआओ तालु + कंठ + ओष्ठ

ई तालु

ई निम्न दन्त + ओष्ठ (आगेसे ई और भीतरसे ऊ बोलकर जैसे रूसी और तुर्कीमें)

ईअऽ तालु + कंठ

उ ओष्ठ्य

उअऽ ओठ + कंठ (शुअऽ Sure)

ऊआ ओठ + कंठ (चीनी),

उई ओठ + तालु (चीनी),

उए ओठ + तालु (चीनी),

उओ ओठ + कंठ + ओठ (चीनी)

ऊ ओष्ठ

ऊ̤ ओष्ठ (ऊ̤) ऊमलाउट जर्मन, फ्रांसीसी

ए कंठ + तालु

ए͜अऽ कंठ + तालु + कंठ

ए̤ (ओष्ठ्य) (फ्रांसीसी)

ए͜उ कंठ + तालु + ओष्ठ (चीनी)

ए͜ओ (फ्रांसीसी)

ओ̖ कंठ + ओष्ठ

ओ कंठ + ओष्ठ

ओ̤ ओष्ठ + दन्त (ओ̤ Ö उमलाउट निम्न जर्मन)

ओ͜ए ओष्ठ + कंठ + तालु (जर्मन, अंग्रेजी)

औ (अ͜उ) कंठ + ओष्ठ जैसे औदार्य में

औ (अ͜ओ) कंठ + ओष्ठ जैसे फ़ौरन् में

अं कंठ + ओष्ठ + नासिका

अँ कंठ + नासिका गुंजन

अः कंठ या जिह्वामूल

क̖ कंठ

क़ जिह्वामूल

ख कंठ

ख़ जिह्वामूल

ग कंठ

ग़ जिह्वामूल

घ कंठ

घ़ जिह्वामूल

ङ कंठ + नासिका

ङ̤ कंठ + नासिका (ङ्‌ के समान जैसे चीनीमें)

च तालु

च़ वर्त्स

छ तालु

छ़ वर्त्स

ज तालु

ज̤ तालु भीतर साँस लेकर जैसे सिन्धीके *ज़िब्̤भ* (कीचड़) में

ज़ वर्त्स जैसे फ़ारसीके ज़मीनमें

ज़̤ मूर्धा जैसे तमिल कज़̤कम्‌में। इसे ष़ भी लिखते हैं।

झ तालु

झ़ वर्त्स

झ् दाँत + वर्त्स (चीनी)

ञ तालु + नासिका

ञ्य तालु पर चोट देकर नाकसे (स्पेनी)

ट मूर्धा

ट़ दन्त + वर्त्स ऊपरके दाँतके पीछे जीभ छूकर

ट̤ दंत + वर्त्स स्पेनी

ट दंत + काकल चीनी ट्हेलमें

ड मूर्धा
ड़ कंठ जीभकी नोकके नीचेका भाग कंठमें थपककर
ड̤ वर्त्स दन्त (द्य) स्पेनी,

ढ मूर्धा
ढ़ मूर्धामें जीभकी चोट देकर
ण मूर्धा
त दाँत और कहीं-कहीं वर्त्स
थ दाँत और कहीं-कहीं वर्त्स
थ̤ ऊपरके दाँतके तले जीभका ऊपरी भाग छूकर
जैसे अंग्रेजीके *थौट*में

द वर्त्स या दाँत या तालु
द̤ तालु भीतर साँस लेकर जैसे सिन्धीके द̤दी (मेंढक) में
द़ वर्त्स जैसे अंग्रेजीके देअर (वहाँ) में
ध तालु या दाँत या वर्त्स
न वर्त्स + नासिका या तालु + नासिका या दाँत + नासिका
प ओष्ठ
प़ ओष्ठ + काकल (प़ में साँसकी धौंक देकर) जैसे
चीनीमें प़ः
फ ओष्ठ
फ़ दाँत + ओष्ठ (फ़ारसी)
ब ओष्ठ
ब̤ ओष्ठ भीतर साँस लेकर जैसे सिन्धीमें ब̤करी

भ	ओष्ठ
म	ओष्ठ + नासिका
य	तालु
र	मूर्धा
ऱ	कंठ (फ्रान्सीसी जर्मन)
रँ	अनुनासिक रँगाई
रॅ	तालु कंपित इटैलियन
रॅ	अधिक तालु कंपित जैसे आइरिश शब्द *बेगोर्रा* (Begorra) में
ऋ	मूर्धा
ॠ	मूर्धा
ल	दाँत
ळ	मूर्धा (जीभकी नोकके नीचेका भाग मूर्धा पर चोट देकर)
·ळ	कंठ (जीभकी नोकके नीचेका भाग मूर्धापर रगड़कर)
लृ	तालुपर जीभकी नोकका नीचेका भाग मूर्धा पर रगड़कर
·लृ	तालुपर जीभकी नोकका नीचेका भाग अटकाकर छोड़नेसे
व़	ओष्ठ आगे निकालकर जैसे अंग्रेज़ीके W वाले वेल (well) शब्द में
·व	दन्त + ओष्ठ ऊपरके दाँतके नीचे-नीचेका ओठ लगाकर V से बननेवाले वेरी (very) शब्दमें
व	संकुचित ओष्ठ (ओठ सिकोड़कर) स्पेनी
श	तालु
ष	मूर्धा

स दन्त

स़़ दन्त + वर्त्स जैसे (अरबीमें स़़न्दूक)

स़़़ (दोनों दाँतोंके बीच जीभ लगाकर)

स़ दाँत (सुसकारी देकर) मलाथीमें

ह् कंठ

ह़् जिह्वामूल या काकल (उसाँस मात्र)

ह़़़ काकल (गहरी उसाँस) स्पेनी

पुर्त्तगाली में *साघात* (स्ट्रेस्ड) स्वरको लम्बा करके और *अनाघात* (अन्स्ट्रैस्ड) को अस्पष्ट बोलते हैं । इटैलियनमें स्वर चाहे *साघात* (जमाकर) हो या *अनाघात* (अनस्ट्रैस्ड) झटकेके साथ हो, दोनों बराबर होते हैं—जैसे—पाड्रे, डान्ना, बेक्न

स्थानके अनुसार ध्वनियोंकी सजावट—

नीचे हम संसारकी बोलियोंमें काम आनेवाली ध्वनियोंको उनके बोलनेके ठौरके ढंगसे सजा रहे हैं—

काकल—अ़ (अरबी), क़, ख़, ग़, घ़:, ह, आ़ (मुँह और नाकके बीचका द्वार बन्द करके) ह़़़, गम्भीर ऊष्मा (स्पेनी), आँ

जिह्वामूल—अ़, क, ख, ग, घ, ख़, ग़, घ़, ह़

कंठ—अ, क ख ग घ ङ, ऱ (फ्रान्सीसी, जर्मन) आ, व़,

तालु—इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श, ऱ (तालु कम्पित इटैलियन), ऱ (अधिक तालुकम्पित आयरिश जैसे बेगोर्रमें) ।

मूर्धा—ऋ, ॠ, ऌ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, श, ड़, ढ़, ळ, ल़, न्ह, र, ष, ज, (तमिल), ह्ज (चीनी)

वर्त्स—च़ (मराठी), ज़ (गुजराती), झ़ (चीनी), ञ्य (स्पेनी), ड़, (ड़्य) (स्पेनी, ऊपर दाँतोंके पीछे जीभकी नोक), त़, थ़, द़, ध़, ऩ, न्ह़, ल्ह़, स़

दन्त—त, थ, द, ध, न, लृ, ल, स

दन्ताग्र—स (ऊपरके दन्ताग्रसे जीभ लगाकर; थ (अंग्रेजीके थौटमें)।

ओष्ठ—पाँच ढंगके होते हैं—

१—स्पृष्ट प, फ, ब, भ, म

२—कुञ्चित उ, ऊ, व़ (स्पेनी)

३—प्रसारित इ, ई, (ई के लिये ओठ फैलाकर भीतरसे ऊ बोलना जैसे रूसी और तुर्कीमें)

४—प्रलम्बित ओ, औ, ओ, औ, व़ (W.), स (ओठ निकालकर सुसकारी देकर जैसे मलायीमें), ओ (जर्मन ऊमलाउट) र की ध्वनिके साथ, ए (फ्रान्सीसी), इ (फ्रांसीसी इउ)

नासिका—ङ, ञ, ण, न, मँ, अँ (ँ के साथ सब व्यंजन अनुनासिक) तथा ङ (चीनी)

कंठतालु—ए, ऐ, अइ, अए, आइ (जर्मन अंग्रेजी), ऐ

कंठोष्ठ—ओ, औ, आउ (अंग्रेजी जर्मन आदि)

कंठोष्ठतालु—ओए

कंठतालुओष्ठ—एउ (चीनी)

कंठतालुकंठ—एअ (अंग्रेजी)

तालकंठोष्ठ—एओ (फ्रांसीसी), इआओ (फ्रांसीसी)

दन्तवर्त्स—त्स(जर्मन Z), त्स, ज़
दन्तोष्ठ—फ़, व़
ओष्ठकंठ—उअ, उआ (चीनी), ऊअ (पूअर)
ओष्ठकंठतालु—उए (चीनी)
ओष्ठकंठोष्ठ—उओ (चीनी)

§ १३—स्थानान्तरिता वर्णास्तराः। [बहुतसी ध्वनियोंके बोलनेके ठौर बदल गए हैं।]

पाणिनिने जो विभिन्न वर्णोंके बोलनेके ठौर सुझाए थे उनका मिलान ऊपर दिए हुए ब्यौरेसे करें तो जान पड़ेगा कि संसारमें जो बहुतसी बोलियाँ हैं उनमें एक ही ध्वनिके ठौर बहुत अलग अलग हो गए हैं। हमारे यहाँ भी ष को श और ख. दो ढंगों-से बोलते हैं। ज्ञ को गुजरातमें ग्न; मराठीमें द्न्य; पंजाबमें ग्य; बंगालमें ग्गो, उत्तरप्रदेशमें ग्य; और वेदपाठी लोग ज्ञ बोलते हैं जो इसका ठीक बोलनेका ढंग भी है।

ऊपर हमने संसार भरकी बोलियोंमें काम आनेवाले स्वरों, स्वरमेलों और व्यंजनोंका ब्यौरा देकर यह समझाया है कि किस देशमें कौनसी ध्वनि मुँहमें किस ठौरसे निकाली जाती है। मराठीमें च और ज को दो ढंगसे बोलते हैं, एक तालुपर जीभ अटकाकर दूसरे दाँतके पीछे जीभ अटकाकर। ऐसे ही त, थ, द, ध न को हम लोग ऊपरी दाँतके पीछेके बदले ऊपरी मसूड़ेसे जीभ अटकाकर बोलने लगे हैं और अंग्रेजीमें तो कुछ शब्दोंमें थ को ऊपरके दाँतकी नोकके नीचे जीभ फैलाकर थ़ बोलते हैं जैसे थौटमें।

इससे जान पड़ता है कि अलग-अलग देशोंमें बोलनेके जो अलग-अलग ढंग चले हैं उनमें सबसे सीधा ढंग संस्कृत का ही है जिसमें जीभ और मुँहको बहुत टेढ़ा-मेढ़ा नहीं करना पड़ता।

ऊपर बताई हुई ध्वनियोंको देखकर यह भी जान सकते हैं कि जीभ कभी छूती है, कभी उठती है, कभी चोट देती है, कभी काँपती है, कभी टंकार देती है।

डायोफ़ोन (बहुल सम-ध्वनि)—

ध्यान देनेपर तथा बहुतसी बोलियोंके सुननेपर यह जान पड़ेगा कि एक शब्दमें आनेवाले एक ही स्वरको एक ही भाषा बोलनेवाले लोग कई ढंगसे बोलते हैं—जैसे *कौन* शब्दको पश्चिमी उत्तर-प्रदेशमें *कओन*, अवधी और भोजपुरीमें *कउन*, राजस्थानमें *कुण*, और *कोन*, अवधी तथा भोजपुरीके कुछ भागोंमें *कवन* बोला जाता है। ऐसे ही उसने शब्दके अन्तके ए का ब्रजमें ऐ हो जाता है— *उसनै*। एक ध्वनिका बहुत ढंगोंमें सुनाई पड़ना एक सी ध्वनि (डायोफ़ोन) कहलाती है।

क्लिक (क़्लै क़्लै) ध्वनियाँ--

सभी बोलियोंमें कुछ ऐसी भी ध्वनियाँ हैं जो घिन दिखानेके लिए या गाय, बैल, घोड़ा हाँकते हुए या चुमकारी भरते हुए काममें आती हैं। इनमेंसे कुछ तो दाँत, मसूड़े या तालुपर जीभकी अगाड़ी चटकाकर बोली जाती हैं किन्तु चुम्बनवाली ध्वनि दोनों दाँत, दोनो ओठ और दाँतोंके पीछे जीभ जमाकर चुमकारी देनेसे बोली जाती है।

अफ्रीकाकी कुछ बोलियोंमें और बुशमैनीमें ऐसी ध्वनियाँ बहुत हैं जिसमें सिरके बीचसे बोली जानेवाली (*मूर्धन्य*), तालुसे बोली जानेवाली, जीभके दोनों ओर वायुकी बाट छोड़कर

बोली जानेवाली, दाँतके पीछे जीभ अटकाकर बोली जानेवाली और ओठसे बोली जानेवाली ध्वनियाँ हैं। लिखनेमें इनमें ये चिह्न लगाए जाते हैं। !, ‡, ॥।, तथा।

पार्श्विक, लुंठित और संघर्षी—

§ १५—अमान्याः पार्श्विक-लुंठित-संघर्षिभेदाः। [पार्श्विक, लुंठित और संघर्षी भेद ठीक नहीं है।]

कुछ लोगोंने यह बताया है कि *ल* ध्वनि जब हम मुँहसे निकालते हैं तब हम जीभकी नोक ऊपरके मसूड़ेके पीछे अटकाते तो हैं पर उसके दोनों ओर भीतरकी साँस निकलनेके लिये खुला रहता है इसलिये इसे *पार्श्विक* कहा गया है। पर ऐसा तो ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, और च, छ, ज, झ में भी होता है।

ऐसे ही लुंठित या लोड़ित ध्वनि *र* में भी जीभकी नोक तालुपर जाती है पर वह जीभको वहाँ कँपाकर, साँस निकालकर बोली जाती है। ऊपर जो हमने ब्यौरा दिया है उससे पता चलेगा कि र बहुत ढंगसे बोला जाता है जिनमें कुछ तालुपर, कुछ मूर्धापर और कुछ जीभके नीचेके भागको मूर्धापर घुमाकर टेकनेसे बोली जाती है वह लुंठन या लोड़न नहीं होता, वह कंपन होता है।

ऐसे ही *स* बोलते हुए जीभ रगड़ती नहीं है। उसमें भी जीभ दाँतके पीछे टेकनी पड़ती है। ऐसे ही जिन्होंने ड़ को उत्क्षिप्त या ऊपर फेंका हुआ कहा है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि ड़ बोलते हुए भी हम पिछले तालुपर जीभका अटकाव देकर बोलते हैं। इसलिये आचार्य चतुर्वेदी इन पार्श्विक, लुंठित और संघर्षी भेदोंको नहीं मानते।

ध्वनियोंकी मिलावट—

जितनी ध्वनियाँ हैं उनमें सबमें मिलावट हो सकती है इसलिये स्वरसे स्वर, व्यंजनसे व्यंजन और व्यंजनसे स्वर मिलाए जाते हैं जैसे—ऐ (अ + ए), टक्कर, (क् + क्), का (क + आ)।

ध्वनियोंके गुण—

§ १९-त्रयो ध्वनिगुणाः मात्रास्वरोघातश्च। [ध्वनिमें तीन गुण होते हैं—मात्रा, स्वर और घात।]

इन ध्वनियोंमें तीन बातें देखनेको मिलती हैं—एक खिंचाव, दूसरा चढ़ाव-उतार और तीसरा चोट या ठोकर। इन्हें ही *मात्रा*, स्वर और *घात* कहते हैं।

मात्रा

किसी भी ध्वनिको बोलनेमें जो समय लगता है उसकी नापको मात्रा कहते हैं। ये मात्राएँ तीन ढंगकी होती हैं १—इकहरी (ह्रस्व), हाथसे एक ताली बजानेके समयमें बोली हुई ध्वनि, २—दुहरी (दीर्घ), जो दो बार ताली बजानेतक खिंचे, और ३—लम्बी (प्लुत), जिसमें ध्वनिका खिंचाव दुहरेसे लम्बा हो जाय जैसे ओ ऽ ऽ ऽ को लम्बा खिंचाव देकर पुकारते हुए। संगीतमें तो एक ही ध्वनि एक मात्रासे लेकर बीस-बीस मात्रातक खींची जा सकती है और कई कई ध्वनियाँ एक ही मात्रामें समेटी भी जा सकती हैं। बोलियोंमें भी कभी कभी दो व्यंजन एक ही मात्रामें बोले जाते हैं इनमें जो किसी शब्दके पहले आते हैं वे तो एक मात्रामें बोले ही जाते हैं जैसे—प्रथम, स्वगत, क्रम, श्रम के *प्र*, *स्व*, *क्र*, और *श्र*। पर जब ये मिले हुए

व्यंजनोंवाले किसी अक्षर. या शब्दके बीचमें आते हैं तब वे दुहरी मात्रावाले हो जाते हैं। जैसे यदि अप्रथम कहना हो तो हम कहेंगे अप्+प्रथम। छन्दवालोंने ऐसे ठौरोंपर यह मान लिया है कि दुहरेसे पहले आनेवाले अक्षरको दो मात्रावाला व्यंजन गिनना और समझना चाहिए।

आधी मात्रा—

बहुत-सी ऐसी भी ध्वनियाँ हैं जिनमें हम आधी मात्रा ही लगाते हैं। शब्दके बीच आनेवाले सब मिले हुए (संयुक्त) व्यंजनवाले अक्षरोंमेंका पहला अक्षर आधी मात्रामें बोला जाता है जैसे *कल्पना, पर्वत, प्रस्तार* शब्दोंमें ल्, र् प् और स्।

चौथाई मात्रा—

कुछ ध्वनियाँ ऐसी भी हैं जिनमें व्यंजन बहुत हल्के छूते हुए लगाकर बोले जाते हैं। इन्हें हम चतुर्थांश मात्रिक या चौथाई मात्रावाले कह सकते हैं जैसे ऊँट, *कुम्हार, तुम्हारा, उन्होंने, चूल्हा, भज्यौ, कह्यौ, कन्यो.* या मराठीके *दुसऱ्या* शब्दोंमें आए हुए ऊँ, म्ह, न्ह, ल्ह, ह्य, ज्य, न्यके म, न, ल, ह्, उ, ः। ये प्राकृत ध्वनियोंके *बम्हण, खन्ध, कल्हार* और संस्कृतके सह्य और चतुर्थ में आए हुए म्ह, न्ह, ल्ह, ह्य, और र्य के म, न, ल, और ˚ से अलग हैं।

इससे समझा जा सकता है कि हम चौथाई मात्रावाले, आधी मात्रावाले, एक मात्रावाले (ह्रस्व) और दुहरी मात्रावाले (दीर्घ) से ही अपनी बोलियोंका काम चलाते हैं पर कभी कभी पुकारनेमें हम तिहरी या बहुतेरी मात्रावाली ध्वनियाँ भी काममें लाते हैं और उन्हें ओ३ या ओ ऽ ऽ ऽ लिखकर समझाते हैं।

कभी-कभी दुहरी मात्रावाले अक्षर. लिखनेमें तो दुहरी मात्राके होते हैं पर बोलनेमें एक मात्रमें ही बोले जाते हैं जैसे—ओसारा,

कोहनी, एक्का के, ओ और ए। यूरोपकी भाषाओंमें और भारतकी दक्षिणी भाषाओंमें ए, ओ को भी एक मात्रामें बोला जाता है। उर्दू, अवधी और ब्रजकी कविताओंमें दो मात्रावाली (दीर्घ) ध्वनियाँ कभी-कभी एक मात्रामें (ह्रस्व) पढ़ी या बोली जाती हैं जैसे—

अवधेशके द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-विमोचनको ठगि सी रही जे न ठगे धिकसे॥

—में के, रे, रे, कै, हौं, ही।

उर्दूमें ग़ज़ल पढ़ते हुए बहुत सी दो मात्रावाली ध्वनियोंको एक मात्रामें पढ़नेका चलन है। जैसे—

आए वो मेरे पास तो शरमाके चल दिए।
आँचलको कुछ सँभालके कतराके चल दिए॥

—में वो, रे, तो, के, को, के, के।

योरोपकी भाषाओंमें तो लगभग सभीमें ए, ऐ, ओ, औ सब दो-दो मात्राओंमें (दीर्घ) भी मिलते हैं, और एक मात्रामें (ह्रस्व) भी।

उतार-चढ़ाव (स्वर)

हम जब बोलते हैं तब सीधे-सीधे कोई ध्वनि नहीं निकालते हैं। हम उसे थोड़ा चढ़ाते-उतारते भी हैं। यह चढ़ाव-उतराव तब किया जाता है जब हम अपने मनकी रीझ-खीझ-घिन भी उसके साथ समझाना चाहते हैं। ऐसा करनेमें हमारी बोलीकी लहर ऊँची-नीची होती चलती है। इसी ऊँची-नीची लहरको स्वरका उतार-चढ़ाव (इन्टोनेशन) कहते हैं। यह स्वर कभी तो पूरी बोलीमें ही समा जाता है जैसे मगही बोलीमें, जहाँ वाक्यके

अन्तिम अक्षर कुछ खींचकर और नीचे गिराकर फिर ऊपर उठा दिया जाते हैं जैसे नहाए चलबऽ (नहाने चलोगे ?) वाक्य—

चल ／SS

न हा ए ＼ब S／

संसारकी सभी बोलियोंमें बात-चीत करते हुए मनके भावके ढंगपर यह उतार-चढ़ाव अपने आप होता चलता है। एक शब्द लीजिए —हाँ। इसी 'हाँ' को हम अचरजमें नीचेसे ऊपर स्वर चढ़ाकर कहते हैं—हाँ SS ? इसीसे जब हम यह समझाते हैं कि मैं तुम्हारा सब भेद समझ गया हूँ तब हम सिरको ऊपर-नीचे दोनों ओर डुलाकर अपने स्वरमें लहरा देकर हाँ SSS कहते हैं।

कभी-कभी हम किसीपर बिगड़ते या पुकारते समय चिल्लाते हुए स्वर चढ़ाकर (उदात्त) बोलते हैं। कभी किसीस धीरे बात-चीत करते समय धीरे (अनुदात्त) बोलते हैं या खुलकर बात-चीत करते हुए ठीक-ठीक खोलकर (*स्वरित*) बोलते हैं। यह सब स्वरको ऊँचा करना, नीचा करना और ठीक बल देकर बोलना कहलाता है। हम जितना ही ऊँचे स्वरसे बोलेंगे उतना ही हमारे गलेकी डोरियोंपर तनाव पड़ेगा। ध्वनि उपजानेके लिये किसी खींचे हुए तार या ताँतको छेड़ना पड़ता है। यह काम हमारे गलेकी लगी हुई तनियाँ करती है। इसीलिये कभी-कभी बहुत चिल्लानेसे हमारा गला बैठ जाता है क्योंकि दोनों तनियाँ या बोलीकी डोरियाँ बहुत रगड़ खाते-खाते या तो भीतर ही आपसमें उलझ जाती हैं या दोनों ओरकी भीतोंसे चिपककर सट जाती हैं

जिससे भीतरकी साँसको बिना गूँजे और बिना काँपे बाहर निकलना पड़ता है। इसे स्वरका ऊँचा-नीचापन कह सकते हैं, उतार-चढ़ाव नहीं।

उतार-चढ़ाव—

हम ऊपर ही बता आए हैं कि जब हम कोई वाक्य कहते हैं तो उसके अर्थमें अलगाव लानेके लिये हम उतार-चढ़ावका ध्यान रखते हैं। एक वाक्य लीजिए—*यह पुस्तक मेरी है*। इसे हम तीन ढंगसे बोल सकते हैं—एकमें *यह* पर बल देकर; दूसरेमें *पुस्तक* पर और तीसरेमें *मेरी* पर। पहलेका अर्थ यह होगा कि जितनी पोथियाँ दिखाई जा रही हैं उनमें *वही* पोथी मेरी है दूसरी नहीं। दूसरेका अर्थ यह होगा कि जो बहुत-सी वस्तुएँ वहाँ रक्खी हैं, उनमेंसे पुस्तक तो मेरी है, दूसरी वस्तुएँ भले ही दूसरोंकी हों। तीसरेका अर्थ यह है कि पुस्तक *मेरी* ही है, और किसीकी नहीं। यह भी एक ढंगका स्वर है। हम पीछे बता आए हैं कि चीनी बोलीमें एक ही शब्द या ध्वनि, स्वरको चढ़ाकर, उतारकर या उतार-चढ़ाकर बोलनेमें अलग-अलग अर्थ देने लगती है।

कभी-कभी बोलनेमें किसी एक अक्षरपर ही बल देकर बोलना पड़ता है। पहले वेदकी संस्कृतमें यह काममें आता था और हम समझा भी आए हैं कि इन्द्रशत्रु शब्दमें इन्द्रके स्वरको खींचकर या दबाकर बोलनेमें उसके अर्थमें क्या भेद आ गया। हम लोग जिसे *काकु* कहते हैं या गलेकी मुर्की कहते हैं, उसमें यह स्वर काममें आता है जिससे हम समझ जाते हैं कि कहनेवाला कुछ पूछ रहा है, ताना दे रहा है, अचरज दिखा रहा है, डाँट रहा है या किसी बातको मानकर हामी भर रहा है। अफ्रीकाकी कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जिनमें चीनी बोलीके ढंगपर ध्वनियोंके साथ

स्वरका उतार-चढ़ाव होता है। अच्छे बोलनेवाले लोग और नाटक खेलनेवाले नट लोग इसे बहुत काममें लाते हैं।

चोट या ठोकर (आघात)

बहुतसी बोलियाँ ऐसी हैं जिनके शब्दोंमें किसी किसी अक्षर पर कुछ चोट या ठोकर देकर बोला जाता है। इसे आघात कहते हैं। कुछ लोग इसे बलाघात या स्वराघात भी कहते हैं। वेदमें जहाँ-जहाँ ऐसे अक्षर आए हैं वहाँ उनके ऊपर एक खड़ी पाई दे दी जाती है जिसका अर्थ यह है कि इसे झटककर बोल जाय। योरोपकी बोलियोंमें उसके लिये एक आड़ी छोटीसी लकीर ऊपर लगा दी जाती है। इसे आघात या स्वराघात कह सकते हैं।

अन्ताराष्ट्रिय ध्वनिशास्त्र-समिति (इन्टरनैशनल फ़ोनिटिक एसोसियेशन) ने भी इसके लिये अक्षरसे पहले तनिक ऊपर खड़ी पाई (।) लगानेका चलन माना है। ऐसा देखा गया है कि धीमी (*अघोष*) ध्वनियोंको कुछ ठोकरके साथ बोला जाता है और गहरी (*घोष*) ध्वनियोंको जमाकर। पर अलग अलग बोलियोंमें इसका अपना-अपना अलग चलन है। हमारे यहाँ हिन्दीमें भी कभी-कभी यह ठोकर (*घात*) देकर चलना ही पड़ता है। *चंचलता* शब्दको ही लीजिए। इसे *चंच-लता* पढ़ें तो ऐसा जान पड़ेगा कि चंच नामकी कोई बेल है। यह *ल* पर ठोकर देकर पढ़नेसे ही हुआ है। इसे *चंचल-ता* के *ता* पर चोट देकर पढ़ा जाय तभी ठीक होगा। ऐसे ही यदि हम *कोमलता*को *कोम-लता* पढ़ें तो अशुद्ध होगा पर *सोमलता*को हमें *सोम-लता* ही पढ़ना चाहिए। इसलिये जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दीमें स्वराघात नहीं है वे बड़ी भूल करते हैं। कुछ बोलियाँ तो ऐसी हैं जिनमें बीचके अक्षरोंपर अलग-अलग बल देनेसे उनके अर्थ

बदल जाते हैं जैसे अंग्रेजीके *परफ़ेक्ट* में फ़े के ऊपर आघात होगा तो वह *विशेषण* होगा और यदि प के ऊपर होगा तो *क्रिया*। हिन्दी और संस्कृतमें शब्दके बीचमें आनेवाले अक्षरको खींचकर ठोकरके साथ बोलते हैं जैसे *अप्रकाशित* के अ को प्र से पहले बोलते हुए हम उसे *अप्प्रकाशित* पढ़ते हैं। ऐसा बोलते हुए हम प्र पर एक और प् की चोट मारते हैं। यह भी आघात या स्वराघात ही है।

गीतका उतार-चढ़ाव—

गाने-बजानेमें जो स्वरोंका उतार-चढ़ाव होता है उसे आरोह-अवरोह कहते हैं। वह दूसरे ढंगका होता है। उसमें अलग-अलग रागोंके लिये अलग-अलग स्वरोंका उतार-चढ़ाव होता है, भावोंके लिये नहीं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—कुछ ध्वनियाँ गलेके भीतर बोलीकी डोरियोंसे रगड़ खाकर निकलती हैं और कुछ कम रगड़। इनमेंसे पहलीको घोष और दूसरीको अघोष कहते हैं।

२—फुसफुसाहटसे बोली जानेवाली सब ध्वनियाँ धीमी या अघोष हो जाती हैं।

३—मुँहमें जिस ठौरसे कोई ध्वनि बोली जाती है उसे उस ध्वनिका ठौर या स्थान कहा जाता है।

४—बोलते हुए जीभ और ओठका अलग-अलग अटकाव देनेको प्रयत्न कहते हैं और यह प्रयत्न सब ध्वनियोंके लिये करना पड़ता है।

५– यह प्रयत्न पाँच ढंगके होते हैं:—१. जीभ या ओठ छू भर देना (स्पृष्ट); २. मुँह पूरा खोलना (विवार); ३. मुँह कम खोलना (संवार); ४. साँसकी धौंक देना (श्वास) और ५. स्वर गुँजाना (नाद)।

६—बहुतसे अक्षरोंके ठौर अलग-अलग बोलियोंमें अलग-अलग हैं या बदल गए हैं।

७—ध्वनियोंके पार्श्विक, लुंठित और संघर्षी भेद आचार्य चतुर्वेदी नहीं मानते।

८—ध्वनिमें तीन बातें मिलती हैं : १—खिंचाव या बिलगाव (मात्रा), २—उतार–चढ़ाव (स्वर) और ३—ठोकर (आघात)

———

३

ध्वनियोंमें क्या हेरफेर होता है ?

ध्वनियोंमें अदला-बदली

कुछ लोग मानते हैं कि मुँह और कानकी बनावट अलग होनेसे; ठीक ध्वनि सुनकर भी बोल न पा सकनेसे; शब्द या उसका अर्थ ठीक न जाननेसे; बोलनेमें हड़बड़ीसे; बोलनेकी सुविधा ढूँढ़नेसे; रीझ-खीझसे; दूसरी बोलियोंके मेलसे; अलग धरती-पानी-बयारसे; मारकाटमें इधर-उधर हो जानेसे; लिखनेकी गड़बड़ीसे; लम्बे शब्दको छोटा करनेसे; हल्के व्यञ्जनोंको गिरानेसे; बोलियोंके अपने बढ़ावसे; तुकके लिये बिगाड़नेसे; एकसी ध्वनियोंमें घपला हो जानेसे; ध्वनिकी चोटसे; आपसी मेलजोल बढ़नेसे; बिना जाने पंडिताई झाड़नेसे; दूसरी बोलीके शब्दको अपनी बोलीकी ध्वनिमें ढालकर बोलनेसे ध्वनियोंमें हेरफेर होता है—आचार्य चतुर्वेदी मानते हैं कि ध्वनियोंमें हेरफेर चार बातोंसे होता है : १ अनाड़ीपनसे, २. जान-बूझकर दूसरेके जैसा बोलनेसे; ३. रीझखीझमें बनकर बोलनेसे और ४. अपनी बोलीकी ढलनपर दूसरी बोलीकी ध्वनियोंको ढालनेसे—यह हेरफेर कुछ अपने-आप और कुछ बाहरके मेलसे होता है—निरुक्तवालोंने पाँच ढंगोंसे शब्दोंकी जाँच-परख की है : वर्णका आना, उलटना-पलटना मिटना, बिगड़ना और जैसा अर्थ हो उसकी ढलनपर धातुका अर्थ मान लेना—आजकलके लोग पन्द्रह ढंगसे ध्वनियोंका हेरफेर मानते हैं : नया वर्ण आना; इधरका उधर होना, मिटना, अपनेमें समा लेना, रूप बदलना, मिलकर एक हो जाना,

ऊष्म (श ष स ह) बनना, नकियाना, खिंचाव (मात्रामें घटी-बढ़ी), साँसकी धौंक (महाप्राण) देना; कम धौंक (अल्पप्राण) देना; स्वर-ढलाव (अभिश्रुति या ऊमलाउट); स्वर-फेर (एब्लाउट या अपश्रुति); धीमा करना; गहरा करना—नया वर्ण आने, उलट-फेर होने, निकल जाने और बदलनेके भीतर ये सब आ जाते हैं।

§१५—**मुखश्रोत्रभिन्नत्वोच्चारदोषशब्दार्थाज्ञानत्वरासौकर्यावेगसंसर्गदेशभेदविप्लवलेखप्रमाद-संक्षेपणाल्पव्यंजनोत्क्षेप-विकास-कविलाघवविभ्रमस्वराघातसम्पर्कपंडितम्मन्यत्व-स्वव्युत्पत्तितः वाग्विकार इत्याधुनिकाः। [कुछ लोग मानते हैं कि मुँह और कानकी बनावट अलग होने, ठीक ध्वनि सुनकर भी मुँहसे न निकाल पा सकने, शब्द या अर्थ ठीक न जानने, बोलनेमें हड़बड़ी करने, सुविधा ढूँढ़ने, रीझखीझ, दूसरी बोलीके मेल, अलग धरती-पानी-बयार, मारकाटमें इधर-उधर होने, लिखनेकी गड़बड़ी, लम्बे शब्दको छोटा करने, हल्के व्यंजन छोड़ने, बोलियोंके अपने बढ़ाव, तुक बैठाने, एकसी ध्वनियोंके घपले, ध्वनिकी चोट, मेलजोल बढ़ने, पंडिताई झाड़ने, दूसरी बोलीकी ध्वनिको अपनी बोलीकी ध्वनिमें ढालनेसे ध्वनियोंमें हेरफेर होता है।]**

कुछ लोगोंने बहुत चढ़ा-बढ़ाकर यह समझानेका जतन किया है कि इतनी बातोंसे ध्वनियोंमें हेरफेर होता रहता है—

१. अलग-अलग मुँह होनेसे, जैसे *रामको ज़ाम* कहना और कानकी बनावट अलग होनेसे, जैसे *अंगूर* को *लंगूर* सुनकर कहना।

२. ठीक-ठीक सुनी हुई ध्वनि मुँहसे निकाल न पा सकनेसे जैसे *प्रकाश* को *परकाश* कहना।

३. शब्दकी या अर्थकी ठीक जानकारी न होनेसे जैसे छात्र को *त्रात्र* कहना।

४. बोलनेमें हड़बड़ी करनेसे जैसे *अहमदाबादको* *अमदाबाद* कहना।

५. बोलनेमें सुविधा ढूँढ़नेसे जैसे *मास्टर साहबको* *माट्साब* कहना।

६. प्यार या रीझ-खीझमें बनकर बोलनेसे जैसे *संजय* का *संजू*।

७. दूसरी बोलियोंके मेलमें आनेसे जैसे *आर्ट्स कौलेज्* का *आट कालिज*।

८. अलग-अलग पानी-बयारमें रहनेसे।

९. कोई बड़ी भगदड़ या मार-काट होनेपर इधर-उधर बिखर जानेसे।

१०. लिखनेकी गड़बड़ीसे, जैसे *खड्गको* *खड्ग* पढ़ना।

११. लम्बे शब्दोंको छोटा करनेकी चाहसे जैसे *साइकिल-रिक्शा*-को *रिक्शा* कहना।

१२. हल्के व्यञ्जनोंके निकलनेसे जैसे *पहलाको* *पैला* कहना।

१३. अपने-आप बोलीकी ध्वनियोंके आगे बढ़ने और पनपनेसे जैसे *वर्त्तते*से *भोजपुरीमें* *बाटै* बन गया।

१४. कवितामें तुक बैठानेके लिये तोड़ने-मरोड़नेसे जैसे *राज* का *राजू*। (देखो—पिता दीन मोहि कानन *राजू*।)

१५. एकसी ध्वनियोंवाले शब्दोंके साथ घपला हो जानेसे जैसे *पंचम* और *सप्तमके* जोड़पर *षष्ठको* *षष्ठम* कहना।

१६. ध्वनिकी चोट (स्वराघात) से जैसे *लोटाका* *लोट्टा*, *कविको* *कवी*।

१७. आपसमें मेलजोल (सामाजिक संसर्ग) बढ़नेसे जैसे गाँवके लोग *रासन (राशन)* और *मिलश्टर (मिनिस्टर)* कहने लगे।

१८. बिना जाने पंडिताई छाँटनेके लिये, जैसे *जनाब* को *ज़नाब* कहना।

१९. दूसरी बोलीके शब्दका अर्थ अपनी बोलीकी ध्वनिपर ढालकर बनानेसे जैसे *औनरेरी कोर्ट* को *अँधेरी कचहरी कहना।*

§ १६—**असंस्कारात्प्रकृतित्वादनुकरणादावेगाच्च ध्वनि-विकृतिः। [अनाड़ीपनसे, रीझखीझमें, अपनी बोलीकी ढलनसे और जान-बूझकर दूसरोंकी बोलीकी रीस करके बोलनेसे ध्वनि बिगड़ जाती है।]**

आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि ध्वनिमें जो हेरफेर होता है वह चार ही बातोंसे होता है—

१. अनाड़ीपन (अज्ञान) से।

२. जान-बूझकर दूसरेकी देखादेखी (अनुकरण करके) बोलनेसे।

३. प्यार या रीझ-खीझमें बिगाड़कर बोलनेसे।

४. अपनी बोलीकी ढलनपर।

जब कोई किसी बोलीके शब्दको जानता नहीं है तब ठीक-ठीक सुननेपर भी वह उसको बिना जाने उसकी रीस करनेके लिये या वैसा ही बोलनेके लिये जो जतन करता है उसीसे सब गड़बड़ी आ खड़ी होती है। ऊपर गिनाए हुए २, ३, ४, ५. १०, ११, १२, १४, १५, १६, १७, १९ संख्यावाली बातें तो अनाड़ी-पनमें ही आ जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि सब भाषाओंमें बोलनेके कुछ अपने-अपने ढंग होते हैं। यह उस बोलीका अपना चलन (स्वभाव) कहलाता है। उस बोलीके बोलनेवाले या उस बोलीमें बोलनेवाले

लोग बोलते हुए सदा उसी बोलीका चलन लेकर बोलते हैं। ७, ८, ९ संख्याके कारण इसमें आते हैं। एक ही मनुष्य दो जनोंसे एक ही बात दो ढंगोंसे कहता है—

१. धाखओ हुआँ जउन मनई होय उहिका दइ दिहओ।

२. देखो वहाँ जो मनुष्य हो उसे दे देना।

कलकत्तेका व्यापारी मारवाड़ी तीन जनोंसे तीन ढंगसे बोलता है—

१. *कुण ऐ, के ऐ, के खबर ऐ ?* (मारवाड़ीसे)

२. *कौन है, क्या है, क्या ख़बर है ?* (उत्तरप्रदेशीयसे)

३. *की मौशाए, की आछे, की खोबोर।* (बंगालीसे)

इससे यह समझमें आ सकता है कि पढ़े-लिखे समझदार लोग भी सुननेवालेको देखकर और अलग-अलग बोलियोंके ढंगपर अदल-बदलकर बोलते रहते हैं। इसे हम अनजानपन या अनाड़ीपन नहीं कह सकते। यह तो जान-बूझकर दूसरेकी बोलीके चलनके साथ ढलना है।

प्यार या रीझ-खीझ या बनकर बोलनेसे भी ध्वनियोंमें हेरफेर हो जाता है। ६ और १८ संख्याके कारण इसमें आते हैं।

हम पहले ही बता आए हैं कि मुँह और कानकी बनावट अलग-अलग होने और पानी-बयार-धरती बदलनेसे ध्वनियोंमें हेरफेर नहीं होता।

इसलिये ध्वनियोंमें हेरफेर होनेके चार ही ढंग हो सकते हैं— १. अनाड़ीपन या अनजानपन, २. किसी दूसरी बोलीके ढङ्गपर बोलनेका जतन, ३. प्यार या रीझ-खीझमें बोलना और ४. अपनी बोलीकी ढलनपर दूसरी बोलियोंके शब्द बोलना।

बहुतसे लोग कहा करते हैं कि बोलनेकी सुविधा (*मुखसुख*) देखकर बोलियोंकी बहुत घिसाई-पिसाई हो गई है पर हम यह नहीं मानते हैं। ऐसा होता तो जर्मन बोलीका बहुतसा कड़वापन, कनफोड़पन और ऊमलाउटकी बेढंगी ध्वनियाँ फ्रांसके पड़ोसमें रहकर कभीकी घिसकर मिट गई होती; जापानकी और चीनकी बोलियोंमें *अ–ता–ए–रू* (देना) जैसी अलग अलग ध्वनियाँ अबतक *अतैरू* बन जातीं, तेलुगुका *वेन्नेल* (चाँदनी) और चन्द्र डु, (चन्द्रमा) अब तक *वेनल* और चन्दर बन जाता। उत्तर भारतकी ध्वनियोंमें यह घिसाई बहुत मिलती है और इसीलिये हमने भूलसे यह मान लिया है कि यहाँकी सब बोलियाँ संस्कृतसे निकली हैं। पर सच्ची बात यह है कि आर्योंके हाथमें आई हुई धरतीपर जितनी बोलियाँ पहलेसे बोली जाती थीं उन सबके शब्दोंको आर्योंने सँवार-सुधारकर, माँजकर (संस्कृत करके) एक पक्का ढाँचा बनाकर खड़ा कर दिया। इसे हम यों समझा सकते हैं कि जैसे—*डोमराँव* को *द्रुमग्राम*, *सेगाँवको सेवाग्राम*, *लखनऊको लक्ष्मणपुर* बना लिया गया वैसे ही हो सकता है कि *अंगूठाको* भी *अंगुष्ठ* बना लिया गया हो। दूसरी ओर जो लोग संस्कृत सुनते थे पर जिन्हें संस्कृत आती नहीं थी उन्होंने अपने अनाड़ीपनसे या दूसरोंकी सुनासुनी बोलनेके लिये वैसा ही बोलनेका जतन करते हुए जो गड़बड़घोटाला किया उसमें जहाँ *धर्मका धरम* बना, *लैंटर्नका लालटेन* बना, वहीं इच्छाका *इच्छा*, *जनाबका ज़नाब*, और छात्र का *त्नात्र* भी बन गया। इन दोनों ढंगोंके उलटफेरमेंसे पहला तो पढ़े-लिखे गुनी लोग करते हैं और दूसरा हेरफेर अनाड़ी, अपढ़ लोग अपने अयानपनसे करते हैं। बोलनेवालोंमें बहुतायत अपढ़ोंकी होती है। इसलिये वे जो कुछ बोलते हैं वह धीरे-धीरे चल निकलता है और बोलीमें घुल-मिलकर सबके मुँह

चढ़ जाता है । इसीलिये हमारे यहाँ सबको पहले ठीक ढङ्गसे ध्वनियाँ मुँहसे निकालना सिखाया जाता था जिससे बोलते हुए बोलीका साँचा न बिगड़ने पावे। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि चाहे *सेगाँव* को सँवारकर *सेवाग्राम* बनाया जाय, चाहे *इच्छा* को भूलसे सजाकर *इच्छा* किया जाय, चाहे *धर्म*का *धरम* किया जाय पर हैं ये सब *बिगाड़* (*विकृति*) ही।

अपनी बोलियोंके बीचमें रहकर भी जो लोग जंगलों या पहाड़ोंमें अपनी टोली बनाए पड़े रहे वे आज भी हमारी बोलियोंके चक्करमें नहीं पड़े और उनकी बोली वही पुरानी बोली बनी हुई है। संथाली बोली जो संथाल परगना (बिहार) में बोली जाती है वह मगधके राजाओं और बुद्धकी बानियोंसे भी अछूती बनी पड़ी रही। नीचे हम उनके कुछ वाक्य दे रहे हैं जिससे सब भेद अपने आप समझमें आ जायगा—

१—यह रामका घोड़ा है।

[*नुय दो रामरेन सादोम कानाम* ।]

२—मेरा नाम सुरजू है।

[इञाक् ञुतुम दो सुरजू काना ।]

३—मैं मंझीडीह गाँवमें रहता हूँ।

[इञ् दो मंझीडीह् रीञ् ताहेन काना।]

४—घरमें मेरी माताजी और पिताजी हैं।

[ओड़ाक् रेदो इञ् गो आर इञ् बाबा तिकीन मेनाक् किना ।]

५—मेरे चार भाई और दो बहनें हैं।

[आले दो पोन बोयहा कोड़ा आर बार बोयहा कुड़ी मेनाक् लेया।]

६—हमारे पिताजी खेती करते हैं।

[इञ् बाबा दोय चासा होड़ काना।]

७—हम गऊ पालते हैं।

[आले दो गाय ले आसुल कोवा।]

८—तुम्हारा (आपका) क्या नाम है ?

[आमाक् तुम दो चेत् काना ?]

९—तुमने मेरे फल क्यों लिए ?

[आञ् दो ईञाक् जो चेदाक् एम हताव केदा।]

१०—हमारी नदी हमें जल देती है।

[आबोवाक् गाडा आबो दाक् ए एमाबोन काना।]

११—हरे पेड़ हमारे लिये फल और छाया देते हैं।

[हरियाड़ दारे दो आबोको जो आर उमुले एमाबोन काना।]

१२—हम लोग बाँस और पत्तोंसे अपनी मँड़ई छाते हैं।

[आले दो मात् आर सकाम ते अपनार ओड़ाक् ले दाय् एदा।]

१३—हम कुत्ता भी पालते हैं।

[आले दो सेता होंले आसुल कोवा]

१४—कोयलका गीत हमें अच्छा लगताहै।

[कोलाक् राक् दो आड़ी मोजिञ् आंजोमा।]

१५—हम माराङ्बुरुकी पूजा करते हैं।

[आले दो माराङ् बुरु ले पूजावाय काना।]

हेरफेरके ढंग : अपने-आप और बाहरी लगावसे—

§ १७ - विकारस्त्वन्तर्बाह्यश्च। [अपने आप और बाहरके मेलसे हेरफेर होता है।]

यह कहा जाता है कि ध्वनियोंमें हेरफेर दो ढङ्गके होते हैं—एकको *अपने आप हेरफेर (अनकन्डिशनल या स्पौन्टेनियस)* और दूसरेको *बाहरी लगावसे हेरफेर (कन्डिशनल या कौन्टेक्ट)* कहते हैं।

इन लोगोंका कहना है कि बाहरी लगावसे होनेवाले हेरफेर तब होते हैं जब ऊपर बताई हुई उन्नीस बातोंमेंसे कोई बात आ

खड़ी होती है। पर अपनेसे होनेवाले हेरफेरके लिये कोई ओट नहीं ढूँढ़नी पड़ती। हम ऊपर बता आए हैं कि ध्वनियोंमें जितने हेरफेर होते हैं, वे चार बातोंसे ही होते हैं—या तो १. अनाड़ीपनसे, या, २. जानबूझकर रीस करनेसे, या, ३. प्यार-दुलार और रीझ-खीझमें बनकर बोलनेसे या, ४. अपनी बोलीकी ढलनपर दूसरी बोलीके शब्द बोलनेसे। इसलिये कोई भी हेरफेर अपने आप नहीं हो पाता है। जो यह कहते हैं कि ध्वनियोंको नकियाकर बोलना अपने आप होता है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि उसमें भी दो बातें हो सकती हैं—या तो १. बोलनेवाला ठीक ध्वनि जानता ही न हो, या २. उसकी नाकमें गड़बड़ी हो। नाकका ठीक न होना, मुँह टेढ़ा होना, गले या मुँहमें रोग होना यह किसी एक-आधेके साथ होता है। इसे हम ध्वनियोंके हेरफेरकी टेक नहीं मान सकते।

§ १८—निरुक्तमतेन वर्णागम-विपर्यय-विकार-नाश-धात्वर्थातिशययोगाः। [निरुक्त वालोंने पाँच ढंगसे शब्दोंकी जाँच-परख मानी है[1]।]

निरुक्तवाले कहते हैं कि पाँच ढंगोंसे शब्दोंकी जाँच-परख होती है—

१—शब्दमें किसी अक्षरका बाहरसे आकर जुड़ जाना (*वर्णागम*)।

२—शब्दके अक्षरोंमें उलट-पलट या इधरका उधर हो जाना (*वर्ण-विपर्यय*)।

३—शब्दके किसी एक अक्षरके बदले दूसरा अक्षर आजाना (*वर्ण-विकार*)।

---

१. वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

४—शब्दमेंसे किसी अक्षरका निकल जाना (*वर्णलोप* या *वर्ण-नाश*)।

५—जैसा अर्थ हो उसीके ढंगपर धातुका अर्थ मान लेना (*धात्वर्थातिशययोग*)।

§ १६—**पञ्चदशधेति नव्याः। वर्णागमविपर्ययलोपसवर्णीकरणविकारमेलोष्मणानुनासिकनाभिमात्रण-महाप्राणनाल्प - प्राणनाभिश्रुत्यपश्रुतय इति। [आजकल लोग पन्द्रह ढंगके हेरफेर मानते हैं।]**

आजकल बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोगोंने पन्द्रह ढंगसे ध्वनियोंमें हेरफेर बताया है—१—नई ध्वनिका आना (*वर्णागम*); २—उलटफेर (*विपर्यय*); ३—हटना (*वर्णलोप*); ४—अपनेमें समालेना (*आत्मीकरण या सवर्णीकरण*); ५—अपना रूप बदलना (*विकार, रूपत्याग या विषमीकरण*); ६—मेल (*सन्धि*); ७—साँसके अक्षर (*श ष स ह*) बनना (*ऊष्मण*); ८—नकियाव (*अनुनासिकन*) ९—अक्षरके खिंचावमें भेद (*अभिमात्रण*); १०—साँसकी धौंक देकर बोलना (*महाप्राणन*); ११—साँसकी कम धौंक देना (*अल्पप्राणन*); १२—स्वर-ढलाव (*ऊमलाउट या अभिश्रुति*); १३—स्वर-फेर (*ऐब्लाउट या अपश्रुति*); १४—गहरा (*घोष*) करना; १५—धीमा (*अघोष*) करना।

१. नई ध्वनिका आना [वर्णागम]

यह कहा जाता है कि हम लोग अपनी बोलीमें जीभको कम चलानेकी छूट देनेके लिये नई ध्वनियाँ ले आते हैं। ये स्वरोंमें भी आती हैं और व्यञ्जनोंमें भी, यहाँतक कि कभी-कभी तो स्वर मिले हुए व्यंजन-तक नये-नये आ जाते हैं।

स्वरागम

नये स्वर तीन ढंगसे आते हैं—या तो १. शब्दमें पहले, या २. बीचमें, या ३. पीछे।

[क] *पहले स्वर आना (आदि-स्वरागम या प्रोथीसिस)*

ऐसा देखा गया है कि शब्दके पहले आकर लगनेवाला स्वर हल्का (ह्रस्व) होता है जैसे *परौंठाका उपरौंठा*, *स्कूलके* लिये *इस्कूल*, *स्थितिके* लिये *इस्थिति* और *स्पष्टके* लिये *अस्पष्ट* (जो उसका अर्थ ही उलट देता है)। कभी तो बोलना न आनेसे जान-बूझकर ऐसा होता है कभी अनजाने। उर्दूवाले तो सदा *स्कूलको इस्कूल* ही लिखते-पढ़ते हैं। यह नया स्वर शब्दसे पहले बहुतायतसे उन्हीं शब्दोंमें आता है जिनमें पहला अक्षर स् के साथ मिला होता है जैसे *स्क*, *स्ट*, *स्त*, *स्प*, *स्न*। पर ऐसे भी बहुतसे शब्द हैं जहाँ औरोंमें भी आ जाता है जैसे—*न्हाना* के लिये *अन्हाना*, *प्रबलसिंह* का *अपरबलसिंह* और *कलंक* के लिये *अकलंक*।

[ख] *बीचमें स्वर आना (मध्यस्वरागम, स्वरभक्ति या एनैप्टैक्सिस)*

कभी-कभी ये स्वर बीचमें भी आ जाते हैं जैसे पंजाबीमें *स्टूडेण्ट* को *सटूडेण्ट*, *स्टूल* को *सटूल*, *स्नान* को *सनान*, *प्रसाद* को *परसाद*, *पर्व* को *परब*, *प्रजा* को *परजा*. *स्वीकार* को *सुवीकार*, *ट्राम* को *टिराम*, और *शास्त्र* को *शासतर* कहते हैं। पर इसका सबसे बढ़िया साँचा है *मंडी* का *मंडई*।

[ग] *पीछे स्वर आना (अन्तस्वरागम)*

हिन्दीमें बहुत कम ऐसे शब्द हैं जिनके पीछेका वर्ण या अक्षर व्यञ्जन हो पर बोलचालमें हिन्दीके सभी 'अ' की टेकके अन्त होनेवाले शब्दोंके अन्तके व्यंजन ऐसे बोले जाते हैं कि

उनके सबसे पीछेके अक्षरमें स्वर न हों जैसे *कलमका कलम्*, *कुन्दनका कुन्दन्*। पर बहुतसे ऐसे भी शब्द हैं जिनमें पीछे एक-दो स्वर जोड़ दिए जाते हैं जैसे राजपूतानेमें नामके पीछे *आ* या *ओ* लगानेका चलन है जैसे *गनपत्*का *गनपती*, *गनपतिओ* या *गनपतिआ* हो जाता है।

[घ] *एक जैसे स्वरका पहले आना (सवर्णागम, अपिनिहिति या एपेन्थेसिस)*

कुछ लोग एक और भी ढंगसे स्वरका आना मानते हैं और उसे अपिनिहिति या सवर्णागम कहते हैं। कुछ लोग अपिनिहिति (या सवर्णागम) और स्वर-भक्ति (बीचमें स्वर आने) को एक ही मानते हुए कहते हैं कि स्वर-भक्ति तो दो व्यञ्जनोंके मेलसे बने हुए अक्षरसे पहले आती है जैसे इस्टेशनमें स्टेसे पहले–'इ', पर अपिनिहिति वहाँ होती है जहाँ अकेले व्यञ्जनसे पहले स्वर आ जाय जैसे *परौंठा*के पहले *उ* लगाकर *उपरौंठा* या *कलंक*के पहले *अ* लगाकर *अकलंक* बोलते हैं। पर सच पूछिए तो ये दोनों ही *आदि-स्वरागम* के ही दो साँचे हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि सवर्णागम तब होता है जब शब्दमें एक स्वर पहलेसे रहता हो और उसीके साथ एक दूसरा उसीके जैसा स्वर उससे पहले आ पहुँचे जैसे संस्कृतके *तरुण* शब्दमें *त्* के साथ *अ* लगा हुआ है पर *अवेस्तामें* इसी *त* का *तउरुण* हो जाता है। हमारे यहाँ अवधी बोलीमें भी इसी ढंगसे *सवर्णागम* होता है जैसे—*लोटा (ल् + ओ + ट् + आ)* का *ल्वाटा (ल् + ओ + आ + ट् + आ)* हो जाता है। यहाँ आया हुआ स्वर *आ* है। इस ढंगसे तो *तनिक* से बिगड़े हुए *तिनिक* के *ति* में जो *इ* आ गई है वह भी अपिनिहिति माना जायगा। पर वह सीधा मध्यस्वरागम है।

बहुतसे लोग भूलसे *स्त्री*के *इस्त्री* बोले जानेवाले शब्दके इ को भी *समस्वरागम* मानते हैं पर यह आदिस्वरागम ही है। कुछ लोग यह मानते हैं कि *आदिस्वरागम*में कोई भी स्वर आ सकता है जैसे *स्तुति* में *अस्तुति*, पर *अपिनिहिति*में ठीक वही स्वर आना चाहिए जो पहलेसे शब्दमें हो। पर यह सब ठीक नहीं है। आचार्य चतुर्वेदी ये सब भेद ही नहीं मानते क्योंकि आदि, मध्य और अन्त-स्वरागममें ही ये सब समा जाते हैं। यह बालकी खाल निकालना भर है।

व्यञ्जनागम

व्यञ्जन भी शब्दमें तीन ढंगसे आते हैं--

१. शब्दमें पहले, २. बीचमें, ३. या पीछे।

[क] *शब्दमें पहले व्यंजन आ जाना (आदि-व्यंजनागम)*

किसी शब्दके पहले रहनेवाले स्वरसे पहले कोई नया व्यंजन आ जाता है जैसे *औरंगाबाद* का *नौरंगाबाद*।

[ख] *बीचमें व्यंजन आना (मध्यव्यंजनागम)*

किसी शब्दके बीचमें नया व्यंजन आ जाता है जैसे *शाप* का *श्राप*।

[ग] *पीछे व्यंजन जुड़ना (अन्त-व्यञ्जनागम)*

किसी शब्दके पीछे कोई नया व्यञ्जन आ जुटता है जैसे दक्षिण भारतमें *राधाकृष्ण* का *राधाकृष्णन्*।

अक्षरागम

स्वर मिला हुआ व्यञ्जन (अक्षर) भी कभी-कभी शब्दमें पहले, बीचमें या पीछे आ जुड़ता है।

[क] *शब्दसे पहले स्वरके साथ व्यंजन (अक्षर) का आना (आदि-अक्षरागम)*

किसी शब्दके पहले नया अक्षर आ जुटता है जैसे *कल्लस* (*कल्ले या गाल बजाना, बकवाद करना*) का *चकल्लस* ।

[ख] *शब्दके बीचमें अक्षर आना* (*मध्य-अक्षरागम*)

किसी शब्दके बीचमें नया अक्षर आ जाता है जैसे *कमंडलु* का *करमंडल*, *सुशील* का *सुरसील*, *अमूल्य* का *अनमोल* और *आलस* का *आलकस* ।

[ग] *शब्दके अन्तमें अक्षर आना* (*अन्त-अक्षरागम*)

शब्दके अन्तमें कोई अक्षर आ जुटता है जैसे *जीभ* का *जीभड़ी*, *रंग* का *रंगत* ।

२. ध्वनियोंमें अदला-बदली (वर्ण-विपर्यय या मैटाथीसिस)

जब किसी शब्दमें कोई स्वर या व्यञ्जन या अक्षर इधरके उधर हो जाते हैं उसे *विपर्यय* या *अदला-बदली* कहते हैं। ये अदल-बदल दो ढंगके होते हैं—१. एक तो पासवालोंमें (*पार्श्ववर्ती*) जैसे *चिह्नका चिन्ह*, दूसरे दूरवालोंमें (*दूरवर्ती*) जैसे *पहुँचाना* का *चहुँपाना* या *हृदय* का *हियरा* (*हृदय—हिरदय—हिरअय—हिअरय—हियरअ—हियरा*)। यह उलट-फेर स्वरों, व्यञ्जनों और अक्षरों, तीनोंमें होते हैं।

स्वरोंमें अदला-बदली

[क] *पासके स्वरोंमें अदला-बदली (पार्श्ववर्ती स्वर-विपर्यय)*

किसी शब्दमें पासके स्वरोंमें *अदला-बदली* हो जाती है जैसे *कुँअरजी* का *कँउरजी* ।

[ख] *दूरके स्वरमें उलटफेर* (*दूरवर्त्ती स्वर-विपर्यय*)

किसी शब्दके दूरके स्वरोंमें *अदला-बदली* हो जाती है, जैसे *काजर* का *कजरा*, *पागल* का *पगला* ।

व्यञ्जनोंमें अदला-बदली

[क] *पासके व्यंजनोंमें अदला-बदली (पार्श्ववर्ती व्यञ्जन-विपर्यय)*

शब्दमें पास-पासके व्यञ्जनोंमें भी अदला-बदली हो जाती है जैसे *चिह्न* का *चिन्ह*, *ब्राह्मण* का *ब्राम्हण*, *सिग्नल* का *सिन्गल*, *मह्यं* का पालिमें *मय्हं*। कुछ लोगोंने भूलसे डूबना के बूड़नाको भी पासके व्यंजनोंका उलटफेर माना है पर वे यह भूल गए कि इन व्यंजनोंके बीचमें स्वर भी फँसे हुए हैं।

[ख] *दूरके व्यंजनोंमें अदला-बदली (दूरवर्ती व्यञ्जन-विपर्यय)*

शब्दोंके दूरके व्यञ्जनोंमें भी अदला-बदली हो जाती है जैसे—१. (स्वरका बीच देकर) *पहुँचाना*का *चहुँपाना* या *पिशाचमोचन*-का *पिचासमोचन* और २. (व्यंजनोंका बीच देकर) जैसे *चिल्ड्रेन्स स्कूल* का *चिन्ड्रल्स इस्कूल*। इसके उदाहरणोंमें कुछ लोगोंने भूलसे *लखनऊ*का *नखलऊ* भी दिया है पर यह तो *अक्षर-विपर्यय* (स्वर मिले हुए व्यंजनकी अदला-बदली) है, अकेला व्यंजनकी नहीं।

अक्षरोंमें अदला-बदली

[क] *पासके अक्षरोंमें अदला-बदली (पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय)*

किसी शब्दमें पास-पासके पूरे अक्षरोंमें अदला-बदली हो जाती है जैसे *लखनऊ*का *नखलऊ*।

[ख] *दूरके अक्षरोंमें अदला-बदली (दूरवर्ती अक्षर-विपर्यय)*

किसी शब्दमें दूरके अक्षरोंमें अदला-बदली हो जाती है जैसे *गुलनार* का *गुरनाल*।

[ग] *स्वर, व्यंजन या अक्षरोंकी कूद (वर्णोत्प्लवन)*

कभी कभी कोई स्वर, व्यञ्जन या अक्षर अपनी ठौरसे उठकर कहीं दूसरी ठौरपर जा बैठता है जैसे—*दउँगड़ा* (पहली वर्षा) का *दगउँड़ा*, *प्रसाद* का *पसाद*, *फ़ितरती*का *तरफ़िती*।

[घ] *वाक्यमें शब्दके टुकड़ोंकी अदला-बदली (लयान्विति-विपर्यय या स्पूनरिज़्म)*

ऑक्सफोर्डके अध्यापक डाक्टर डब्ल्यू.ए.स्पूनर (१८४४-१९३०) जब बोलते थे तब उनकी जीभ लटपटाकर किसी वाक्यके शब्दोंके टुकड़े ही इधरसे उधर कर देते थे जैसे उन्होंने एक विद्यार्थीसे "*यू हैव् वेस्टेड ए होल टर्म*' (तुमने एक पूरा वर्ष नष्ट कर दिया) के बदलेमें कहा—"*यू हैव् टेस्टेड ए होल वर्म*" (तुमने एक पूरा कीड़ा चख लिया) । हम लोग भी कभी-कभी बोलते हुए *दाल-भात* का *भालदात* या *तुम पढ़ने नहीं जा रहे हो* के बदले *तुम जढ़ने नहीं पा रहे हो* कह देते हैं । ऐसी भूलें अनमने होने, हड़बड़ी या घबराहटमें ही निकलती हैं ।

३. ध्वनिका निकल जाना (वर्णलोप या एलीज़न)

कभी-कभी हम लोग जब झटके या हड़बड़ीमें बोलते हैं तब बहुतसी ध्वनियोंको चबा जाते हैं या खा जाते हैं । इस ढङ्गसे बोलते-बोलते हमारी बान ही ऐसी पड़ जाती है कि हम उस शब्दको बोलते हुए उसकी कुछ ध्वनियोंको खाने या चबाने लगते हैं यहाँतक कि वे ध्वनियाँ पूरी घिस जाती हैं जिससे सुननेवाला भी उसी ढङ्गसे अक्षरोंको छोड़कर बोलने लगता है । इस ढङ्गसे स्वरों, व्यञ्जनों और अक्षरोंके निकल जानेको *लोप* कहते हैं । यह *लोप* या *घिसाव* या तो शब्दकी पहली ध्वनिका होता है या बीचकी या पीछेकी ।

स्वर निकलना (स्वर-लोप)

[क] *शब्दके पहले स्वरका मिटना (आदि-स्वर-लोप या ऐफ़ैसिस)*

जब किसी शब्दमें पहले आनेवाला स्वर निकल जाता है तब वहाँ आदि-स्वर-लोप होता है जैसे *अनाज* का *नाज*, *उठाना* का

ठाना, *अकेला* का *केल्ला*, *अधेला* का *धेला*, *अफ़ीम* का *फ़ीम*, *अमावस* का *मावस* ।

[ख] *शब्दके बीचमें स्वर मिटना (मध्य-स्वर-लोप या सिङ्कोपी)*

जब किसी शब्दके बीचसे स्वर निकल जाता है तो उसे मध्य-स्वर-लोप कहते हैं जैसे फ़ारसीके *ज़ियादह्* का *ज़्यादह्*, बदरीदासका *बद्रीदास* ।

हिन्दीमें बोलते हुए बीचमें जहाँ दो शब्दोंका मेल होता है उसमें यदि पहलेवाले शब्दके पिछले अक्षरमें अ की टेक हुई तो वह अ निकल जाता है जैसे *कमलदेव* को *कमल्देव*, *परममित्र* को *परम्मित्र* और *जलपात्र* को *जल्पात्र* बोलते हैं। इसी ढङ्गपर लोग *परम* को *पर्म* और *सकता* को *सक्ता* बोलते और लिखते हैं यहाँतक कि लोग *कृपया* को *कृप्या* भी लिखने लगे हैं।

[ग] *अन्तका स्वर निकल जाना (अन्तस्वर-लोप)*

जैसे शब्दोंके बीचसे स्वर निकल जाता है वैसे ही शब्दोंके अन्तमें स्वरकी टेकवाले अक्षरोंसे भी स्वर निकल जाता है जैसे *कलम* को *कलम्*, *रीति* को *रीत्* और चन्द्रभानुको चन्दर्भान् कहते हैं।

व्यंजन निकलना (व्यञ्जन-लोप)

[क] *शब्दका पहला व्यंजन निकल जाना (आदि-व्यञ्जन-लोप)*

शब्दमें पहले जो मिला हुआ वर्ण (संयुक्ताक्षर) आवे उसमेंसे पहला व्यञ्जन छूट जाता है जैसे *स्थालीका थाली*, *स्फोटका फोड़* ।

[ख] *शब्दके बीचसे व्यंजन निकल जाना (मध्य-व्यञ्जन-लोप)*

किसी शब्दके बीचसे भी व्यञ्जन निकल जाता है जैसे *सूची* से *सूई*, *पिष्टान्न* से *पिसान*, *ब्राह्मण* से *बाम्हन*, *कायस्थ* से *कायथ* हो जाता है।

[ग] शब्दके अन्तसे व्यंजन निकल जाना (अन्त-व्यञ्जन-लोप)

शब्दके अन्तमें आनेवाला व्यञ्जन भी कभी निकल जाता है जैसे पालि भाषामें *भगवान्* का *भगवा* होता है।

लयकी झोंक निकल जाना (लयान्विति-लोप या सिलेबिक एलीज़न)

जैसे शब्दोंमेंसे स्वर और व्यञ्जन निकल जाते हैं वैसे ही कभी-कभी शब्दोंमें पहले, बीच या पीछे आनेवाली पूरी लयान्विति (सिलेबिल) भी निकल जाती है।

[क] शब्दकी पहली लयान्विति निकल जाना (आदि-लयान्विति-लोप या ऐफ़ैरेसिस)

कभी-कभी किसी शब्दमें पहली लयान्विति निकल जाती है, जिससे *बदबू* का *बू*, *बाइसिकिल* का *साइकिल*, *एअरोप्लेन* का *प्लेन* *ओझा (उपाध्याय)* का *झा* रह जाता है।

[ख] बीचसे लयान्विति निकल जाना (मध्यलयान्विति-लोप)

शब्दोंके बीचसे भी कभी-कभी लयान्विति निकल जाती है जैसे *मास्टर साहब* का *मास्साब* रह गया, टर निकल गया।

[ग] शब्दके पीछेकी लयान्वितिनिकल जाना (अन्त-लयान्विति-लोप)

शब्दकी अन्तिम लयान्विति भी कभी-कभी निकल जाती है जैसे *माता* का *माँ* या *पानीयम्* का *पानी*।

[घ] एक जैसी दो लयान्वितियोंमेंसे एक-का निकल जाना (सम-लयान्विति लोप या हैप्लोलौजी)

अमेरिकाके श्री ब्लूमफ़ील्डने यह बतलाया है कि कभी-कभी जब एक शब्दमें एक ही अक्षर दो बार आवे तो एक निकल जाता है जैसे *नाककटा*का *नकटा*।

४. अपने जैसा बनाना (सवर्णीकरण, आत्मीकरण या ऐसीमिलेशन)

कभी-कभी जब दो ध्वनियाँ एक साथ मिलकर आती हैं तब उनमेंसे एक ध्वनि दूसरी ध्वनिको मिटाकर अपनेको दुहरा कर लेती है जैसे *पक्व* से *पक्का* । इसीको सवर्णीकरण कहते हैं। यह दो ढंगसे होता है—१. आगे आनेवाली ध्वनिको अपने जैसा बना लेना, और २. अपनेसे पहले आनेवाली ध्वनिको अपने जैसा बना लेना। ये भी दो ढंगसे होते हैं—कभी तो पास-पासकी दो ध्वनियोंमेंसे एक ध्वनि, दूसरी ध्वनिको अपने जैसा बना लेती है, और कभी एक ही शब्दकी एक ध्वनि उसी शब्दमें दूर बैठी ध्वनिको अपने रूपमें बदल लेती है।

व्यञ्जनोंमें अपनानेकी चाल

[क] *दूरकी आगेवाली ध्वनिको अपने जैसा करना, (दूरस्थ पर-सवर्णीकरण, इन्कौन्टैक्ट प्रोग्रेसिव ऐसिमिलेशन या अपार्श्वस्थ अग्रात्मीकरण)*

किसी शब्दकी एक ध्वनि उसी शब्दमें आगे दूर बैठी ध्वनिको अपने जैसा बना लेती है जैसे *खटपट* का *खटखट* हो गया है।

[ख] *पासकी अगली ध्वनिको अपने जैसा करना (पार्श्वस्थ पर-सवर्णीकरण, अग्रात्मीकरण या कौन्टैक्ट प्रोग्रेसिव ऐसिमिलेशन)*

किसी शब्दमें पास-पास आए हुए दो व्यञ्जनोंमेंसे पहला व्यञ्जन अपने साथके आगेवाले दूसरे व्यञ्जनको भी अपने रूपमें बदल लेता है जैसे—*चक्र* का *चक्क*, *पक्व* का *पक्का*, *पत्र* का *पत्ता*।

[ग] *दूरकी पहलेवाली ध्वनिको अपने जैसा करना (दूरस्थ पूर्व-सवर्णीकरण, इन्कौन्टेक्ट रिग्रेसिव ऐसिमिलेशन)*

किसी शब्दमें दूर बैठी पहली ध्वनिको अपने रूपमें ढाल लेना जैसे *बारहसिंगाका सारहसिंगा* ।

[घ] *पासके पहले व्यंजनको अपने जैसा बना लेना (पार्श्वस्थ पूर्व-सवर्णीकरण या कौन्टैक्ट रिग्रेसिव ऐसिमिलेशन)*

इसमें पास-पास बैठे हुए दो व्यञ्जनोंमेंसे दूसरा व्यंजन अपनेसे पहले आए हुए व्यंजनको अपने साँचेमें ढाल लेता है जैसे *धर्मका धम्म, कलक्टरका कलट्टर, सक्तुका सत्तु* ।

स्वरोंमें अपनानेकी चाल

इस ढंगके आत्मीकरण स्वरोंमें भी होते हैं —

[क] *दूरके अगले स्वरको अपने जैसा बनाना (दूरस्थ अग्रात्मीकरण या इन्कौन्टेक्ट प्रोग्रेस्सिव ऐसिमिलेशन)*

किसी शब्दका पहला स्वर दूर बैठे आगेवाले स्वरको अपने रंगमें बदल लेता है जैसे *ज़ुल्मका ज़ुलुम* ।

[ख] *दूरपर पहलेवाले स्वरको अपने जैसा बना लेना (दूरस्थ पूर्वात्मीकरण या इन्कौन्टेक्ट रिग्रेस्सिव ऐसिमिलेशन)*

किसी शब्दमें दूर बैठे हुए दो स्वरोंमेंसे दूसरा स्वर अपनेसे पहले स्वरको अपने रूपमें ढाल लेता है जैसे अवधीमें *तेहिका तिहि* ।

[ग] *पासके स्वरको अपने जैसा बना लेना (पार्श्वस्थ आत्मीकरण या कौन्टेक्ट-ऐसिमिलेशन)*

पास-पास बैठे रहनेवाले स्वरोंमें आत्मीकरण हो जाता है जैसे *भोजपुरीमें दिअर (द्वीप) का दिइर* ।

मिटना (विलयन)

दोनोंका मिटना (उभय-विलयन या म्यूचूअल ऐसिमिलेशन)

कभी-कभी यह भी होता है कि दो पास-पास बैठे हुए व्यञ्जन आपसमें लड़कर मर-मिटते हैं और उनके बदले कोई तीसरा व्यंजन आ बैठता है जैसे *पक्षी* का *पंछी*, *सत्य* का *सच्च*, *विद्युत्* का *बिज्जु* ।

५. बिगाड़ (विकार, रूपत्याग या डिस्सिमिलेशन) ।

कभी-कभी एक शब्दमें ही एक-सी दो ध्वनियोंमेंसे एक ध्वनि अपना रूप छोड़कर दूसरा रूप बना लेती है। व्यञ्जनोंमें और स्वरोंमें दोनोंमें यह रूप-बदल होता है और इनमें कभी तो एक जैसे वर्णोंमेंसे आगेके अक्षरका बिगाड़ होता है, कभी पहलेका और कभी-कभी किसी भी अक्षरका।

व्यञ्जनोंमें बिगाड़

[क] आगे आनेवाले व्यंजनमें बिगाड़ (अग्रगत विकार)

कभी-कभी एक शब्दमें आनेवाले एक जैसे दो व्यंजनोंमेंसे अगला व्यंजन अपना रूप बदल लेता है जैसे *चिक्कट* का *चिक्वट*, *काक* का *काग*, *कंकण* का *कंगन* ।

[ख] पहले आनेवाली ध्वनिमें बिगाड़ (पूर्वगत विकार)

किसी शब्दमें आनेवाले एक जैसे दो व्यंजनोंमेंसे पहले आनेवाला व्यञ्जन बदल जाता है जैसे *जगन्नाथ* का *जगर्नाथ*, *नवनीत* का *लोनी*, *दरिद्र* का *दलिद्दर*, *हनूमान* का *हलूमान* ।

स्वरोंमें बिगाड़

स्वरोंमें भी इस ढंगके रूप-बिगाड़ देखे जाते हैं—

[क] आगेवाला स्वर बदल जाना (अग्रगत विकार)

शब्दमें आनेवाले एक जैसे दो स्वरोंमेंसे दूसरा स्वर बदल जाता है जैसे *पुरुष* का प्राकृतमें *पुरिस* ।

[ख] पहलेवाला स्वर बदलना (पूर्वगत विकार)

कभी-कभी शब्दके एक जैसे दो स्वरोंमेंसे पहला स्वर ही बदल जाता है जैसे *मुकुट* का *मउर*।

किसी भी अक्षरमें बिगाड़

यह आगे और पीछेका बिगाड़ तो है ही पर कभी-कभी अपने आप भी व्यंजनके बदले कोई स्वर या एक व्यंजनके बदले दूसरा व्यंजन या एक स्वरके बदले दूसरा स्वर आ टपकता है जैसे *दशाश्वमेध* का *दसासुमेर*, *खिदमत* का *खिजमत*, *इतना* का *एतना*, *घोटाला* का *घुटाला*।

६. मेल (संधि)

जब हम हड़बड़ाकर झटपट बोलने लगते हैं तब एक शब्दके भीतर आनेवाली दो ध्वनियाँ मिलकर अपनेमेंसे किसी स्वर या व्यञ्जनको या तो निकाल फेंकती हैं या उनमें कुछ हेरफेर कर लेती हैं। अँगरेजी विद्यालयोंमें पढ़नेवाले लड़के अपने गुरुजीको *मास्टर-साहब* न कहकर *माट्साब्* कहते हैं। इसमें स्, र, ह को तो वे खा ही जाते हैं साथ ही ट सा और ब को भी आधा करके (अर्ध-मात्रिक बनाकर) बोलते हैं। संस्कृत जैसी बहुत सुलझी हुई बोलियोंने इस ढंगके मेलके लिये अपने नियम बाँध दिए हैं पर और बहुत-सी बोलियोंमें तो बोलते-बोलते ही मिलावट हो गई है जैसे *वचन* शब्दका प्राकृतमें *वअण*, उससे *बयन* और फिर *बैन* बन गया। यह सब अनाड़ीपन और अपढ़ोंके मुँहमें पड़नेसे ही बनते रहते हैं पर फिर जब बहुत चल जाते हैं तब पढ़े-लिखे लोग भी उन्हें अपना लेते हैं जैसे *कपर्दिका* से *कौड़ी*, *कृषाण* का *किसान*, *अक्षवाट* से *अखाड़ा* बन गया और इतना चल निकला कि अब *कपर्दिका*, *कृषाण* और *अक्षवाट* को कोई जानता भी नहीं।

७. साँसकी ध्वनि बनना (ऊष्मण या ऐसिबिलेशन)

कभी-कभी किसी शब्दकी कुछ ध्वनियाँ ऊष्म (श ष स ह) बन जाती हैं जैसे *कैन्टुम* का कुछ भाषाओंमें *शतम्* हो गया है।

८. नकियावन (अनुनासिकन या नैज़ेलाइज़ेशन)

कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जिनमें बाहरसे लिए हुए शब्द या अपनी बोलीके शब्द कुछ नकियाकर बोले जाते हैं। हिन्दीमें *आँख*, *गाँव*, *टाँग*, *पाँच*, *जूँ*, *सीँक*, *भौँ* जैसे बहुतसे शब्दोंकी ध्वनियोंको नकियाकर बोलनेकी ही चाल है। फ्रांसीसी बोलीमें भी इसी ढंगसे नकियानेकी चाल है जैसे *आँकोर* (एक बार और)।

९. ध्वनियोंके खिँचावमें भेद (मात्रा-भेद)

कभी-कभी एक शब्दमें किसी स्वरका खिंचाव (मात्रा) लम्बा, किसीका छोटा हो जाता है।

आकाश से *अकास* और *बादाम* से *बदाम* में खिचाव लम्बे (दीघ)से छोटा (ह्रस्व) हो गया है।

कहीं-कहीं ह्रस्वसे दीर्घ भी हो जाता है जैसे *कल* का *कालि*, *कवि* का *कवी*, *यति* का *यती*, *गुरु* का *गुरू*।

१०. घहराकर बोलना (घोषीकरण या वोकलाज़ेशन)

कभी-कभी *क*, *च*, *ट*, *त*, *प* जैसी धीमी (अघोष) ध्वनियाँ भी *ग*, *ज*, *ड*, *द*, *ब* जैसी गहरी (घोष) हो जाती हैं जैसे *मकर*का *मगर*, *शाक*का *साग*, *शती*का *सदी*।

११. धीमे बोलना (अघोषीकरण या डीवोकलाइज़ेशन)

कहीं-कहीं घोष (*ग ज ड द ब*) का अघोष (*क च ट त प*) हो जाता है जैसे *खूबसूरत* का *खपसूरत* या भोजपुरी में *डंडा* का *डंटा*।

१२. साँसकी धौंक भरना (महाप्राणन या ऐस्पिरेशन)

कभी-कभी अल्पप्राण (*क, ग, च, ज, ट, ड, त, द,* और *प, ब*) ध्वनियाँ महाप्राण (*ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध* और *फ, भ*) हो जाती हैं जैसे *भक्त*का *भगत* या तमिळमें *सीताराम*का *सीथाराम* ।

१३. साँसकी कम धौंक भरना (अल्पप्राणन या डीऐस्पिरेशन)

कुछ शब्दोंमें महाप्राणका अल्पप्राण भी होता है जैसे *साँझ* का *साँज, सिन्धु* का *हिन्दु* ।

१४. स्वर-ढलाव (स्वर-भावन, ऊमलाउट या वौवेल म्यूटेशन)

ट्यूटोनी बोलियोंके शब्दोंमें *ई* (i) या *य* (j) भी किसी लयान्विति (*सिलेबिल*) में अपने से पहले आनेवाले स्वरको जैसे ऊ (u u) को ई (y y) की ढलनपर ढाल लेता है। ऐसा ढलाव ट्यूटोनी बोलियोंमें होता है जैसे पुरानी अंग्रेजीके *मूस* (mūse= mous) शब्दका बहुवचन पुरानी अंग्रेजी के मूसी (Mūsi) से बना मीस (mys = mice) । इसमें पहले तो *स* (s) का बना *स्य* (sj) और इस *य* के ढलावपर *मूस्य* का ऊ भी ई बन गया। इसे ग्रिमने *ऊमलाउट* (*स्वर-ढलाव* या *स्वर-भवान* या *अभिश्रुति*) कहा है ।।इसमें ई से पहले आनेवाला कोई भी स्वर ई की ढालपर ढल जाता है ।

१५. स्वर-फेर या अर्थ बदलनेके लिये स्वर-बदलना
(स्वरावर्त्त या एब्लाउट या वौवेल ग्रेडेशन)

कुछ बोलियोंके कुछ शब्दोंके किसी एक स्वरको अदल-बदलकर बहुतसे अर्थ निकाल लिए जाते हैं जैसे हिन्दीमें *मिल* शब्दके स्वरोंको बदलकर *मेला. मिला, मिलूँ, मिले, मिली.* बनाकर *मिल*के ही कई अर्थ निकाले जाते हैं। अरबीमें जितने माद्दा (धातु) हैं उन सबके तीन व्यञ्जनोंमें ही स्वरोंका हेर-फेर करके अर्थ बदल देते हैं जैसे *त् ल् ब्* से *तलब*, *तालिब* और *तुलबा* बना लेते हैं।

स्वरोंमें जो यह हेर-फेर होता है वह दो ढंगका होता है–१. एक तो रूप या बनावटमें हेर-फेर (रूप परिवर्तन या क्वालिटेटिव चेञ्ज) और २. दूसरा (खिंचावमें हेरफेर (मात्रा-परिवर्तन या क्वान्टिटेटिव चेञ्ज)। इनमेंसे पहलेमें तो स्वर पूरा बदलकर कुछ दूसरा ही बन जाता है जैसे *मिल* का *मेल* और दूसरेमें ह्रस्वका दीर्घ या दीर्घका ह्रस्व हो जाता है जैसे *मिल* का *मिला*, *भुना* का *भूना*।

महाप्राण घोषका अल्पप्राण अघोष होना

कभी-कभी यह भी होता है कि कुछ महाप्राण घोष (घ झ ढ ध, भ) बदलकर अल्पप्राण अघोष (क च ट त प) हो जाते हैं जैसे पंजाबीमें *घेनु* का *तेनु*. *भानु* का *पानु*, *भाई* का *पाई* और *भ्राता* का *प्रा* हो जाता है।

यह ध्वनिमें हेरफेर न जाने कितने ढंगका कितनी भाषाओंमें होता है और कभी-कभी तो ऐसा अनोखा होता है कि उसके लिये कोई नियम नहीं बना सकते जैसे उत्तरप्रदेशके पश्चिमी जिलोंकी बातचीत सुनिए—

अध्यापक—*क्यूँ रे! तन्नै स्वाल नी काड्ढे?* (क्यों रे! तूने सवाल नहीं निकाले ?) ।

छात्र—*अजी मका लिकड़े नी* (जी, मैंने कहा, निकले नहीं) ।

इस ढंगसे ध्वनियोंकी छानबीन की जाय तो जान पड़ेगा कि जो लोग ध्वनियोंको बिगाड़कर बोलते हैं उनके बिगाड़नेका कारण उनकी बोलीके ढंगका निरालापन या बोलनेवालोंका अनाड़ीपन है ।

§ २०—**वर्णागमविपर्ययलोपविकारान्तर्गता एव सर्वे । [वर्णके आने, उलटने, निकल जाने और बदलनेके भीतर ये सब आ जाते हैं ।]**

जिन लोगोंने ऊपर बताए हुए पन्द्रह भेद समझाए हैं उन्हें ध्यानसे देखा जाय तो सबके सब गिने-चुने चार ढंगोंके भीतर आ जाते हैं—

१. *वर्णागम*—शब्दमें जो नया वर्ण आया हो, वह चाहे पहले आया हो या बीचमें या पीछे और वह स्वर हो, व्यञ्जन हो, एक मात्रामें हो, दोमें हो या आधीमें हो सब आगमके भीतर ही समा जाते हैं ।

२. *वर्णलोप*—शब्दका जो भी वर्ण निकल जाता हो, वह चाहे स्वर हो या व्यञ्जन और वह भी शब्दके पहले, बीच, या पीछे कहींसे निकल जाय, सब लोपके भीतर आ जाते हैं । संधि इसीके भीतर आ जाती है ।

३. *वर्णविपर्यय*—शब्दोंमें वर्णोंकी अदला-बदली जो होती है वह भी स्वरोंमें हो, या व्यंजनोंमें हो या आगे-पीछे कहीं भी हो, सब विपर्ययमें आ जाती है ।

४. *वर्णविकार*—शब्दमें एक वर्णके बदले जो दूसरा कोई

वर्ण आ जाता है उसी विकारके भीतर आत्मीकरण (सवर्णीकरण), विकार (रूपत्याग, असावर्ण्य या विषमीकरण), ऊष्मण, अनुनासिकन, अभिमात्रण, घोषीकरण, अघोषीकरण, अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण, अर्थ बदलनेके लिये स्वरफेर (अपिश्रुति या वौवेल ग्रेडेशन) और स्वरढलाव (स्वर-भावन या ऊमलाउट) सब आ जाते हैं।

हम पीछे बता आए हैं कि सब बोलियोंमें एक अपना-अपना बोलनेका निरालापन होता है। बहुत सा बिगाड़ तो यों बोलीमें अपने आप होता है जिसे हम न तो अनाड़ीपन कह सकते हैं न बनावट कह सकते हैं। इससे यह जाना जा सकता है कि जो बहुतसे भेद नए-नए किए गए हैं वे सब दिखाऊ और उलझन उपजानेवाले हैं इसलिये आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि शब्दकी ध्वनियोंमें जो हेर-फेर होता है वह ऊपर कहे हुए चार ही ढंगका होता है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—बहुतसे लोग यह मानते हैं कि मुँहके अलग-अलग होनेसे, कान अलग-अलग होनेसे, सुनकर ठीक-ठीक बोल न पानेसे, अयानपन या अनाड़ीपनसे, धोखेमें एक-सा समझ-लेनेसे, बोलनेमें हबबड़ी करनेसे, बोलनेमें सुविधा ढूँढ़नेसे, रीझ-खीझ या प्यार-दुलारमें बनकर बोलनेसे, दूसरी बोलीके मेलमें आनेसे, पानी-बयार अलग होनेसे, समाजमें मिलनेसे, लिखनेमें गड़बड़ी होनेसे, लम्बे शब्दोंको छोटा करनेसे, हल्के व्यञ्जनोंके मिटने-रगड़नेसे, अपने-आप बोलीके बढ़ने-फैलनेसे, कवितामें मात्रा या तुकके लिये तोड़-

मरोड़से, एक शब्दके ढंगपर दूसरा शब्द बनानेसे, झूठी पंडिताई झाड़नेसे और दूसरे स्वरकी चोट देनेसे ध्वनियोंमें हेरफेर होता है।

इस पद्यको घोट लीजिए—

मुख-कान अलग, बोली-विकार, अज्ञान, भ्रान्ति, हड़बड़ी, क्षोभ।
सुविधा, पर-बोली, लोक-मेल, जलवायु, लेख, कविकर्म, लोभ॥
लघुकरण शब्द, व्यञ्जन-विनाश, भाषा-विकास, समशब्दमान।
या स्वराघात, पांडित्यवाद करता ध्वनि-परिवर्तन महान्॥

२—आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि ध्वनियोंमें हेर-फेर चार ही बातोंसे होता है: अयानपन या अनाड़ीपनसे (शब्दका रूप और अर्थ ठीक-ठीक न जाननेसे); किसी दूसरी बोलीको जान-बूझकर बोलनेसे; रीझखीझमें बनकर बोलनेसे; और अपनी ध्वनिकी ढलनपर दूसरी बोलीकी ध्वनि ढालनेसे।

घोट लीजिए—

ज्ञान-हीनता, अनुकरण, रीझ-खीझ, निज ढाल।
आर्य चतुर्वेदी-मते, ध्वनि-परिवर्तन-चाल॥

३ - कुछ लोग मानते हैं कि ये हेर-फेर पन्द्रह ढंगके होते हैं—नई ध्वनिका आना, ध्वनियोंमें अदला-बदली, ध्वनियोंका निकल जाना, एक ध्वनिका दूसरे ध्वनिको अपने जैसा बना लेना, एक ध्वनिका अपना रूप छोड़कर दूसरा बन जाना, मेल, ध्वनियोंका ऊष्म (श, ख, स, ह,) बन जाना, नकियाकर बोला जाना, ह्रस्वका दीर्घ और दीर्घका ह्रस्व हो जाना (एकका दो और दोका एक मात्रामें आ जाना), अघोषका घोष हो जाना, घोषका अघोष हो जाना, अल्पप्राणका महाप्राण हो जाना, महाप्राणका अल्पप्राण हो जाना, स्वरढलाव और स्वर-फेर।

घोट लीजिए—

आगम, लोप, विपर्यय, विकृती, आत्मीकरण, मेल, ध्वनि-ऊष्मण।
अनुनासिक, मात्रा-परिवर्त्तन, महाल्प-प्राणन घोषा-घोषण॥
स्वर-ढलाव, स्वरफेर पंचदश हेरफेर बतलाते गुणिजन॥

४—आचार्य चतुर्वेदीका मत यह है कि ये सब भेद अकारथ हैं। हेर-फेर चार ही ढंगके होते हैं—नये वर्णका आना (वर्णागम), वर्णोंका अदल-बदल जाना (वर्णविपर्यय), वर्णका निकल जाना (वर्णलोप), और एक वर्णके बदले दूसरा आना (वर्णविकार)। सब ढंगोंके हेर-फेर इन्हींके भीतर आ जाते हैं।

लोप, विकार, विपर्यय, आगम। चार ढंगके हेरफेर-क्रम॥

४

क्या ध्वनियाँ किसी एक ढंगसे बदलती हैं ?

ध्वनिके नियम

ध्वनियोंके सधे हुए हेरफेर दिखलानेके लिये नियम और चलन बने—नपे-तुले हेरफेर समझानेको नियम कहते हैं—बोलियोंके किसी एक ठट्ठकी कुछ गिनी-चुनी बोलियोंकी कुछ गिनी-चुनी ध्वनियोंमें किसी एक समय कुछ बँधे हुए कारणोंसे होनेवाले हेरफेरके लिये ही नियम बनते हैं—ग्रिम-नियम : पहले उलटफेरमें सबसे पहली हिन्द-योरोपीय बोलीके घोष-महाप्राण (घ. ध. भ.), घोष-अल्पप्राण (ग. द. ब.) और अघोष अल्पप्राण (क. त. प.) का जर्मन ठट्ठकी बोलियों (अंगरेजी, हुलांश-फ़्लेमी या डच-फ्लैमिश, डेनी-नार्वेजी, स्वीडी और आइसलैंडी) में क्रमसे घोष-अल्पप्राण (ग. द. ब.), अघोष-अल्पप्राण (क. त. प.) और अघोष-महाप्राण (ख. थ. फ.) हो जाते हैं—दूसरे उलटफेरमें आदिम जर्मन भाषाके ग द ब, क त प, और ख थ फ का क्रमसे आजकी जर्मन बोलीमें क त प, ख थ फ और ग द ब हो जाता है—ग्रासमानका नियम : पहली हिंद-योरोपीय बोलीके किसी शब्द या धातुके पहले और पीछेके अक्षर यदि महाप्राण (ख घ छ झ ठ ढ थ घ फ भ) हों तो संस्कृत और यूनानीमें अल्पप्राण (क ग च ज ट ड त द प ब) हो जाते हैं—वर्नरका नियम : शब्दके बीचमें आनेवाले क त प स के ठीक पहले यदि पहली हिंद-योरोपीय बोलीमें ऊँचा बोला जानेवाला स्वर रहा हो तो उनके बदले संस्कृत और यूनानी बोलियोंमें क्रमसे ह प फ स; या, ग (ग्व) द ब र हो जाता है—कौलित्सका तालव्य-

नियम : पहली हिंद-योरोपीय बोलीके कंठसे बोले जानेवाले व्यंजन संस्कृत, यूनानी और लैटिनमें तालव्य हो जाते हैं—और भी कुछ नियम इसी ढंगके बना लिए गए हैं—आचार्यका चतुर्वेदीका मत है कि जबतक पहली हिंद-योरोपीय बोलीका ठिकाना नहीं मिलता तबतक अटकलके भरोसे नियम बनाना ठीक नहीं है।

§ २१—ध्वनि-निर्णयार्थे नियमो वृत्तिश्च। [ध्वनियोंका हेरफेर समझानेके लिये नियम भी और टेव (वृत्ति) भी।]

पिछले अध्यायमें हम बता आए हैं कि ध्वनियाँ किसी एक ढंगसे नहीं बदलतीं। फिर भी कुछ लोगोंने यह बतलाया है कि कुछ बोलियोंकी ध्वनियोंमें बहुतसे हेरफेर एक सधेहुए नपे-तुले ढंगसे ही होते हैं। कुछ लोगोंने यह कहा है कि ऐसे हेरफेरको *ध्वनि-नियम (फ़ोनेटिक लॉ)* न कहकर *ध्वनिकी टेव, ध्वनि-वृत्ति या फ़ोनेटिक टेंडेंसी* कहना चाहिए क्योंकि नियम तो एक बँधे-बँधाए साँचेमें ही सदा रहता है, पर टेव तो बनी भी रह सकती है और कभी-कभी उसमें कुछ हेरफेर भी हो सकता है। इसलिये हेर-फेरके बिना सधे हुए ढंगको *ध्वनिका नियम* न कहकर *ध्वनिकी टेव* कहना चाहिए। इसीलिये बहुतसे लोगोंने यह कहा है कि ध्वनियोंमें जो हेरफेर होते हैं वे कभी तो पूरे उतरते हैं, कभी वे कुछ दूर चलकर ठंडे पड़ जाते हैं। इनमेंसे जिस ढंगमें बराबर हेरफेर होते रहते हैं, उसे तो हम ध्वनिकी टेव कहते हैं, पर जिस ढंगमें ध्वनियाँ अपना पूरा ढाँचा बदल लेती हैं और फिर उनमें अदल-बदल होनेका ठिकाना नहीं रह पाता, वह नियम बन जाता है। इसीलिये कुछ लोग मानते हैं कि पुरानी बोलियों और पूरी बन चुकी हुई ध्वनियोंके लिये तो ध्वनि-नियम बनते हैं पर जो बोलियाँ अभी बोली जा रही हैं और आगे भी

बोली जाती रहेंगी उनके लिये जो नियम बँधता है उसे टेव ही कहते हैं।

§ २२—सिद्धव्याप्तिर्नियमः। [एक नपे-तुले ढंगके हेरफेर को नियम कहते हैं।]

जब किसी एक भाषाकी कुछ गिनी-चुनी ध्वनियोंमें कभी किसी एक समयमें एक सधे हुए ढंगसे कोई बँधा हुआ हेरफेर, उलट-पलट, अदला-बदली या बिगाड़-सुधार होता है, उसे ध्वनि बदलनेका नियम (फ़ोनेटिक लॉ) कहते हैं।

§ २३—कालकारणाश्रितविशेषवाग्ध्वनि - विकारक्रमो नियमः। [बोलियोंके किसी एक ठट्ठमें, कुछ गिनी-चुनी ध्वनियोंमें, किसी एक समयमें, कुछ बँधे हुए कारणोंसे होनेवाले हेर-फेरके लिये ही नियम बनते हैं।]

यह नहीं समझना चाहिए कि ध्वनियोंके हेरफेरका कोई नियम सब बोलियोंमें, सदा, अपने-आप लागू हो जाता है। देखनेपर समझमें आ सकेगा कि—

१—एक बोलीकी ध्वनियोंमें हेरफेर होनेके नियम दूसरी बोलीमें नहीं ढल सकते।

२—एक ही नियम एक बोलीकी सब ध्वनियोंपर नहीं चलता, कुछ गिनी-चुनी ध्वनियों या ध्वनियोंके घेरेपर चलता है।

३—ध्वनिमें यह हेरफेर कभी किसी एक समयमें ही होता है, उस बोलीमें भी सदा नहीं चलता रहता।

४—कोई भी ऐसी गिनी-चुनी ध्वनि किसी बोलीके किसी एक समयमें बिना समझे-बूझे अललटप नहीं बदल जाती। उसके लिये भी कुछ कारण होने चाहिएँ और चारों ओरका एक बँधान होना चाहिए।

अँगरेजीमें लिखा जाता है—*लौघ* (Laugh), पर पढ़ा जाता है *लौफ़*। यह नियम अँगरेजीके लिये भले ही ठीक हो, पर जर्मन भाषाके लिये नहीं लग सकता । ऐसे ही फ्रांसीसी बोलीके कुछ शब्दोंके अन्तमें आनेवाले *न* को नकियाकर बोलनेकी चाल है वह अँगरेजी या जर्मनीमें नहीं है । बैसवाड़ीमें *लोटा* को *ल्वाटा* कहनेकी जो चाल मिलती है और जिसमें ए का *आ* और *ओ* का *वा* हो जाता है वह उत्तर-भारतकी दूसरी बोलियोंमें नहीं है। पच्छिमी उत्तर-प्रदेशमें *लोटा*को *लोट्टा* कहते हैं, पर यह बात ब्रजभाषा या अवधीमें नहीं है। फिर यह हेरफेर भी सदा सभी समय नहीं होते। हिन्दीमें ही आजसे सौ वर्ष पहले उसको को *उसकू*, *तिसकू*, *विसकू* बोलते और लिखते थे पर अब *उसको* ही लिखते हैं। तो ऐसे हेरफेर किसी एक समय ही होते हैं। फिर यह भी समझ रखना चाहिए कि ये हेरफेर भी किन्हीं गिने-चुने बँधानोंमें होते हैं जैसे बैसवाड़ीमें *लोटा*को *ल्वाटा* तो कहते हैं पर वे ही लोग कोर्टको *क्वार्ट* या *शोणभद्र* को *श्वाणभद्र* नहीं कहते।

नियमोंकी खोज

सबसे पहले डेनमार्कके नामी विद्वान् और बोलियोंकी छान-बीन करनेवाले *श्री रास्क* और *श्री इहरेने* यह सुझाया था कि बोलियोंमें जो हेरफेर होते हैं वे एक सधे हुए ढंगसे होते हैं पर वे इसपर बहुत कुछ न कर पाए, सुझाव भर देकर रह गए। तब जर्मनीके *श्री ग्रिम* ने *'जर्मन-बोलीके व्याकरण'* के दूसरे संस्करण (सन् १८८२)में अपने *'ग्रिम नियम'* छापे और यह बताया कि ये नियम हिन्द-यूरोपीय (इण्डो-योरोपियन) बोलियोंमें काम

आनेवाले उन व्यंजनोंपर लागू हैं जो जीभके अटकाव या ओठोंके छूने या चलानेसे बोले जाते हैं और जिन्हें *'स्पर्श'* (*क* से *म* तक) कहते हैं। जर्मनीमें इसे *वर्णोंका हेरफेर* (*लाउटवेअरशीबूंग*) कहते हैं। उनका कहना है कि जर्मन बोलीमें यह हेरफेर दो बार हुआ था और दूसरा तब हुआ जब सातवीं सदीमें उत्तरी जर्मन वालोंसे ऐंग्लो-सैक्सन लोग अलग हो गए। पीछे चलकर वर्नर और *ग्रासमान*ने इस नियममें कुछ खोट देखी और कुछ नये नियम बनाए जिन्हें हम आगे समझावेंगे।

हमारी बोलियोंमें हेरफेरके नियम

हमारे यहाँ भी ऐसे हेरफेर कई बार हुए हैं। पहला तो तब हुआ जब लोग संस्कृतमें काव्य और दूसरे ग्रन्थ लिखने लगे। वेदकी संस्कृतके व्याकरणको और काव्यके ग्रन्थोंकी संस्कृतके व्याकरणको पढ़नेसे यह बात ठीक-ठीक समझमें आने लगती है कि कैसे वेदके *'कर्णेभिः'* का काव्यकी संस्कृतमें *कर्णैः* हो गया। दूसरा हेरफेर तब हुआ जब प्राकृतोंका चलन बढ़ चला और संस्कृतके शब्द प्राकृतोंमें ढलने लगे। प्राकृतके व्याकरणोंमें ऐसे बहुतसे शब्द दिए हुए हैं। उसके पीछे जब अपभ्रंशोंका बोलबाला हुआ, तब संस्कृत और प्राकृतके शब्दोंकी ध्वनियाँ अपभ्रंशोंकी ढालपर ढलने लगीं और उसके भी ऐसे नियम बन गए कि संस्कृत और प्राकृतकी कौन सी ध्वनि किस देशके अपभ्रंशमें क्या बन जाती है जैसे पुरुष शब्दका किसी प्राकृतमें *पुरिस* और किसीमें *पुलिस* (*राजपुरुष-राजपुरिसो* और *लाजपुलिसो*) हो गया। जब अपभ्रंश बोलियाँ भी बिगड़ने लगीं तब आजकी देशी बोलियोंकी ध्वनियाँ ढल निकलीं। संस्कृतका *कर्म* प्राकृत और अपभ्रंशमें

कम्म होता हुआ देशी बोलियोंमें *काम* बन गया और संस्कृतका *अग्नि* प्राकृतमें *अग्गि* बनकर आजकी बोलियोंमें *आग*, *आगी*, *अगिया* बनकर चलने लगा। यहीं तक नहीं, वह शब्द पुल्लिंगसे स्त्रीलिंग भी हो गया। हमारे यहाँ बोलियोंके व्याकरण बनानेवालोंने ऐसे नियम बनाते हुए यह बताया है कि जब दो ध्वनियाँ मिलती हैं तब उनमें क्या हेरफेर होता है और संस्कृतकी कौन-सी ध्वनि अलग-अलग प्राकृतोंमें जाकर क्या बन जाती है। आज ग्रिम, वर्नर और ग्रासमानके नियमोंका बड़ा हल्ला मचाया जा रहा है पर प्राकृत व्याकरणोंको देखनेसे जान पड़ेगा कि उन्होंने संस्कृतकी ध्वनियोंके जितने बिगाड़ प्राकृतोंमें होते हैं या हो सकते हैं सबके लिये बड़े पक्के नियम बना डाले हैं। प्राकृत व्याकरणोंके सब सूत्र ध्वनि-नियम ही तो हैं जिनके सामने ग्रिम, ग्रासमान, वर्नरके नियम खेलवाड़ जान पड़ते हैं। कमी इतनी ही रह गई कि उन्होंने यह नियम उन्हीं बोलियोंके लिये अलग अलग बनाए जो भारतमें बोली जाती थीं, बाहरकी बोलियोंसे इनका मेलजोल नहीं दिखाया। *ग्रिम*, *वर्नर*, और *ग्रासमान*-ने जर्मनीके बाहरकी सब त्यूतोनी बोलियोंको भी साथ लेकर ऐसे नियम बाँधे जो त्यूतोनी बोलियोंपर लग सकते थे।

ग्रिमके नियमोंकी खोट

*ग्रिम*के नियमोंमें तो कई कमियाँ भी थीं। पहली बात तो यह थी कि उसने दो अलग-अलग समयोंमें होनेवाले ध्वनियोंके हेर-फेरको एक साथ बाँधकर अपना नियम बनाया और जिन दो बोलियों-की ध्वनियोंके हेरफेरका खटराग जोड़ा उनमेंसे दूसरेका घेरा बहुत छोटा भी है। दूसरी बात यह है कि यह हेरफेरका नियम त्यूतोनी

बोलियोंके लिये ही बना था, पुरानी हिन्दयोरोपीय बोलियोंसे उसका कोई मेल नहीं है। इसीलिये उस नियमको सबपर लागू नहीं माना जा सका। तीसरी बात यह है कि उसने अपने नियम का कोई घेरा नहीं बाँधा था इसलिये उसमें बहुत सी भूलें और बहुत सी खोट बनी रह गई। इन्हीं छूटों (अपवादों)को ठीक करनेके लिये *ग्रासमान* और *वर्नर* ने अपने उपनियम बनाए।

ग्रिमका नियम

ऊपर बताया जा चुका है कि जर्मन-परिवारकी बोलियोंकी छानबीन करनेपर रास्क और इहरेने कुछ ऐसे नियम बनाए थे जिनसे यह समझा जा सकता था कि उन बोलियोंमें कौन-सी ध्वनियाँ किस ढंगसे बदलीं। पर उसका ठीक और पूरा ब्यौरा ग्रिमने ही बनाकर दिया, इसलिये इसको ग्रिमका ही नियम कहते हैं। इस नियमको समझनेके लिये कुछ बातें जान लेनी चाहिएँ—

(१) ग्रिमने यह माना है कि हिन्द-परिवारकी जितनी बोलियाँ मिलती हैं वे सब किसी एक आदिम बोलीसे निकली हैं।

(२) उस आदिम बोलीकी ध्वनियाँ संस्कृत, यूनानी और लैटिनमें मिलती हैं। इनमें भी संस्कृतकी ध्वनियाँ आदिम बोली-की ध्वनियोंसे बहुत अधिक मिलती हैं।

(३) जो नियम बनाए गए हैं वे हिन्द-योरोपीय बोलियोंमेंसे जर्मन-परिवारकी या त्यूतोनी बोलियोंपर ही लागू होती हैं।

(४) ग्रिमने माना है कि इन जर्मन-परिवारकी बोलियोंकी ध्वनियोंमें दो बार हेर-फेर हुए हैं—

क. एक तो इतिहाससे बहुत पहले जब जर्मन-भाषाओंके व्यंजन दूसरी हिन्द-योरोपीय बोलियोंके व्यंजनोंके ढंगसे अलग हो गए।

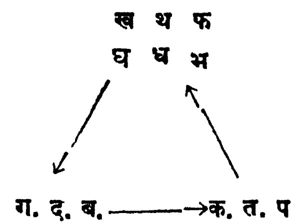
ख. दूसरा हेर-फेर सातवीं सदी ईसवीमें या उससे कुछ पहले हुआ जब कि ऊँची जर्मन-बोली (आजकी जर्मन बोली) और नीची जर्मन बोलियों (अंगरेजी, डच, गोथिक आदि) की ध्वनियाँ अलग हो गईं।

पहला उलट-फेर (प्रथम वर्ण-परिवर्त्तन)

§ २४—आदावादिघोषमहाल्पाघोषाल्पप्राणाः क्रमेणादिजार्मनोयासु घोषाल्पाघोषाल्पाघोषमहाप्राणा इतिग्रिमः।

[ग्रिमके मतसे, पहले उलट-फेरमें आदिम हिन्द-योरपी बोलीके घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण और अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ बारी-बारीसे जर्मन ठट्ठकी बोलियोंमें घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण हो जाती हैं।]

इतना मान लेनेपर ग्रिमने यह नियम बनाया कि पहले हेर-फेरमें आदिम हिन्द-योरोपीय बोली (संस्कृत, यूनानी, लैटिनमें मिलने वाली) के व्यंजनोंकी ध्वनियोंमें एक हेर-फेर हुआ जिससे आदिम बोलियोंके अघोष-अल्पप्राण (*क त प*) का जर्मन बोलियोंमें घोष (*ख थ फ* या *घ ध भ*); आदिम बोलीके महाप्राण (*ख थ फ* और *घ ध भ*) का जर्मन बोलियोंमें घोष अल्पप्राण (*ग द ब*); और आदिम बोलीके घोष अल्पप्राण (*ग द ब*) का जर्मन बोलियोंमें अघोष अल्पप्राण (*क त प*) हो गया। नीचेके चक्रमें यदि हम देखें तो हमें ठीक-ठीक समझमें आ जायगा कि पहले हेर-फेरमें आदिम बोलियोंकी ध्वनियोंमें कैसे हेर-फेर हुए। इनमें-से किसी एक ठौरकी ध्वनियोंको लेकर हम उनके साथ बने हुए बाणकी नोककी ओर बढ़ें तो हम जान जायेंगे कि उन ध्वनियोंमें क्या हेर-फेर हो गया।



यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि जहाँतक दाँतके सहारे बोले जानेवाले (दन्त्य या तवर्ग) की बात है वह तो ठीक ढंगसे चक्कर खाते हैं (*थ* का *द*, *द* का *त* और *त* का *ट* हो जाता है) पर कवर्ग और पवर्ग के लिये एक ही पग चलना पड़ता है (जिसमें आदिम बोलीके *ख* और *फ* का *ग* और *ब* हो जाता है) ।

यहीं यह समझ लेना चाहिए कि देवनागरीकी अखरौटी (संस्कृत वर्णमाला) में घोष और अघोष अलग-अलग रक्खे गए हैं पर हिन्द-योरोपीय परिवारकी दूसरी बोलियोंमें यों मिलते तो दोनों हैं पर उनमें बहुत गड़बड़झाला हो गया है। सभी महाप्राण ध्वनियाँ तो यूनानी और संस्कृतमें ही मिलती हैं। औरोंमें तो ये महाप्राण कुछ अरबीके *ख़* जैसे जिह्वामूलीय या काकल्य हो गए हैं। जर्मन बोलीमें भी यह बात हुई है। नीची जर्मन बोलियोंका *ह*, ऊँची जर्मन या आजकी जर्मनमें *ग* नहीं बना और *फ* का *ब* नहीं बना ।

ग्रिम मानते हैं कि हिंद-योरोपीय बोलियाँ जिस पहली (मूल) बोलीसे निकलीं उसके कुछ व्यंजन आगे चलकर हिंद-योरपीय बोलियों में बदल गए, जिन्हें हम यों समझा सकते हैं—

पहली (मूल) हिन्द योरोपीय बोली (संस्कृत, लैटिन, यूनानीमें सुरक्षित) के

घोषमहाप्राण (घ. ध. भ.)	घोष अल्पप्राण (ग. द. ब.)	अघोष अल्पप्राण (क. त. प.)
का	का	का
जर्मनीय बोलियोंमें घोष अल्पप्राण (ग. द. ब.)	जर्मनीय बोलियोंमें अघोष अल्पप्राण (क. त. प.)	जर्मनीय बोलियोंमें घोषाघोष महाप्राण (ख. (ह् , थ.फ) (घ. ध. भ.)

[illegible] व्यंजन संस्कृत जैसी पुरानी बोलियोंमें अभीतक बचे हुए हैं। संस्कृतके ऐसे व्यंजनोंका जर्मन ठट्ठकी बोलियोंमें जो अदल-बदल हो गया है, उन्हें हम अंग्रेजीके कुछ शब्दोंके ब्यौरेसे समझ सकते हैं —

	संस्कृत		अंग्रेजी		अर्थ
१	घ् से ग्	जैसे घर्न का	गौंग	(Gong)	घंटा
	ह् से ग्	जैसे हाफिका का	गेपिंग	(Gaping)	जँभाई
	ध् से द् (ड)	जैसे विधुर का	विडोअर —	(Widower)	रँडुआ
	भ् से ब	जैसे भ्रू का	ब्राउ	(Brow)	भौंह

		संस्कृत			अंग्रेजी	अर्थ
२	ग् से क्	जैसे गौ	का	काउ	(Cow)	गाय
	द् से त्	जैसे द्वि	का	टू	(Two)	दो
	ब् से प्	जैसे बाधन	का	पेन	(Pain)	पीड़ा

३	क् से ख्	जैसे पुस्तक	का	जर्मनीमें बुख	(Buch)	पोथी
	क् से ह्	जैसे कः	का	हू	(Who)	कौन
	त् से थ्	जैसे त्रयः	का	थ्री	(Three)	तीन
	प् से फ्	जैसे पार	का	फ़ार	(Far)	दूर

दूसरा उलटफेर (द्वितीय वर्ण-परिवर्त्तन)

§ २५—द्वितीये निम्नजार्मनीय घोषाघोषमहाप्राणा उच्चासु क्रमेणाघोषाल्पाघोषमहा-घोषाल्पप्राणा इति ग्रिमः। [ग्रिमके मतसे दूसरे उलटफेरमें नीची जर्मनके घोष अल्पप्राण (ग द ब), अघोष अल्पप्राण (क त प) और अघोष महाप्राण (ख थ फ), बारी-बारीसे अघोष अल्पप्राण (क त प), अघोष महाप्राण (ख (ह्) थ फ) और घोष अल्पप्राण (ग द ब) हो गए।]

ऊपर जो हम व्यंजनोंमें उलटफेर दिखा चुके हैं वे तो हिंद-योरोपीय बोलियोंकी माँ (पहली बोली) के व्यंजनोंके वे उलट-फेर हैं जो जर्मन ठट्ठकी बोलियोंमें मिल रहे हैं। पर कुछ ऐसे भी उलटफेर हैं जो जर्मन ठट्ठकी बोलीमें ही ऊँची जर्मन (हाई जर्मन) और नीची जर्मन (लो जर्मन, जैसे अंग्रेजी आदि) में हो गए हैं। बोलियोंके बढ़ाव और बिगाड़से पहले ही नीची जर्मनवाले

अलग हो गए थे इसलिये उनमें कोई उलटफेर न हो सका पर ऊँची जर्मनवाले सब एक साथ थे इसलिये उनमें एक और भी उलट्फेर हुआ जिससे ऊँची जर्मन और नीची जर्मनकी कुछ ध्वनियाँ उलट-पलट गईं। इसके लिये भी हम अंग्रेज़ीके कुछ शब्द लेकर दोनोंका अलगाव समझा देते हैं—

	नीची जर्मन	ऊँची जर्मन		
	(अंग्रेजी)	(जर्मन बोली)		अर्थ
प् का फ़	स्प्रिंग (Spring)	—फ्रुहलिंग	--(Fruhling)	वसन्त
ट् का त्स	हार्ट (Heart)	—हेर्त्स	—(Herz)	हृदय
ट् का स्स	वौटर (Water)	—वास्सेर	—(Wasser)	जल
क् का ख(ह्)	बुक (Book)	—बुख	—(Buch)	पुस्तक
व् का ब्	लव (Love)	—लीबे	—(Liebe)	प्रेम
ड् का ट्	डे (Day)	—टाग	—(Tag)	दिवस
थ् का ड्(द्)	नौर्थ (North)	—नौर्डेन	—(Norden)	उत्तर

इससे जान पड़ेगा कि दूसरे हेरफेरमें हमें एक पग और आगे बढ़ना पड़ता है जिसमें नीची जर्मन (या आदिम जर्मन) के ग द ब. क त प और ख (ह्) थ फ, ऊँची जर्मन या आजकी जर्मन बोलीमें क्रमसे क त प, ख थ फ और ग द ब हो जाते हैं। ऊपर दिए हुए चक्रमें नीचेके दाहिने कोनेसे हम एक-एक पग आगे बढ़ें और बाणके सहारे चलें तो हमें दूसरे हेरफेरका पूरा ब्यौरा मिल जायगा।

ग्रिमने आदिम हिन्द-योरोपीय बोलीके जो दो उलट-फेर बताए हैं उन्हें आगेके चित्रसे भली-भाँति समझ सकते हैं—

ग्रिमके मतसे आदिम बोलीके व्यंजनोंमें

- पहला उलट-फेर
  - [संस्कृत, लैटिन, यूनानीमें सुरक्षित] आदिम हिन्द-योरोपीय बोली
  - [अंग्रेजी, गौथिक डच आदि] पहली या नीची जर्मन बोलियों
- दूसरा उलट-फेर
  - [अंग्रेजी, गौथिक डच आदि] पहली या नीची जर्मन बोलियों
  - [आजकी जर्मन] ऊँची जर्मन

आदिम हिन्द-योरोपीय बोली के

घ ध भ का
ग द ब का
क त प का

पहली या नीची जर्मन बोलियों में

ग द ब
क त प
ख (ह्) थ फ
हो गया।

पहली या नीची जर्मन बोलियों के

ग द ब का
क त प का
ख (ह्) थ फ का

ऊँची जर्मन में

क त प
ख (ह्) थ फ
ग द ब
हो गया।

ग्रिमके नियमकी खोट—

ग्रिमने नियम बनानेके पीछे अपने आप देखा कि मैंने जो नियम बनाया है वह पूरा नहीं उतरता, उसमें ठौर-ठौरपर खोट मिलती चली जाती है और यह खोट भी एक सधे हुए ढंगकी है, जैसे —

स्क स्त स्प के *क त प* में *स्* मिलनेके कारण कोई हेर-फेर नहीं हो पाया। ऐसे ही *क्त* और *प्त* का *त* भी ज्यों का त्यों रह गया और *ट्ट* भी गौथिकमें जाकर *स्त* और पीछे *स्स* हो गया। पर यहींतक बात नहीं थी। भली-भाँति देख-भाल करनेपर उसमें और भी बहुत सी खोट निकलने लगी इसलिये उन्हें निबाहनेको नये-नये नियम बनने लगे।

ग्रासमानका नियम

§ २८—मूलशब्दधातुपूर्वलयान्वितिपरमहाप्राणाक्षराणां संस्कृतादिष्वल्पप्राणा इति ग्रासमानः। [आदिम हिन्द-योरोपीय बोलीके शब्द या धातु या लयान्वितिके पहले और अन्तके महाप्राण अक्षरोंका संस्कृत, लैटिन आदि बोलियोंमें अल्पप्राण हो जाता है।]

यह नहीं समझना चाहिए कि ग्रिम अपनी भूल नहीं जान सका। उसके नियमसे आदिम हिंद-योरोपीय बोलीके *क, त, प,* का त्यूतोनी बोलियोंमें *ख* (*ह*), *थ, फ,* हो जाना चाहिए था पर ऐसे बहुत से शब्द मिलते हैं जिनके *क त प* का त्यूतोनीमें *ग द ब* बन गया है। इसीलिये ग्रासमानने उस नियमको सुधारते हुए एक अपना नया नियम बनाया कि आदिम हिंद-योरोपीय बोलीके किसी शब्द या धातुके या लयान्विति (सिलेबिली-के पहले और अंतके अक्षर यदि महाप्राण

(ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ) हों तो संस्कृत और यूनानीमें अल्पप्राण (क ग च ज ट ड त द प ब) हो जाते हैं । संस्कृतमें *धा* (धारण करना) धातुसे *धधाति* बननेके बदले *दधाति* और *भी* (डरना) धातुसे *भिभेति*के बदले *बिभेति* बनते देखकर ग्रासमानने यह बताया कि—

१. आदिम हिंद्-योरोपीय बोलीमें इस हेरफेरके दो ढंग रहे होंगे। पहले ढंगमें दो महाप्राण रहे और दूसरेमें नहीं। इसीलिये कहीं-कहीं *क त प* के बदले जहाँ *ग द ब* मिलते हैं वहाँ उस पुरानी आदिम बोलीमें इस *क त प* का पुराना रूप ख (त) थ फ रहा होगा जो हिंद्-योरोपीय बोलियों में *घ ध भ* होगया।

२. यूनानी और संस्कृमें एक लयान्विति (सिलेबिल) के पहले और पीछे दोनों ठौरपर महाप्राण स्पर्श नहीं रह सकते एक लयान्वितिमें एक ही प्राणवाली ध्वनि रहेगी जैसे *थस्थौ* न होकर *तस्थौ* ही होगा।

वर्नरका नियम

§ २७—मूलमध्यपूर्वोदात्तस्वरप्रभातात्संस्कृतलातिनादिषु हथफसो गदबरो वेति वर्नरः। [आदि हिन्द-योरोपीय बोलीके शब्दोंके बीचमें जो क त प स अक्षर रहे हों और उनके पहले उदात्त स्वर रहा हो तो वे संस्कृत और लैटिनमें क्रमसे ह प फ स या ग द ब र हो जाते हैं।]

इतने नियम बन जानेपर भी बहुत सी खोट बची रह गई। क्योंकि यूनानी और संस्कृतके ऐसे बहुतसे शब्द निकलने लगे जिनके *क त प* का जर्मन बोलियोंमें *ग द ब* हो जाता है। इसीलिये *वर्नर*ने कहा—१. ग्रिमके नियम तो स्वरकी चोट (ऐक्सेंट) के बलपर बनाए गए थे क्योंकि हिंद्-योरोपीय बोलियोंकी आदिम

बोलीमें *क त प* से पहले स्वराघात हो तभी *ग्रिमके* नियमसे उसमें उलटफेर होता है पर यही स्वराघात यदि *क त प* से आगे आनेवाले व्यंजनपर हो तो इस उलटफेरमें *ग्रासमानके* नियमसे *ग द* (ड) ब हो जाता है जैसे—संस्कृतके *सप्तका* जर्मनमें *सीबेन* और *शतं* का हुंडेर्ड हो जाता है। तो वर्नरने यह नियम बनाया कि शब्दके बीचमें आनेवाले क त प स के ठीक पहले आदिम हिंद-योरोपीय बोलीमें कोई ऊँचा बोला जानेवाला स्वर आ जाय तो उनके बदले *ह प* फ स या *ग* (ग्व) द ब र हो जाता है। वह मानता है कि संस्कृत और यूनानी बोलियोंमें आदिम हिंद-योरोपीय स्वर ठीक-ठीक मिलते हैं।

२. वर्नरने यह भी बताया कि दो व्यंजन मिले हुए (द्वित्व) वर्णपर ग्रिम नियम नहीं चलता। वह सदा अनमिल अकेले वर्णोंपर ही चलता है। वर्नर ने यह बताया कि जर्मनीके मिले हुए व्यंजन (संयुक्त व्यंजन) ह्ट, ह्स, फ़्ट, फ़्स, स्क, स्ट, स्प पर *ग्रिमके* नियम नहीं लगते। इन्हें हम इस ढंगसे समझा सकते हैं—

हिंद-योरोपीय स्क, स्ट और स्प ज्यों के त्यों रहते हैं, कभी कभी अंग्रेजीमें इसमें कुछ हेरफेर हो जाते हैं जैसे स्क का *श* हो जाता है।

कौलित्सका तालव्य—नियम

§ २८—कंठ्यो तालव्य इति कौलित्सः। [कौलित्सके मतसे आदिम बोलीके कंठसे बोले जानेवाले अक्षर पीछे तालुसे बोले जाने लगे।]

विलहेम टौम्सन (१८७५), योहान्स स्मिट (१८८०), ऐसौय सेंगर, कौलित्स और देस्सउ शोरने तालव्य नियमकी भी चर्चा की

है जिसपर वर्नरने भी पीछे छानबीन की थी। पर सब लोग इसे कौलित्सका तालव्य-नियम ही कहते हैं।

लोग पहले यह मानते थे कि संस्कृत के कुछ शब्द आदिम हिंद-योरोपीय बोलीके उन शब्दोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं जो दूसरी हिंद-योरोपीय बोलियोंमें नहीं मिल पाते। संस्कृतके जिन शब्दोंमें च और ज आता है, उनके बदले दूसरी हिंद-योरोपीय बोलियोंमें क और ग मिलते हैं। इससे लोगोंने यह अटकल लगाई कि ये क और ग भी पहले च और ज ही रहे होंगे। इसपर लोगोंने यह नियम निकाला कि संस्कृतके जिन शब्दोंमें अ की ध्वनि यूनानी या लैटिन ओ जैसी है उससे पहले क या ग व्यंजन मिलता है, पर यदि अ की ध्वनि यूनानी या लैटिन ई जैसी हो तो गलेसे बोले जानेवाले क या ग के बदले तालुसे बोले जानेवाले च या ज मिलते हैं। जैसे—च (च् + अ) में अ की ध्वनि यूनानी ई जैसी है पर कच्च के क में आया हुआ अ यूनानी ओ जैसा है। एक ही धातु *पच्* से *पचति* भी बनता है और *पक्ति* भी। इससे यह जान पड़ता है कि कभी संस्कृतमें अ के बदले ई और ओ स्वर रहे होंगे। इसमें आगेके स्वर ई के बदले जो कण्ठसे बोला जानेवाला व्यंजन रहा होगा, वह तालुसे बोला जाने लगा और तालव्य बन गया जिससे क से च और ग से ज हो गया। इस नियमसे आदिम बोलीमें कण्ठसे बोले जानेवाले व्यंजन यूनानी या लैटिनमें तालुसे बोले जानेवाले बने हुए मिलते हैं इसीलिये इसे तालव्य नियम कहते हैं। इसी नियमसे अब यह समझा जाने लगा है कि हिंद-योरोपीय बोलियोंकी आदिम या पहली बोलीसे संस्कृत इतनी पास नहीं है जितनी यूनानी या लैटिन।

इस नियमसे आदिम हिंदयोरोपीय बोलीके तीसरे ढंगका क वर्ग (क ख ग घ) संस्कृतमें कहीं कवर्ग बना रहा पर अपनेसे ठीक पहले आनेवाले स्वरकी झोंकमें तालव्य (च छ ज झ) बन गया।

§ २९—अन्येऽपि। [ऐसे और भी नियम बनाए गए।]

यूनानी और लातिन (लैटिन) नियम—

ऊपर जो चार नियम बताए जा चुके हैं, उनके साथ-साथ और भी ध्वनि-नियम चलते हैं। उनमेंसे एक है यूनानी नियम कि आदिम हिंद-योरोपीय बोलीके किसी शब्दमें दो स्वरोंके बीच यदि स् रहा हो तो वह पहले ह् हो जाता है और फिर निकल जाता है।

(लातिन लैटिन) नियम—

लैटिन नियम यह है कि आदिम हिंद-योरोपीय बोलीके किसी शब्दमें दो स्वरोंके बीच जो स् रहा वह आगे चलकर र् हो गया।

ओष्ठ और मूर्धन्य नियम —

ओष्ठ-नियम और मूर्धन्य-नियम जैसे और भी बहुतसे नियम बोलियोंकी छानबीन करनेवालोंने बना दिए हैं पर वे बहुत काममें नहीं आते।

क्या ये नियम माने जा सकते हैं ?

§ ३०—मूलभाषाऽभावेऽप्रासंगिका इत्याचार्याः।

[आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि जब आदिम बोलीका ठिकाना नहीं तो ये नियम अकारथ हैं।]

आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि ध्वनियोंके नियम तबतक नहीं माने जा सकते जब तक वे एक ठट्ठकी पूरी ध्वनियोंपर लागू न हो सकें। बोलियोंकी छानबीनसे यह जान पड़ेगा कि ऊपर जितने

नियम बताए गए हैं उन सभीमें कुछ न कुछ खोट है इसीलिये जैसे ही एक नियम बना कि झट पीछेवालोंने उसमें खोट निकालकर उसमें भी उपनियम बना दिए। इस ढंगसे संसार भरकी बोलियोंके नियम बनने लगें तो उनका कोई पार नहीं पा सकता। *ग्रिम*, *ग्रासमान* और *वर्नर* के नियमोंमें सबसे बड़ी खोट तो यह है कि उन्होंने हिंदयोरोपीय बोलियोंकी कोई एक माँ बोली ऐसी मान ली है जिसकी कुछ ध्वनियाँ संस्कृत, यूनानी और लैटिनमें मिलती हैं। पर वे ध्वनियाँ क्या रहीं और वह आदिम बोली क्या रही इसपर सब चुप्पी लगा गए हैं और सभीने अपनी अटकलसे काम लिया है। यह जान लेना चाहिए कि नियम उन्हीं बातोंके लिये बन सकते हैं जिनके कारणोंका पूरा-पूरा ठीक ठीक ब्यौरा मिल जाता हो। जिन बातों-का पूरा ढाँचा ही अटकल-पर खड़ा हो उनके लिये नियम नहीं बनाया जा सकता और अगर बना भी तो उसमें पगपगपर खोट निकलती रहेगी। इसीलिये आचार्य चतुर्वेदी मानते हैं कि बोलियों-के लिये ऐसा कोई नियम नहीं बनाना चाहिए जो सबपर लागू न हो सके। पाणिनि मुनि और दूसरे व्याकरण लिखनेवालोंने संस्कृत या प्राकृत भाषाओंके रूप समझाते हुए जो नियम बनाए हैं, वे ऐसे हैं कि संस्कृत या प्राकृतपर ठीक बैठ जाते हैं। फिर भी बहुत बातोंमें उन्होंने खोट निकालकर अपने आप ही उस खोट (अप-वाद) का ब्यौरा देकर उसके भी नियम बना दिए हैं। पर *ग्रिम*, *ग्रासमान* और *वर्नर* ने तो उस पेड़का सहारा पकड़ा है जिसकी जड़का ही कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। जबतक पहली या आदिम बोलीका कोई सच्चा ब्यौरा नहीं मिल पाता तबतक अटकलके भरोसे ध्वनिके नियम नहीं बनाए जा सकते।

यह बात जान रखनी चाहिए कि ये जितने हेरफेर सुझाए गए हैं या जिनकी छानबीनकी गई है वह पढ़े-लिखोंकी बोलियों या लिखी हुई बोलियोंके ढाँचेपर ही बनाई गई है। बोलनेवाले तो इतने अनोखे, नए और अटपटे ढंगसे बोलते हैं कि उसका कोई ठिकाना नहीं है. इसलिये भी इन नियमोंका कोई ठौर-ठिकाना नहीं और वे माने नहीं जा सकते। आजकल सभी देशोंके नाटक लिखनेवालोंने अपने नाटकोंमें सब ढंगके लोगोंकी घरेलू और निजी बोलचालकी बोलियोंमें बातचीत लिखी है और यह जतन किया है कि वे लोग जिस ध्वनिसे कोई शब्द बोलते हों उन्हीं ध्वनियोंके अक्षरोंसे वह शब्द लिखा जाय। संस्कृतमें तो यह बहुत पुराना ढंग रहा है कि नाटकोंमें किस ढंगके पात्रसे कैसी बोली बुलवाई जाय। इन बोलचालकी ध्वनियोंका जुगाड़ किया जाय तो जान पड़ेगा कि बोलियोंके हेरफेरका कभी कोई नियम बनाया ही नहीं जा सकता। हाँ, सबको एक ढंगसे बोलना सिखानेके लिये और एक ढंगसे बोलनेकी चाल निकालनेके लिये या बोली-को बाँधनेके लिये ही नियम बनाए जा सकते हैं जैसे *किंग्स इंगलिश* बना ली गई या व्याकरण बनाकर बोलियोंके शब्दों और ध्वनियोंके रूप बाँध दिए गए।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—ध्वनियोंके सधे हुए हेरफेर दिखलानेके लिये नियम और चलन बने।

२—नपे-तुले हेरफेर समझानेको नियम कहते हैं।

३—बोलियोंके किसी एक ठट्ठकी कुछ गिनी-चुनी बोलियोंकी, कुछ गिनी-चुनी ध्वनियोंमें, किसी एक समय, कुछ बँधे हुए कारणोंसे होने-

वाले हेरफेरके लिये ही नियम बनते हैं।

४—ग्रिम नियम : पहले उलट फेरमें सबसे पहले हिंद-योरोपीय बोलीके घोष-महाप्राण (घ ध भ), घोष अल्पप्राण (ग द ब) और अघोष अल्पप्राण (क त प) का जर्मन ठट्ठकी बोलियों (अंगरेजी, जर्मन, हलांश-फ्लेमी या डच-फ़्लैमिश, डेनी-नार्वेजी, स्वीडी और आइस-लैंण्डी) में क्रमसे घोष-अल्पप्राण (ग द ब), अघोष-अल्पप्राण (क त प) और अघोष महाप्राण (ख थ फ) हो जाते हैं।

५—दूसरे उलटफेरमें आदिम जर्मन भाषाके ग द ब, क त प और ख थ फ का क्रमसे ऊँची या आजकी जर्मन बोलीमें क त. प, ख थ फ ग द ब हो जाता है।

६—ग्रासमानका नियम : पहली हिंद-योरोपीय बोलीके किसी शब्द या धातुके पहले और पीछेके अक्षर महाप्राण (ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ) हों तो संस्कृत और यूनानीमें अल्पप्राण (क ग च ज ट ड त द प ब) हो जाते हैं।

७—वर्नरका नियम : शब्दके बीचमें आनेवाले क त प स के ठीक पहले, पहली हिंद-योरोपीय बोलीमें ऊँचा बोला जानेवाला स्वर रहा हो तो उनके बदले संस्कृत और यूनानी बोलियोंमें क्रमसे ह प फ स; या ग (ग्व) द ब और र हो जाता है।

८—कौलित्सका तालव्य-नियम : पहली हिंद-योरोपीय बोलीके कण्ठसे बोले जानेवाले व्यंजन संस्कृत, यूनानी और लैटिनमें तालव्य हो जाते हैं।

९—और भी कुछ नियम इसी ढंगके बना लिए गए हैं।

१०—आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि जबतक पहली हिंद-योरोपीय बोलीका ठिकाना नहीं मिलता तबतक अटकलके भरोसे नियम बनाना ठीक नहीं है।

५

क्या शब्दमें भी हेरफेर हो सकते हैं ?

शब्दके रूपमें अदला-बदली

निरुक्तने चार ढंगके शब्द माने हैं : नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात—आचार्य चतुर्वेदी तीन ढंगके शब्द मानते हैं : नाम, अव्यय और स्वयंस्फुट—जिसका अर्थ हो वही पद कहलाता है—शब्दोंमें अर्थ बतानेवाले और उनका मेलजोड़ बतानेवाले दो साँचे होते हैं—वाक्यमें शब्दकी ठौर, विभक्ति या नये शब्दसे मेलजोड़ बनता है—कभी किसी शब्दपर बल देनेसे भी मेलजोड़ जाना जाता है—धातु, प्रत्यय, (कृदन्त, तद्धित) उपसर्ग, बेकाम शब्द जोड़कर, दो शब्दोंको मिलाकर, शब्दको छोटा करके, मनमाने ढंगसे शब्द गढ़कर, या दूसरी बोलीके शब्द अपनाकर नये शब्द बनाए जाते हैं—शब्दोंमें ये हेरफेर होते हैं : नया शब्द आना, अदल-बदल होना, निकल जाना, बिगड़ जाना, लिंग बदल जाना।

§ ३१—निरुक्ते नामाख्यातोपसर्गनिपातपदाः। [निरुक्तने चार ढंगके शब्द माने हैं : नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात]

निरुक्त लिखनेवालोंने चार ढंगके पद या शब्द माने हैं—*नाम, आख्यात, उपसर्ग* और *निपात*[1]। उनका कहना है कि

१—"तद्यान्येतानि चत्वारि पद-जातानि।
नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च" ॥
[निरुक्त १ अ०, १ पा०, १ खं०]

जितने भी शब्द हम काममें लाते हैं वे सबके सब इन चारोंमेंसे किसी-न-किसी ढंगके होते हैं। व्याकरण लिखनेवाले इन्द्रने यह माना है कि शब्द एक ही ढंगके होते हैं : जिसका कोई अर्थ हो वही शब्द या पद है—"अर्थः पदम्"—अर्थ ही पद या शब्द है। पाणिनिने दो ढंगके शब्द माने हैं—१. सुबन्त और २. तिङन्त—"सुप्तिङन्तं पदम्"। जिन शब्दोंमें सुप् विभक्ति लगी हो (कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधनमें सब वचन बताने वाले ध्वनि-रूप लगे हों) उन्हें सुबन्त और जिन शब्दोंमें तिङ् विभक्ति लगी हो (क्रियाके सब कालों, वचनों और पुरुषोंके रूपोंको बतानेवाले चिह्न लगे हों) उन्हें तिङन्त कहते हैं। वे मानते हैं कि *नाम* और *आख्यात*के भीतर ही सब शब्द आ जाते हैं। कुछ आचार्य तीन ढंगके शब्द मानते हैं—(क) सुबन्त, (ख) तिङन्त, (ग) निपात-उपसर्ग। कुछ लोग (क) सुबन्त, (ख) तिङन्त, (ग) निपात, (घ) गति और (ङ) कर्मप्रवचनीय, ये पाँच ढंगके पद मानते हैं और कुछ लोग इन पाँचोंमें उपसर्गको जोड़कर छः मान लेते हैं। आचार्य यास्कने निरुक्तमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात नामके चार ढंगके पदोंको दो पालियोंमें बाँट दिया है—नाम और आख्यात एक पालीमें, उपसर्ग और निपात दूसरी पालीमें—'नामाख्याते" और 'उपसर्ग-निपाताः"। इनमेंसे नाम और आख्यातको प्रधान तथा उपसर्ग और निपातको गौण बताकर इन्हें समझाते हुए कहा गया है—

१—*नाम* पद तीन ढंगके होते हैं - *स्त्रीलिंग* (*रमा*), *पुल्लिंग* (*रामः*) और *नपुंसक* (*पुस्तकम्*)।

२—*आख्यात* या क्रियापद भी तीन ढंगके होते हैं—*कर्तृवाच्य* (रामने रावणको मारा।), *कर्मवाच्य* (रामके द्वारा रावण मारा गया।) और *भाववाच्य* (उससे सोया जाता है।)

३—*उपसर्ग :* पदोंसे पहले *आ, नि, वि* जैसे जो पद लगाकर नये अर्थवाले पद बनाए जाते हैं जैसे—*आहार, विहार* आदि।

४—*निपात :* *इव, चित्, तु, हि* जैसे शब्द ही निपात कहलाते हैं।

इनमेंसे नाम और आख्यातका तो अपना सीधा अर्थ होता है पर उपसर्ग और निपात तो दूसरे शब्दोंको चमकाने, बढ़ाने या उनके अर्थको मोड़नेके लिये काममें आते हैं। इसीलिये यह बताया गया है कि नाम और आख्यात तो अपने वाच्य अर्थके कारण अर्थवाले हैं और उपसर्ग-निपात अपने द्योत्य (चमकानेवाले) अर्थसे अर्थवाले हैं।

पहली पालीके § ६० में हम समझ आए हैं कि कुछ शब्द *नाम* होते हैं, कुछ काम बतानेवाले (*क्रिया*) होते हैं, कुछ नामों और क्रियाओंका ब्यौरा बतानेवाले (*विशेषण*), कुछ संज्ञाओंके बदले आनेवाले (*सर्वनाम*), कुछ दो शब्दों या वाक्योंके बीचका नाता जोड़नेवाले और सदा एकसे रहनेवाले (*अव्यय*) हैं और कुछ रीझ-खीझमें अचानक मुँहसे निकल पड़नेवाले *आह-वाह* (*विस्मयादि-बोधक*) होते हैं पर ये सब होते हैं तीन ही ढंगके—(१) नाम (वस्तु, व्यक्ति, भाव क्रिया, गुणका) या नामके बदले आनेवाला (सर्वनाम); (२) जो शब्दों या वाक्योंके आपसी मेलको समझावे (अव्यय) और (३) अचानक बोल (स्वयंस्फुट)।

कुछ लोग यह मानते हैं कि शब्द आठ ढङ्गके होते हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, परसर्ग, (प्रीपोजीशन), विस्मयादि-बोधक, संबंध-वाचक (कंजंक्शन)।

§ ३२—नामाव्ययस्वयंस्फुटा इत्याचार्याः। [आचार्य चतुर्वेदी तीन ढंगके शब्द मानते हैं : नाम, अव्यय और स्वयंस्फुट।]

आचार्य चतुर्वेदीका कहना है कि जिन शब्दोंको क्रिया कहते हैं वे भी तो किसी कामके नाम ही हैं। *खाना*, *पीना*, *सोना*, शब्द किसी वस्तुको मुँहमें डालकर निगलने, किसी पनियल वस्तुको मुँहमें डालकर घोंट जाने और आँख मूँदकर लेटकर सुध-बुध भूल जानेके कामके नाम ही तो हैं। ऐसे ही *लाल*, *अच्छा*, आदि भी *ललाई*, *अच्छापन* से बने हैं जो गुणोंके नाम हैं। यही बात क्रिया-विशेषणोंके लिये भी है। आचार्य चतुर्वेदी मानते हैं कि जब कोई व्यक्ति बहुत झोंकसे पैर चलाता हुआ बढ़ता जाता है तब हम उसके इस कामका नाम रखकर *दौड़ना* कहते हैं। इसलिये शब्दके तीन ही रूप हो सकते हैं—एक तो *नाम* दूसरे *अव्यय*, (दो शब्दों और वाक्योंको मिलानेवाले *और*, *या*, *कि*, *क्योंकि*, *इसलिये* आदि या किसी शब्दपर या बातपर बल देनेवाले *तो*, *ही भी* आदि होते हैं जिनकी बनावटमें कोई हेरफेर नहीं होता। इसलिये इनको अडिग (*अव्यय*) कहते हैं।) तीसरे ढङ्गके शब्द *आपबोल* (*स्वयंस्फुट*) होते हैं (जो रीझ, खीझ, अचरजमें अपने आप मुँहसे *आह*, *वाह* बनकर निकल पड़ते हैं। ये शब्द न तो किसीके नाम होते हैं और न शब्दों और वाक्योंका मेल ही समझाते हैं। इसलिये ये तीसरे ढङ्गके शब्द हुए।) '*हाँ*' और '*ना*' भी अपने ढङ्गके निराले होते हैं पर इनको भी अडिगके भीतर ही रखनी चाहिए क्योंकि कभी तो शब्दों या वाक्यों-का नाता बताते हैं, कभी ये रीझ, खीझ, अचरजमें मुँहसे निकल पड़ते हैं इसलिये इन्हें *अडिग* और *आपबोल* (*स्वयंस्फुट*) दोनोंके भीतर समझ लिया जा सकता है।

शब्द—

§ ३३—**अर्थवान् पदम्। [जिसका अर्थ हो, वही पद कहलाता है।]**

पहली पालीके § ६८ में हम बता आए हैं कि ध्वनियोंके जिस मेलसे कोई अर्थ निकले उसे शब्द कहते हैं। वहीं हम यह भी समझा आए हैं कि ये शब्द कभी-कभी अकेले और कभी दूसरे शब्दोंके साथ आनेपर अपना ठीक अर्थ देते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि ये शब्द अपने आपमें पूरे होते हैं। इन्हें हम दो साँचोंमें पाते हैं—एक तो इनका अपना बिना मिलावटका रूप है जिसे संस्कृतमें *प्रातिपदिक* कहते हैं और दूसरा वह है जो कारक, लिंग, वचन, काल, पुरुष बतानेवाले कोई शब्द या ध्वनि आगे-पीछे लगाकर बनाया जाता है। इसे पद कहते हैं और यह वाक्यमें पहुँचकर दूसरे शब्दोंसे अपना मेल ठीक करनेके लिये झट अपना रूप सँवार लेता है।

कुछ बोलियोंमें शब्दका ढाँचा नहीं, स्थान बदलता है—

इससे हमने यह समझा कि वाक्यमें पहुँचकर सब शब्दोंको दूसरे शब्दोंके मेलमें आकर अपना ठीक अर्थ बतानेके लिये कुछ ढाँचा बदलना पड़ता है। इसको भी हम पिछली पालीके § ६९ में समझा आए हैं कि प्रत्यय, उपसर्ग मध्यग, विभक्ति, समास-के कारण शब्दको अपना रूप बदलना पड़ता है, जिससे उसका नाता वाक्यमें आए हुए दूसरे शब्दोंसे ठीक-ठीक जाना जा सके। धातुओंमें यही हेर-फेर *काल* या समय बतानेके लिये किया जाता है कि क्रियासे जो काम बताया जा रहा है वह कब हुआ। कभी-कभी एक ही शब्द *नाम* भी होता है और वही किसीका *गुण* भी बताने लगता है जैसे—*सोना* एक धातु है पर जब हम यह कहने

लगते हैं कि *उसका रंग सोनेके जैसा है* तब हम *सोना* शब्दमें हेर-फेर करके उसे *सुनहरा* बना लेते हैं। ऐसे ही स्त्री. पुरुष, नपुंसक बतानेके लिये भी हम शब्दमें हेरफेर कर लेते हैं। पर कुछ चीनी जैसी बोलियाँ भी हैं जिनमें शब्दका रूप नहीं वरन् वाक्यमें उनका ठौर बदलता है और उसी ठौरके अदलने-बदलनेसे उनका अर्थ भी बदलता रहता है।

मेलजोड़ (सम्बन्ध-योग या मौर्फ़ीम) और *अर्थपाल (अर्थभाव या सीमेंटीम)*—

§ ३४—**शब्देषु सम्बन्धार्थयोगश्च। [शब्दोंके भीतर अर्थ बतानवाले और उनका मेलजोड़ बनानेवाले दो साँचे होते हैं।]**

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है उससे यह समझनेमें कोई झंझट न होगी कि कुछ बोलियोंमें जब कोई शब्द वाक्यमें पहुँचता है तब वह अपना रंग-ढंग बदल लेता है। शब्दोंकी बनावटमें हेरफेर करनेवाली इन्हीं ध्वनियोंको विद्वानोंने *मेलजोड़ (संबंधयोग या मौर्फ़ीम)* कहा है। इसी *मेलजोड़*से वाक्यमें आए हुए शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ समझमें आता है। एक वाक्य लीजिए—

'श्रीकृष्णने अपने मामा कंसको मथुरामें पटककर मारडाला।'

इसमें अर्थवाले शब्द सात ही हैं—श्रीकृष्ण, अपना, मामा, कंस, मथुरा, पटकना, मारना। इन्हींको अर्थ-बाँध, अर्थपाल (*अर्थभाव या सीमेन्टीम*) कहते हैं। अब इन सातों अर्थवाले शब्दों या अर्थ-पालोंको ठीक बैठानेके लिये *मेलजोड़* लगाना चाहिए। ये *मेलजोड़* होंगे—*ने, को, में, कर, डाला*। इसमें *अपना* से *अपने* बन गया है और वह बना *आप* से। ऐसे ही *पटकना* से *पटककर*

भी बन गया। इससे जान पड़ा कि ऐसे *मेलजोड़* कुछ तो शब्दोंमें अपने-आप भीतर ही भीतर हेरफेर कर देते हैं, कुछमें बाहरसे तोड़-जोड़ करना पड़ता है। बहुतसे लोगोंने नागरीके ने, के, *को* और *में* को बाहरसे जुड़ा हुआ माना है पर हम आगे चलकर समझावेंगे कि यह बड़ी भारी भूल है। ये भी संस्कृतकी विभक्तियोंके ढंगपर अपने-आप बोलियोंमें ढले हैं। हम दक्षिणकी मलयालम् बोलीको लें तो वहाँ *का*, *की*. के के लिये न्टॅ या उटॅ; *में* के लिये इल् ; *पर* के लिये *मेल्* ; *को* के लिये क्कु और एँ; से (करण) के लिये ओटुॅ या कॉण्टुॅ; *के लिये* के लिये *वेण्टि* या *आयिक्कॉण्टुॅ*; से (अपादान) के लिये *इल् निन्नुॅ*; *आल्* और *काळ्*। पर ये सब शब्द नहीं हैं, विभक्तियाँ ही हैं जो नाता बताती हैं। यह ठीक वैसे ही है जैसे नागरी क्रियाओंमें *खाना* से *खाओ*, *खाते*, *खाया*, *खाए* बनाते हुए हम यह नहीं कह सकते कि इन शब्दोंमें आए हुए *ओ*, *ते* या *ए* कोई शब्द हैं, ये तो काम होनेका समय बतानेवाले बहुतसे *बिगाड़* (*विकार*) हैं। जिन लोगोंने *में* को *मध्ये* से *मज्झे* और *में* तक ढाला है, वे यह नहीं जानते हैं कि संस्कृतके कुछ शब्दोंकी सप्तमीमें जो *स्मिन्* लगा हुआ है वही प्राकृतोंमें *म्हि* बनकर आजकी हिन्दीमें '*में*' रह गया है।

§ **३५—स्थिति-विभक्ति-शब्दयोगात् संबंधयोगः। [वाक्यमें शब्दकी ठौर, विभक्ति या नये शब्दसे मेलजोड़ बनता है।]**

शब्दोंके *मेलजोड़* या *सम्बन्धयोग* कई ढंगके बताए गए हैं जैसे—

१—कौनसा शब्द वाक्यमें किस ठौरपर किस शब्दसे पीछे या पहले आया। इसीसे उस शब्दका ठीक रूप और अर्थ जाना जाता है। *चीनी* जैसी बहुतसी ऐसी बोलियाँ हैं, जिनमें शब्दोंके

ठौरसे ही अर्थात् एक वाक्यमें किस बारीसे कौनसा शब्द आया है, उसका ठीक रूप पहचाना जाता है। *बास्क* बोलीमें यदि हमको कहना हो —

'टोपीवाले व्यक्तिके साथ'

तो कहेंगे—

पॉनेत-एकिला-को-अरे-किन्,

जिसे यदि हम अलग-अलग अनुवाद करके रक्खें तो कहा जायगा—

टोपी-साथ-वह-का-टोपी।

कौकेशी भाषाके वाक्यमें कुछ अनोखे ढंगसे ही शब्द आते हैं। चीनी बोलीके भी वाक्यमें एक शब्दके इधर-उधर होनेसे ही उसका ठीक-ठीक अर्थ बैठता है। हिन्दीमें भी कहीं-कहींपर ऐसे जोड़ आते हैं जैसे—*राम आम खा रहा है।* यहाँ वाक्यमें *राम* और *आम* जिस बारीसे रक्खे गए हैं उससे ही यह जाना जाता है कि कौनसा शब्द किससे क्या मेल रखता है।

२—कुछ बोलियोंमें शब्दोंके आगे-पीछे नई ध्वनि लगाकर या उनका रूप बदलकर वाक्यमें लानेका चलन है। उनमें भी कभी-कभी ऐसे शब्द आ जाते हैं जिनका साँचा नहीं बदलना पड़ता। अँगरेज़ीमें इस ढंगके बहुतसे शब्द आते हैं जैसे—*आइ डू* (मैं करता हूँ।), *आइ से* (मैं कहता हूँ।)।

३—कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो अलग रहकर दो शब्दोंका संबंध बताते हैं। कुछ लोगोंने का, की, को, के परसर्गों या विभक्ति-चिह्नोंको भी अलग शब्द मान लिया है पर हम आगे चलकर समझावेंगे कि ये शब्द नहीं हैं। पर बहुतसे शब्द ऐसे हैं जो इसी ढंगसे वाक्यमें पहुँचकर दो शब्दोंका आपसका नाता

समझाते हैं जैसे--*सूली-ऊपर सेज पियाकी*। यहाँ '*ऊपर*' शब्द अलग आकर *सूली* और सेजका नाता समझा देता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि '*सम्बन्ध-योग*' दो ढंगके होते हैं— विभक्ति जोड़कर या शब्द जोड़कर। संस्कृत जैसी बोलियोंमें विभक्ति और शब्द दोनों लगते हैं जैसे *गृहे* और *गृहमध्ये*। अंग्रेजी जैसी बोलियोंमें सम्बन्ध बतानेवाले *मेलजोड़* अलग शब्द ही रहते हैं जैसे *इन दि हाउस* (घरमें)। हिन्दीमें भी ऐसे कुछ बोल चलते हैं—जाओ देखो *घर-भीतर* होंगे।

४—कुछ लोगोंने स्वरफेर (अपश्रुति) को भी *मेलजोड़* बतानेवाला समझा है पर यह उनकी भूल है। स्वरफेर या अपश्रुति तो किसी शब्दके स्वरोंमें हेरफेर करके उनके अर्थ बदलती है। यह दो शब्दोंका न जोड़ बैठाती है, न उनका नाता समझाती है।

§ ३६—बलयोगोपि सम्बन्धार्थे। [कभी किसी शब्दपर बल देनेसे भी मेलजोड़ जाना जाता है।]

कुछ बोलियोंमें स्वर चढ़ा-उतारकर बोलनेसे भी शब्दोंके मेलमें हेरफेर हो जाता है जैसे—'*मैं उठाऊँगा*' वाक्यमें '*उठाऊँगा*' पर बल देकर कहा जाय तो उसका अर्थ होगा *मैं उठा ही ले जाऊँगा*। पर '*मैं*' को खींचकर, पूछनेकी लोच देकर कहा जाय तो उसका अर्थ होगा कि *भला मैं कभी उठा सकता हूँ? नहीं उठाऊँगा*। कभी-कभी इस ढंगसे स्वरका खिंचाव नहीं भी होता जैसे संस्कृतकी क्रियाओंमें स्वरके उतार-चढ़ावकी कोई बात ही नहीं, फिर भी कभी-कभी यह उतार-चढ़ाव काम आ ही जाता है।

मेलजोड़ (संबंध-योग) और अर्थ-बाँध (अर्थ-योग) का नाता—

कुछ लोगोंका कहना है कि मेलजोड़ (संबंधयोग) और अर्थबाँध (अर्थयोग) में कुछ आपसी नाता भी है और वे नाते कई ढंगके हैं-

१. कुछ बोलियोंमें अर्थयोग और संबंधयोग दोनों ऐसे घुले-मिले रहते हैं कि एक ही शब्दमें दोनों एक साथ मिल जाते हैं जैसे अरबीमें *तलबसे तालिब*, *तुलबा* बन जाते हैं।

२. कभी ऐसा होता है कि ये दोनों एक शब्दमें मिलते तो हैं पर दिखाई अलग-अलग पड़ते हैं जैसे—अँगरेज़ीकी क्रियाओंमें भूतकाल बतानेवाला 'ड' के *लुक्* (देखना) के साथ मिलकर *लुक्ड* (देखा) बनता है या जैसे *तेलुगुमें वच्चुट* (आना) के बदले *आता हूँ* कहनेके लिये *वच्चु* में *चुन्नानु* जोड़ देते हैं। इसमें *वच्चु* और *चुन्नानु* दोनों मिलानेपर भी अलग-अलग जान पड़ते हैं।

३. कुछ बोलियोंमें दोनों एक दूसरेसे अलग-अलग रहते हैं। जैसे चीनीमें कुछ शब्द तो पूरे होते हैं और कुछ *रीते* होते हैं। ये *रीते* शब्द सदा काममें नहीं आते क्योंकि चीनी बोलीमें तो वाक्यमें शब्दोंको इधर-उधर रखनेसे ही अदल-बदल कर लिया जाता है जैसे—'*यह मनुष्य इस बच्चेको देखता है*' के लिये चीनीमें कहा जायगा—' चे जेन् क' अन् चि एन् हए त्ज़" (यह मनुष्य. आँख, गड़ाना, देखना, बच्चा, यह) और '*यह बच्चा इस मनुष्यको देखता है*' के लिये कहेंगे—"चे हए त्ज़ क' अन् चिएन् जेन्।" (यह बच्चा, यह आँख, गड़ाना, देखना, मनुष्य)।

कुछ बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें ये दोनों अलग-अलग होते हुए भी साथ नहीं रहते। इनमें ऐसा होता है कि पहले मेलजोड़ (संबंध-योग) बतानेवाले शब्द आ जाते हैं और फिर दूसरे शब्द आते हैं जैसे अमेरिकाकी *चिनूक* बोलीमें यह कहना हो कि '*उस पुरुषने स्त्रीको लाठीसे पीटा*।' तो कहेंगे—'*वह-उसने-वह-से-मारना-मनुष्य-स्त्री-लाठी*।'

४. कुछ बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें ये संबंध बतानेवाले मेलजोड़ बहुत हो जाते हैं, यहाँतक कि एकके बदले बहुतसे मेल-जोड़ एक साथ मिल जाते हैं। बन्तू परिवारकी स्वाहिली बोलीमें क्रियाके साथ भी व्यक्तिवाचक सर्वनाम लगा रहता है चाहे उसमें संज्ञा भले कर्ता ही क्यों न हो जैसे--*वे लड़कियाँ जा रही हैं*" के बदले कहेंगे *ब-क (जाना) ब-एन्दा* (वे लड़कियाँ वे जाती हैं) या *शेरोंने मनुष्योंको खा लिया*, के लिये कहेंगे--*ब-लबू ब-बलुमा ब-न्तु* (वे शेर, वे खा लिया. वे मनुष्य)।

हम ऊपर बता आए हैं कि कुछ काम होना किसीका गुन बताना या कौनसा काम कब हुआ है यह समझाना और गिनती, लिंग आदि बतानेका काम शब्दसे होता है और वह मेलजोड़से जुट-कर ही बनता है। कभी-कभी इनसे यह भी जाना जाता है कि जो बात कही जा रही है वह पूछने (प्रश्न) के ढंगकी है नकारनेके ढंग-की है या कुछ करनेके लिये उकसाने (प्रेरणा) के ढगकी है। समझनेकी बात यही है कि वाक्यमें जितने ढंगके शब्द आते हैं उन सबके ठीक अर्थोंको सजा देनेवाली ध्वनि मेलजोड़ या संबंध-योग कहलाती है। हम अव्ययोंको छोड़ दें तो लगभग सभी ढंगके शब्दोंमें यह संबंधयोग मिलेगा ही और सचमुच देखा जाय तो सब अव्यय भी इस ढंगसे मेलजोड़के शब्द या संबंध-योग ही हैं।

§ ३७—नेत्याचार्याः। [आचार्य चतुर्वेदी इससे सहमत नहीं हैं।]

यह सब आचार्य चतुर्वेदीकी सम्मतिमें ठीक नहीं है। मेल-जोड़ या संबंधयोगका काम तो इतना ही है कि वे अर्थ बतानेवाले शब्दों (वाक्यके शब्दों) का आपसका नाता समझा दें। पर अच्छे ढंगसे जाँचने-परखनेपर यह समझमें आ जायगा

कि *सम्बन्धयोग* या *मेलजोड़* (*मौर्फ़ीम*) और अर्थबाँध (अर्थयोग) या *सीमेन्टीम*) दोनों एक दूसरेमें उलझे हुए हैं। हम पीछे बता आए हैं कि शब्द और अर्थ दोनों एक दूसरेमें घुले-मिले हैं। जिसे ये विलायती लोग और उनके पिछलग्गू *मौर्फ़ीम*. *मेलजोड़* (*सम्बन्धयोग*) कहते हैं वह कुछ भी नहीं है क्योंकि विभक्ति (सुप् और तिङ्) लगनेपर ही शब्द बनता है और वह विभक्ति लगा हुआ शब्द अपने आप अर्थभरा (*अर्थमय*) होता है। इसलिये *सम्बन्धयोग* और *अर्थयोग* दोनों की बात ही बेकार है। और फिर, ऐसी बोलियाँ भी तो मिलती हैं जिनमें यह झंझट है ही नहीं। फिर क्यों ऐसा नियम अकारथ बनाया जाय जो सबपर लागू न हो।

'गिरा-अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।'

—तुलसीदास

"वागर्थाविवसम्पृक्तौ"—कालिदास।

इसलिये जिसे *सम्बन्ध-योग* या *मौर्फ़ीम* कहकर बोलियोंक छानबीन करनेवालोंने अलग किया है वह भी शब्दका अंग ही है। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि *संबंध-योग* या *मौर्फ़ीम* और *अर्थयोग* या *सीमेन्टीम* दो अलग-अलग साँचे हैं।

यह सब पण्डिताई छाँटना भर है क्योंकि संबंध-योग चाहे लगें या न लगें पर वे छिपे हुए वाक्यमें बने रहते हैं और अलग-अलग बोलियोंमें अलग-अलग ढंगसे वे पहचाने और काममें लाए भी जाते हैं। यदि हम कभी-कभी कहते हैं— 'आपने इसे बहुत *सिर* चढ़ा लिया है।' इस वाक्यमें *सिर*का अर्थ है *सिरपर*। यहां '*पर*' मेलजोड़ है पर वह छिपा हुआ है। जहाँ समास बनते हैं वहाँ तो मेलजोड़का नाम भी नहीं रहता।

इसलिये यह समझना चाहिए कि संबंध बतानेवाली ध्वनियाँ जोड़ी जायँ या न जोड़ी जायँ पर उनका लुका-छिपा लगाव होता ही है।

पहली पालीके § ६८ में बता आए हैं कि ध्वनियोंके सार्थक मेल-को शब्द कहते हैं और ये शब्द कभी तो अकेले ही अर्थ देने लगते हैं और कभी कईके मेलसे। इन शब्दोंके कुछ तो बँधे हुए अर्थ होते हैं पर कभी-कभी कहनेवालेके मन और ढंगकी ढालपर और सुननेवालेकी समझके ढालपर बदल भी जाते हैं। यहाँ हमें बताना है कि वाक्यमें ये शब्द कितने ढंगोंसे काम आते हैं और उन शब्दोंमें कैसे हेरफेर हो जाता है।

शब्द कैसे बनते हैं?

§३८—धातुप्रत्ययोपसर्ग - योग-समास-संक्षेपण-यदृच्छा-परग्रहणं शब्दकृते। [धातु, प्रत्यय (कृदन्त, तद्धित) उपसर्ग, बेकाम शब्द जोड़कर, दो शब्दोंको मिलाकर, शब्दोंको छोटा करके, मनमाने ढंगसे शब्द बनाकर; या दूसरी बोलीके शब्द अपनाकर नये शब्द गढ़े जाते हैं।]

वाक्यमें पहुँचने पर ही शब्दकी ठीक पहचान होती है—

शब्दके संबंधमें पहली बात तो यह समझ रखनी चाहिए कि वह किस ढंगका है। यह तभी जाना जा सकता है जब वह वाक्यमें काम आवे। संस्कृतके पण्डितोंमें कहा जाता है—बहुत त्वञ्चाहञ्च न करो। इस शब्दमें त्वम् + च + अहम् + च चार शब्द हैं जिनमें से दो सर्वनाम हैं और दो अव्यय। पर ये सब मिलकर संज्ञा बन गए हैं जिसका अर्थ है झगड़ा या टंटा। कभी-कभी हम कहते हैं—हमने खेत हथिया दिया है। यहाँ हाथ शब्द भी क्रियाके रूपमें पहुँच गया है। ऐसे ही जब हम कहते हैं—आह-ऊह न करो

तब *आह-ऊह* भी *स्वयंस्फुट* या *आपबोल* न होकर *कराह* का नाम बन जाता है। इसलिये यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि शब्द जैसे ही बना या कहा गया वह वैसे ही *नाम* या *अव्यय* या *स्वयंस्फुट* हो गया। वह तो वाक्यमें पहुँचकर ही बता सकता है कि मैं क्या हूँ।

धातुमूलक और प्रत्ययमूलक शब्द—

यह भी नहीं समझना चाहिए कि धातुओंसे ही सब शब्द निकले हैं। हम ऊपर बता चुके हैं कि यदि हम शब्दोंके कामसे उन्हें जाँचें तो अंगरेजी व्याकरणवालोंके नामसे उन्हें *संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, परसर्ग, विस्मयादिबोधक* और *संयोजक* कह सकते हैं। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें शब्दोंको देखकर ही हम बता सकते हैं कि वे इनमेंसे किस झुंडमें रखे जा सकते हैं क्योंकि बहुतसे शब्द तो हमारी बोलियोंमें धातु नहीं हैं, वे धातुओंसे निकलकर प्रत्यय और उपसर्ग लगकर बने हैं। इसलिये मोटे-मोटे ढंगसे हम एकको धातुमूलक और दूसरेको प्रत्ययमूलक कह सकते हैं। ये प्रत्ययमूलक इतने अनगिनत हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। कुछ बोलियाँ ऐसी होती हैं जिनमें या तो धातुरूप ही हैं और या उनसे बने हुए शब्द ही अलग हैं।

हिन्द-योरोपीय बोलियोंमें कृत् और तद्धित प्रत्यय

हिन्द-योरोपीय बोलियोंके शब्दोंमें हम दो ही ढंगके शब्द बनानेवाले प्रत्यय पाते हैं, एक तो कृत् प्रत्यय और दूसरे तद्धित प्रत्यय। इन सब प्रत्ययोंके अतिरिक्त कुछ उपसर्ग भी हैं जिनसे शब्द बनते हैं। इस ढंगसे देखा जाय तो कृत्, उणादि, तद्धित सुप्, तिङ् आदि बहुतसे प्रत्यय या *प्र, परा, अप, सम, अव, निस्, निर्, वि आङ्, नी* आदिके समान उपसर्ग लगाकर हिन्द-योरोपीय बोलियोंमें शब्द बनाए जाते हैं। कभी-कभी समास करके भी शब्द

बनाए जाते हैं। शब्द बनानेके और भी बहुतसे ढंग हैं। किसी बोलीमें शब्द कैसे बनते हैं, यह तो उस बोलीके व्याकरण लिखनेवालोंके जाँच-परखकी बात है। इसलिये यहाँ हम इस बातकी चर्चा छोड़ देते हैं। नीचे हम उन थोड़ेसे ढंगोंकी चर्चा कर देते हैं जिनसे लगभग सभी हिन्द-योरोपीय बोलियोंमें नये शब्द बनाए जाते हैं—

१. उपसर्ग लगाकर जैसे *हार* में *वि*, *आ*, *सम्* लगाकर *विहार*, *आहार*, *संहार* बन जाता है।

२. दूसरा शब्द जोड़कर जैसे *नट*में *खट* जोड़कर *नटखट*।

३. समास करके जैसे *घोड़ा* + *सवार* = *घुड़सवार*।

४. प्रत्यय जोड़कर जैसे *मधुर*से *मधुरता*, *पागल*से *पागलपन*।

५. बड़े शब्दको छोटा करके जैसे *परशुराम*का *राम*, *बाइसिकल*का *साइकिल*।

६. यों ही किसीको मनमाना नाम देकर जैसे '*भज्जू*'।

७. कभी-कभी एक ही बोली बोलनेवाले एक वस्तुके लिये अलग देशोंमें अलग-अलग शब्द चला या अपना लेते हैं। अमरीका और इंग्लैण्डमें अँगरेजी ही भाषा है पर एक ही वस्तुके लिये वे दो प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं—

इंग्लैण्ड	अमेरिका		
Guard (*गार्ड*)	Conductor	*कन्डक्टर*	(गाड़ी-रक्षक)
Tram (*ट्राम*)	Street-car	*स्ट्रीटकार*	(ट्राम-गाड़ी)
Lorry (*लौरी*)	Truck	*ट्रक*	(ठेला-मोटर)
Salary, (*सैलरी*, Wage वेज)	Screw	स्क्रयू	(वेतन)

इंग्लैण्ड		अमेरिका		
Bags	(बैग्स)	Slacks	स्लैक्स	(झोले)
Wire-less set	(वायरलैस् सैट्)	Radio	रेडियो	(रेडियो)
Dessert	(डेस्सर्ट)	Fruit	फ्रूट	(फल)
Sweet	(स्वीट)	Dessert	डेस्सर्ट	(मिठाई)

ऐसे ही आस्ट्रेलियामें भी बाहरसे बसे हुए लोग लगभग सभी अँगरेज़ ही हैं पर वे भी कुछ अपने अलग शब्द चलाए हुए हैं। उनकी अँगरेज़ीमें अमेरिकावालोंसे कुछ अलग शब्दोंका चलन है—

अमरीका			आस्ट्रेलिया	
Frontier	फ्रंटियर	(सीमांत)	Outback	आउटबैक
Food	फ़ूड	(भोजन)	Tucker	टकर
Sheep	शीप	(भेड़)	Jumbuk	जम्बुक
Wine	वाइन	(मदिरा)	Plonk	प्लोंक
Egg	एग्	(अण्डा)	Goog	गूग
Money	मनी	(रुपया-पैसा)	Oscar	औस्कार
Horse	हौर्स	(घोड़ा)	Moke	मोक
			Brumby	ब्रम्बी
			Gee-gee	गी-गी

परदेसमें नये शब्द लेना—

जो लोग दूसरे देशोंमें जा बसते हैं वे वहाँके शब्दोंको अपना लेते हैं और अपने छोड़ देते हैं। काशीका रहनेवाला दुबे या सुकुल जब बम्बईमें जाकर दूधका धन्धा करने लगता है तब वह

*कोठरी*को *खोली*, *चिट्ठी*को *टपाल*; *पोथी*को *चोपड़ी*, *पक्का करने*को *नक्की करना* और *वेतन*को *पगार* कहने लगता है। जो अँगरेज लोग न्यूज़ीलैण्डमें जा बसे हैं वे *भोजन* (फ़ुड) के लिये *काइ*, *रुपये-पैसे* (मनी) के लिये *हूट*, *सौभाग्य* (गुडलक) के लिये *किया-ओरा*, *लड़की* (गर्ल) के लिये *टार्ट* बोलते-लिखते हैं।

शब्दोंका लेन-देन—

दक्षिणी अफ़रीकाके अँगरेज भी अपनी बोलीमें बहुतसे बन्तू बोलीके शब्द बोलने लगे हैं जैसे—*सेना* (*आर्मी*) के लिये *इम्पी* और *धन्यवाद* (*थैंक्स*) के लिये *इन्कोसी*। इससे जान पड़ेगा कि बोलियाँ जब एक दूसरीके साथ मिलती हैं तब यह नहीं है कि कोई एक बोली उनमेंसे ज्योंकी त्यों बनी रहे और दूसरीको मिटा दे। दोनोंमें शब्दोंका लेन-देन चलता रहता है। हाँ, इतना तो होता ही है कि जिसका राज होता है, उसकी बोली अपने नीचे रहनेवाले लोगोंपर अपना झंडा जमाए रहती है और जिसकी लाठी होती है उसीकी भैंस भी हो जाती है। पर इसे शब्द बनाना नहीं, अपनाना कहते हैं।

§ ३६—आगमविपर्ययलोपविकारलिंगत्यागाश्च शब्दे। [शब्दोंमें ये हेरफेर होते हैं : नया शब्द आना, अदल-बदल होना, निकल जाना, बिगड़ जाना, लिंग बदल जाना।]

जैसे ध्वनियोंमें हेर-फेर हो जाता है वैसे ही शब्दोंमें भी हेर-फेर हो जाता है और वह नीचे लिखे ढंगोंमें होता है—

१. *शब्दागम* या किसी शब्दके साथ एक नया शब्द आ जाना। ये नये आए हुए शब्द भी तीन ढंगके होते हैं—(क) एक तो बेकाम आते हैं जो किसी शब्दके पहले अक्षरको बदलकर दुहरा दिए जाते हैं। ये शब्द ऐसे समय काममें आते हैं जब आधे मनसे कोई

बात कही गई हो—जैसे पानी-*वानी* (मराठीमें-पानी-येनी)। (ख) दूसरे ढंगके शब्द वे आते हैं जो उसी शब्दके दूसरे रूप होते हैं वे या तो एक ही बोलीके होते हैं या दो बोलियोंके जैसे *काम-काज*, या *शादी ब्याह*, *आज कल*। कभी-कभी साथ आनेवाले शब्द ऐसे भी होते हैं जो किसी एक ही कामसे नाता रखनेवाले होते हैं जैसे—*ब्याह-बरात*। (ग) कभी-कभी बल देनेके लिये ही एक शब्द दुहरा दिया जाता है जैसे *बार-बार*, *कभी-कभी*, *कहीं-कहीं*।

२. शब्द *विपर्यय* या शब्दोंका अदल-बदल जैसे—*भाव-ताव*का *ताव-भाव* ; *दिन-रात*का *रातदिन* ; *प्रातः सायं*का *सायं प्रातः*।

३. *शब्द-लोप* या दो शब्दोंसे मिले हुए शब्दमेंसे एकका निकल जाना जैसे—*घुड़सवार*के लिये *सवार*, *रामचरित-मानस*के लिये *मानस*, *मोटरकार*के लिये *कार*, *बाइसिकिल*के लिये *साइकिल*।

४. *शब्द-विकार* या एक शब्दके बदले दूसरा शब्द चल निकलना जैसे—*कृषाण*के बदले उसका तद्भव *किसान* चल पड़ा, *कृषाण*को कोई जानता भी नहीं। कभी-कभी रीझ-खीझमें भी शब्द बिगड़ जाता है जैसे—*जयशील* को *लल्लू* कहना। कभी अनजानपनमें भी एक शब्दके बदले दूसरा शब्द आ जाता है जैसे—*कम्पार्टमेण्ट*का *डिपार्टमेंट*, इसीको अँगरेजीमें *मैलाप्रौपिज्म* कहते हैं। कभी-कभी किसी दूसरे शब्दके कारण ठीक शब्द निकाल दिया जाता है और उसके बदले एक नया शब्द आ कूदता है जैसे—उत्तरप्रदेशके पच्छिमी भागमें *भरत-शत्रुघ्न*के बदले *भरत-चरत* कहते हैं। कभी-कभी दूसरी बोलियोंके आ जानेसे या दूसरी बोली बोलनेवालोंके साथ रहनेसे या नये राजाके आ जानेसे अपनी बोलीके शब्द निकल जाते हैं, उनके बदले दूसरी बोलीके शब्द चलने लगते हैं जैसे—दाखके बदले अंगूर।

कभी-कभी पहलेसे चली आती हुई किसी बहुत नामी वस्तुके नामपर भी उसी ढंगकी नई वस्तु चल निकलती है जिससे नई वस्तुका अपना नाम छप जाता है जैसे *रामचरितमानस*को लोग *रामायण* ही कहते हैं। कभी-कभी एक ही काममें आनेवाली वस्तुकी बनावट बदल जानेसे पुराने शब्द मिट जाते हैं, नये आ जाते हैं जैसे—*झंगा* और *बगलबंदी*के बदले *कुर्त्ता* और *कोट*।

५—*लिंग-परिवर्त्तन* या लिंग बदल लेना—कभी-कभी ऐसा होता है कि एक शब्द तत्सम रूपमें एक लिंगमें होता है पर तद्भव रूपमें या दूसरी बोलीके मेलसे उसका लिंग बदल जाता है। जैसे—*आत्मा* (*आत्मन्*), *श्वास* और *वायु* शब्द संस्कृतमें पुल्लिंग हैं. *पुस्तक* और *दधि* नपुंसक लिंग है किंतु इन्हें लोग उर्दू या फ़ारसीके प्रभावसे हिंदीमें स्त्रीलिंगमें लिखते-बोलते हैं। *श्वास*को तो लोग पुल्लिंगमें लिखते हैं पर *साँस*को स्त्रीलिंगमें। *देवता* और *व्यक्ति* स्त्रीलिंग हैं, इन्हें लोग पुल्लिंगमें ही चलाते हैं।

अयानपनमें हेरफेर—

कुछ अदल-बदल या हेरफेर तब भी हो जाता है जब हम या तो किसी शब्दको जानते नहीं या उसे समझानेके लिये कुछ उससे मिलती-जुलती बात कहते हैं जैसे *झाऊ*के लिये *मोरपंखी* कहना। जब हमें कोई शब्द नहीं आता है तब हम उसके बदले *वह, यह, एथी, क्या नाम है कि*—आदि जोड़ते चलते हैं। यह तब होता है जब हम किसी शब्दको जानते हुए भी बोलचालमें उसे भूल जाते हैं। तीसरा हेरफेर हमें वहाँ करना पड़ता है जब हम किसी शब्दको न जानते हुए उसे समझानेका जतन करते हैं जैसे *टमाटर* समझानेके लिये यह कहना—*वह लाल-लाल गोल-गोल पुलपुला सेब जैसा*। आस्ट्रेलियाके मूल

निवासियोंमें बोली जानेवाली *पिडगिन* अँगरेज़ीमें ऐसे बहुतसे शब्द हैं जैसे *मच्छरके लिये—इम-लौंगा-डार्क-फेला* (वह लंबा काला जीव) या *रेलगाड़ीके लिये बिग-फेला-फ़ायर-स्नेक* (बड़ा भारी आगका साँप)।

ऊपर जो शब्दोंमें पाँच ढंगके हेरफेर बताए गए, हैं इनमेंसे १, ४ और ५ संख्यक हेरफेरको छोड़कर २ और ३ तो वहीं होते हैं जहाँ कोई शब्द दो या उससे अधिक शब्दोंसे मिला हुआ समास हो ।

शब्द बनानेके कुछ और ढंग—

पिछली पालीमें हम यह भी बता चुके हैं कि शब्दमें आगे-पीछे या बीचमें हेरफेर करके हम यह भी बता देते हैं कि यह एकके लिये कहा गया है या बहुतोंके लिये। इससे हमें गिनावट जाननेमें सुविधा होती है। कभी-कभी बहुतसे लिखनेवाले लोग कई शब्दोंको सीधे न लिखकर उलटकर लिखते हैं, जैसे—बहुत कहनेके लिये वे कहेंगे *अथोर* (अनल्प)। ऐसे ही उन्हें बादल कहना होगा तो वे कहेंगे *तर्वर्यरिप्रद* (*तरु + अरि = अग्नि + अरि = जल + प्रद = बादल*)। इससे यह समझा जा सकता है कि शब्द बनानेके और भी बहुतसे ढंग हैं।

कुछ बोलियोंमें शब्दके हेरफेर की बात ही नहीं उठती—

यह नहीं समझना चाहिए कि इस ढंगके हेरफेर सब बोलियोंमें होते हैं। कुछ ऐसी भी बोलियाँ हैं जिनमें शब्दोंके साँचेमें कोई हेरफेर नहीं होता पर वाक्यमें उन्हें अदल-बदलकर रख दिया जाय तो अर्थ ही बदल जाता है इसलिये उनमें शब्दोंके हेरफेरकी बात ही नहीं उठती।

तीन ही ढंगके शब्द होते हैं—

अर्थके ध्यानसे जो शब्द बनाए जाते हैं उनकी चर्चा हम आगे अर्थकी छानबीनमें करेंगे। यहाँ अब इतनी ही बात समझ रखनी चाहिए कि जिन शब्दोंको मनुष्य अपनी बोलियोंमें काममें लाता है वे तीन ढंगके होते हैं—

१—*नाम :* किसी जीव, वस्तु, स्थान या भावका नाम बतानेवाले (*संज्ञा*); गुणका नाम बतानेवाले (*विशेषण*) और कामका नाम बतानेवाले (*क्रिया*) ।

२—*सदा एकरंग* (*अव्यय*) *:* वाक्यमें आए हुए शब्दों या वाक्योंका आपसका नाता समझानेवाले (*जब*, *तब*, *और*, *कि*, *यदि*, *जैसे*) और किसी शब्दका बल समझानेवाले (*तो*, *ही*, *भी*) शब्द ।

३—*आपबोल या स्वयंस्फुटः* रीझखीझ या डर-उमंगमें अचानक अपने आप मुँहसे निकल आनेवाले शब्द (*विस्मयादिबोधक या आवेगसूचक शब्द*) जैसे *आह* ! *वाह* ! इन्हींको यदि हम और फैलाकर कहें तो जान सकेंगे कि वाक्यमें आनेपर कुछ शब्द वस्तुओं, व्यक्तियों, भावों या स्थानोंके *नाम* होंगे, कुछ *कामोंके नाम* होंगे जो होना या करना बताते होंगे, कुछ ऐसे होंगे जो *नामों या कामोंके गुण* बताते होंगे। इन्हें *नाम* शब्द कहते हैं। कुछ ऐसे हैं जो *बल* देनेके या दो शब्दों और वाक्योंको जोड़नेमें काम आते हैं, उन्हें *अव्यय* कहते हैं। कुछ ऐसे हैं जो *आह*, *वाह* बनकर हमारे मुँहसे अचानक रीझखीझ या अचरजमें निकल पड़ते हैं इन्हें *स्वयंस्फुट* कहते हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

(१) निरुक्तने चार ढंगके शब्द माने हैं : नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात।

(२) आचार्य चतुर्वेदी तीन ही ढंगके शब्द मानते हैं—नाम, अव्यय और स्वयंस्फुट।

(३) जिसका अर्थ हो वही पद कहलाता है।

(४) कुछ लोग मानते हैं कि शब्दोंमें अर्थ बतानेवाले और उनका मेलजोड़ बतानेवाले दो साँचे होते हैं। पर आचार्य चतुर्वेदी इसे नहीं मानते।

(५) वाक्यमें शब्दकी ठौर, विभक्ति या नये शब्दसे मेलजोड़ बनता है।

(६) कभी किसी शब्दमें बल देनेसे भी मेलजोड़ बन जाता है।

(७) धातु, प्रत्यय (कृदन्त, तद्धित), उपसर्गसे, बेकाम शब्द जोड़कर, दो शब्दोंको मिलाकर शब्दको छोटा करके, मनमाने ढंगसे शब्द बनाकर या दूसरी बोलीके शब्द अपनाकर नये शब्द गढ़े जाते हैं।

(८) शब्दोंमें ये हेरफेर होते हैं : नया शब्द आना, अदलबदल होना, निकल जाना, बिगड़ जाना, और लिंग बदल जाना।

—:※:—

६

क्या वाक्योंमें भी हेरफेर होता चलता है ?

वाक्योंकी बनावट और उसमें उलटफेर

वाक्यमें ही बोलचाल होती है—सैन या संकेतसे भी अर्थ जाना जाता है—बोलियोंकी बनावट चार ढंगकी होती है : अलगन्त (विकीर्ण), जुटन्त (सप्रत्योपसर्ग), मिलन्त (धातुरूपात्मक), घुलन्त (सम्पृक्त)—वाक्यके दो भाग होते हैं : उद्देश्य और विधेय—वाक्यमें शब्दका काम है पहचान कराना, नाता समझाना, संकेत करना, संकेत को सहारा देना और ठमक देना—बोलियों और जातियोंके मेल, विभक्ति घिसने मनचाहा अर्थ निकालने, निराले कहनेके ढंग, सुननेवालेकी समझ, कहनेवालेकी पंडिताईके ढलनपर वाक्यकी बनावटमें हेरफेर होता है : वाक्य दो ढंगके होते हैं : अटल और ढुलमुल—दो ढंगसे वाक्य कहा जाता है : कर्त्ताके ढंगपर (कर्तृ-वाच्य) और कर्मके ढंगपर (कर्मवाच्य)—दो बंधानके वाक्य होते हैं : अकेले (सरल) और मिले हुए (मिश्र)—तीन ढंगसे वाक्य चलता है : मानकर, नकारकर, पूछकर—कभी कुछ पूछनेके ढंगके वाक्य सचमुच प्रश्न होते नहीं।

§ ४०—वाक्ये वाग्व्यापारः।

[वाक्यमें ही बोल-चाल होती है।]

पहली पालीके ७० संख्यक सूत्रमें हम बता आए हैं कि ऐसे शब्दोंके मिलनेसे वाक्य बनते हैं जो वाक्य में एक दूसरेसे अपना ठीक नाता जोड़ते हुए अपना भी अर्थ समझाते चलते हैं और सबके

मेलसे निकलनेवाले अर्थको भी चमकाते चलते हैं। आपको यह जानकर कम अचरज नहीं होगा कि बच्चेसे बूढ़ेतक, अपढ़से पढ़े-लिखेतक जितने भी लोग हैं, सब वाक्यमें ही बातचीत करते हैं। जब हम किसी नटको लम्बे बाँसपर पेटके सहारे नाचते और घूमते देखते हैं तो हमारे मुँहसे अचानक निकल पड़ता है 'वाह'! इस 'वाह'में उस नटके सारे करतबका बखान तो आ ही जाता है, साथ ही उस 'वाह'में हम उसकी बड़ाई भी कर देते हैं और अपनी कमी भी दिखा देते हैं कि जो तुम कर रहे हो, वह हम से नहीं हो सकेगा। यह दूसरी बात है कि हममेंसे बहुतसे लोग अपने मनकी सब बातें खुलकर न कह सकें। कभी तो उसके लिये समय नहीं होता और कभी पूरी बात कहनेकी जानकारी और समझ नहीं होती। जो जितना ही सुलझा हुआ, बहुत लोगोंके हेल-मेलमें आया हुआ और बोलीके बहुतसे ढंगोंके ढलनका जानकार होता है, वह अपने मनकी बात ठीक-ठीक फैलाकर, समझाकर, उस बातमें आनेवाले क्यों, कैसे, कब, कहाँ, कौन, किधर, सबका डौल बैठाता हुआ अपनी बात कहता चलता है। जो अनाड़ी, कम पढ़े-लिखे, कम लोगोंसे मिलने-जुलनेवाले होते हैं, उनकी बोलीमें शब्द भी कम होते हैं और वे अपनी बात बहुत मोटे ढंगसे कहते हैं, जिनका मोटा-मोटा अर्थ लोग ज्यों-त्यों करके लगा लेते हैं।

सैन (संकेत)—

§ ४१—**संकेतादप्यर्थव्यक्तिः। [संकेतसे भी अर्थ आना जाता है।]**

हम लोग कभी-कभी हाथ, पैर, भौं या आँख मटका-चलाकर भी दूसरोंको कुछ अपने मनकी बात बता दिया करते हैं। जिन

गूँगोंको भगवानने बोली नहीं दी है। उनका तो बातचीतका सहारा ही यही है। गूँगे ही क्यों, हम आप भी जब ऐसे परदेसमें पहुँच जायँ जहाँ हमारी बोली वे न समझें और उनकी बोली हम न समझें तो हमें भी सैनसे ही काम लेना पड़ेगा।

§ ४७—सर्वत्र वाक्कार्पण्यं। [बोलनेमें लोग कंजूसी करते हैं।]

यों भी हम सभी लोग बोलनेमें बड़े कंजूस होते हैं और जहाँतक बन पड़ता है, एक-दो शब्दोंसे काम चला लेनेके फेरमें पड़े रहते हैं। इसीलिये कभी-कभी एक शब्द ही वाक्य बन जाता है। दो जनोंकी बातचीत सुनिए—

एक—चलिएगा ?

दूसरा—कहाँ ?

एक—सभामें।

दूसरा—हो आइए।

इतनी-सी बातको हम खोलकर वाक्योंमें कहें तो यों कहना होगा—

एक—क्या आप मेरे साथ वहाँ चलिएगा जहाँ मैं जा रहा हूँ ?

दूसरा—आप ऐसे किस स्थानपर जा रहे हैं जहाँ आप मुझे भी ले जाना चाहते हैं ?

एक—यहाँ काशीके बेनिया-बागमें चुनावके सम्बन्धमें कांग्रेसकी ओरसे आयोजित जो सभा होनेवाली है, उसीमें तुम्हें चलनेको कह रहा हूँ।

दूसरा—अब आप अकेले ही चले जाइए क्योंकि मेरे पास न तो समय ही है, न तो इन असत्य-प्रचारक नये कांग्रेसियोंमें मेरी श्रद्धा ही है।

ऊपर लिखे हुए इस ब्यौरेसे समझमें आ सकता है कि कैसे एक ही शब्द पूरे वाक्यका अर्थ देने लगता है। पर यह तभी होता है जब किसी बातके आगे-पीछे का ब्यौरा भी साथ जुटा हुआ हो। किसी राह-चलतेसे आप कहें—'उठाओ', तो वह आपकी ओर देखकर समझेगा कि आप सनक गए हैं। पर हाटसे कुछ मोल लेकर, उसे टोकरीमें भरकर जब आप अपने नौकरसे कहेंगे—'उठाओ', तो आप भले ही मुँह फेरकर कहें, पर नौकर समझ जायगा कि 'उठाओ' कहकर मुझे ही टोकरी उठाकर चलनेको कहा गया है। इसलिये यह समझ रखना चाहिए कि जहाँ पहलेसे कोई बँधान बँधा हुआ हो वहाँ एक शब्दसे भी काम चल जाता है, पर जहाँपर पहलेका बँधान नहीं होता, संगत नहीं होती, वहाँ पूरा ही वाक्य कहना पड़ता है। यदि आपको यह समझाना हो कि कोई औषध कैसे बनाना चाहिए तो आपको खोलकर यों कहना पड़ेगा—

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोदा, सेंधा नमक, काला और उजला जीरा, सबको बराबर-बराबर लेकर उन्हें कूटकर, कपड़छान कर लेना चाहिए और फिर उसमें उसके आठवें भागके बराबर भूनी हुई हींग पीसकर मिला देनी चाहिए। ऐसे हिंग्वाष्टक चूर्ण बनाया जाता है।

इतना ही नहीं, जब हम किसीको कुछ काम करनेके लिये भेजते तो उसे समझाते हैं—

"देखो, चौक पहुँचकर सीधे ज्ञानवापी चले जाना। वहाँ पूरबकी ओरवाली गलीमें चढ़कर बाएँ हाथ घूम जाना। वहीं काशी-करवट है। उसीके सामने पंडित शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'को पूछना और उनसे सहेजकर कह देना कि 'बहती गंगा' नामक अपने उपन्यासकी तीन प्रतियाँ झोलेमें रखकर साँझको बेढबजीके यहाँ

यह बात एक दो-चार शब्दोंमें नहीं कही जा सकती इसके लिये पूरे-पूरे वाक्य ही कहने और समझाने पड़ते हैं।

§ ४२—**विकीर्ण-सप्रत्ययोपसर्ग धातुरूप-सम्पृक्ताश्च भाषा-भेदाः। [बोलियोंकी बनावट चार ढंगकी होती हैं: अलगन्त, जुटन्त, मिलन्त, घुलन्त।]**

बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोग बताते हैं कि ये अलग-अलग मेलके शब्दोंसे बने हुए वाक्योंसे संसारकी बोलियाँ चार ढंगकी होती हैं—

१. अलगन्त या विकीर्ण (अयोगात्मक या आइसोलिटिंग) भाषाएँ; अलग-अलग बिखरे हुए शब्दोंसे बनी हुई।

२. जुटन्त या सप्रत्ययोपसर्ग (एग्ल्यूटिनेटिव) भाषाएँ; ऐसे शब्दोंसे बनी हुई, जिनके आगे, पीछे या बीचमें कुछ अर्थ समझानेवाले लटके (प्रत्यय या उपसर्ग या मध्यग) जुटे हुए हों।

३. मिलन्त या धातुरूपात्मक (इन्फ्लैक्शनल) भाषाएँ; जिनके शब्द संज्ञाओं या क्रिया-रूपोंकी विभक्तियोंसे मिले हों।

४. घुलन्त या सम्पृक्त, (इन्कौर्पोरेटिंग); जिनके सब शब्द एकमें घुलकर एक शब्दका वाक्य बनाते हों।

१—अलग बिखरे हुए शब्दोंवाली (विकीर्ण अयोगात्मक या आइसोलेटिंग)—

कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जिनके वाक्यमें सब शब्द अलग-अलग बिखरकर रहते हैं पर कौन शब्द किस अर्थके लिये कहाँ आना चाहिए यह भी उससे पहलेसे बँधा रहता है क्योंकि ऐसी बोलियोंमें मेल-जोड़ दिखानेवाले लटके (नाता बतानेवाले उपसर्ग, विभक्ति, प्रत्यय आदिकी ध्वनियाँ) नहीं होती हैं और न शब्दोंकी बनावटमें ही कोई हेरफेर होता है। वाक्योंकी ऐसी बनावट उन

बोलियोंमें होती है जिनमें एक शब्दका एक अक्षर होता है जैसे चीनी आदि एकाक्षर परिवारकी भाषाएँ। हिंद-योरोपीय बोलियोंमें अब ऐसा रंग दिखाई दे रहा है कि उनके वाक्योंके शब्द भी अलग-अलग बिखरते जा रहे हैं। संस्कृत बोलीमें राममें ही 'टा' प्रत्यय जोड़नेसे 'रामेण' बनता था पर अब राममें हमने 'सु' प्रत्यय लगाकर हिन्दीमें रामने' बना लिया है। ऐसी लगभग सभी बोलियोंमें वाक्यकी बनावटमें शब्दोंकी ठौर बँध गई है। हिंदीमें हम कहते हैं—सीता और लक्ष्मणको साथ लेकर राम वनको गए। पर संस्कृतमें हम इसे कई ढंगसे कह सकते हैं—

सीतया लक्ष्मणेन सह रामः वनं गतः।
रामः वनं लक्ष्मणेन सीतया च सह गतः।
गतः रामः वनं सह सीतया लक्ष्मणेन च।
वनं रामः सह सीतया लक्ष्मणेन च गतः।

चीनी बोलीकी एक कविताका हम ज्योंका त्यों उल्था देते हैं, जिससे यह समझनेमें असुविधा न होगी कि कैसे बिना क्रियाके ही उन्होंने अपना काम चला लिया है और अर्थ समझनेमें भी कोई झंझट नहीं होती—

सरिताके दोनों कूलोंपर वैवाहिक भोज।
समय आगमन। नौका लोप।
हृदय प्रफुल्लित। आशा मौन।
इच्छाओंका परम अदर्शन।

प्रसादजीने अपनी कामायनीमें ऐसे ही बिखरे शब्द रखकर छन्द लिखा है—

अवयवकी दृढ़ मांस-पेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्तका होता था जिनमें संचार।

यह होना इस प्रकार चाहिए था—

उस नरकी दृढ़ मांस-पेशिमें ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।

उसकी स्फीत शिराओंमें था स्वस्थ रक्तका सुख-संचार॥

अपनी हिन्दीमें तार देने के लिये तो हम भी लिख देते हैं—

वसन्तोत्सव। उपस्थिति अनिवार्य। क्षमा। रुपया आवश्यक।

फिर भी हिन्दीमें हम यह नहीं कह सकते कि "*गए लक्ष्मण सीताके राम साथ वनको*। यह हिन्दीके वाक्यकी बनावटमें ठीक नहीं समझा जायगा।

कभी कभी किसी एक शब्दपर ठमक देनेके लिये या उसमेंसे कोई नया अर्थ निकालनेके लिये वाक्यके शब्दोंमें हम अदल-बदल कर लेते हैं जैसे—

रामने आम खाया है और आम रामने खाया है।

इनमेंसे दूसरेमें यह बताया गया है कि जिस आमको आप खोज रहे हैं, वह रामने खाया है। पर हम यह नहीं कह सकते—"*खाया आम रामने*।" हाँ, कवितामें इस ढंगकी छूट हो जाती है और हम कह सकते हैं—

गए राम वनमें लक्ष्मणको सीताको ले साथ।

पर इसको भी यों नहीं कह सकते—

राम साथ सीताको लक्ष्मणको ले वनमें गए।

इससे यह समझनेमें कठिनाई न होगी कि जिस बोलीमें वाक्योंके शब्द जितने जितने बिखरते जाते हैं, उतनी ही उन शब्दोंकी ठौर वाक्यमें बँधती जाती है।

२. जुटन्त (सप्रत्ययोपसर्ग या एग्लूटिनेटिव)

कुछ बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें शब्दोंके साथ दूसरे शब्दोंसे मेल-जोड़ बतानेवाले लटके (प्रत्यय, उपसर्ग और मध्यग) ऐसे

मिले हुए रहते हैं कि उन्हें पहचाना जा सकता है। वे, न तो शब्दोंकी बनावट बिगाड़ते हैं और न अपनी बनावटमें बिगाड़ आने देते हैं। शब्दके साथ चिमटकर भी वे अलग पहचाने जा सकते हैं। इसीलिये ऐसे वाक्योंको लोग "पारदर्शी" वाक्य कहते हैं। जैसे—

परि स्थिति-तः अति-आ-हार-त्व ही अ-ज्ञान-ता है।

३. मिलन्त (धातुरूपात्मक या इन्फ्लैक्शनल)—

कुछ बोलियाँ ऐसी होती हैं जिनमें शब्दोंका आपसमें मेलजोड़ बतानेवाले लटके (विभक्ति-प्रत्यय) इस ढंगसे शब्दोंमें जाकर चिमट जाते हैं कि वे शब्दकी बनावट भी बदल देते हैं और अपनेको भी उसीमें समा लेते हैं। संस्कृतमें चतुर्थीका प्रत्यय होता है 'ङे' पर जब वह कृष्ण शब्दमें लगता है तब वह 'कृष्ण'को 'कृष्णाय' बना देता है। कहीं कहीं यह प्रत्यय अनोखे ढंगसे आ जाता है जैसे पितृ शब्दमें 'सु' (प्रथमा एक वचन) का विभक्ति-प्रत्यय मिलकर पिता बन जाता है।

४. घुलन्त (संपृक्त या इनकौर्पोरेटिंग)

कुछ ऐसी बोलियाँ भी हैं जिनके वाक्यमें आनेवाले शब्द कुछ घिस-मिटकर, एकमें घुलकर एक बड़े शब्दका रूप बना लेते हैं। ये ऐसे ढंगसे घुले होते हैं कि उन शब्दोंको अलग-अलग करके उनका ठीक मेल बैठाना झंझटका काम हो जाता है। इसीलिये इसे घुली हुई (संपृक्त) बोली कहते हैं जैसे मैक्सिकोकी बोलीमें नेवत्ल (मैं), नाकत्ल (मांस), का (खाना) मिलकर ने-नक-का (मैं *मांस खाता हूँ*) हो जाता है। इसमें नेवत्लका वत्ल, नाकत्लका कत्ल मिट गया और तीनों शब्द घुल-मिलकर ऐसे बन गए कि उन्हें ढूँढ़ना टेढ़ी खीर हो गई। '*भारतीय-योरोपीय*' शब्द से '*भारोपीय*' शब्द भी ऐसे ही घापल्यसे बनाया गया है।

वाक्योंकी बनावट—

§ ४३—**उद्देश्यविधेयात्मकं वाक्यम्। [वाक्यके दो भाग होते हैं—उद्देश्य और विधेय।]**

वाक्योंकी बनावट देखनेसे यह जान पड़ेगा कि वाक्य दो ढंगके होते हैं—एक तो वे, जिनमें सीधे कोई बात कही जाती है जैसे—'मैं काशी जा रहा हूँ।' इसमें 'मैं' काम करनेवाला है, जिसे 'उद्देश्य' कहते हैं और आगे पूरा काम है, जिसे 'विधेय' कहते हैं। पर यह बनावट भी हमारी हिन्द-योरोपीय बोलियोंमें ही है, सबमें नहीं।

इन्हींमें कुछ ऐसे वाक्य भी होते हैं जिनमें किसी बातका आगे-पीछेका जोड़-तोड़ बैठाना होता है जैसे—मैं गाँव चला गया था इसीलिये आपसे नहीं मिल सका। इसमें दो टुकड़े हैं एक अगला और एक पिछला। एकको समझने के लिये दूसरेका आना आवश्यक है। जब हम बातचीत करते हैं तो इस ढंगसे जोड़तोड़-वाले वाक्य मिलाकर रखने ही पड़ते हैं। पर यह भी सब बोलियों-में नहीं होता।

वक्ता, सम्बोध्य और भावतत्त्व—

संसार भरकी सब बोलियाँ छानबीनकर देखनेसे यह जान पड़ेगा कि जब भी कोई वाक्य बोलता है तो उसमें तीन बातें होती—हैं १. वक्ता–तत्त्व २. संबोध्य–तत्त्व ३. भाव–तत्त्व। वक्ता-तत्त्व या समझाता है बोलनेवाला कौन है और सुननेवाले से इसका क्या नाता है; संबोध्य-तत्त्व यह ठीक करता है कि सुननेवालेके लिये कैसे शब्द और किस ढंग से कहा जाय और भाव-तत्त्व निश्चय करता है परिस्थिति या कहनेकी बात।

वाक्यमें पहुँचकर शब्द क्या करता है ?—

§ ४४—**वाक्येऽभिज्ञान-सम्बन्ध-संकेताश्रय-बलवहनं शब्द-व्यापारः।**

[वाक्यमें शब्दका काम है पहचान करना, नाता समझाना, संकेत करना, संकेतको सहारा देना और ठमक देना।]

वाक्यमें पहुँचकर शब्द इतने काम करता है—

१. वस्तुओं, क्रियाओं और उनके गुणोंकी पहचान करता है।

२. वस्तुओं, क्रियाओं और गुणोंका आपसका नाता बताता है कि कौन किसके लिये क्या कहता या करता है, वह करनेवाला या वह काम, या जिसके लिये वह काम हुआ या किया गया है वह कैसा है या कब, कैसे, कोई काम हुआ।

३. नाम ठीक-ठीक न जाननेपर संकेतका काम करता है—*यह* है, *उसने यह* काम किया, *वह ऐसा* है।

४. संकेतको सहारा देता है—

(दोनों हाथ चौड़ाकर) वह *इतना* मोटा है।

(सिर हिलाकर) वह ऐसे-ऐसे करता है।

५. बल या ठमक देता है—

यही पुस्तक चाहिए। तुम *भी* आना। *केवल* तकिया ला दो।

कभी कभी बोलनेकी लोच (काकु) से भी यह काम होता है।

तो शब्द पाँच काम करता है और इन्हीं पाँच कामोंके लिये वह वाक्यमें अपनी ठौर ठीक कर लेता है।

देखा जाय तो सब बोलियोंमें वाक्य बनाने या अलग-अलग ढंगसे शब्दोंको एक बँधानमें सजानेका अपना-अपना निराला ढंग होता है, जिसे वाक्यकी बनावट (वाक्य-विन्यास या सिन्टैक्स ऑर्डर) कहते हैं। पर यह सब होते हुए भी वाक्यकी बनावटमें कभी-कभी हेरफेर हो ही जाते हैं।

§ ४५—भाषा-जातिसंयोग-विभक्तिनाश-यदृच्छार्थ-शैली-सम्बोध्यज्ञान-वक्तृपांडित्याश्रितो वाक्यरूपः।

[बोलियों और जातियोंके मेल, विभक्ति घिसने, मनचाहा अर्थ निकालने, निराला कहनेके ढंग, सुनने वालेकी समझ और कहनेवालेकी पंडिताईकी ढलनपर वाक्योंकी बनावटमें हेर-फेर होता है ।]

पिछले अध्यायमें हम समझा आए हैं कि शब्दोंमें हेर-फेर क्यों और कैसे होते हैं । यह भी हम बता चुके हैं कि शब्दोंसे ही वाक्य बनते हैं । पर यह नहीं समझना चाहिए कि वाक्योंमें किसी ढंगका कोई हेर-फेर नहीं होता । वाक्योंकी बनावटमें इतनी बातोंसे हेर-फेर होते हैं—

१. दो बोलियोंका मेल होनेसे ।
२. दो अलग-अलग रहन-सहनवाली जातियोंके मिलनेसे ।
३. विभक्तियोंके घिस जानेसे ।
४. कोई एक नया अनोखा या मनचाहा अर्थ निकालनेके लिये शब्दोंमें उलटफेर करनेसे ।
५. कहनेवालेका अपना नया ढंग होनेसे ।
६. सुननेवालेकी समझपर ढलनेसे ।
७. कहनेवालेकी पंडिताईकी ढलनपर ।

बोलियोंका मेल—

इतिहास पढ़नेसे यह जान पड़ेगा कि जब मनुष्योंके किसी एक झुण्ड, बड़े सरदार या राजाने किसी दूसरे देशको जीतकर अपना लिया हो तो वह दो काम करता है—१. अपनी बोलीके राजकाजके शब्दोंको, मनचाहे ढंगसे, जितना हो सकता है, उतना हारे हुए लोगोंपर लाद देता है और वे झख मारकर उन शब्दोंको बेबस होकर चलाते हैं । धीरे-धीरे वे शब्द इतने चल निकलते हैं कि हारे हुए लोग, पहले काममें आनेवाले सब शब्दोंको

तो भूल ही जाते हैं, साथ ही वाक्यकी बनावट भी बदल डालते हैं। हम हिन्दीमें कहते हैं—'*उसने कहा था कि मैं सन्ध्याको आऊँगा*' इसीको अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग अँग्रेज़ीके ढंगपर हिन्दीमें यों कहते हैं—'*उसने कहा था कि वह सन्ध्याको आवेगा*' (*ही सेड दैट ही उड कम इन दि ईविनिंग*')। हिन्दीमें हम कहते हैं—*तात्पर्य यह है कि मनुष्य. मनुष्यताके कारण मनुष्य है*। किन्तु उर्दूवाले कहेंगे—*ग़र्ज यह कि बसबब इन्सानियत. आदम इनसान हैं*। फ़ारसीमें कहेंगे—'*ग़र्ज़ ईं कि आदम बसबबे इन्सानियत इन्साँ अस्त*'। इसीको गुजराती सज्जन हिन्दीमें कहेंगे—*मनुष्यता है तो मनुष्य मनुष्य है, ऐसा मेरा तात्पर्य है*।

ऊपर दिए हुए इन वाक्योंको पढ़कर यह समझमें आ जायगा कि जब बोलियोंका मेल होता है तब वाक्यकी बनावटमें तीन ढंगसे हेरफेर होते हैं—

क : वाक्यमें शब्दोंकी ठौर बदल जाती है।

ख : अपनी बोलीके शब्दोंके बदले दूसरी बोलीके शब्द आने लगते हैं।

ग : वाक्यमें दूसरी बोलीके ढंगपर बनावट बदल जाती है और दो वाक्योंमें आगा-पीछा हो जाता है।

आज जिसे हम उर्दू कहते हैं और जिसे लादनेके लिये कुछ लोग अब भी धरती-आकाश एक किए हुए हैं वह इसी ढंगसे बनी कि लोगोंने अपनी बोलीके अच्छे चलते शब्दोंको धकियाकर उनके बदले अरबी और फ़ारसीके शब्द ला ठूँसे। अँग्रेज़ी बोलनेवाले लोग भी अँग्रेज़ीका पुट देकर कैसे बोलाकी बनावट बिगाड़ते हैं, इसका साँचा हम पहले दे आए हैं। हमारे कुछ लेखक जब अंग्रेज़ीकी पोथियोंका उल्था करते हैं, तो वे हिन्दीके वाक्यकी बनावटको ऐसे

कुढंगसे मरोड़ते हैं कि वह न तीतर रह जाता है न बटेर। अंग्रेजीका एक वाक्य लीजिए—

पण्डित मदनमोहन मालवीय, दि ब्रैह्मन औफ़ हाइ इन्टेलेक्चुअल गिफ़्ट, क्रिएटेड दि ग्रेट बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी।

इसका उल्था एक भलेमानुसने किया है—

पण्डित मदन मोहन मालवीय, जो अत्यन्त उच्च बौद्धिक शक्ति-समन्वित ब्राह्मण थे, ने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीकी रचना की।

वाक्यकी यह बनावट चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि मैं हिन्दीका वाक्य नहीं हूँ। हिन्दीमें इसे लिखना होता तो यही वाक्य यों लिखा जाता—

अत्यन्त बुद्धि-वैभवशाली ब्राह्मण, पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका निर्माण किया।

कहनेका तात्पर्य यही है कि दो बोलियोंके मेलसे भी वाक्यकी बनावटमें हेरफेर हो जाता है।

दो जातियोंका मेल—

जब दो अलग रहन-सहन और पानी-बयारमें पली हुई जातियाँ मिलती है तब भी इसी ढंगसे वाक्योंकी बनावटमें हेर-फेर हो जाता है और वे एक दूसरेसे बहुत-कुछ लेती-देती रहती हैं। पीछे पिडगिन अंग्रेजीके कुछ थोड़ेसे साँचे हम समझा भी आए हैं। पोलिनेशिया, (*समवा, तहिती* आदि) में चन्दनी अंग्रेजी (*बेचे ला मेयर या सैंडल-वुड इंगलिश*) नामकी एक बोली बोली जाती है जहाँ अँग्रेजीकी क्रियाओंमें अम् लगा दिया जाता है। जैसे—ईट (*खाना*) का ईटम्, कौल (*बुलाना*) का कौलम्, कैच (*पकड़ना*) का कैचम् बन जाता है। यदि वहाँ कहना हो कि मेरे पेटमें पीड़ा है तो कहेंगे—

बैली बिलांग मीं वाक् अबाउट टू मच।

"पेट मेरा टहलता है इधर-उधर बहुत अधिक।"

इस ढंगसे दो जातियोंके मिलनेपर भी वाक्योंकी बनावटसे उन्हीं तीन ढंगोंसे हेरफेर होता है जो दो बोलियोंके मेलके सम्बन्ध ऊपर बताया गया है।

विभक्तियोंका घिसना—

शब्दोंकी जाँच-परख करते हुए हम बता चुके हैं कि शब्दोंमें आपसका मेलजोल बतानेके लिये जो मेलजोड़ (*सम्बन्ध-तत्त्व*) लगता है वह धीरे-धीरे घिस जाता है और शब्दोंका आपसी नाता ठीक-ठीक समझनेमें बड़ी उलझन हो जाती है। उसे समझानेके लिये कुछ ऐसे नये-नये शब्द जोड़ने पड़ते हैं जिससे उनका आपसी मेल ठीक समझमें आ सके। ऐसा होनेसे बोलियाँ बिखर जाती हैं और वाक्यके शब्द अलग-अलग हो जाते हैं; जैसे संस्कृतमें हम कहते हैं–*अयं मोहन-प्रासादः*। इसे हिन्दीमें कहेंगे–'*यह मोहनका भवन है*'। इसीका संस्कृतमें तोड़कर अनुवाद होगा—'*अयं मोहनस्य प्रासादः वर्त्तते*'। संस्कृतमें *वर्त्तते*, *अस्ति या विद्यते*के बिना भी काम चल सकता है पर हिन्दीमें हम 'है' के बिना वाक्य पूरा नहीं समझते। इतना ही नहीं, *मोहनस्य*का *स्य* न जाने कब और कैसे घिसकर निकल गया जो अब भी सिन्धीके मोहनजो दड़ोके जोमें मिलता है पर इधर न मिल पानेसे, मोहन और भवनका नाता समझानेके लिये उसके बीच 'का' लगाना पड़ गया।

मनचाहा अर्थ समझानेके लिये—

कभी-कभी जब हम किसी एक वाक्यमें किसी एक शब्दको सुननेवालेके मनपर जमाना चाहते हैं और उसे यह समझाना चाहते हैं कि वह उस शब्दको ध्यानसे सुनकर ठीक अर्थ समझे

तब भी हम वाक्यके शब्दोंमें उलटफेर कर देते हैं। नीचे दिए हुए वाक्योंको पढ़िए—

१—आप ले जायँगे पुस्तक ?

क्या आप पुस्तक ले जायँगे ?

२—पत्नीके प्राणोंके साथ ही उसका भाग्य उड़ गया।

पत्नीके प्राणोंके साथ ही उड़ गया उसका भाग्य।

उसका भाग्य पत्नीके प्राणोंके साथ ही उड़ गया।

३—नौकर है तेरे बापका ?

क्या तेरे बापका नौकर है ?

४—औषधि बनेगी कैसे ?

औषधि कैसे बनेगी ?

५—पटक दूँगा उठाकर तुझे।

मैं तुझे उठाकर पटक दूँगा।

६—मेरा यह घोड़ा है।

मेरा घोड़ा यह है।

यह मेरा घोड़ा है।

यह है मेरा घोड़ा।

७—देखा मैंने वह चित्र, जिसकी रेखाओंमें झलक रहा था रूप मेरे प्रियका।

ऊपर दिए हुए वाक्योंको पढ़नेसे ही यह समझमें आ सकता है कि कहनेवालोंने यह उलटफेर क्यों किया है और इन वाक्योंके साथ जो उनका सीधा रूप दिया गया है, उनमें वह बात क्यों नहीं आती।

कहनेका अपना ढंग—

पिछली पालीके § ५७ सूत्रमें हम बता आए हैं कि कुछ लोग अपने-अपने ढंगसे वाक्य बनाते हैं। कोई तो अच्छे चुने हुए

शब्दोंसे लादकर लिखते या बोलते हैं, कोई सीधे न कहकर बहुत घुमा-फिराकर कहते हैं, कोई अपनी बातको बड़े लोगोंकी बातके सहारे समझाते चलते हैं, कोई किसी दूसरेपर बात ढालकर कहते हैं, कोई हँसोड़ लिखनेवाला या बोलनेवाला होता है तो वह इस ढंगसे वाक्य बोलता या लिखता या बोलता है कि जी खिल उठे, कोई ऐसे छींटे कसता है कि सुननेवालेका मन आरपार बिंध जाय, कोई इतनी गहराईके साथ बात कहता है कि छोटी सी बातमेंसे बहुत बड़ा अर्थ निकल आवे, कोई जोड़-तोड़के वाक्य लिखता या बोलता है और कोई ऐसे बोलता है जैसे हजार-पाँच सौकी भीड़में खड़ा उन्हें समझा रहा हो। ये सब लिखने-बोलनेके ढंग या तो बहुत पढ़े-लिखे लोगोंमें मिलते हैं या लिखने-बोलनेवालोंका मन ऐसा बन जाता है कि वे उसी ढंगसे लिखते-बोलते रहते हैं और आप लाखके बीच पहचान सकते हैं कि वह ढंग उन्हींका हो सकता है दूसरेका नहीं।

सुननेवालेकी समझपर वाक्यका ढलाव—

पिछली पालीके § ३१ वें सूत्रमें हम समझा आए हैं कि सुनने-वालेके साथ-साथ बोलनेवालेकी बोली ढल जाती है। सुननेवाला अच्छा पढ़ा-लिखा हुआ तो हमारी बोलीके वाक्य अपने-आप कुछ मँजे हुए, निखरे हुए ढंगसे बनेंगे। यदि आपके किसी मित्रने कोई पुस्तक लाकर दी हो तो आप कहेंगे—

धन्यवाद है, आपने बड़ा कष्ट किया।

यदि आपके नौकरने कोई पुस्तक कहींसे लाकर दी हो तो आप कहेंगे—

अच्छा ले आए? रख दो।

ये दोनों वाक्य ठीक एक ही कामके लिये कहे गए हैं। आपके

किसी साथीने कहींसे कोई पोथी लाकर दी है और वही पोथी आपका नौकर भी लाया है। पर पोथी पानेपर आप दोनों के लिये दो ढंगके वाक्य काममें लाते हैं। इस ढंगसे हम जो कुछ कहते हैं वह सुननेवालेकी समझ और उसके पदकी ढालपर ढलता है।

कहनेवालेकी पंडिताई—

बहुतसे थोड़े पढ़े-लिखे ऐसे लोग भी होते हैं जो जान-बूझकर पंडिताई छाटने लगते हैं और इस पंडिताई छाटनेमें वे वाक्यको बेढंगा बना देते हैं—

रावण जो है सो, सहस्रों वर्षोंतक ब्रह्मासे वर-प्राप्ति करनेके लिये प्रयत्नवान् होता हुआ तपस्या-निरत रहा।

कभी-कभी यह पंडिताई मूर्खता भी बताने लगती है जैसे—

छात्रों (छात्रों)का समूह गुरू (गुरु)जोकी अतिकृष्ट (उत्कृष्ट) वाणी सुनकर गद्गदायमान होता भया (प्रसन्न हुआ)।

इस ब्यौरेसे जाना जा सकता है कि वाक्यकी बनावटमें बहुत बातोंसे हेरफेर हो जाता है। संसारकी बोलियाँ भी इतनी हैं और उनकी बनावटोंके ढंग भी इतने हैं कि सबकी छानबीन करना टेढ़ी खीर है। जबतक कोई ऐसा माईका लाल न जन्मे जो संसारकी सब बोलियोंको धड़ल्लेसे बोल सके और उनका भेद जान सके तबतक वाक्योंकी बनावटमें होनेवाले हेरफेरका पूरा ब्यौरा देना हँसी-ठट्ठा नहीं है। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो कही ही जा सकती हैं।

स्थिर और अस्थिर वाक्य—

§ ४५—**स्थिरास्थिरौ वाक्यौ। [वाक्य दो ढंगके होते हैं: अटल और डुलमुल।]**

वाक्योंकी जाँच-परख करनेपर यह जान पड़ेगा कि संसार भरकी बोलियोंमें दो ढंगके वाक्य मिलते हैं—एक बँधे हुए या अटल (स्थिर)

और दूसरे अदल-बदल सकनेवाले या ढुलमुल (अस्थिर) स्थिर। वाक्य वे होते हैं जो काममें आते-आते अपना रूप बना लेते हैं और उसी रूपमें चल निकलते हैं। ऐसे ही वाक्योंमें मुहावरे और कहावतें आती हैं। ये भी दो ढंगकी होती हैं—एक तो शब्द-रूढ़ और दूसरी भाव-रूढ़। शब्द-रूढ़में तो शब्द ही इस ढंगसे लगे और सजे रहते हैं कि उनमें हेरफेर नहीं किया जा सकता जैसे '*उसकी छातीपर साँप लोटने लगे*'के बदले हम यह नहीं कह सकते कि '*उसके वक्षःस्थलपर सर्प लुंठित होने लगे*।' ऐसे ही '*आँख मारना*'के बदले हम '*अक्षिताडन*' नहीं कह सकते। ये सब वाक्य कुछ ठेठ शब्दोंमें बँधे रहते हैं। दूसरे प्रकारके भावरूढ़ या कोई एक निराला अर्थ बतानेवाले ऐसे बँधे हुए वाक्य होते हैं जिनके वाक्यकी बनावट तो नहीं बदली जाती किंतु उसके शब्द बदल जाते हैं जैसे '*ज़मीन आसमानका फ़र्क़ है*' के बदले हम कह सकते हैं—'*आकाश पातालका अन्तर है*'।

अस्थिर वाक्य कुछ भाव-गतिक होते हैं जो कहनेवाले (वक्ता), सुननेवाले (संबोध्य) और अवसर (परिस्थिति) की ढलनपर बहुत ढंगोंसे ढल जाते हैं। इसका पूरा ब्योरा हम पिछली पालीमें पृष्ठ १५९ पर बोलचालकी बोलीमें और सूत्र § ५८ में विस्तार से समझा आए हैं। ये अस्थिर वाक्य या तो बोलने-सुननेवालेकी समझकी ढलनपर शब्दोंमें हेरफेर कर लेते हैं या बनावटमें ही कुछ अदला-बदली कर लेते हैं। हम ऊपर बता आए हैं कि मनुष्यकी जो अपनी बोली होती है उसकी बनावटकी ढलनपर वह बाहरकी बोलियोंको अपनाता है। पर कभी-कभी बाहरकी बोलियोंका ऐसा भूत चढ़ता है कि मनुष्यकी अपनी बोली ही दूसरेका रंग पकड़ने लगती है। बहुत समझाने-बुझानेपर भी 'उत्तरप्रदेशके पूर्वी लोग—'*रामने दशरथसे कहा*' न कहकर '*राम*

दशरथसे कहे' ही बोलते हैं। इस ढंगके बहुतसे हेरफेर वाक्योंमें होते रहते हैं।

वाक्यका सिद्धान्त—

हम ऊपर बता आए हैं कि संसारकी सब भाषाओंमें वाक्य बनानेका एक सिद्धान्त बराबर माना गया है और वह है वाक्यमें शब्दोंका एक ढंगसे बैठाया जाना। चाहे किसी भाषामें शब्दोंका आपसी नाता दिखानेके लिये उनमें विभक्ति लगती हो या नये शब्द जुटते हों या एक अक्षरवाली बोलियाँ हों पर सबमें अक्षरोंके सजानेका ढंग होता ही है जिसे वाक्य-रूप (सिन्टेक्स) कहते हैं। जब हम कुछ पूछते हैं, खीझते हैं, रीझते हैं, घबराहटमें बोलते हैं, ताना देते हैं या बहुत दुखी होते हैं तब यह शब्दोंकी सजावट भी कभी-कभी उलट जाती है। इसका ब्यौरा हम ऊपर दे आए हैं।

§ ४५—**कर्त्तृकर्मवाच्यौ। [दो ढंगसे वाक्य कहा जाता है : कर्त्ताके ढङ्गपर, कर्मके ढङ्गपर।]**

सीधे-सीधे देखा जाय तो दो ढंगसे वाक्य बनते हैं—एकमें कर्त्ताका सीधा कोई काम दिखाया जाता है (कर्तृवाच्य), दूसरेमें कर्म या जिसपर काम किया जाता है उसे घुमाकर वाक्य बनाया जाता है (कर्मवाच्य)।

रामने रावणको मारा। (कर्तृवाच्य)

रामके द्वारा रावण मारा गया। (कर्मवाच्य)

पर ये साँचे भी सब बोलियोंमें नहीं होते। सब बोलियोंके वाक्योंको जाँचनेपर यह जान पड़ेगा कि वाक्य दो ढंगके होते हैं—

अकेले और मिले हुए वाक्य—

§ ४८—**मिश्रामिश्रौ। [दो बँधानके वाक्य होते हैं: अकेले और मिले हुए।]**

१. सरल या अकेले (अमिश्र) वाक्यमें एक क्रिया होती है जैसे—

मैं पाठशाला जा रहा हूँ।

२. मिले हुए वाक्य वे होते हैं जिनमें कई वाक्य मिले हुए होते हैं जैसे—

"मैं पाठशाला जा तो रहा हूँ पर वहाँसे शीघ्र ही चला आऊँगा क्योंकि मेरे घर आज मेरे छोटे भाईका अन्नप्राशन होनेवाला है जिसमें बाहरसे बहुतसे ऐसे लोग आनेवाले हैं जिनके स्वागत-सत्कारके लिये मेरा घरपर रहना आवश्यक है।"

वाक्योंके प्रकार—

§ ४९—**स्वीकारास्वीकारप्रश्नात्मकाः।**

[तीन ढंगसे वाक्य चलता है: मानकर, नकारकर, पूछकर।]

मोटे ढंगसे देखा जाय तो वाक्य तीन साँचोंके मिलेंगे—

१. जिसमें कोई बात मानकर कही या बताई जाय जैसे—

यह अच्छा लड़का है।

२. जिसमें किसी बातकी नाहीं की हो जैसे—

यह लड़का अच्छा नहीं है।

३. जिसमें कुछ पूछा जाय जैसे—

क्या यह अच्छा लड़का है? या

यह लड़का कैसा है ?

या, क्या यह लड़का अच्छा नहीं है ?

जिन वाक्योंमें कोई बात कही जाती है वे भी कई ढंगके होते हैं—

१. तुले हुए, जैसे—वे पढ़ते भी हैं सोते भी हैं।

२. जिसमें कोई ऐंच लगी हो, जैसे—

यदि वे आवेंगे तो मैं भी आऊँगा।

वह इतना दुर्बल है कि चल-फिर नहीं सकता।

वह इतना चतुर नहीं है जितना तुम्हारा पुत्र।

जो अच्छे फल हों, वही मुझे देना।

रामके यहाँ आते ही मैं चला आऊँगा।

यदि वह यह काम निपटा सके तो ठहर सकता है।

यद्यपि वह धनी नहीं है, फिर भी सुखी है।

जबतक मैं न आऊँ, तबतक यहाँसे मत जाना।

३. जिनमें एक ढंगकी दो बातें दो वाक्योंमें कही गई हों, जैसे—

वह धूर्त ही नहीं, नीच भी है।

४. जिनमें किसीको कुछ काम करनेके लिये कहा जाय, जैसे—

लोटा उठा लाओ।

कृपया जल दे दीजिए।

संध्यातक यह काम हो जाना चाहिए।

५. जिनमें किसी बातके होनेमें अड़चन और डर बताया जाय जैसे—

कहीं ऐसा न हो कि वह मार्ग भूल जाय (या भूल गया हो)

६. जिनमें कुछ मनाया जाता है, जैसे—

भगवान करे वह फले फूले या उसका भला हो।

७. जिसमें कोई कहानी या ब्यौरा दिया जाय। कहानियाँ और वर्णन सब इसी ढंगके वाक्योंमें लिखे जाते हैं।

पूछे जानेवाले प्रश्न चार ढंगके होते हैं—

१. जिनमें किसीसे यह पूछा जाय कि वह अमुक काम करेगा या नहीं, जैसे—

क्या तुम काशी जा सकते हो?

क्या मेरे साथ काशी चलोगे?

२. जिनमें कोई बात जाननेके लिये पूछा जाता है, जैसे—

ईश्वर किसे कहते हैं?

वृक्ष कैसे उगते हैं?

३. जिनमें प्रश्नके रूपमें प्रार्थना की जाती है, जैसे—

क्या आप कृपा कर बता सकेंगे कि उनका घर कहाँ है?

४. जिनमें प्रश्नके रूपमें आज्ञा दी जाती है जैसे—

बताओ मेरी घड़ी कहाँ है?

प्रश्नाभास—

§ ५०—**प्रश्नाभासाश्च।**

[कभी कुछ पूछनेके ढंगके वाक्य सचमुच प्रश्न होते नहीं।]

जिन वाक्योंमें प्रश्न पूछे जाते हैं वे भी एक तो उस ढंगके होते हैं जिनका ब्यौरा ऊपर दिया गया है। पर कभी-कभी ऐसे भी ढंगसे वाक्य बनाए जाते हैं जो देखनेमें प्रश्न जान पड़ते हैं पर सचमुच वे प्रश्न नहीं होते। ऐसे प्रश्नोंको भाषण-प्रश्न (रहटौरिकल क्वैश्चन्स) कहते हैं जैसे—

क्या आपने गोस्वामीजीका रामचरितमानस पढ़ा है? क्या आपने राम और भरतके त्यागकी कथाएँ सुनी हैं? क्या आपने

सुमित्राके तेज और सीताके पातिव्रत्यका वर्णन सुना है? यदि नहीं तो आप किस मुँहसे कहते हैं कि आप भारतवासी हैं?

ये सब प्रश्न देखने में तो ऐसे जान पड़ते हैं मानो पूछे जा रहे हों, किंतु ये पूछे नहीं जाते, कहे जाते हैं।

शब्द-वाक्य—

सच पूछिए तो हम सभी अपने मनकी सब बात वाक्योंमें कहना चाहते हैं पर उन बातोंका कुछ ऐसा मेल बाँध लेते हैं कि पूरा वाक्य कहनेके बदले एक शब्द ही पूरे वाक्यके बदले काम कर जाता है। इसीलिये आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि शब्द भी वाक्य हो सकता है। किसी न्यौतेमें पंगतके बीच बैठकर आप 'पानी' कहकर पुकारिए तो परोसनेवाले समझ जायँगे कि इन्हें पानी चाहिए, ये कह रहे हैं कि मैं पानी चाहता हूँ। बात-चीतके प्रसंगमें तो वाक्यकी ठौरपर एक-एक शब्द ठीक बैठ ही जाता है। इसका ब्यौरा हम पीछे दे चुके हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—सब लोग वाक्यमें ही बोलते हैं।

२—सैन या संकेतसे भी मनकी बात बताई और समझी जा सकती है।

३—संसारमें चार ढंगकी बोलियाँ हैं—अलगन्त (विकीर्ण या आइसोलेटिंग), जुटन्त (सप्रत्यत्योपसर्ग या ऐग्लूटिनेटिव), मिलन्त (धातुरूपात्मक या इन्फ्लैक्शनल) और घुलन्त (सम्पृक्त या इन्कौर्पोरैटिंग)।

४—वाक्यके दो भाग होते हैं—उद्देश्य और विधेय।

५—वाक्यमें शब्दका काम है व्यक्तियों तथा वस्तुओं आदिकी पहचान कराना, नाता समझाना, संकेत करना, संकेतको सहारा देना और किसी वस्तुके नाम या किसी कामपर ठमक या बल देना।

६—वाक्यकी बनावटमें इतनी बातोंसे हेर-फेर होता है—बोलियों और जातियोंके मेलसे, विभक्ति घिसनेसे, मनचाहा अर्थ निकालनेसे, कहनेके निराले ढंगसे, सुननेवालेकी समझपर ढलनेसे, कहनेवालेकी पंडिताईकी ढलनपर।

७—वाक्य दो ढंगके होते हैं—अटल (स्थिर) और ढुलमुल (अस्थिर)।

८—दो ढंगसे वाक्य कहा जाता है—कर्त्ताके ढंगपर (कर्तृवाच्य) और कर्मके ढंगपर (कर्मवाच्य)।

९—दो बँधानके वाक्य होते हैं—अकेले (सरल) और मिले हुए (मिश्र)।

१०—तीन ढंगसे वाक्य चलता है—मानकर (स्वीकारात्मक), नकारकर (नकारात्मक), पूछकर (प्रश्नात्मक)।

११—कभी कुछ वाक्य, पूछनेके ढंगके या प्रश्न जैसे जान तो पड़ते हैं पर वे सचमुच प्रश्न होते नहीं।

७

अर्थ क्या और कैसे होते हैं ?

अर्थकी पहचान

सङ्केतसे ही अर्थ जाना जाता है—अर्थकी छानबीनको तात्पर्य-परीक्षा ही कहना चाहिए—जो इन्द्रियसे जाना जाय वही सङ्केत है, इसलिये बोली भी सङ्केत है—सङ्केतसे ही अर्थ निकलता है—कोष, शास्त्र और बड़े-बूढ़ोंके बतानेसे भी अर्थ जाने जाते हैं—समझे हुए अर्थ तीन ढंगके होते हैं : सच्चे, झूठे और सन्देह-भरे—अर्थ लगानेमें बुद्धिका काम पड़ता है—बोलनेवाले, सुननेवाले और समझनेवाले तीनोंके अर्थ जाननेके ढंग अलग-अलग हो सकते हैं—हम भी अपने मनकी बात दूसरोंको सङ्केतसे ही समझाते हैं—वाक्यमें ही अर्थ होता है—संकेतसे निकलनेवाला अर्थ बुद्धिसे समझा जाता है, सच्चा, झूठा, सन्देह-भरा और बदलता रहनेवाला होता है और बोलने, सुनने और समझनेवालोंकी समझपर ढलता रहता है।

§ ५१—संकेतोह्यर्थबोधकः। [संकेतसे ही अर्थ जाना जाता है।]

सी० के० औग्डेन और आइ०ए० रिचार्ड्सने 'अर्थ' का अर्थ समझाते हुए कहा है कि जिन बहुतसी परिस्थितियोंमें कोई बात (उक्ति) काममें लाई जानेपर सदा एकसे लक्षण दिखावे और जिन परिस्थितियोंमें वह बात (उक्ति) न कही जाय उनमें वे लक्षण दिखाई न पड़ें तो उन लक्षणोंका जोड़ ही अर्थ

कहलाता है। पहली पालीके सूत्र § ७५ में हम समझा आए हैं कि किसी बातसे जो समझा जाय उसे 'अर्थ' कहते हैं (अर्थों भावप्रत्ययः)। 'किसी बातसे' यहाँ 'कुछ होना' समझना चाहिए जैसे, यदि कुछ दिखाई पड़ जाय, सुनाई पड़ जाय, पढ़नेमें आ जाय या मनमें कोई बात उठ खड़ी हो या छूनेसे, सूँघनेसे कुछ जान लिया जाय या किसी शब्द या वाक्यको सुनकर कुछ समझ लिया जाय या पूरी पोथी पढ़कर या किसीकी लम्बी-चौड़ी पूरी बात सुनकर कोई बात मनमें बैठ जाय तो उस सब समझी हुई बातको अर्थ ही कहते हैं। इससे यह भी समझमें आ जायगा कि संकेत (देखी, सुनी, पढ़ी, छुई, सूँघी, सोची वस्तु या बात) से ही हम कुछ समझते या अर्थ निकालते हैं। यह संकेत क्या और कैसा होता है, कैसे अर्थ बताता या कोई बात समझाता है, इसे पहले जान लेना चाहिए।

संकेत (साइन्स Signs)

संकेतोंका सिद्धान्त—

संकेतोंका सिद्धान्त वह बँधान (व्यवस्था) है (जिसे सीमेशियोलौजी, सेमियोटिक, सीमेन्टिक्स, सिग्निफ़िक्स, सीमेटोलौजी और थियरी ऑफ़ साइन्स भी कहते हैं), जिससे सब ढंगोंके संकेतोंसे निकलनेवाले काम (अर्थ) की पहचान, जाँच-पड़ताल और छानबीन की जाती है और जिसके भीतर बोलीके संकेत, बोलीके बाहरके संकेत, मनुष्यके, पशुके या अपने-आप होनेवाले या पहलेसे चले आनेवाले सब प्रकारके संकेतोंसे हो उठनेवाले सब कामोंका ब्यौरा आ जाता है। यहाँ इस बँधानको हम संकेतकी छानबीन या 'सेमियोटिक' ही कहेंगे। क्योंकि

सीमेन्टिक्स या बोलीके अर्थकी छानबीन तो सेमियोटिकका ही एक छोटा-सा कोना है।

सेमियोटिक या संकेत-विज्ञानका अर्थ—

सेमियोटिक शब्द यूनानी वैद्योंके यहाँ रोगोंकी पहचानके लिये और स्टोईय (समवादी) दर्शनमें तर्क और भाषण-शास्त्रके सिद्धान्तके लिये काममें आता था। पर चार्ल्स पियर्सने इस शब्दको संकेत पढ़ने-जाननेकी सब बातें समझानेके अर्थमें लिया है। योरपमें स्टोइसिज्म (उदासीनतावाद या सुख-दुःखकी चिन्ता न करने का मत), ईपिक्यूरियनिज्म (सुखवाद) और स्केप्टिसिज्म (संदेहवाद या सत्य और ईश्वरके होनेमें संदेह करनेवाले) नामके जो बहुतसे पंथ चले उन्होंने अपने दार्शनिक वाद-विवाद इसी बात पर चलाए कि संकेतोंके अर्थ कितने और कहाँतक हैं। आगे चलकर तर्क, व्याकरण और भाषण-शास्त्र भी संकेतके अर्थकी छानबीन (साइन्सिया सर्मोचिनालिस या सेमियोटिक डिसिप्लिन) के भीतर ही आ गए। योरप को छोड़कर चीन और भारतमें इसपर बहुत कुछ सोचा-विचारा और लिखा-पढ़ा जा चुका था। अब तो पशुओंका रहन-सहन जाँचने-परखनेवाले लोग, मनोविज्ञानके सहारे रोग अच्छा करनेवाले लोग, बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोग, समाजकी जाँच-परख करनेवाले लोग, मनुष्योंकी उपज, बढ़ाव और रहन-सहनकी परख करनेवाले लोग, तर्क करनेवाले लोग और प्रयोजनवादी (प्रेग्मेटिस्ट) लोग भी अब संकेतोंकी जाँच-परख करते जा रहे हैं। सी० के० औग्डेन और आई०ए० रिचार्ड्सने तो इसमें सबसे बढ़कर काम किया है और आजकल जो विज्ञानोंको एक करनेकी धूम (युनिटी ऑफ़ सायन्स मूवमेन्ट) मची है उसका तो सारा ढाँचा ही इन संकेतोंकी जाँच-परखपर खड़ा हुआ है।

संकेत क्या काम करता है?—

जब हम कहते हैं कि संकेत यह करता है तो समझना चाहिए कि वह कोई ऐसा काम करता है जिसमें कोई 'क' नामकी वस्तु या बात किसी दूसरी 'ख' नामकी वस्तु या बातको यह कहती है कि वह 'ग' नामकी किसी तीसरी वस्तु या बातके ब्यौरेको 'क' नामकी वस्तु या बातसे उसपर प्रभाव डालकर पा ले। इसे इस ढंगसे समझिए कि कोई एक आदमी ऐसी चीठी पढ़ रहा है जिसमें चीनका ब्यौरा दिया हुआ है। अब इसमें संकेतका जो काम होता है उसे हम यों समझा सकते हैं कि चीठी 'क' है, अर्थ लगानेवाला 'ख' है, चीनका ब्यौरा 'ग' है जिसे वह पढ़ता है और जिसमें लिखे हुए संकेतोंसे वह अर्थ निकालता है। इसमें 'ख' इन्टरप्रेटर या अर्थ लगानेवाला कहलाता है। 'क' या चीठी ही संकेत या 'साइन' कहलाती है और 'ग' या चीनका ब्यौरा सिग्नीफ़िकाटा या संकेतका विषय कहलाता है। इसमें संकेत ही अपने संकेत-विषयको बतलाता है। जब कभी यह संकेत किया हुआ विषय सच्चा होता है अर्थात् उसे संकेत करने या बतानेकी आवश्यकता नहीं होती तब वह संकेतका 'डिनोटेटम' या संकेत-विषय कहलाता है क्योंकि कोई भी संकेत बिना निर्देशके ही अपना अर्थ बता देता है जैसे—*कैन्तोर या किन्नर* (आधा मनुष्य आधा घोड़ा) शब्द।

संकेतके ढंग—

इस संकेतका अर्थ बतानेके काममें बहुत ढंगके संकेत पाए जाते हैं जिनमेंसे १. एक है बतानेवाला (डेजिग्नेटर या निर्देशक), जो अर्थ बतानेवालेको किसी वस्तुके लक्षण या पहचानोंका संकेत करता है, उसके गुणोंका नहीं। २. दूसरा है समझानेवाला

(अभिव्यंजक या एक्सप्रेसर या एक्सप्रेसिव साइन), जो अर्थ बतानेवालेको किसी उस वस्तुकी विशेषता बताता है जिस वस्तुको वह पहलेसे ही किसी दूसरे ढंगसे जाने हुए है। ३. तीसरा उकसानेवाला (प्रेरक, मोटिवेटर या मोटिवेशनल साइन) संकेत वह होता है जो अर्थ बतानेवालेको ऐसे कामका संकेत करता है जिसकी विशेषता बताई जा चुकी है और यह चाहता है कि अर्थ बतानेवाला उसपर कुछ करे। ४. चौथा रूप-संकेत (फ़ौर्मोर या फ़ौर्मेटिव साइन) वह है जो अर्थ लगानेवालेको इस बातके लिये सहारा दे कि वह दूसरे संकेतोंसे समझाए हुए संकेत-विषयोंके बीचका नाता ठीक कर दे।

इसे हम यों समझा सकते हैं 'हरा' शब्द निर्देशक (डेज़िग्नेटर) है क्योंकि वह गुण बताता है। 'आह' शब्द अभिव्यंजक (एक्सप्रेसर) है क्योंकि वह मनका दुःख जतलाता है। 'डटे रहो' प्रेरक (मोटिवेटर) है क्योंकि वह कुछ काम करनेके लिये उकसाता है और 'प'का अर्थ है (प या क)' वाक्यमें आए हुए कोठे (ब्रैकेट) ही रूप-संकेत (फ़ौर्मोर्स) हैं। इन चारों ढंगोंके संकेतोंमेंसे एक-एकमें उससे पहलेवाला संकेत तो मिला हुआ है पर पीछेका नहीं, जैसे, अभिव्यंजक संकेतके बिना तो निर्देशक संकेत हो सकते हैं पर निर्देशक संकेतके बिना अभिव्यंजक नहीं हो सकते।

संकेतके इन चार ढंगोंके ही और भेद—

ऊपर संकेतके जो चार ढंग बताए गए हैं इनके और भी छोटे-छोटे भेद किए जा सकते हैं—डेज़िग्नेटर या निर्देशकके भीतर ही सूचक या आइडेन्टीफ़ायर रहते हैं जैसे—वह, यह, रामचन्द्र आदि। दूसरे होते हैं निराली पहचान बतानेवाले या विशेषता-सूचक (कैरेक्टराइज़र्स) जैसे—'मनुष्य, घोड़ा, बृहत्तम,

दौड़ता है' आदि। तीसरे होते हैं विधेयक (स्टेटर्स) जैसे—'सौक्रेटीज़से क्रीटो बड़ा था।'

अलग ढंगकी बातोंके लिये अलग संकेत—

हम जिन बहुतसी बातोंपर कुछ सोचते हैं या जिनपर आपसमें बातचीत करते हैं, उन बातोंके भी कुछ अपने निराले, अलग-अलग संकेतके ढंग होते हैं जैसे—विज्ञानपर विचार करनेके अलग, सुन्दरतापर विचार करनेके अलग और धर्मपर विचार करनेके अलग। इन सबपर हमें कुछ कहना-सुनना होता है तो उनमें हम उसी ढंगके संकेत काममें लाते हैं जो उन्हें समझानेमें ठीक-ठीक काममें आ सकें जैसे—विज्ञानपर बातचीत करनेके लिये निर्देशक संकेत सबसे आगे होते हैं। रूप-संकेत उन्हें सहारा देते हैं और ये दोनों ढंगके संकेत अभिव्यंजक और प्रेरक संकेतोंको ठीक पंथपर चलाते हैं पर साथ-साथ यह भी पहलेसे ठीक हो जाना चाहिए कि निर्देशक संकेत (स्टेटर्स या विधेयक) सच्चे हों।

संकेतोंसे क्या काम निकल सकता है?

संकेतों के इन ढंगों या बातचीत (डिस्कोर्स) के बहुतसे रूपोंके साथ-साथ सेमियाटिकमें संकेतोंसे होनेवाले सब कामोंपर भी विचार कर लेना चाहिए और यह भी देख लेना चाहिए कि संकेतोंसे हम क्या काम निकाल सकते हैं। देखा जाय तो ये संकेत किसी एक व्यक्ति या समाजके बहुतसे कामोंमें सहारा देते हैं जैसे—प्रेरक संकेत किसी एक व्यक्तिसे कोई एक सधा हुआ काम करानेके लिये काममें लाया जा सकता है। ऐसे ही वैज्ञानिक बातचीत भी यों ज्ञान देनेके लिये हो सकती है पर किसीका नाम बढ़ानेके लिये भी काममें लाई जा सकती है।

सीमेन्टिक्स, प्रैग्मेटिक्स और सिन्टेटिक्स—

सीमेन्टिक्स तो सेमियोटिकका वह रूप है जिसमें यह सब जाँच-परख की जाती है कि संकेत किस काममें आते हैं, क्यों आते हैं और किस ढंगसे आते हैं। प्रैग्मेटिक्स (प्रयोजनशास्त्र), सेमियोटिकका वह अंग है जो यह बताता और समझाता है कि एक ढंगसे सजे हुए संकेतोंका आपसमें क्या नाता है। वह यह नहीं देखता कि वे क्या काम करते हैं और उनका क्या महत्त्व है। इन तीनों बातों (सीमेन्टिक्स, प्रेग्मेटिक्स और सिन्टेटिक्स) को मिलाकर ही सेमियोटिक बनता है।

सेमियोटिक किस काम आ सकता है?—

सेमियोटिक जब पूरे ढंगसे सध जायगा तो उसके भीतर तर्कशास्त्र, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, विज्ञानोंका मेल, प्रचारके ढंगोंकी छानबीन, दर्शन, कानून, राजनीतिक और धार्मिक संकेतोंकी सुलझन या उनका भी पूरा ब्यौरा दिया जा सकेगा।

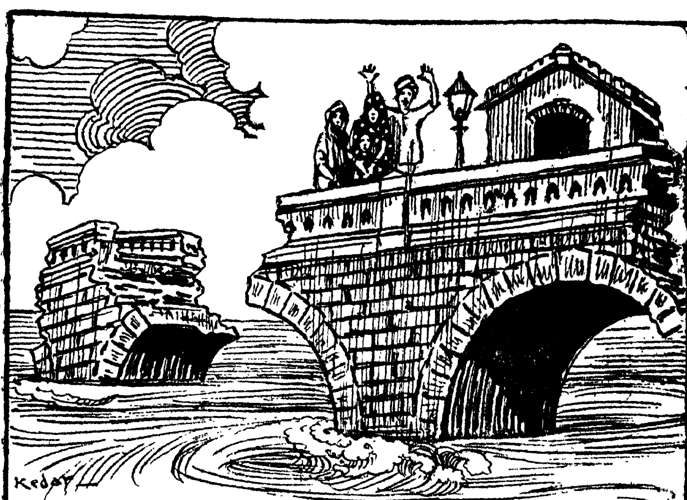
सेमियोटिक चार क्षेत्रोंमें बहुत काममें लाया जा सकता है—

१. वैज्ञानिक भाषा-शास्त्रको सेमियोटिकके भीतर तभी लाया जा सकता है जब शब्द, वाक्य, पदरूप (पार्ट्स ऑफ् स्पीच) या संज्ञा जैसे शब्दोंकी पहचान या परिभाषा बनाई जाय और वह पहचान भी सेमियोटिककी अपनी शब्दावलीपर ही ढली हुई हो। उसका दूसरा काम यह होगा कि वह भाषा-संकेतोंको भी संकेतोंका एक साथी वर्ग समझ ले।

२. इसी प्रकार जहाँतक किसी कलाकृति (जैसे चित्र) को हम संकेत समझें और सुन्दरता बतानेवाले संकेतको हम कोई अलग भेद बनाकर नाम दे दें (जैसे;—अभिव्यंजक (एक्सप्रेसर) तब सौन्दर्य-विज्ञान (एस्थैटिक्स) भी सेमियोटिकका वह अंग बन

जायगा जिसमें सौन्दर्यात्मक संकेतोंकी जाँच-पड़ताल हो। जहाँतक भाषाके सहारे कोई बात बतानेके रूपमें कलाएँ (जैसे कविता या नाटक) आती हैं, वहाँतक तो वे संकेतके साधारण सिद्धान्तके घेरेमें आ जाती हैं। तब इतनी ही बात जाननी रह जाती है कि सौंदर्यात्मक संकेत और वैज्ञानिक या धार्मिक संकेतमें क्या भेद है।

आई० ए० रिचार्ड्सने इस उलझनको सुलझाते हुए संकेतोंके दो रूप बताए हैं—१. भावात्मक (इमोटिव) और २. सूचनात्मक (रेफ़रेन्शल)। एक विचारकने कहा है कि सौन्दर्यात्मक संकेत तो अपने आप अपना रूप (स्वतः स्वरूप) या अर्थ होता है, जैसे यह चित्र लीजिए—



यह चित्र अपना रूप या अर्थ अपने-आप ही बता देता है कि इसमें

क्या हो रहा है, कौन क्या कर रहा है। पर 'घोड़ा' शब्द लिखा हुआ हो तो वह लिखा हुआ शब्द किसी चार पैरके एक निराले जीवका नाम बतायगा। इससे समझमें आवेगा कि सौंदर्यात्मक संकेत सचमुच अभिव्यंजक (एक्सप्रेसर) संकेत है। यह सौंदर्यात्मक संकेत, अर्थ जाननेवालेको उस वस्तुका अर्थ समझा देता है जिस वस्तुको यह दूसरे ढंगोंसे पहचान चुका है या जो उसे बताई जा चुकी है। हम इनमेंसे कोई भी सिद्धान्त मान लें तब भी यह दोनों ही मान लेते हैं कि कला सूचना देती है। पर विज्ञानकी बात दूसरे ही ढंगसे समझाई जाती है। इससे हम समझ लेंगे कि सौंदर्य-विज्ञान (एस्थैटिक्स) भी संकेतोंका ही विज्ञान है और इसलिये वह भी सेमियोटिकका ही अंग है।

३. यह सेमियोटिक आगे चलकर सुन्दरताकी जाँच-पड़तालके लिये एक ऐसा जमा हुआ ढंग भी खड़ा कर देगा जिसमें वह जाँच-परख करनेकी सुन्दरताका रूप तो खोलकर दिखा ही देगा साथ ही आलोचकको भी झख मारकर यह खुलकर बताना पड़ेगा कि वह किस ढंगसे बोल रहा है—वैज्ञानिक ढंगसे, सौंदर्यात्मक ढंगसे या प्रेरणात्मक ढंगसे और वह किसलिये (किस उद्देश्यसे) बोल रहा है।

४. सेमियोटिकको हम शिक्षाके लिये भी काममें ला सकते हैं। पर यहाँ तो हम सेमियोटिकको वैज्ञानिक भाषा-शास्त्रके चक्करमें ही ले रहे हैं और सेमियोटिककी उस शाखाकी चर्चा कर रहे हैं जिसे बोलीके अर्थकी छानबीन (सीमेन्टिक्स या तात्पर्य-परीक्षा, शब्दार्थ-विज्ञान या भाषार्थ-विज्ञान) कह सकते हैं और जिसे भूलसे लोगोंने अर्थ-विज्ञान या अर्थ-परिचय जैसे नाम देकर उलझा दिया है।

अर्थकी छानबीन या तात्पर्य-परीक्षा—

§ ५२–तात्पर्यपरीक्षैवार्थजिज्ञासा ।

[अर्थकी छानबीनको तात्पर्य-परीक्षा ही कहना चाहिए ।]

पीछे वाक्य और शब्दकी जाँच-पड़ताल करते हुए हमने यह समझा दिया है कि शब्दों और वाक्योंकी बनावटमें क्यों, किस ढंगसे और कब हेर-फेर हुए, होते हैं या हो सकते हैं। शब्दका ब्यौरा देते हुए हमने यह भी बताया है कि शब्द वह है जो वाक्यमें पहुँचकर अपना ज्योंका-त्यों रूप बनाकर या अपनेमें कुछ अदल-बदल करके वाक्यके दूसरे शब्दोंके साथ अपना नाता जोड़ता हुआ अपना कुछ अर्थ बताता चले। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि एक शब्दका बस एक ही अर्थ होता है ! जाँच करनेपर जान पड़ेगा कि संस्कृत जैसी जिन बोलियोंमें कुछ धातुओंके जोड़-तोड़से शब्द बनाए जाते हैं उनमें और जिनमें एक-एक अक्षरके भी शब्द होते हैं उनमें बहुत झंझटें उठ खड़ी होती है, क्योंकि उनमें एक-एक शब्दके बहुतसे अर्थ निकाल लिए जाते हैं जिससे अर्थ भी अदलते-बदलते, घिसते-मिटते बराबर नया रंग पकड़ते चलते हैं। इसलिये इनकी भी जाँच-परख वैसे ही की जानी चाहिए जैसे ध्वनियों और शब्दोंकी होती है। इस जाँच-परख या छानबीनके ढंगको लोग अर्थ-विचार, शब्दार्थ-विज्ञान और अर्थातिशय (सीमेन्टिक्स) कहते हैं। पर सचमुच इसे कहना चाहिए तात्पर्य-परीक्षा या अर्थकी छानबीन। प्रोफ़ेसर पोस्टगेटने इसका नाम रक्खा है ह्रेमाटोलौजी (उक्तिविज्ञान), ब्रेअलने रक्खा है सेमान्तीक। अँगरेजीमें इसे कहते हैं सीमेन्टिक्स या सेस्मालौजी। पर ये सब नाम ठीक नहीं है। इसे तो कहना चाहिए सेन्स-स्टडी, सेन्सोलौजी या तात्पर्य-परीक्षा या अर्थकी छानबीन क्योंकि सीमेन्टिक्स (अर्थतत्त्व या अर्थ-विचार) का

अर्थ है 'शब्दसे समझे जानेवाले अर्थ जाननेकी विद्या'। उसकी जाँच-परख या छानबीन करना इसके भीतर नहीं आता। इससे अच्छा शब्द तो सेमाशियोलौजी है जो यूनानी शब्द सेमाशियासे बना है जिसका अर्थ है 'शब्दोंके अर्थका फैलाव-बढ़ाव जाननेकी कसौटी'। पर यह शब्द भी बहुत ठीक नहीं है क्योंकि इसमें अर्थका बढ़ाव जाननेकी ही बातें आती हैं। पर तात्पर्य-परीक्षा या अर्थकी छानबीनके भीतर ये सभी बातें आ जाती हैं इसलिये हम यहाँ अर्थकी छानबीन या तात्पर्य-परीक्षा शब्द ही काममें लावेंगे।

तात्पर्य-परीक्षा (सीमेन्टिक्स या भाषार्थ-विज्ञान)

श्री एस्० आई० हायाकावाने बड़े अच्छे ढंगसे सीमेन्टिक्सको समझाते हुए कहा है कि "सीमेन्टिक्समें दो बातें आती हैं— १. इतिहासकी दृष्टिसे किसी बोलीकी छानबीन करनेकी उस रीति या ढंगको सीमेन्टिक्स कहते हैं जो बँधे-बँधाए शब्दोंके अर्थोंमें होनेवाले हेर-फेरकी छान-बीन करता है या यों कहिए कि वह ऐसे अर्थोंकी छानबीन करता है जिन्हें कोष लिखनेवाले अर्थ समझते हैं। सीमेन्टिक्सके इस कामको सामेशियोलौजी कहते हैं।

"२. सीमेन्टिक्सका दूसरा रूप वह है जिसमें यह जाँच-पड़ताल की जाती है कि बोली या दूसरे संकेतोंको देख-सुनकर मनुष्य क्या करने लगते हैं या उनपर क्या प्रभाव पड़ता है। इसे यों कह सकते हैं कि संकेतको देख-सुनकर या संकेतोंके प्रभावसे मनुष्य क्या कुछ करने लगता है इन सबकी इसमें जाँच की जाती है। इसे सिग्निफ़िक्स कहते हैं।"

तात्पर्य-परीक्षाका आन्दोलन—

सी० के० औग्डेन और आई० ए० रिचार्ड्सने जबसे सन् १९२३ में अपनी 'अर्थका अर्थ' (मीनिंग औफ़ मीनिंग)

नामकी पोथी छपाई तबसे अर्थकी छानबीनकी एक हलचल (सीमेन्टिक्स मूवमेन्ट) मच गई। माइकेल ब्रेअलने सीमेन्टिक्स शब्द जिस अर्थमें लिया है उसके साथ-साथ इस शब्दके भीतर शब्दोंके अर्थमें होनेवाले हेर-फेरकी ऐतिहासिक जाँच भी आ जाती है या यों कहिए कि अर्थोंमें होनेवाले हेर-फेरकी जाँचके साथ इसमें यह भी देखा जाता है कि ये हेर-फेर कब, क्यों और कैसे हुए। और अब तो सीमेन्टिक्स शब्द उस ढंगकी जाँचके लिये भी काममें आने लगा है जो लेडी वायला वैल्बीने संकेत-विज्ञान (सिग्निफिक्स)के नामसे चलाई थी।

सिग्निफिक्स (संकेत-विज्ञान)—

लेडी वैल्बीका कहना है—"अर्थकी जाँच-पड़ताल या तात्पर्यका अध्ययन ही संकेत-विज्ञान या सिग्निफिक्स है पर उसके लिये यह भी चाहिए कि जहाँतक उसे सबके काममें लानेकी बात है वहाँतक उसे मनकी ऐसी प्रणाली या मनकी चलनका ऐसा ढंग भी मान लिया जाय जो मनकी सभी क्रियाओंमें यहाँतक कि तर्कशास्त्रमें भी रहता है।" उनकी समझमें तात्पर्य या अर्थ (सिग्निफिक्स) की खोज-बीन शब्दोंकी खोज-बीनसे कहीं आगेकी बात है। इसमें तो लोगोंके सभी कामोंकी और जिन परिस्थितियों या दशाओंमें वे काम हुए उनकी भी खोज-बीन आ जाती है क्योंकि तात्पर्य (सिग्निफिकेन्स) शब्द भी अर्थ या उद्देश्यकी खोजसे कहीं आगेकी बात है। तात्पर्य-परीक्षामें यह भी देखा जाता है कि कहनेवालेने किस उद्देश्यसे कहा और जिस उद्देश्यसे उसने जब कहा तब उसके मनमें सुननेवालेके लिये प्यार या घिन, क्या भाव थे। इसे यों कहिए कि किसीको भला या बुरा जाँचना (नैतिक

निर्णय करना या मौरल जजमेंट) भी इसमें आ जाता है। तो लेडी वैल्बी भी चाहती थी कि अर्थकी छानबीनमें, बोलनेवालेके मुँहसे निकले शब्दका ही नहीं, वरन् शब्दोंके साथ होनेवाले पूरे बाहर-भीतर या मनके कामका ब्यौरा भी निकाला जाय और यह भी जान लिया जाय कि संकेतों और संकेतकी परिस्थितियोंसे किसीके मनपर क्या प्रभाव पड़ता है और वह उस प्रभावसे क्या काम करता है—हँसता है, रोता है, गाली देता है, मार बैठता है या मुँह फेर लेता है। उस देवीका कहना है कि जब हम इस ढंगसे अर्थकी जाँच-पड़ताल करेंगे तब हम एक अर्थ जानने या किसी बातको ठीक-ठीक समझानेका ऐसा नियम निकाल देंगे जिसे हम संसार भरमें कहीं भी अर्थ समझानेके लिये काममें ला सकते हैं। यों तो यह मनकी सधी हुई धारा (मस्तिष्ककी प्रणाली) उन सब बातोंके लिये काममें ले ही लेनी चाहिए जिनमें बुद्धिसे सोचना-परखना पड़ता हो पर शिक्षाके लिये तो उस धाराको अपना ही लेना चाहिए जिससे कहीं भी किसीका कोई बात जानने और सीखनेमें धोखा या उलझन न हो और बिना बातकी कोई ऐसी झंझट न आ जाय जो एक तो हमारी बपौतीमें मिली हुई भाषाओंकी गड़बड़ियोंसे उठ खड़ी होती है (संसारमें जितनी बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ हैं वे सब उन बोलनेके ढंगोंको चलाए रखना चाहती हैं जो कभी किन्हीं गए बीते दिनोंमें ठीक रहे होंगे पर जो अब हमारे किसी कामके नहीं रहे) और दूसरे हमारी अर्थ करनेकी पड़ी हुई बान (अभ्यास) से आ गई हैं। इसलिये लेडी वैल्बीने यह कहा कि इन दोनों गड़बड़ियोंको किसी ठीक ढंगसे दूर करना ही चाहिए।

सिग्निफिक्स (संकेत-विज्ञान) की बड़ी बातोंमेंसे एक यह

भी थी कि जिन उलझनोंने कामकाजी मनुष्यों और दर्शनपर सोचनेवाले बड़े-बड़े लोगोंको घबराए रक्खा है वे सब हैं सचमुच बोलीकी ही। ये उलझनें इसलिये बनी हुई हैं कि हम उन बोलियोंके उन्हीं अर्थोंको ठीक समझे बैठे हैं जो पहलेसे माने हुए चले आ रहे हैं। लेडी वैल्बीने जो इस ढंगकी बातें कही हैं वे किसी न किसी रूपमें फ्रान्सिस बेकनसे लेकर जैरेमी बेन्थम-तक बहुतसे वैज्ञानिकोंने पहले भी सुझाई थीं। अब तो सीमेन्टिक्स शब्द धीरे धीरे सभी विज्ञानोंमें किसी न किसी ढंगसे काममें आने लगा है। लेडी वैल्बीने बोलीकी जो ऐसी उलझनें नई मानकर उठाई थीं उनपर सी० के० औग्डेन और आई० ए० रिचार्ड्सने बड़ा काम किया है और यह कहा है हमें भाषाकी जाँचके काममें सिद्धान्त बनाकर ही नहीं छोड़ देना चाहिए वरन् भाषाकी सारी परिस्थितियों, संकटों और कठिनाइयोंकी सीधी जाँच करके ऐसी बटिया भी निकालनी चाहिए कि आज हम जिस ढंगसे अपने मनकी बात दूसरोंसे कहते हैं, उस कहनेके ढंगका मान कुछ ऊँचा उठ जाय।

दो प्रकारके शब्द—

औग्डेन और रिचार्ड्सने अपनी इस छानबीनमें बोलियोंकी कठिनाइयाँ दिखाते हुए यह भी बताया कि बोल-चालके न जाने कितने अन्धविश्वासोंने भी अनजाने हमारी बोलियोंको जकड़ रक्खा है। उन्होंने यह भी दिखलाया कि शब्दमें कुछ ऐसा जादू है जो दिखाई तो नहीं पड़ता पर जो गुपचुप वैसा ही काम करता रहता है जैसा सुन्दरताकी परख (सौन्दर्य-विज्ञान) और दर्शन-शास्त्रमें होता है। ये लोग मानते हैं कि शब्द दो ढंगके हो सकते हैं—एक तो प्रतीकात्मक (सिम्बौलिक या रैफरेन्शल)

और दूसरे भावात्मक (इमोटिव)। रिचार्ड्स तो आजकल यही छानबीन कर रहे हैं कि कवितासे कितने ढंगके अर्थ निकलते हैं और उन अर्थोंके ढंगोंसे पढ़नेवालोंको क्या अड़चनें होती हैं क्योंकि रिचार्ड्स कहते हैं कि इन शब्दोंने बिना बातका बड़ा झमेला खड़ा कर रक्खा है।

सीमेन्टिक्स और दूसरे शास्त्र—

नर विज्ञानपर जो खोजें हुई हैं उनसे अर्थकी छानबीन (सीमेन्टिक्स) को बड़ा सहारा मिला है। आदिम बोलियोंके पढ़ने-देखनेसे ब्रौनिस मालिनोवस्कीने यह बात निकाली कि जो लोग किसी बोलीको अपने मनकी बात समझाने और दूसरेके मनकी बातको समझने भरका सहारा समझते हैं वे बोलीके बहुत बड़े और अनोखे कामका एक छोटासा कोनाभर देखते हैं। सच पूछिए तो बोली भी हमारे सब काम-काज (व्यवहार) का एक ढंग ही है, इसलिये किसी बोलीको इतनेसे ही नहीं जाँच लेना चाहिए कि कोष लिखनेवालेने उसका क्या अर्थ बताया या समझाया है वरन्, उसे ऐसे परखना चाहिए कि समाजमें कहाँ, कैसे, एक ही बातके लिये अलग-अलग बोलनेका ढंग क्यों अपनाया जाता है? हमारी आपसकी बात-चीत, लेन-देन, लिखा-पढ़ी, हँसना-बोलना सबमें हम अपनी बोलीको कैसे और क्यों घुमा-फिराकर, सजा-बिगाड़कर, काममें लाते हैं? यों कहिए कि बोलीकी सब चटक मटक, बनाव-बिगाड़, उतार-चढ़ाव, भलाई-बुराई, सलोनापन या फूहड़पन, उन प्रसंगों या परिस्थितियोंके सहारे समझा या समझाया जा सकता है जिनमें वह बोली काममें लाई गई हो। मालिनोवस्कीने इसके साथ यह भी कह दिया था कि किसी

परिस्थिति या प्रसंगके सहारे बोलियोंकी छानबीन करते समय भले आदमियोंकी बोलियाँ ही लेनी चाहिएँ, गँवारों और फूहड़ोंकी नहीं। थरमन डब्लू० आरनोल्डने मालिनोवस्कीके ढंगपर बड़ा ठोस काम किया है और नर-विज्ञानपर खोज करनेवाले भाषा-शास्त्री बी० एल्० ह्वौर्फ़ने भी भारत-योरोपीय परिवारके बाहरकी बोलियोंकी जाँच-पड़ताल करके सीमेन्टिक्सको बड़ा सहारा दिया है। उसने यह बताया है कि बोलियोंकी बनावटके बड़े अनोखे-अनोखे ढंग हैं और इस बातको समझाते हुए उन्होंने ब्यौरा देकर बताया है कि संसारमें सोचनेके ढंग (विचारके नियम या लौज़ ऑफ़ थौट्स) उतने एकसे नहीं हैं जितने पहले समझे जाते थे।

बोलनेसे पहले मन भी कुछ करता है—

लियोनार्ड ब्लूमफ़ील्डने कहा है—मानसिकतावादी मनो-विज्ञान (मेन्टेलिस्टिक साइकोलौजी) को माननेवाले लोग यह कहते हैं कि मुँहसे बोली निकलनेसे पहले बोलनेवालेके मनमें देहसे अलग एक हलचल होती है जिसे सोच, विचार, भावना, बिम्ब, अनुभव, संकल्पित कार्य या कुछ ऐसा ही कह सकते हैं। इन लोगोंकी समझमें बोलीका काम तो हमारे मनकी चाहों, विचारों और पक्की की हुई बातों (दृढ़ निश्चयों) को बताना भर है। उनकी इस बातको और लोग ही नहीं, बड़े-बड़े विज्ञानवाले, दर्शनवाले और साहित्यवाले भी मानते हैं और सच पूछिए तो यही बात या लोगोंका यह मानना ही अर्थकी छानबीन (सीमेन्टिक्स या भाषार्थ-विज्ञान) के समझनेमें सबसे बड़ी अड़चन है। मानसिकतावादी कहते हैं कि यदि लोगोंके सोचनेके ढंग ठीक कर दिए जायँ या ऐसे साध दिए जायँ कि

उनमें किसी ढंगकी कोई गड़बड़ी, उलझन या अड़चन न रहे तो बोली अपने-आप अपनेको सँभाल लेगी। ये लोग विचारोंको ठीक करनेमें ही जुटे हुए हैं और इसीलिये ये लोग शब्दों, कही जानेवाली बातों, उनके भीतरी सजावों और लयोंपर बड़ा ध्यान देते हैं। ये लोग बोलीके साथकी उन सब परिस्थितियों या दशाओं और उनसे होनेवाले उन सब परिणामों या कामोंको बेकार (असंगत) समझते हैं जिन्हें अर्थ-विज्ञानवाले यह मानते हैं कि बोलीसे जो अनोखी या निराली बात या अर्थ निकलता है वह इन्हीं परिस्थितियोंसे निकलता है। इसलिये मानसिकतावादी लोग मानते हैं कि अर्थ समझनेकी कोई उलझन है ही नहीं। थोड़ी-सी झंझट जो कभी-कभी इधर-उधर उठ खड़ी होती है उसे मिटानेके लिये शब्दोंमें कुछ थोड़ा-सा सुधार और हेर-फेर कर देने भरसे काम चल सकता है। पर अर्थकी छानबीन करनेवाले लोग कहते हैं कि बोलीकी ओर बराबर ध्यान देते रहना, अपने कामकाजमें होनेवाले संकेतको समझते रहना, बपौतीमें पाई हुई बोलियोंकी बनावटके प्रभावको देखते रहना, बोलनेके समय क्या परिस्थितियाँ और प्रसंग हैं और उन बोलियोंसे क्या फल निकलता है यह समझते रहना ऐसी बातें हैं जिनकी ठीक-ठीक जाँच-पड़ताल कर ली जाय तो हम लोगोंमें बोल-चालकी जो बहुत-सी अन्धाधुन्धी चली आती है वह दूर हो जाय।

सबके कामका भाषार्थ-विज्ञान (जनरल सीमेन्टिक्स)

बोलीके अर्थोंकी जिस ढंगकी छानबीन हम ऊपर सीमेन्टिक्सके नामसे बता आए हैं उसे सबके कामका बनानेके लिये पोलैन्डवासी (अब अमेरिका-वासी) गणितके पंडित और

शिल्पी एल्फ्रेड कौर्ज़ीबस्कीने एक अनोखा ढंग निकाला है। अपनी 'साइन्स एन्ड सैनिटी' (विज्ञान और समझ, सन् १९३३) नामकी पोथीमें उसने सबके कामके भाषार्थ-विज्ञान (जनरल सीमेन्टिक्स) का एक नया ढंग सुझाया है। अपने इस ढंगमें उसने बोलीका अर्थ निकालनेका कोई भी सिद्धान्त नहीं माना क्योंकि वह छानबीनके इन सब ढंगोंको बेकार बालकी खाल निकालना मानता है। वह कहता है कि हमें बोलीके शब्दोंका मोल समझना चाहिए। वह कहता है कि मनुष्य जो संकेत करता, बोलता, नाक-भौं सिकोड़ता या हाथ-पैर चलाता है उन संकेतोंको और जिन परिस्थितियों और दशाओंमें वे संकेत किए जाते हैं उनसे क्या क्रियाएँ होती हैं, उन सबकी देखरेख और नाप-तौल करना भी हमारा काम होना चाहिए। इस मोल समझनेके कामों (मूल्यांकनों या अर्थ-सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं को समझाते हुए कौर्ज़ीबस्की कहता है कि इनके भीतर हमारी समझ (ज्ञान) और बोलीकी वे सभी धाराएँ आ जाती हैं जो हमारी नसोंमें भरी हुई हैं। ये धाराएँ जब बचपनमें या आदिम अवस्थामें या बेढंगे ढंगसे आ जाती हैं तब ये ही बोल-चाल या बातचीतमें बड़ी उलझन और गड़बड़ी खड़ी कर देती हैं। इतना ही नहीं, ये हमारे रात-दिनके कामकाजमें भी ऐसी झंझट खड़ी कर देती हैं कि न तो हम किसी बातकी ठीक-ठीक मोल-परख कर पाते न उसे ठीक-ठीक समझ पाते हैं। जब इसमें भूल या गड़बड़ी हो जाती है और हम किसी बातको ठीक न समझकर उलटा समझ बैठते हैं तो ऐसे-ऐसे रोग खड़े हो जाते हैं कि उनके लिये मनोवैज्ञानिक चिकित्सा करानी पड़ जाती है। अनोखी बात तो यह है कि ये भूलभरे ढंग मनमें ऐसे सच्चे बैठ जाते हैं कि लोग उन्हें ठीक ही माने

रहते हैं और यही बात है कि इस भूलसे भरे ढंगको सहारा मानकर जब हम शिक्षा देते या समाजको ठीक करनेवाली संस्थाएँ चलाते हैं तब वह ढंग उन्हें मिटा डालता है। कौर्ज़ीबस्कीने हम लोगोंकी आजकी गिरी हुई दशाका ब्यौरा देते हुए यही कहा है कि इसी भूलभरे ढंगको अपनानेसे ही हमें ये बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं।

ठीक अर्थ समझनेका लेखा (इन्डैक्सिंग)

'अपने जंगली पुरखोंसे हमने बोलने और बोली सुनकर कुछ करने (प्रतिक्रिया) के सधे-सधाए ढंगोंसे संसारको समझनेकी जो झूठी कसौटियाँ ला बाँधी हैं उनसे बचाए रखनेके लिये, हमारी नसोंके जालको ऐसा साधनेके लिये कि वह बोलीके मोड़-घुमावको जानती चले और किसी एक पुराने समयके विश्वास और टेकको किसी दूसरे समयकी बदली हुई दशामें लोगोंको आगे बढ़नेसे न रोक पाने देनेके लिये' कौर्ज़ीबस्कीने बोलीका ठीक अर्थ पहचाननेकी चालों (अर्थ-विज्ञानकी प्रक्रियाओं) का एक ऐसा लेखा बना डाला है कि किसी बातको ठीक-ठीक न समझनेकी जो हममें पुरानी बान पड़ गई है उसे हम दूर कर सकें। यह लेखा उन दोनों बातोंको भी पूरा कर देता है जो लेडी वैल्बी चाहती थीं कि हमारी बोलीका और बोली सुनकर उसके उत्तरमें होनेवाली क्रिया (हमारी प्रतिक्रिया) की प्रणालीका एक साथ सुधार हो। इस लेखेमेंसे एक है 'सजाव बाँधना' (सूची-करण या इन्डैक्सिग)। इसे समझनेसे पहले हमें अरस्तूका नियम जान लेना चाहिए। अरस्तूने अपना पहला 'सोचनेका ढंग' (विचार-नियम या लौ औफ़ थौट) यह बताया था कि 'क' 'क' ही है। यह मानकर हम चलें तो पहलेसे चली आता हुआ जो

हमारा चलन है वह हमें यह बताता है कि जहाँ एक जैसी दो बातें, वस्तुएँ या काम हों वहाँ उन दोनोंके लिये एक जैसी ढलन (प्रतिक्रिया) दिखानी चाहिए, उनमें भेद नहीं समझना चाहिए। इसपर कोर्जीबस्कीने कहा है कि अर्थ समझना तो हमारी नसोंका एक बँधा-बँधाया प्रभाव या काम है इसलिये जहाँ भी 'क' आता है या एक जैसी बात आती है वहाँ हम उसके उत्तरमें या उसके होनेपर एक-सा ही काम या प्रतिक्रिया करते हैं। यों कहो कि हम सब अवस्थाओंमें 'क' 'को' 'क' ही समझते रहेंगे और यह नहीं समझेंगे कि शब्द 'क' और वस्तु 'क' (कलम शब्द और कलम वस्तु) दोनों अलग-अलग बातें हैं। '$क_1$' और '$क_2$' ये भी दोनों अलग-अलग हैं। 'क १६४१' और 'क १६४२' ये भी दोनों अलग अलग हैं। किसी एक ठौरमें 'क' और किसी दूसरे ठौरमें 'क', ये दोनों भी अलग-अलग हैं। इस चालसे जब हम 'क' को परखते हैं तब समझमें आ जाता है कि $क_1$' वही नहीं है जो '$क_2$' है। यह समझनेपर ही हम जान सकते हैं कि कहाँ कोई वस्तु या क्रिया एक-सी है और कहाँ वे दोनों अलग-अलग हैं। और तब हमें झख मारकर यह ध्यान रखना पड़ता है कि वह कहाँ किस प्रसंगमें आया है। इस ढंगसे जब हम बोलीके अर्थोंकी जाँच-परख करें तब अलग-अलग ठौर (परिस्थिति) में आनेवाले शब्दको क्या समझना चाहिए और उसे सुनकर उसके बदले कैसे बरतना चाहिए यह अपने-आप हमें आ जाता है।

अपने इस सूचीकरण (इन्डेक्सिंग) से उसने अरस्तू और अरस्तूसे पहलेके विचार-नियमके सहारे सधे हुए सब सोचने-समझनेके ढंगोंको हटाकर नया ढंग चलाया है और यह कहा है कि मनुष्यको आगे बढ़ने देनेमें अयानपन या अज्ञान उतनी रुकावट नहीं डालता जितना कि पहलेसे भरे हुए ज्ञानको

काममें लानेकी समझ न होना । कौर्ज़ीबस्कीके इस ढंगको बहुतसे लोग चला रहे हैं और यह बता रहे हैं कि इस ढंगसे हम संसारकी बड़ी भलाई कर सकेंगे। जेम्स हार्वी रौबिन्सनने कहा है कि "हमारे मनमें पहलेसे जिन बातोंकी गहरी जड़ जमी हुई है और जो बातें पड़ी हुई हैं उन्हें जीतकर हम मनका ऐसा नया चलन बना सकेंगे जो नई परिस्थितियोंमें ठीक निबाह कर सकें और जो कुछ हम नया सीखें उसे ठीक-ठीक काममें ला सकें।"

उदात्तवादियोंका विरोध

जहाँ कौर्ज़ीबस्कीके इतने माननेवाले हैं वहाँ कुछ पुराने कट्टरपंथी ऐसे भी हैं जो यही मानते हैं कि जो पहलेसे लीक चली आई है उसपर चलनेसे ही मनुष्यका भला होगा । इसलिये वे इस 'सबके काममें आनेवाले भाषार्थ-विज्ञान' (जनरल सीमेन्टिक्स) को बेकारका सिर-फुड़ौवल समझते हैं ।

संकेत कैसे मिलता है ?

§ ५३—**इन्द्रियबोध्यो हि संकेतः । [जो इन्द्रियोंसे जाना जाय वही संकेत है ।]**

नाटकका एक दृश्य लीजिए—

[रामदीन बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा है बीच-बीचमें 'वाह' ! 'आह' ! करता रहता है । अचानक धम्मसे धमक सुनाई पड़ती है । रामदीन उठकर बाहर जाता है और शोभारामको सहारा देकर लाता है ।]

रामदीन—(शोभारामसे) क्या बहुत चोट आ गई है ?

शोभाराम—(कराहते हुए) माँ री !

रामदीन—कहाँ ?

शोभाराम—(घुटनेपर हाथ रखकर) आह !

[बैठ जाता है]

रामदीन—ठहरो ! मैं ठीक करता हूँ ।

[चलता है]

शोभाराम—बुद्धू को........

रामदीन—अभी लो ! (पुकारकर) बुद्धु ! अरे बुद्धू ! (शोभारामसे) है नहीं ।

शोभाराम—खेतपर गया होगा ।

रामदीन—ठहरो, बुलवा देता हूँ ।

[भीतर जाकर तेल लेकर आता है और शोभारामके पैरमें मलता है । इतनेमें बुद्धूका प्रवेश । वह बैठकर देखता है ।]

बुद्धू—क्या हुआ बप्पा ?

[शोभाराम चुप रहता है]

रामदीन—हुआ क्या ?.........

[शोभाराम आँखसे संकेत करता है । रामदीन चुप हो जाता है ।]

बुद्धू—(चोट देखकर) अरे.........

शोभाराम—नहीं, यों ही लग गई है ।

रामदीन—(शोभारामसे) यहाँ बड़ी ठंढ है । चलो, मैं उठाकर तुम्हें भीतर ले चलता हूँ ।

शोभाराम—आप ? राम-राम !

[बुद्धूके सहारे चला जाता है ।]

ऊपर जो ब्यौरा और बातचीत दी गई है उसे पढ़नेसे कई अनोखी बातें जान पड़ेंगी और आप अपने-आप पूछ बैठेंगे कि पोथी पढ़ते हुए रामदीन 'आह, वाह' क्यों करता है ? धम्मसे धमक सुनकर रामदीन उठकर बाहर क्यों जाता है ? शोभाराम

के 'माँ री' कहनेपर रामदीनने क्या समझा और 'कहाँ' क्यों पूछा ? शोभारामके 'आह' कहकर घुटनेपर हाथ रखनेसे रामदीन क्या समझा ? शोभारामके केवल 'बुद्धूको' कहनेसे रामदीनने यह क्यों कहा—'अभी लो' ? रामदीनने बुद्धूको पुकार चुकनेपर यह क्यों कहा—'है नहीं' ? शोभारामके आँखके संकेतसे रामदीन क्या समझा ? बुद्धूके 'अरे' कहनेपर शोभारामने 'नहीं, योंही लग गई है' क्यों कहा ? रामदीनने यह कैसे समझा कि यहाँ ठंढ है ? रामदीनके 'चलो, मैं उठाकर तुम्हें भीतर ले चलता हूँ' कहनेपर शोभारामने 'आप ? राम राम !' क्यों कहा ?

यदि आप मन लगाकर इसे समझें तो जान जायँगे कि पोथीमें अचरज या सुखकी बात पढ़कर रामदीनने 'वाह' की और दुःखकी बातसे 'आह' की। धम्मसे धमकका अर्थ रामदीनने समझा कि कोई गिर गया है। शोभारामके 'माँ री' कहनेपर रामदीन यह समझा कि उसे बहुत चोट आई है। शोभारामने घुटनेपर हाथ रखकर 'आह' की तो रामदीनने समझा कि उसके घुटनेमें चोट आई है। रामदीनने जब 'मैं ठीक करता हूँ' कहा तो शोभाराम समझा कि रामदीन औषधि ला रहा है और शोभारामके 'बुद्धूको' कहते ही रामदीनने 'अभी लो' कहकर यह जताया कि 'तुम बहुत बोलो मत, मैं बुद्धूको पुकार देता हूँ।' शोभारामके पुकारनेपर भी जब बुद्धू नहीं बोला तो वह समझ गया कि बुद्धू नहीं है। शोभारामके आँखके संकेतसे रामदीन समझा कि बुद्धू अभी लड़का है, इसे न बताओ, यह घबरा जायगा। रामदीनने अपनी देहसे लगनेवाली ठंढी बयारसे समझ लिया कि ठंढ पड़ रही है। शोभारामने 'आप ? राम-राम !' कहकर यह प्रकट किया कि आप इतने बड़े आदमी

हैं, भला मैं कभी आपको इतना कष्ट दूँगा कि आप मुझे उठाकर ले चलें।

§ ५४—संकेतादेवार्थप्रतीतिः । [**संकेतसे ही अर्थ निकलता है।**]

इस सबसे आप समझ गए होंगे कि अकेले बोले हुए शब्दसे ही अर्थ नहीं निकलता, वह निकलता है किसी भी संकेतसे, वह चाहे कानसे सुनाई दे, चाहे आँखसे दिखाई दे, चाहे नाकसे सूँघकर जाना जाय, चाहे स्वाद लेकर समझा जाय, चाहे देहमें छू जानेसे जाना जाय, चाहे मनमें सोचनेसे आ जाय। यों कहिए कि किसी भी संकेतसे जो कुछ समझमें आवे उसे अर्थ कहते हैं।

संकेत (साइन) से अर्थ कैसे समझा जाता है—

ऊपर दिए हुए ब्यौरेसे यह बात समझमें आ गई होगी कि जिन संकेतोंसे हम कोई बात समझते हैं, वे कई ढंगके होते हैं। उन्हें हम कई मोटे-मोटे ढाँचोंमें बाँध सकते हैं—१. शब्द (ध्वनि) २. गन्ध (महक) ३. स्पर्श (छूना) ४. रस (स्वाद) ५. रूप (देखना) ६. चिन्तन (सोचना)। जली हुई घासको देखकर हम समझ जाते हैं कि वर्षा नहीं हुई। मंदिरका घंटा सुनकर समझ लेते हैं कि आरती हो रही है। सूँघकर समझ सकते हैं कि यहाँ चमेली उगी हुई है। बयार लगनेसे जान लेते हैं कि गरमी है या ठंढक। जीभपर छू जानेसे समझमें आ जाता है कि यह मीठा, खट्टा या चरपरा है। ऐसे ही किसीके 'हाँ' करनेपर हम समझ लेते हैं कि वह हमारी बात मानता है और 'हुँः' करनेसे समझ जाते हैं कि अमुक काम नहीं करना चाहिए। हम किसीको नीचे-ऊपर सिर हिलाते हुए देखकर समझ जाते हैं कि वह हमारी बात मानता है और

दाएँ-बाएँ सिर हिलाते देखकर समझते हैं कि वह 'नहीं' कर रहा है। पर अफ्रीकावाले 'नहीं' कहनेके लिये नीचे-ऊपर सिर हिलाते हैं। इसलिये ये संकेत सब देशोंमें एकसे नहीं होते। तो संकेतसे पहले वहाँका चलन जान लेनी चाहिए। इससे यह समझमें आ सकता है कि संकेतोंसे जो कुछ समझा जा सकता है वह दो ही ढंगका होता है—१. एक तो जो हम अपनी इन्द्रियोंसे समझते हैं उसमें (क) या तो किसी वस्तुको यों ही देखकर समझ जाते हैं या (ख) किसीका कुछ काम-काज, चलना-फिरना या चेष्टा देखकर समझते हैं या (ग) कुछ लिखा हुआ देखकर समझते हैं। यह लिखा हुआ भी तीन ढंगका होता है। एक तो लकीरें बनी हुई जैसे —> बाण जैसी खिंची हुई लकीर में बाणकी नोक देखकर समझ जाते हैं कि हमें इधरसे जाना है या इधर कोई ऐसी बात है जिसपर बाण खींचनेवाला हमारा ध्यान दिलाना चाहता है। दूसरे, चित्र लिखा हुआ या बना हुआ देखकर हम समझ जाते हैं कि इसमें क्या बात दिखाई गई है। नावपर चढ़े हुए राम, सीता, लक्ष्मण और केवटके चित्रको देखकर हम समझ जाते हैं कि राम, सीता, और लक्ष्मण इस नावपर चढ़कर गंगाजीके पार जा रहे हैं और वहाँसे वनको चले जायँगे क्योंकि रामके पिताने कैकेयीके वर माँगनेसे रामको चौदह वर्षका बनवास दे दिया है और लक्ष्मण-सीता भी साथ चले आए हैं। तीसरे, लिखा हुआ या किसी भाषाकी लिखावटमें लिखे हुए शब्द, पर इनका अर्थ तभी समझमें आता है जब उस लिखावटसे हमारी जानकारी हो, नहीं तो काला अक्षर भैंस बराबर।

२. दूसरे, जो मनमें सोचा जाता है। वह सात ढंगका होता है—एक तो किसी बातको देखकर उससे क्या होगा या इसका क्या

होगा यह सोचा जाता है (परिणाम)। दूसरे, कभी-कभी हम अपने-आप बैठे-बैठे मनमें कुछ नई गढ़न गढ़ते हैं, नये सपने बनाते-बिगाड़ते हैं। इसे जागतेका सपना या कल्पना कहते हैं। तीसरे, हम यह सोचते हैं कि हमें क्या करना चाहिए या यों कहिए कि अपने और अपनेसे नाता रखनेवाले लोगों या वस्तुओंको सहेजकर रखने, उन्हें बिपदासे बचाने और उनकी बढ़ती करनेके लिये या अपनेको बिपदा देनेवालेको ठीक करने या बदला लेनेवालेके लिये सोचा जाता है। इसे सोच या चिन्ता कहते हैं। इसके भीतर ही अपने या अपने सगे-संबंधियोंपर या अपनी वस्तुपर आनेवाली या आई हुई बिपदासे अनुमान होना भी आ जाता है। चौथे, यह सोचना कि हमें क्या करना चाहिए? क्या करनेसे हमारी बड़ाई हो सकती है? इसे तर्क कहते हैं। पाँचवें, चाहना। हम कुछ चाहते हैं, वह चाहे अपने लिये हो या दूसरोंके लिये और बुराईके लिये हो या भलाईके लिये; सब कुछ इसके भीतर आ जाता है। इसे 'इच्छा' कहते हैं। छठे प्रकारका सोचनेका तब होता है जब हम अपने कुछ पहले पढ़े हुए या सीखे हुए ज्ञानको बार-बार दुहराते और उसपर सोचते-विचारते हैं। इसे 'मनन' कहते हैं। एक सातवें ढंगका सोचना होता है जब हम किसी पुरानी वस्तु या बातको या किसी व्यक्तिको स्मरण करके उससे जुटी हुई बातें भी सोचने लगते हैं। इसे 'स्मृति' या 'स्मरण' कहते हैं। यह सोचनेका काम ध्वनि सुनकर, गंध सूंघकर, किसीसे छू जानेपर स्वाद लेनेपर, देखनेपर या अकेले बैठे-बैठे चुपचाप पड़े रहनेसे भी होता है। इससे हमें समझनेमें देर न होगी कि किसी बातको समझनेके लिये दो काम होते हैं एक तो इन्द्रियज्ञान या इन्द्रियके सहारे बातको पकड़ना या अपनाना और दूसरी बात है बुद्धिसे उसे

समझना या उसका भाव या अर्थ समझना। जिन आचार्योंने वर्ण, पद और वाक्य-स्फोट माना है उन्हें उन स्फोटोंके साथ-साथ संकेत-स्फोट, रस-स्फोट, गंधस्फोट, स्पर्शस्फोट, रूपस्फोट, और चिन्तन-स्फोट भी मानना चाहिए था। क्योंकि संकेत, शब्द, गंध, स्पर्श, रस, रूप और चिन्तनसे भी अर्थ निकलता है। पर व्याकरण लिखनेवालोंको तो बोले हुए और तोड़कर समझाए जा सकनेवाले (व्याकृत) शब्दोंसे ही काम लेना था इसलिये उन्होंने वर्ण, पद और वाक्यकी ही चर्चा की और चलते-चलते उस झमेलेमें वे प्रकृति, जीव और ईश्वरको भी घसीट लाए। शब्दको ब्रह्म तो सचमुच इसलिये माना जाता है और उसे संसारका रचनेवाला भी इसीलिये कहा जाता है कि हम शब्दसे ही इस नाम और रूपवाले संसारको पहचानते, जानते और समझते हैं। जो कुछ दिखाई, सुनाई और सुँघाई देता है, उसके नाम न हों तो हम कैसे एक वस्तु या कामको दूसरेसे अलग समझते या जानते। शब्दके ही कारण ये रूप, बहुतसे नाम लेकर अलग-अलग हो गए हैं। शब्द न होता तो यह इतना बड़ा संसारका झमेला ही न रहता जैसे पशुओं, पक्षियोंके लिये नहीं है। इसीलिये कहा जाता है कि शब्द-ब्रह्मसे संसार हुआ। एक और भी बात है कि जो कुछ संसार दिखाई दे रहा है सब इस सूने आकाशमें ही फैला हुआ है और इस आकाशका गुण है शब्द, इसलिये यह हो सकता है कि आकाशमें शब्द ही पहले गूँजा हो। उस शब्दके गूँजनेसे हलचल हो गई हो और जिससे दूसरे तत्त्व उलझकर, चक्कर खाकर, मिलकर धीरे-धीरे पिंड बनते चले गए हों और इसीलिये यह मान लिया गया हो कि शब्दसे ही संसार बना। पर हमें इस झमेलेसे कुछ लेना-देना नहीं है। हमें यही समझ लेना चाहिए कि

हम अपने कान, आँख, नाक, देह और जीभसे सुन, देख, सूँघ, छू और चखकर सब कुछ पहचान जाते हैं और फिर बुद्धि या समझके सहारे उन सबका अर्थ लगा लेते हैं ।

हमें सभी संकेतोंपर विचारना चाहिए—

बहुतसे लोग यहाँ अर्थकी जाँच-परखमें शब्दके अर्थकी छानबीन करके पल्ला झाड़ लेते हैं, पर वे यह नहीं समझते कि नाटकमें तो सब कुछ बोला ही नहीं जाता, बहुतसे काम अभिनेता या नट ऐसा करते हैं जिन्हें देखकर हम बहुत-सा अर्थ समझते हैं । इसलिये हमें सब ढंगोंके संकेतोंके अर्थोंपर यहाँतक कि चित्रमें बने हुए चित्रके रूपमें दिखाई देनेवाले संकेतके अर्थपर भी सोच-विचार कर लेना चाहिए । हम पहले समझा आए हैं कि जब कभी हम कहते हैं कि 'वह इतना बड़ा है' तब हम हाथ फैलाकर या संकेतसे किसी वस्तु या व्यक्तिकी लम्बाई और ऊँचाई बताते हैं । यहाँ शब्द हमारा साथ नहीं देते । यहाँ न तो शब्द ही स्फोट होता या अर्थ बतलाता, न वाक्य ही । यहाँ तो अर्थ हमारे हाथके संकेतसे निकलता है । इसलिये जिन्होंने केवल वाक्यस्फोट-भर माना है, उन व्याकरण लिखनेवालोंने भी बड़ी भूल की है । उन्हें संकेत और वाक्य दोनोंको सम्मिलित या अलग-अलग स्फोट या अर्थ बतानेवाला मानना चाहिए था । यही आचार्य चतुर्वेदीका मत है । कुछ लोग पशु-पक्षियोंकी बोलीको भी निरुक्त मानते हुए कहते हैं कि उनका भी अर्थ होता है और हमारे यहाँ नाटक लिखनेवालोंने चिड़ियों, चौपायोंकी बोलियोंको नाटकमें लिया भी है, पर उसका कोई ठीक ब्यौरा कहीं नहीं मिलता, सब अटकलसे काम चलाते हैं इसलिये उसे हम भी छोड़ देते हैं ।

§ ५५—**आप्तवचनादपि। [कोष, शास्त्र और बड़े-बूढ़ोंके बतानेसे भी अर्थ जाने जाते हैं।]**

अपनी इन्द्रियोंके सहारे हमारे सामने पड़े हुएका जो अर्थ समझमें आता है, उसके साथ-साथ बहुत सी बातें हम कोष देखकर, शास्त्रोंसे सीखकर या बड़े-बूढ़ोंसे और उनकी जानकारीसे भी समझ लेते हैं, जैसे 'पारारुक' शब्दका अर्थ 'चट्टान' कोषसे देखकर, 'गायकने किस रागमें गाया है' यह संगीत-शास्त्रसे जानकर और 'यह पागलपनको दूर करनेवाली जड़ी धँवर-बरुआ है' यह किसी जानकार वैद्यसे ही जान सकते हैं।

§ ५६—**सत्यानृतसंशयात्मकं त्रिविधार्थज्ञानम्। [तीन ढंगके अर्थ समझे जाते हैं : सच्चे, झूठे और सन्देह-भरे।]**

इन्द्रिय-ज्ञानसे तीन ढंगोंके अर्थ समझे जाते हैं—सच्चे, झूठे और सन्देहभरे। साँपको साँप समझना सच्चा अर्थ है। रस्सीको साँप समझ लेना झूठा अर्थ है। किसीके मुँहपर दिखाई देनेवाली खीझको देखकर अटकल लगाना कि यह कहीं मुझसे तो नहीं बिगड़ा हुआ है झूठ भी हो सकता है और सच भी। यह सन्देह-भरा है। या लम्बी, टेढ़ी, बाँकी, पड़ी हुई वस्तुको देखकर यह सोचना कि या तो यह साँप है या रस्सी है, यह भी सन्देहभरा अर्थ समझना है।

अर्थ कैसे समझमें आ जाता है ?—

§ ५७—**बुद्धियोगादर्थज्ञानम्। [अर्थ लगानेमें बुद्धिका काम पड़ता है।]**

यह नहीं समझना चाहिए कि बस देखा, सुना, सूँघा, छुआ, चखा, सोचा, कोष टटोला या किसीसे पूछा कि अर्थ आ गया। ऐसा हो तो पक्षी और चौपाए भी सब कुछ समझ लेते। पर

वे इसलिये नहीं समझ पाते कि उनके पास वह बुद्धि या समझ नहीं है, जो हमारे पास है। इसलिये बुद्धि या समझके सहारे ही हम अर्थ लगा पाते हैं। हमारी बुद्धिको अर्थ लगानेमें बहुत सी बातें सहारा भी देती हैं। उनमेंसे कुछ ये हैं—

१. चलन (परम्परा) : इसके भीतर वे सब बातें आती हैं जो पहलेसे एक जैसी होती चली आती हों और उन्हें देखकर कुछ बात समझमें आ जाय जैसे—किसीके सिरपर मौर बँधा देखकर हम समझ लेते हैं कि इसका विवाह होनेवाला है।

२. समझ (प्रतिभा) : किसीका मुँह उदास देखकर या किसीकी दुःखभरी आह-कराह सुनकर हम समझ लेते हैं कि इसपर बिपदा आई है।

३. लोगोंसे मेल-जोल या जन-संसर्ग : लोगोंके साथ उठने-बैठनेसे कुछ बातें समझमें आती हैं जैसे—दलालोंके साथ रहनेसे यह समझमें आता है कि जब वे 'झज्जी' कहेंगे तो उसका अर्थ यह होगा कि वे रुपएमें टका दलाली चाहते हैं।

४. धोखा या भ्रमज्ञान : कभी-कभी हम किसी 'खड़-खड़'को समझ बैठते हैं कि चोर घुसा है, पर सचमुच वहाँ बिल्ली होती है।

५. किसी वस्तु या बातका न होना या अभाव : कभी जो वस्तु जहाँ होनी चाहिए वहाँ न हो तो हम समझ लेते हैं कि वह कहीं चली गई है या कहीं एक ठौरपर गई है या कोई उठा ले गया है जैसे—'बुद्धू-बुद्धू !' पुकारनेपर जब उत्तर न मिला तो रामदीनने समझ लिया कि वह घरपर नहीं है, कहीं गया है और शोभारामने समझ लिया कि वह खेत पर गया होगा।

६. अटकल (अनुमान) : अटकलसे भी हम कोई बात समझते हैं, जैसे—कहीं बहुतसे पच्छियोंको देखकर अटकल

लगा लेते हैं कि आस-पास कहीं पानी होगा, धुएँको देखकर अटकल लगा लेते हैं कि वहाँ आग भी होगी।

७. बराबरी (उपमान) : कभी-कभी कोई किसी उस जैसी वस्तुको दिखा या बताकर अर्थकी जानकारी कराते हैं, जैसे—'शुतुर्मुर्ग ऊँटके जैसा पक्षी होता है' कहनेसे समझ जाते हैं कि वह ऊँचा और लम्बे गलेवाला पक्षी होगा, जिसके पंख भी होंगे।

८. परिस्थितिसे : जैसे—नहाते समय कोई तेल माँगे तो हम समझ लेते हैं कि उसे सिरमें लगानेका तेल चाहिए, करैला छौंकने बैठे तो कड़वा तेल, लालटेन जलाने बैठे तो मिट्टीका तेल, बाहर जानेके लिये मोटरकार लेकर बैठे तो पेट्रौल और यदि गठियाके लिये माँगे तो महानारायण तेल चाहिए।

९. अपनेसे जान लेना (आत्म-संस्कार या इन्ट्यूशन) : कभी-कभी हम कोई बात अपने आप झटसे समझ जाते हैं, इसे आत्म-संस्कार कहते हैं, जैसे—अचानक यह समझ लेना कि अमुक मित्र आज आवेगा ही। पंछी और चौपाए अपना घर, थान, घोंसला, लीक, सब इसी संस्कारसे जान पाते हैं।

१०. एक बातसे दूसरा अर्थ निकालना (अर्थापत्ति)—कभी-कभी हम एक बातको सुन या देखकर दूसरी बात उससे समझ जाते हैं, जैसे—किसीने कहा कि 'यह मोटा देवदत्त दिनमें खाना नहीं खाता।' इससे हम समझ जाते हैं कि जब यह दिनमें नहीं खाता और मोटा भी है तो यह रातको खाता ही होगा। यह समझना 'अर्थापत्ति' कहलाता है। कुछ लोग इसे 'अटकल' या अनुमान भी मानते हैं, पर यह परिणाम है, अनुमान नहीं।

११. बान या अभ्यास : कभी-कभी सुनते-सुनते या देखते-देखते भी हम कुछ बात समझ जाते हैं, जैसे—किसी वैद्यके पास नौकरी करते-करते और रोगियोंको देखते-देखते हम किसी

रोगीको देखकर उसका रोग समझ जाते हैं या लड़के गंगा नहानेकी बान हो तो पैर उधर ही मुड़ जाते हैं।

बोलनेवाला, सुननेवाला, समझनेवाला—

§ ५८—**वक्तृ-संबोध्य-ज्ञातृभेदादर्थभेदाः । [बोलनेवाले, सुननेवाले, समझनेवालेके अर्थ अलग-अलग भी हो सकते हैं।]**

अर्थका फैलाव जाननेसे पहले यह भी समझ लेना चाहिए कि अर्थ कहाँ-कहाँ बैठकर कैसे चमकता है। कोई बोलनेवाला या लिखनेवाला किसी दूसरे सुननेवाले या पढ़नेवालेके लिये कुछ बोलता या लिखता है जिसे कभी-कभी पढ़ने या सुननेवाला तो ठीक नहीं समझता पर दूसरा, जिसके लिये वह बात नहीं कही गई, उसे समझ जाता है, जैसे—एक कवि-सम्मेलनमें एक कविजी अपनी बेढंगी कविता, बेसुरे गलेसे अलाप रहे थे। दर्शकोंमेंसे किसी चंटने पुकार लगाई—'वाह! क्या कहने! आपने तो तुलसीको भी पछाड़ दिया।' यह बात उस दर्शकने कविजीको कही थी जिसे बछियाके ताऊ कविजी समझे कि 'मेरी बड़ाई हो रही है, मेरी कविता सबको अच्छी लग रही है।' पर सभापतिजी और दूसरे लोगोंने समझ लिया कि दर्शकने छींटा कसा है, जिसका अर्थ यह है कि 'कविता बेढंगी है, आपको कविता कहनी नहीं आती।' समाजमें बहुत बार ऐसा होता है कि जिसे जो बात कही जाती है, वह तो समझता नहीं, दूसरे समझ जाते हैं। नाटकों और उपन्यासोंमें ऐसी बहुतसी बातें पात्रोंसे कहलाई भी जाती हैं इसीलिये अच्छे बोलने और लिखनेवाले सदा यह ध्यान रखते हैं कि हम किसके लिये बोल या लिख रहे हैं और इसीलिये वे बच्चों, सयानों, अपढ़ों, पंडितों सबके लिये एक ही बात अलग-अलग ढंगसे

कहते हैं और अलग-अलग ढंगसे सबके मनकी बात समझाते है। अपने मनकी बात दूसरेको जतानेके लिये हम कभी-कभी दुहरा काम भी करते हैं जैसे किसीको मूर्ख बनाते समय हम उससे कहते हैं—'तुम अभीतक दशाश्वमेध घाट नहीं गए? वहाँ एक योगी खड़ाऊँ पहनकर गंगाजीके जलपर चलनेवाले हैं।' यह कहते हुए हम अपने दूसरे साथीकी ओर आँख भी मार देते हैं, जिसका अर्थ यह है कि 'इसे बताना मत, बनने दो इसे मूर्ख।' हम लिखकर भी दूसरोंको अपने मनकी बात समझा सकते हैं। तो यह आँख-भौं चलाना, हाथ हिलाकर बुलाना, रोकना, नकारना, लिखना, बोलना सब संकेत ही हैं। इसीलिये हम सामने किए जा सकनेवाले संकेतोंसे ही अपने मनकी बात जताते हैं, मनके भीतर रहनेवाले संकेतोंसे नहीं। इससे यह समझा जा सकता है कि हम अपने मनकी बात संकेतसे ही समझाते हैं।

§ ५६—**संङ्केतेनार्थज्ञापनम्। [हम अपने मनकी बात भी दूसरोंको संकेतसे ही समझाते हैं।]**

कभी-कभी हमारी बोली हमारा पूरा साथ नहीं देती, इसलिये हम उसके साथ हाथ-पैर का संकेत भी जोड़ते चलते हैं या मुँहसे हूँ-हाँ करके उसके साथ मुँह-हाथका संकेत भी करते चलते हैं जैसे—हाथ फैलाकर कहना—'वह इतना मोटा है' या मुँह फाड़कर कहना—'वह ऐसे कर रहा था' या किसीकी चाल चलकर दिखाकर कहना—'वह ऐसे चल रहा था', 'हुँः' कहते हुए आँख चलाकर किसी कामको मना करना या किसीके कुछ कहनेपर मुँह सिकोड़ना, जिसका अर्थ यह है कि 'यह हमें अच्छा नहीं लगता।'

बने हुए चिह्न और लिखे हुए अक्षरसे भी अर्थ निकलता है— ऊपर यह भी बताया गया है कि बोलनेसे ही नहीं वरन् कुछ बनी हुई या खिंची हुई लकीरों या बने हुए अक्षरोंको देखकर भी हम कुछ समझते हैं, जैसे—बड़ासा लाल धन (+) का चिह्न देखकर हम समझ जाते हैं कि यह बीमारोंकी गाड़ी है या बीमारोंका अस्पताल है। अक्षरोंकी बात तो सब जानते ही हैं क्योंकि उसे लिखी हुई बोली ही समझना चाहिए।

स्फोटवाद

§ ६०—वाक्येऽथः। [वाक्यमें ही अर्थ होता है।]

हमारे यहाँ व्याकरण लिखनेवालों और शास्त्र लिखनेवालोंने अर्थकी बड़ी छानबीन करते हुए उसके साथ-साथ स्फोटकी चर्चा की है। स्फोट उसे कहते हैं जिसमेंसे अर्थ निकले (स्फुटति अर्थो यस्मात्)। कुछ लोग वर्णस्फोट मानते हैं और कहते हैं कि एक-एक वर्ण (अक्षर) से अर्थ निकलता है और इन अलग-अलग अर्थोंवाले वर्णोंसे ही शब्द (पद) बनता है। ये अभिहितान्वयवादी कहलाते हैं।

कुछ लोग पदस्फोट मानते हैं और कहते हैं कि वर्णसे नहीं वरन् शब्द या पदसे ही अर्थ निकलता है। ये लोग मानते हैं कि एक-एक शब्दके अर्थमें एक-एक वाक्यका अर्थ भी रहता है। ये लोग अन्विताभिधानवादी कहलाते हैं।

पर व्याकरणवाले इन बातोंको नहीं मानते। वे शब्दोंके इकट्ठे होनेभरको वाक्य नहीं मानते। वे कहते हैं कि वाक्य तो शब्दसे अलग अपनेमें पूरा निराला ही अर्थ देता है जब कि शब्दका अपना कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि संसारमें जितने भी लोग हैं वे सब अपनी बोलचालमें वाक्य ही काममें लाते हैं, शब्द नहीं।

महाभाष्यकार पंतजलिने स्फोटको शब्द और ध्वनिको शब्दका गुण माना है। इस ध्वनिको भी वे दो ढंगका मानते हैं--१. प्राकृत या मौलिक, जो स्वाभाविक और सदा रहनेवाली (नित्य) है और दूसरी २. वैकृत या बनावटी जो सदा नहीं रहती (अनित्य) है। हम पीछे बता आए हैं कि शब्द कुछ भी नहीं है। हम जिसे अपनी बोलीमें 'घोड़ा' कहते हैं उसे तमिळमें 'कुदरइ' कहते हैं। वहाँ घोड़ा कहनेसे उस चार पैरवाले जीवको कोई नहीं समझेगा जो हम समझाना चाहते हैं। इसलिये 'घोड़ा' शब्द वहाँ चाहा हुआ 'स्फोट' या अर्थ देनेवाला नहीं हुआ। यों कहिए कि किसी शब्दका अर्थ उसके सुननेवालेकी समझपर है। कभी-कभी तो यह होता है कि कई सुननेवाले अलग-अलग हुए तो उन्हें अर्थ भी अलग-अलग जान पड़ेंगे। ऊपर कवि-सम्मेलनमें बेढंगी और बेसुरी कविता पढ़नेवालेको 'भाई वाह ! क्या कहने' का एक अर्थ लगता है और दूसरोंको निन्दा लगती है। यहाँ स्फोट या शब्दसे तो कविजीकी बड़ाई है पर उसके छिपे हुए अर्थमें निन्दा भरी हुई है। यदि हम किसी अरबमें रहनेवालोंको संस्कृतमें गालियाँ देने लगें और अपना मुँह ऐसा बनाए रक्खें मानो हम उसकी बड़ाई कर रहे हों तो ऐसी दशामें स्फोट शब्द और ध्वनि दोनों बेकाम हो जाती हैं और हमारे मुखकी मुद्रा ही उस समय सच्ची या बड़ी हो जाती है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जब कोई बहुत काममें उलझा हुआ हो और अपने यहाँ आए हुए पाहुनोंको आवभगत न करके इतना ही कह देता है— 'थोड़ा बैठिएगा', इससे वह पाहुना तो बहुत बुरा मान जाता है पर सचमुच वह कहनेवाला उस पाहुनेका पूरा आदर करना चाहता है। एक राजा साहब तड़केके समय अपने सामने खड़े

हुए पाँच नौकरोंसे एक साथ कहते हैं—'ले आओ।' पाँचों अलग-अलग बाल्टीमें पानी, दाँतका मंजन, साबुन, नहानेका पीढ़ा और धोती-तौलिया ले आते हैं। इन पाँचोंको 'ले आओ' कहनेसे यह कैसे समझमें आ गया कि हमें क्या ले आनेको कहा गया है? पर जिनका जो काम पहलेसे बँधा हुआ है उसे समझकर ही वे 'ले आओ' का अर्थ लगा लेते हैं। कभी-कभी हम सड़कपर चलते जाते हैं और कोई पुकार देता है 'पंडितजी!' तो हम घूमकर उसकी ओर देखने लग जाते हैं मानो संसारमें एक हम ही पंडितजी हों। इसलिये कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक-सा नाम होनेसे हम उसे अपने लिये समझ बैठते हैं। यहाँ भी स्फोटका न तो अर्थ ही काम आता है न ध्वनि। कभी-कभी जब कोई चोर पुलिसके डरसे भागता है तो एक राह-चलतेके मुँहसे 'यही है' सुनकर समझने लगता है कि यह गुप्तचर होगा और मुझे ही संकेत कर रहा है। यहाँ पहलेसे मनमें बैठा हुआ डर इस भरमानेवाले अर्थको मनमें बैठा देता है, स्फोट और ध्वनि नहीं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बातचीत तो किसी दूसरेको लेकर हो रही है और हम उसे अपने सिर मढ़कर इसी सोचमें घुलने लगते हैं कि यह क्यों हमारे लिये ऐसी बात कर रहा है। इसलिये कभी-कभी हमारा अनाड़ीपन भी हमें बिना बातके ही एक ऐसा अर्थ समझा देता है जिसका हमसे कुछ लेना-देना नहीं। इसीके भीतर वह सब अयानपन भी आता है जिससे हम अनहोनी बातोंको भी मानकर मूर्ख बन जाते हैं। बेढबजीने एक डाक्टरसे कहा कि अमरीकामें एक मंजन तैयार हुआ है जिसे अपने बनावटी दाँतपर आप लगा लीजिए तो दाँत जम जायँ। डाक्टर साहब उसे सच समझ बैठे और लगे मंजनका ठिकाना पूछने क्योंकि उनके

मनमें यह बात तो बैठी ही हुई थी कि विज्ञान बड़ी अनहोनी बातोंको भी सामने दिखा रहा है इसलिये उन्होंने इसे भी सच्चा समझ लिया।

अर्थके इन बहुतसे ढंगोंको देखकर यह समझना दूभर न होगा कि नीचे लिखी बातोंसे ही किसी शब्दसे या बातसे अर्थ निकलता है—

१. सुननेवालेकी समझकी ढलनपर।
२. बान पड़ जानेपर।
३. किसी अवसर या परिस्थितिसे।
४. डरसे।
५. एक जैसा होनेसे।
६. अयानपन या अनाड़ीपनसे।
७. धाकसे।

यह बात नहीं है कि अर्थ इतने ही कारणोंसे निकलता हो, कभी-कभी जो शब्द जिस अर्थमें बँध गए हैं उन अर्थोंको बताते रहते हैं और कभी-कभी जब लोगोंको कोई अर्थ नहीं मिलता तो एक ही शब्दको बहुतसे कामोंके लिये लगा देते हैं, जैसे—बम्बइया हिन्दीमें टूटने, फूटने, सड़ने, गलने, बिगड़ने, मिट जाने, चुक जाने, फटने, जलने और मरनेके लिये 'खलास होना' शब्द काममें आता है। यों कहिए कि न होने, बिगड़ने और मिट जानेके लिये जितने शब्द होते या हो सकते हैं उन सबका काम 'खलास' से निकाल लेते हैं। इससे यही समझना चाहिए कि शब्दका चलन लोगोंके चलानेपर है। अच्छेसे अच्छा शब्द भी लोगोंके चलनसे निकल जानेपर मिट जाता है और बुरेसे बुरा शब्द भी जीभपर चढ़ जानेसे टिका रह जाता है।

स्फोट और ध्वनि—

भारतीय दर्शनोंमें जहाँ यह बताया गया है कि किन-किन बातोंके होनेसे कोई बात मानी जा सकती है वहाँ उन्होंने शब्दको भी साखी या प्रमाण माना है। वहाँ कहा गया है कि वह साखी या तो शब्दोंसे दी जाती है या बहुतसे शब्दोंसे बने हुए ऐसे वाक्यसे जिसके शब्द एक दूसरेके साथ मिलकर अर्थ बताते हों। यों तो मोटे ढंगसे यह माना जाता है कि शब्दोंके अर्थ बँधे-बँधाए होते हैं पर इस बातपर सब लोग एकमत नहीं है। कुछ लोग यह समझते हैं कि इस ढंगकी जो पुरानी बँधी-बँधाई बातें या अर्थ हैं वे सदासे चले आ रहे हैं और वे ईश्वरके बनाए हुए हैं। दूसरे लोग यह समझते हैं कि वे सदासे नहीं हैं, मनुष्यने बनाए हैं और मनुष्यने ही शब्दोंके अर्थ बाँधे हैं। यह कहा जाता है कि किसी शब्दका अर्थ भले आदमियों या भरोसा करनेके योग्य बड़े लोगोंके माननेपर ही है। जो वे अर्थ बतावें या जो अर्थ वे मानते चले आए हों वही ठीक मानना चाहिए। पर इसपर लोगोंने यह कहा कि सबसे बड़ा तो भगवान या ब्रह्म है और क्योंकि वेद ब्रह्मके शब्द हैं इसलिये वेदकी सब बातें सबसे बड़ी साखी हैं। पर मीमांसक लोग इसे नहीं मानते। वे तो शब्दको सदासे चला आता हुआ (नित्य) मानते हैं। वे कहते हैं कि शब्दकी सब ध्वनियाँ सदासे चली आ रही (नित्य) हैं।

स्फोट और ध्वनिका नाता—

पतञ्जलिने स्फोटको सदा रहनेवाला शब्द (नित्य शब्द), सदा रहनेवाला अर्थ (नित्य अर्थ) और सदा रहनेवाला नाता (नित्य सम्बन्ध) माना है और यह कहा है कि यह स्फोट ही

प्रतिभा या वह शक्ति है जो शब्दमें रहनेवाले अर्थको चमकाती चलती है। यही अर्थ चमकाने या अर्थ निकालनेकी शक्ति भरना 'ध्वनि' कहलाता है। व्याकरण लिखनेवाले मानते हैं कि 'शब्द ही अपने आप स्फोट और ध्वनिका मेल है। न स्फोटके बिना ध्वनि रह सकती है न ध्वनिके बिना स्फोट रह सकता है। स्फोट ही शब्द है और ध्वनि उसका गुण है, स्फोट ही आकाश है और ध्वनि उसका गुण है। इसलिये स्फोटको शब्द और ध्वनिको अर्थ समझना चाहिए।' इसे और भी समझाते हुए उन्होंने बताया है कि 'स्फोट ही सच्चा रूप (प्रकृति) है और ध्वनि ही उसकी पहचान (प्रत्यय) है। स्फोट ही ब्रह्म है और ध्वनि उसकी माया है। स्फोट है आत्मा और ध्वनि है शरीर, स्फोट है प्रतिभा और ध्वनि है ज्ञान, स्फोट है न दिखाई देनेवाला (परोक्ष) और ध्वनि है दिखाई देनेवाली (प्रत्यक्ष), स्फोट है छोटेसे भी छोटा अंश (परमाणु) और ध्वनि है अणु, स्फोट है कभी न मिटनेवाला (अक्षर) और ध्वनि है मिटनेवाली (क्षर), स्फोट है सदा रहनेवाला (नित्य) और ध्वनि है सदा न रहनेवाली (अनित्य)।' इसलिये पतञ्जलिने स्फोट और ध्वनि दोनोंको शब्द कहा है और इस स्फोट रूपवाले शब्दको समझाते हुए वे कहते हैं कि वह 'नित्य, कूटस्थ और अविकारी है' या यों कहिए कि उसमें कोई कमी नहीं होती, उसमें कुछ जुड़ता नहीं, उसमें कोई बिगाड़ नहीं होता और वह कभी मिटता नहीं।

स्फोट और ध्वनिमें भेद—

स्फोट और ध्वनिमें भेद बताते हुए व्याकरण लिखनेवालोंने कहा है कि स्फोट कारण है और ध्वनि कार्य है। जो कानसे सुना जाय वह ध्वनि होती है जैसे—घोड़ा शब्द मुँहसे

निकलनेपर यह दो अक्षरोंकी ध्वनि फूटी और दूसरेको सुनाई दी। यह तो ध्वनि है, पर सुननेवालेने यह शब्द सुनते ही अपने पहलेके ज्ञान या बुद्धिसे एक चार पैरका वेगसे चलनेवाला जीव समझ लिया। यह समझमें आनेवाला अर्थ ही स्फोट है। पतंजलिका कहना है कि अर्थ-ज्ञानके लिये दोनों चाहिए। इसे हम यों समझा सकते हैं कि कोई बोलनेवाला जब घोड़ा कहता है तो उसकी बुद्धि या समझमें जो घोड़ेका रूप बैठा हुआ है वह 'घोड़ा' शब्द कहलाता है, वहाँ 'घोड़ा' शब्द ही स्फोट है और वह उसके मुँहसे कही जानेवाली 'घोड़ा' ध्वनिका कारण है। सुनते समय सुननेवाला उस कहनेवालेकी 'घोड़ा' ध्वनिको सुनता है और तब यह ध्वनि सुननेवालेकी बुद्धिमें बैठे हुए घोड़ेके स्फोटको या शब्दके अर्थको प्रकट करता है और इस प्रकट किए हुए स्फोटसे ही अर्थ जाना जाता है। व्याकरणवाले लोग मानते हैं कि वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ बतानेवाले वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक शब्द या उनमें रहनेवाली जातिको ही स्फोट कहते हैं या यों कहिए कि वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक शब्द ही स्फोट हैं। ध्वनि और स्फोटपर हमारे यहाँ बहुत झौं-झौं हुई है। इसलिये हमें उस फेरमें नहीं पड़ना चाहिए।

वाक्य स्फोट ही ठीक है—

वैयाकरणोंने १. वर्ण-स्फोट, २. पद-स्फोट, ३. वाक्य-स्फोट ४. अखंड पदस्फोट, ५. अखण्ड वाक्य-स्फोट, ६. वर्ण-जाति-स्फोट, ७. पदजातिस्फोट, ८. वाक्यजातिस्फोट, इन आठोंमें वाक्यस्फोटको ही सबसे सच्चा और ठीक माना है। भट्टोजि दीक्षित, कौण्ड भट्ट, नागेश, श्रीकृष्ण, मण्डन मिश्र शंकराचार्य

और भरत मिश्र आदि सभीने यह माना है कि स्फोटवाद ही ठीक मत है जिसमें वाक्यस्फोट सबसे पक्का और सच्चा है।

अर्थ वाक्यसे ही क्यों निकलता है ?—

पर अब समझनेकी बात यह है कि अर्थ निकलता ही क्यों है? हमारे यहाँके व्याकरण लिखनेवाले लोगोंने यह माना है कि पदसे या शब्दसे अर्थ नहीं निकलता, वाक्यसे ही निकलता है, इसलिये वाक्य ही सत्य है। यह कहकर उन्होंने वाक्यका अर्थ छः प्रकारसे साधा है। वे हैं—प्रतिभा, संसर्ग, संसर्गके कारण, विशेषार्थक किन्तु निराकांक्ष पदार्थ, संश्लिष्ट अर्थ, क्रिया, प्रयोजन। हम पहले ही बता आए हैं कि हम जो भी कुछ कहते हैं वाक्यमें ही कहते हैं और वाक्यमें ही उसका अर्थ समझते हैं इसलिये जो अर्थ निकलता है वह वाक्यसे ही निकलता है।

शब्द और अर्थका क्या नाता है ?—

मीमांसावालोंका कहना है कि जिस बातको हम नहीं जानते हैं उसे जना देने । । बता देनेका काम शब्द करत है, इसलिये वह पक्का और अमिट साखी (स्थायी प्रमाण) है। उसे मनवानेके लिये या ठीक जतानेके लिये किसी दूसरे सहारेकी चाह नहीं रहती इसलिये वह पक्का और अपने आप सधा हुआ (स्वतःसिद्ध) है। यह शब्द, बनावटी या अललटप्प हाथ पैर चलाकर समझानेवाला संकेत-भर नहीं है, यह सच्चा स्वाभाविक है। इसलिये यह बिना रुकावटका और बिना मिलावटका (अव्यतिरेक और अव्यभिचारि सत्य) है। जैमिनिने कहा है कि शब्द और अर्थ दोनोंका नाता सदासे अमिट (नित्य) है। शब्द होगा तो अर्थ भी होगा और

अर्थ होगा तो शब्द भी होगा और जब उन दोनोंका नाता अमिट है तो उसके बतानेवाले और बताए गए (बोधक-बोध्य-संबंध) का नाता भी अमिट और सीधा है। जैमिनिने अपने आप ही अपनी इस बातपर छः अड़ंगे खड़े किए और उन सबका उन्होंने अपने-आप उत्तर देकर अपनी बातको पक्का किया है। वे अड़ंगे ये हैं—

१. कुछ लोग (गौतम और कणाद) कहते हैं कि शब्द एक बोलनेका ढंग-भर ही तो है जो क्षणभर रहता है और मुँह या जीभको एक ढंगसे चलाने-हिलानेसे निकलता है। इसलिये किए जानेवाले (क्रियमाण) शब्दके बोले जानेसे पहले वह शब्द नहीं रहता है, बोलनेके पीछे समझमें आता है। उसके लिये कुछ करना नहीं पड़ता। पर वह सदा बना रहता है इसलिये बताए हुए या किए हुए (क्रियमाण) और क्षणभर रहनेवाले (अनित्यका) आपसमें क्या नाता हो सकता है?

२. शब्द तनिक भी ठहरनेवाला (स्थिर) नहीं होता है। उसे देखनेसे जाना जाता है कि शब्द पहले क्षणमें उपजता है, दूसरेमें रहता है और तीसरेमें मिट जाता है।

३. लोग कहते हैं कि 'शब्द मत करो'। इससे समझमें आता है कि शब्द मनुष्यने बनाया है, इसलिये वह सदा रहनेवाला (नित्य) कैसे हो सकता है?

४. एक ही शब्दको एक ही ठौरपर बहुतसे लोग बोलते और सुनते हैं, यदि शब्द एक और नित्य होता तो एक साथ बहुतसी ठौरपर कैसे बोला जा सकता था?

५. व्याकरण और बोलियोंको देखनेसे जान पड़ता है कि सब शब्द कुछ न कुछ बिगड़कर वाक्यमें पहुँचते हैं। पर

पर शब्द तो नित्य होता है उसमें बिगाड़ हो ही नहीं सकता क्योंकि जो वस्तुएँ नित्य हैं उनमें बिगाड़ या विकृति नहीं होती।

६. शब्द ऊँचा और नीचा सुना जाता है। बोलनेवाले बहुत हों तो शब्द बढ़ जाता या ऊँचा हो जाता है, कम हों तो नीचा या कम हो जाता है। तो जिसमें इस प्रकारका घटना-बढ़ना हो वह नित्य कैसे हो सकता है?

इसका उत्तर देते हुए जैमिनिने ही कहा है कि—

१. नित्य और निराकार शब्द भी बोलनेसे पहले कौन जानता है। पर वह रहता तो है ही, इसलिये वह नित्य ही है।

२. कोई शब्द मिटता नहीं है। वह रहता तो जैसेका तैसा है, बस सुननेमें नहीं आता, इसलिये वह नित्य ही है।

३. 'शब्द करो' या 'शब्द न करो' जब कहा जाता है तब वह ध्यान दिलाने के लिये कहा जाता है, शब्दके लिये नहीं।

४. जैसे एक सूर्य एक ही समय बहुत स्थानोंपर देखा जाता है, वैसे ही एक नित्य वर्त्तमान शब्द बहुत स्थानोंपर कहा और सुना जा सकता है।

५. व्याकरणमें जो शब्दमें बिगाड़ बताया जाता है वह बिगाड़ नहीं है, उसमें तो दोनों शब्द अलग-अलग रहते हैं, इसीलिये उन्हें बिगाड़ या विकृति नहीं समझना चाहिए।

६. ऊँचा या नीचा बोलनेसे शब्द नहीं, वरन् स्वर ही घटता या बढ़ता है।

अर्थ की छानबीनमें तीन बातें—

आचार्य अर्टेलने कहा है कि अर्थकी छानबीनमें तीन ही बातें आती हैं—

१. किसी भाषामें वहाँके लोगोंको मनकी बात और उनके सोच-विचारको किन सहारोंसे बतलाया जाता है?

२. शब्दका एक साँचा कितने अर्थ बता सकता है ?

३. एक अर्थ कितने अलग-अलग रूपोंमें आ सकता है ?

मन, बुद्धि, समाज और प्रसंग या परिस्थितिका अध्ययन भी अर्थ-परीक्षामें आवश्यक हैं—

पर आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि अर्थकी छानबीनमें इतनी ही बातें नहीं आती। उसमें हमें मनुष्यके मनकी, उसकी समझकी और जिन लोगोंके साथ वह रहता है उनकी और जिस मेलमें बात कही गई है उसकी भी छानबीन करनी पड़ती है। सच पूछिए तो हमारे यहाँ व्याकरण लिखनेवालों और मीमांसावालोंने जैसे फैलावके साथ अर्थकी छानबीन की है वैसी योरोपमें नहीं हुई है।

निरुक्त और व्याकरणका अर्थ-विचार हमारे कामका नहीं—

हमारे यहाँ निरुक्त और व्याकरणमें भी अर्थकी छान-बीन हुई है पर में निरुक्त शब्दोंका ही ब्यौरा दिया गया है कि वेदमें आनेवाले शब्द कैसे बने और किस अर्थमें कहाँ काममें आए और व्याकरणमें यह बताया गया है कि शब्द कैसे बनते हैं और वे किस क्रम या किस रूपमें वाक्यमें बैठाए जाते हैं। इसीलिये वे दोनों ही अर्थकी छानबीन नहीं करते। यह काम तात्पर्य-परीक्षा (साइंस आफ मीनिंग) का है।

अर्थकी पहचान, या अर्थ कैसा होता है ?—

भर्तृहरिने वाक्यपदीय नामकी अपनी पोथीमें 'अर्थको पहचान' पर जो बारह मत पहलेसे चले आते थे उन्हें गिनाया है, जो ये हैं—

१. अर्थकी कोई बनावट (आकार) नहीं होती।

२. अर्थकी एक बनावट (आकार) होती है।

३. अर्थ बहुतसे रूपों या आकारोंको मिलाकर बनता है अर्थ अवयवी है।

४. अर्थ झूठा और सदा न रहनेवाला (असत्य और अनित्य) है और वह वस्तुओंकी जाति, गुण या क्रियाके मेल (संसर्ग) के रूपमें होता है।

५. अर्थ तो झूठ जैसा जान पड़नेवाला सत्य है।

६. अर्थ धोखा या झूठे ज्ञान (अध्यास) के रूपवाला है।

७. अर्थमें सब शक्ति नहीं है।

८. अर्थ सदा बदलनेवाला (परिवर्त्तनशील) है।

९. अर्थमें सब शक्ति है।

१०. बुद्धिसे समझा जानेवाला (बौद्ध) ही अर्थ है।

११. अर्थ बुद्धिसे भी समझा जाता है और बाहरसे भी।

१२. अर्थ बँधा हुआ (निश्चित) नहीं है।

यह सब गिनाकर भर्तृहरिने बताया है कि बोलनेवाला जब कुछ कहता है तब वह अपनी समझमें उसका जो अर्थ ठीक समझता है वही अर्थ लगाकर बोलता है, पर सुननेवाले सब अपनी-अपनी समझके सहारे उसका अलग-अलग अर्थ समझते हैं। यही नहीं कि लोग अपनी जानकारी (ज्ञान) और पहलेसे बने हुए अपने समझनेके ढंग (वासना) के अलग-अलग होनेसे एक ही देखी हुई वस्तुको अलग-अलग समझते हैं, वरन् समय और अवस्था अलग होनेसे भी एक ही मनुष्य एक ही वस्तुको अलग-अलग रूपोंमें देखने लगता है। इससे भर्तृहरिने यह बात समझाई कि मनुष्य सब कुछ नहीं जानता। उसकी जानकारी अधूरी और बेढंगी होती है इसलिये वह जो कुछ बोलता है, वह भी बेढंगा, भूलोंसे भरा हुआ और अधूरा होता है। भर्तृहरि और

पुण्यराजने अर्थकी पहचानके लिये कुछ और भी नई बातें सुझाई हैं। वे कहते हैं कि अर्थका कोई बँधा हुआ रूप नहीं है। बोलनेवाला जैसे अपने शब्दोंका अर्थ समझाता है वही उसका अर्थ है। यहाँतक कि एक शब्दको एक बोलनेवाला एक ढंगसे काममें लाकर एक बात कहता है, दूसरा बोलनेवाला उसी शब्दको दूसरे ढंगसे काममें लाकर दूसरा अर्थ बता देता है। इन्होंने यह भी बताया है कि शब्द कभी अपने अर्थके रूपको नहीं छोड़ते, वे तो दूर-दूरसे अर्थका संकेत भर कर देते हैं। भर्तृहरि और हेलाराजने यह भी कहा है कि शब्दसे ही अर्थ फैलता है और उसीसे अर्थकी जानकारी होती है, यहाँतक कि आँख मारकर (अक्षि-निकोचसे) भी जो अर्थ बताया जाता है वह भी शब्दके ही सहारे होता है। पर हम भर्तृहरिकी यह बात नहीं मानते। हमने संकेतोंके अर्थ लगा तो लिए हैं, पर ये संकेत भी शब्दोंके सहारे बने हों यह बात नहीं है। भर्तृहरिने यह भी कहा है कि अर्थ तो अटकल भर (काल्पनिक) है या यों कहिए कि किसी व्यक्तिकी अटकलसे अर्थ निकलता है, वह सच्चा नहीं है, इसलिये शब्दका अर्थ झूठा होता है। साथ ही भर्तृहरिने यह भी कहा है कि अर्थ बदलता रहता है और बोलनेवाले जिस काम (उद्देश्य) से उसे चलाना चाहते हैं, वही उसका रूप हो जाता है।

तीन प्रकारके अर्थ—

सीरदेवने परिभाषावृत्तिमें कहा है कि अर्थको तीन प्रकारका समझना चाहिए—

१. चलता या लौकिक अर्थ : यह अर्थ कभी शब्दमें नहीं रहता या यों कहिए कि जिस बातको सुननेसे किसी काममें लगाव (प्रवृत्ति) या खिंचाव (निवृत्ति) होती है, उसीको अर्थवाला

शब्द कहते हैं और यह लगाव या खिंचाव वाक्यमें ही होता है, इसलिये किसी वाक्यके कहनेसे जो समझा जाय वही लौकिक अर्थ है।

२. शब्दोंको अलग-अलग तोड़कर, उनका आपसी नाता जोड़कर जो अर्थ समझा जाय उसको अन्वय-व्यतिरेक-समधिगम्य अर्थ कहते हैं। इससे यह जान लिया जाता है कि जो बात कही गई है उसके शब्दोंमें कितना अर्थ उनका अपना है और कितना अर्थ उनमें जुड़े हुए प्रत्ययोंका।

३. प्रतिज्ञा-ज्ञापित अर्थ वह है जो न तो लोगोंमें चलता है और न जिसको तोड़-जोड़कर ही समझा जा सकता है वरन् जिसे बड़े-बड़े आचार्योंने किसी एक अर्थमें समझा या पढ़ा है।

अठारह प्रकारके अर्थ—

भर्तृहरिने ऊपर जो बहुतसे विचार किए हैं उन्हें ठीक ढङ्गसे समझाते हुए पुण्यराजने अठारह प्रकारके अर्थ बताए हैं। वे ये हैं—

१. वस्तुमात्र या बाहरी रूप : जब हम किसी वस्तुको समझाना न चाहते हों पर उसका रूपभर दिखा देते हों वह वस्तुमात्र होता है जैसे किसीको ग्रामोफ़ोन दिखाकर कहना—'यह उठा लाओ तो वह 'वस्तुमात्र' अर्थ जानेगा, उसका नाम या काम कुछ नहीं जानेगा।

२. अभिधेय : जब बाहरी अर्थ ऐसा बन जाय कि उसे समझाना पड़ जाय तब वह अभिधेय (बोध्य या वाच्य) कहलाता है जैसे 'काला घोड़ा लाओ।'

३. शास्त्रीय : वह अर्थ जो शास्त्रोंसे समझाया जाय।

४. लौकिक : जो लोगोंकी बोल-चालमें समझा जाता हो।

५. विशिष्टावग्रहसम्प्रत्ययहेतु : जो अर्थ किसी बनावटी ढंगसे

सामने दिखाया जाय और झूठेको भी सच्चेके समान सामने लाया जाय, जैसे—नाटकमें कंसका मारा जाना और कहना कि 'कृष्ण कंसको मार रहे हैं।' यहाँ नाटकके झूठे रूपमें एक पुरानी सच्ची बात लाकर दिखाई गई है इसलिये 'कंसको अब मार रहे हैं' यह अर्थ विशिष्टावग्रहसंप्रत्यय-हेतु कहलाता है।

६. वास्तविक : जैसे धौली गाय, जो ज्योंकी त्यों सचमुच हमारे सामने ही है।

७. मुख्य : अभिधा शक्तिसे जो अर्थ समझमें आवे उसे मुख्य अर्थ कहते हैं।

८. परिकल्पित-रूप-विपर्यास : जिसमें कोई शब्दका सच्चा या चलता हुआ अर्थ जान-बूझकर कोई नया अर्थ निकालनेके लिये बदल दिया जाय, जैसे—'वह बैल है।' यहाँ बैलका अर्थ तो हल चलानेवाला, गौका जाया, सींग पूँछवाला चौपाया होता है पर बोलनेवालेने मूर्खके अर्थमें इसे चलाया है। इसलिये लक्षणा और व्यञ्जनासे जो अर्थ निकाले जाते हैं वे सब परिकल्पित-रूप-विपर्यास (अपने मनसे किए हुए किसी अर्थके उलट-फेर वाले) अर्थ होते हैं।

९. व्यपदेश्य : जिसका ब्यौरा दिया जा सके, जैसे—संसारकी सभी वस्तुएँ।

१०. अव्यपदेश्य : अपनी इन्द्रियोंसे जो न जाना जा सके उस अर्थको अव्यपदेश्य कहते हैं जैसे ब्रह्म।

११. सत्त्वभावापन्न : जो वस्तुएँ हैं (सत्), उनकी जानकारी जिससे हो सके उस अर्थको सत्त्वभावापन्न कहते हैं।

१२. असत्त्वभूत : जो वस्तुएँ नहीं हैं उनको जानकारी जो अर्थ कराता है वह असत्त्वभूत होता है।

१३. स्थिरलक्षण : जो अर्थ सदा एक-सा रहे और उसमें कभी उलट-फेर या अदल-बदल न हो।

१४. विवक्षा-प्रापित-सन्निधान : जब कोई अर्थ बोलनेवालेकी इच्छापर समझमें आवे वह विवक्षा-प्रापित-सन्निधान कहलाता है। यह अर्थ बदलता रहता है और कभी पक्का नहीं होता, अनिश्चित होता है।

१५. अभिधीयमान : जो अर्थ सामने बताया जाय जैसे 'रामका घोड़ा' यह अभिधीयमान है।

१६. प्रतीयमान : जो अर्थ व्यंजना या ध्वनिसे समझा जाय उसे प्रतीयमान कहते हैं।

१७. अभिसंहित : जब किसी शब्दसे किसी जाति या व्यक्तिकी सीधी-सीधी जानकारी होती है तब वह अर्थ अभिसंहित होता है।

१८. नान्तरीयक : वह अर्थ, जो अपने आप किसीकी जानकारीके साथ लगा रहता है उसे नान्तरीयक अर्थ कहते हैं। जैसे 'मेरी गौ' कहनेसे उसके धौले, काले, पीले या लाल रंगकी भी जानकारी हो जाती है।

चार प्रकारके अर्थ—

पतञ्जलिने शब्द और अर्थको एकमें ही मिला-जुला मानकर शब्दमें दो छाया बताई हैं—एक तो शब्दका रूप और दूसरे उससे समझी जानेवाली बात या उसका अर्थ, जैसे—किसीने कहा—'चाल शब्द चलनेसे बना है।' यहाँ 'चाल' शब्द जो आया है वह शब्दके रूपमें आया है, 'चलनेके ढंग' के लिये नहीं। पर जब हम कहते हैं—'उसकी चाल अच्छी नहीं है' तब यहाँ हम 'चाल' शब्दसे उसके 'चलनेका ढंग' समझते हैं।

पतञ्जलि कहते हैं कि शब्द सुनते ही पहले उस शब्दका रूप जाना जाता है और फिर उसका अर्थ। यदि शब्द ठीक न सुना जाय तो अर्थ भी नहीं निकलता। उन्होंने चार प्रकारके अर्थ माने हैं—१. जाति : जैसे 'गौ' कहनेसे गौ जातिका जीव समझा जाता है; २. गुण : जैसे 'काली' कहनेसे गायका गुण समझा जाता है; ३. क्रिया : जैसे 'चलना' कहनेसे चलनेका काम (क्रिया) जाना जाता है; और ४. द्रव्य : जैसे 'कमल' और 'राम' कहनेसे द्रव्य या व्यक्ति समझाता है।

चार प्रकारके शब्द और अर्थ—

चरकने अपने ग्रन्थके विमान-स्थानमें शब्दको चार ढंगका बताया है; १. दृष्टार्थ : जिसका अर्थ दिखाई पड़े, जैसे—अग्निमें यह बात हमें दिखाई पड़ती है कि अग्नि हमें जलाती है; २. अदृष्टार्थ : जिसका अर्थ न दिखाई पड़े, जैसे—'काशीमें प्राण छोड़नेसे मुक्ति मिलती है', यह मुक्त होना दिखाई नहीं पड़ता; ३. सत्य शब्द : वह शब्द जिसे सब मान सकें, जैसे त्रिफला खानेसे पेट ठीक रहता है; ४. अनृत शब्द या झूठ अर्थ देनेवाला, जैसे—'सूर्य पश्चिममें निकलता है।'

चार प्रकारके अर्थ—

आई०ए० रिचार्ड्सका कहना है कि अर्थ चार ढंगके होते हैं—

"हम लोग जो कुछ बोलते हैं उसमेंसे बहुतसे भागको हम चार ढंगसे समझ सकते हैं—१. सेन्स या बात अर्थात् वह क्या कहना चाहता है? २. फ़ीलिंग या भावना ३. टोन या काकु या बोलनेका ढंग ४. इन्टेन्शन या उद्देश्य अर्थात् वह क्यों कह रहा है?

१. सेन्स : या बातका अर्थ यह है कि हम ये किसी काम या किसी बातपर सुननेवालेका ध्यान लगानेके लिये बोलते या

मुँहसे शब्द निकालते हैं जिससे कि उसके सोचने-समझनेके लिये कुछ बातें आगे रक्खें और उसके मनमें उन बातोंके लिये कुछ उथल-पुथल मचा दें।

२. भावना : पर हम दूसरेको जो काम या जो बातें दिखाना या बताना चाहते हैं उनके लिये हमारे मनमें भी कुछ बातें पहलेसे बँधी हुई हैं। दूसरेको हम जो बताना चाहते हैं उसके लिये हमारे मनमें एक निराले ढंगका झुकाव या यों कहना चाहिए कि हमारी अपनी लगनका एक अपना रंग रहता है और हम उस अपने मनकी भावना या झुकावके (रुचिके) उस ढंगको प्रकट करनेके लिये भाषा या बोली काममें लाते हैं।

३. टोन या काकु : कुछ कहने या बोलनेवाला सदा सुननेवालेसे एक अपने ढंगका नाता जोड़ लेता है। वह जानता है कि किस ढंगसे या किस ढंगकी बातचीत करके सुननेवालेसे अपनी बात मनवा लेनी चाहिए। उसके सुननेवाले जिस ढंगके होते हैं उस ढंगसे वह अपनी बोलीके लिये शब्द चुनता है और उसी ढंगसे शब्दोंको अपनी बोलीमें आगे-पीछे सजाता लचता है। यह काम या तो वह सुननेवालोंको अच्छे ढंगसे समझकर जानबूझ कर करता है या यह शब्दोंका निराला चुनाव और सजाव अपने आप होता जाता है। यह बात अर्थात् बोलनेवालेके बीच क्या नाता है इसे बोलनेवालेके बोलनेके ढंग या काकुसे जाना जा सकता है अर्थात् बोलनेवालेकी बातचीतके ढंगसे, उसके स्वरके उतार-चढ़ावसे, उसकी बोलीमें आए हुए शब्दोंके चुनाव और सजावसे हम समझ जाते हैं कि बोलनेवालेका सुननेवालेसे किस ढंगका नाता है।

४. उद्देश्य या इन्टेन्शन : बोलनेवाला जो कुछ कहता है (बात या सेन्स) या जो कुछ वह कह रहा, है उसके लिये उसके

अपने जीकी बात (भावना या फ़ीलिंग) और सुननेवालेसे जो उसका नाता है उनके सहारे बनी हुई उसके स्वरकी लचक (काकु या टोन) के साथ-साथ वक्ता या बोलनेवालेका कुछ उद्देश्य भी होता है जिसे वह, जाने या अनजाने, सुननेवालेपर जमाना चाहता है। बोलनेवाला किसी न किसी उद्देश्यके लिये ही बोलता है और यही उद्देश्य उसकी बोलीको ढालता और सँभालता चलता है। इसी उद्देश्यको समझना ही उस बोलनेवालेकी कही हुई बातके अर्थको समझनेके पूरे कार्यका एक अंग है और जबतक हम यह न जान लें कि वह क्या समझानेका जतन कर रहा है तबतक हम यह नहीं समझ सकते कि वह क्या कह रहा है क्या नहीं; ठीक भी कह रहा है या नहीं। यह भी हो सकता है कि वह अपने मनकी बातको कह ही देना भर चाहता हो, उसे खोलकर या समझा कर न बताना चाहता हो। यह भी हो सकता है कि जो कुछ उसके मनमें है उसे पूरे शब्दोंमें न कहकर वह उसपर अपने मनकी भावना ही 'छिः' या 'वाह' कहकर जतला दे। यह भी हो सकता है कि सुननेवालेसे उसका जो नाता है और उसके लिये उसके मनमें जो रीझ या खीझ है उसीको कुछ शब्दोंमें कह दे जैसे दुलारकी बोलीमें 'लल्ला, मुन्ना' या गालीकी बोलीमें 'सूअर, गधा'। यह देखा जाता है कि जब कोई किसी उद्देश्यसे कुछ कहता है तो उसका उद्देश्य कुछ और भी दूसरी क्रियाओं या चेष्टाओंका सहारा लेकर चलता है, पर वह जो प्रभाव डालना चाहता है वह उसका अपने निराले ढंगका होता है, जैसे—बोलनेवालेका यही उद्देश्य हो सकता है कि किसी बातको समझानेके लिये जो बातें कही जायँ उनमें इन-इन बातोंपर बल दिया जाय या उन सब बातोंको एक निराले ढंगसे

सजाया जाय। यह भी हो सकता है कि वह 'कहीं यह न मान लिया जाय' या 'मिलानके लिये' आदि बात कह-कहकर अपने उद्देश्यकी ओर सुननेवालेका ध्यान खींच ले। इसलिये यह उद्देश्य किसी पूरी कहानी या पूरी बातको ही अपनी मुट्ठीमें किए रहता है और जैसा चाहता है वैसा चलाता है और यह तभी अपने पूरे बलसे काम करता है जब बोलनेवाला अपनेको छिपाए रखना चाहता हो।"

"ऊपर दी हुई बातको हम इस ढंगसे समझा सकते हैं: एक आदमी कोई विज्ञानका लेख लिख रहा है, दूसरा चुनावकी खींचातानी पर व्याख्यान तैयार कर रहा है। इनमेंसे विज्ञानपर लिखनेवाला तो पहले ही अपनी बात बता देगा, पर चुनावके चक्करमें पड़ा हुआ लेखक अपनी ठेठ बात न कहकर उद्देश्यको ही बार-बार ला अड़ानेका जतन करेगा। विज्ञानपर लिखनेवाला जिस विषयपर लिख रहा है, उसके लिये उसके मनमें क्या भावना है, इसे छिपाकर उसके लिये सीधे-सीधे ढंगसे अपनी बात कहेगा; पर चुनावके झमेलेमें पड़ा हुआ लेखक कारण बतावेगा, 'क्या' और 'क्यों' समझावेगा, दूसरे जो लोग खड़े हैं उनकी बुराई दिखलावेगा और इस ढंगसे अपने उद्देश्यको ही चमकाता रहेगा। वैज्ञानिक तो सीधे-सादे ढंगसे बँधे-बँधाए शब्दोंमें अपनी बात लिख देगा पर चुनाववाला तो अपनी बातमें ऐसी झोंक भर देगा कि सुननेवाले दूसरोंको छोड़कर उसीको अपना लें। इससे यह समझना चाहिए कि हम जो कुछ भी कहते हैं उसमें यह देखना चाहिए कि क्या बात कही जा रही है? कहनेवालेकी उस बातके लिये अपने मनमें क्या रीझ-खीझ है? वह किस ढंगसे स्वरको उतार-चढ़ाकर या शब्दोंको चुन और सजाकर बात कहता है? और सबसे बड़ी बात यह है कि वह किसलिये या किस

उद्देश्यसे वह बात कह रहा है ? तो हमें किसी भी बातमें ये चार ढंगके अर्थ देखने चाहिएँ ।"

आचार्य चतुर्वेदीका मत—

§ ६१—**संकेतोद्भवबौद्धसत्यानृतसंदिग्धपरिवर्त्तनशीलार्थाः वक्तृसम्बोध्यबुधाश्रिताश्च ।**

[संकेतसे निकलनेवाला अर्थ बुद्धिसे समझा जाता है; सच्चा, झूठा, सन्देहभरा और बदलता रहनेवाला होता है; बोलने, सुनने और समझनेवालोंकी सूझ-समझपर ढलता चलता है ।]

ऊपर दिए हुए लंबे-चौड़े झगड़ोंको छोड़कर इतनी ही बात समझ रखनी चाहिए कि अर्थ संकेतसे निकलता है, यह संकेत चाहे जिस प्रकारका हो। पर यहाँ हम बोलियोंकी छान-बीन कर रहे हैं इसलिये लिखे हुए या बोले हुए शब्द और वाक्यके अर्थकी ही हम यहाँ छानबीन करेंगे । ऊपर बहुतसे आचार्योंका जो पचड़ा दिया हुआ है उसे भूलकर इतना ही समझ रखिए कि जो बुद्धिसे समझा जाय वही अर्थ होता है क्योंकि अर्थ समझनेकी बात है और यह समझना बुद्धिसे ही हो सकता है। ये समझे जानेवाले अर्थ सच्चे भी होते हैं, झूठे भी होते हैं और सन्देहभरे भी होते हैं, यह हम पीछे समझा आए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अर्थ बदलते रहते हैं और इसीलिये हम आगे यह समझावेंगे कि अर्थोंमें यह हेरफेर कैसे और क्यों होता है। साथ ही यह भी समझ रखना चाहिए कि बोलनेवाला एक बात समझ कर या एक बात मनमें लेकर कुछ कहता है, सुननेवाले या पढ़नेवाले अपनी समझकी ढलनपर उसे या तो ठीक ज्योंका त्यों या कुछ दूसरा ही समझ बैठते हैं और तीसरे ऐसे बड़े-बड़े

पण्डित और धक्काड़ होते हैं जो अपनी अनोखी सूझ बूझसे ऐसा नया नया अर्थ निकालते हैं जो न तो कहनेवालेने चाहा था न सुननेवालेने समझा था, पर इन समझनेवालोंने अपनी नई सूझ-बूझ और पण्डिताईके बलपर नये अर्थ निकाल डाले। इसलिये बोलने, सुनने और समझनेवालोंकी समझ या बुद्धिपर ही अर्थ ढलता चलता है। यही आचाय चतुर्वेदीका मत है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—संकेतसे ही अर्थ निकलता और जाना जाता है।

२—अर्थकी छानबीनको तात्पर्य-परीक्षा कहना चाहिए।

३—इन्द्रियाँ जिस बातसे कुछ समझ जायँ या जान जायँ वही संकेत है, इसलिये बोली भी संकेत है।

४—जो अर्थ समझे जाते हैं, वे कभी सच्चे, कभी झूठे और कभी सन्देहभरे निकलते हैं।

५—बुद्धिका सहारा लिए बिना अर्थ नहीं जाना जाता।

६—बोलनेवाले, सुननेवाले और समझनेवाले तीनोंके समझे हुए अर्थ अलग-अलग भी होते हैं।

७—हम भी अपने मनकी बात दूसरोंको संकेतसे ही समझाते हैं।

८—वाक्यमें ही अर्थ होता है, वर्ण या शब्दमें नहीं।

९—अर्थ बदलता रहता है और बोलने, सुनने और समझनेवालेकी समझके सहारे ढलता चलता है।

———

८

क्या अर्थ भी बदलते चलते हैं?

अर्थमें उलट-फेरकी जाँच

नई सूझ-बूझसे भी अर्थ निकाले जाते हैं—बुद्धि-नियम एक ढोंग है—बुद्धिके सहारे अर्थमें हेरफेर होनेके ये नियम हैं: विशेष भाव, भेदीकरण, उद्योतन, विभक्ति-शेष, भ्रम, उपमान, नया लाभ और लोप—अर्थमें हेरफेर इतने ढंगके होते हैं: अच्छेका बुरा होना, बुरेका अच्छा होना, छोटे घेरेसे बड़े घेरेमें आना, बड़े घेरेसे छोटे घेरेमें आना, कुछका कुछ हो जाना, अदल-बदल होना, बढ़ जाना और कहींपर कोई नया अर्थ लग जाना—नाम बहुत ढङ्गोंपर रक्खे जाते हैं—बालकी खाल निकालनेसे भी—अर्थमें हेरफेर होता है—किसी व्यक्ति या समाजके चाहने या चलानेसे अर्थने हेरफेर होकर चल निकलते हैं—

§ ६२—विशेषार्थवृत्तिरपि। [नई सूझबूझसे भी अर्थ निकाले जाते हैं।]

पीछे आप पढ़ चुके होंगे कि कहनेवाला एक अर्थ लेकर कोई बात कहता है पर सुननेवालेकी जैसी समझ होती है उसीकी ढलनपर वह अर्थ अपना रंगढंग बदलता चलता है। पर इन कहने और सुननेवालोंसे अलग कुछ ऐसे भी पंडित लोग हैं जो अपनी अनोखी सूझ-बूझके बलपर बालकी खाल खींचकर नए नए अर्थ निकालते चलते हैं। अपनी इस नई सूझ-बूझके सहारे वे लोग कहनेवालेके अर्थसे अलग एक निराला

अर्थ निकाल लेते हैं। यह नया अर्थ निकालनेकी अनोखी सूझ ही विशेषार्थवृत्ति कहलाती है। इसलिये यह तो मानना ही पड़ेगा कि अर्थमें कभी कभी बहुत हेरफेर हो जाता है।

यह हेरफेर क्यों और कैसे होता है?

हम पीछे बता चुके हैं कि समझ या बुद्धिका सहारा लिए बिना अर्थ नहीं निकल सकता। किसी वस्तुको देख लेनेपर भी जबतक हमें उसकी पहचान न हो जाय या जबतक हम उसका अर्थ न जान जायँ तबतक हमारे लिये उसका होना न होना बराबर है। जंगलमें रहनेवाले पशु भी जब सिंहकी दहाड़ सुनते हैं तो समझ जाते हैं कि इधर बाघ है, इधर हमारा बैरी आ रहा है। वे नाकसे सूँघकर, गंध पाकर समझ जाते हैं कि इधर बाघ है, इधर नहीं जाना चाहिए या यह वस्तु खानी चाहिए, यह नहीं खानी चाहिए। हम भी कभी गंध पाकर ही कह उठते हैं—'कहीं कपड़ा जल रहा है।' इस ढंगके जो संकेत हैं, वे बँधे हुए (स्थिर) हैं। इनके अर्थोंमें या इनका अर्थ समझनेमें कभी कोई भूल नहीं होती क्योंकि इन अर्थोंमें कोई हेरफेर नहीं होता। पर हम जो कुछ बोलते-लिखते हैं उनमें बोलने या लिखनेवालेको समझ अलग होती है, सुनने-वालेकी अलग और अपनी सूझबूझसे नया अर्थ निकालने-वालोंकी अलग। कभी-कभी बहुत कुछ अनजानमें या धोकेसे भी कुछका कुछ अर्थ समझ लिया जाता है। इसलिये भी अर्थमें बहुत हेरफेर हो सकता है।

हम यह भी बता आए हैं कि कोई बात कब कही गई, इस 'प्रसंग' या मेलसे ही अर्थ ठीक समझमें आता है। कभी-कभी तो बिना कुछ कहे संकेतसे ही बात कह दी जाती है और

कवितामें भी इस संकेतसे बात कहलाई या कराई जाती है जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

वेद नाम कहि अँगुरिनि खंडि अकास।
भेज्यौ सूपनखाहि लखनके पास॥

[श्रीरामचन्द्रजीने वेद (श्रुति = कान) कहकर और उँगलियोंसे आकाश (स्वर्ग = नाक) काटते हुए शूर्पणखाको लक्ष्मणके पास भेजा अर्थात् उन्होंने संकेतसे लक्ष्मणको समझा दिया कि इसके नाक-कान काट लो।] पर यहाँ तो हम बोलीसे जाने जा सकनेवाले अर्थोंके हेरफेरकी जाँच करेंगे, दूसरे संकेतोंके अर्थोंकी नहीं।

हम अपनी बोलीमें जितने शब्द काममें लाते हैं, उनमें कुछ ऐसे अनोखे हैं कि उनके पहले अर्थमें और नये अर्थमें बहुत भेद हो गया है। 'वर' और 'दुलहा' शब्द लीजिए। 'वर' का अर्थ है 'अच्छा', 'दुलहा' या 'दुर्लभ'का अर्थ है 'कैसे भी न मिलनेवाला'। पर अब ये दोनों शब्द सिमटकर 'पतिके' अर्थमें आ गए हैं। अब कोई नहीं कहता कि आज सबके लिये भोजन 'दुलहा' है या 'वह भवन वर है'। पहले तो गौ चुराई जानेपर की गई पुकारको ही 'गोहार' कहते थे पर अब पानी पिलानेके लिये नौकरके लिये भी लोग 'गोहार लगाते हैं'। 'थन' शब्द 'स्तनका' ही बिगड़ा हुआ रूप है पर गौके ही स्तनको ही 'थन' कहते हैं, स्त्रीके स्तनको नहीं। 'तृष्णा' शब्द प्यासके लिये काम आता था और अब भी उत्तर प्रदेशके पश्चिमी भाग और हरियानेमें लोग कहते हैं—'तिस् लगरी' (प्यास लग रही है) या 'तिरखा लग रही'; पर आगे चलकर लालच या किसी वस्तुको पानेकी गहरी चाहको भी तृष्णा कहने लगे। 'वत्स'से 'बच्चा' और 'बच्छा' दोनों शब्द बने, पर मनुष्यके बालकको तो

बच्चा और गौके बच्चेको 'बच्छा' या 'बछड़ा' कहते हैं। 'पीना' का अर्थ कुछ भी पनियल मुँहमें डालकर घुटक जाना है। पर जब हम कहते हैं कि 'वे पीकर आए हैं', तब कोई भी समझ सकता है कि वे 'ताड़ी या दारू पीकर आ रहे हैं।' 'विलम्ब' का अर्थ है 'लटकना' पर वह अर्थ न जाने कहाँ चला गया और अब विलम्बका अर्थ है 'देर करना'। ऐसे ही 'मोदक'का अर्थ है 'सुख देनेवाला', पर सुख देनेवाली दूसरी किसी वस्तुको 'मोदक' नहीं कहते, 'लड्डू'को ही कहते हैं। पानीमें सेवार, घोंघा और न जाने कितने जीव-जन्तु और घास-फूस होते हैं पर 'जलज' एक 'कमल'को ही कहते हैं। पहले 'तिल'से निकाली जानेवाली चिकनाई रसको ही 'तैल' कहते थे पर अब तो सरसों, नारियल, मछली और मिट्टीके चिकने रसको भी 'तैल' कहते हैं। 'मृग' शब्द पहले सब पशुओंके लिये आता था पर अब 'मृग' से 'हिरण' ही समझा जाता है, चाहे सिंहको हम अब भी 'मृगेन्द्र' (पशुओंका राजा) क्यों न कहते हों। संस्कृतमें डाकू या भयानक काम करनेवालेको ही 'साहसिक' कहते थे पर अब वीरताका काम करनेवालेको साहसिक या साहसी कहने लगे हैं। इससे यह समझमें आ जायगा कि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका पहले एक ही अर्थ था, धीरे-धीरे वह अर्थ फैल गया, कुछ ऐसे हैं जो पहले फैले हुए अर्थमें थे फिर किसी एक अर्थमें सिमट गए। ऐसे ही कुछ अर्थ अच्छेके बुरे बन गए और कुछ बुरेके अच्छे बन गए, कुछ अच्छे अर्थवाले शब्द भी आजकी बोलचालमें गन्दे अर्थोंमें बँधे होनेसे छूट गए।

ध्वनिके नियम और बुद्धिके नियम—

§ ६३—बुद्धिनियमो हि मिथ्याडम्बरः। [बुद्धि-नियम एक ढोंग है।]

हमारी बोलियोंमें कितनी ध्वनियाँ हैं? वे कब, कैसे और क्यों बदल गईं या बदल सकती हैं? इसकी जाँच-परखका ब्यौरा देते हुए पीछे बताया जा चुका है कि उनके ये नियम यह समझाते हैं कि किस देशमें, किस समय, किस बोलीकी ध्वनियोंमें कौनसे हेर-फेर, क्यों हो गए? उससे आपने समझ लिया होगा कि ध्वनिके नियम सदा देश और कालके घेरेमें बँधकर चलते हैं। पर हमारी समझ या बुद्धि तो किसी देश या कालके घेरेमें बँधी नहीं है और अर्थ सदा हमारी बुद्धि या समझके सहारे चलता है, इसलिये अर्थके नियम या बुद्धिके नियम ऐसे किसी घेरेमें बँधकर नहीं रहते। वे संसारकी किसी भी बोलीमें, किसी भी समय मनमाने ढंगसे अदल-बदल या हेर-फेर करते रहते हैं। पर उनमें भी इतनी बात तो है ही कि वे देश और समयके घेरेसे दूर रहते हुए भी एक निराले ढंगसे चाहे जितनी बोलियों या कालोंमें लागू हो सकती हैं इसीलिये उन्हें भी नियम मान लिया गया है। पर आचार्य चतुर्वेदी इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि ऐसे कोई नियम इसलिये नहीं बनाए जा सकते कि अर्थोंके हेरफेर तो लोगोंके अयानपनसे या कायरता (दूसरोंकी बोलीके शब्दोंको डरकर अपनाने) या आलससे हुए हैं और ये हेरफेर भी बड़ी सभ्य जातियोंकी बोलियोंमें हुए हैं, जङ्गली और अलग रहनेवाली जातियोंकी बोलियोंमें नहीं। ये हेरफेर भी सब बोलियोंमें बहुत कम हुए हैं, इतने कम कि किसी-किसी हेरफेरके तो दो उदाहरण भी कठिनाईसे मिल पाते हैं।

वाक्यमें आए हुए शब्दोंके दो सम्बन्ध—

यह भी बताया जा चुका है कि 'वाक्यसे ही अर्थ निकलता है।' इन वाक्योंमें आनेवाले शब्दोंका एक नाता तो उस वाक्यसे होता है जिसमें वे काममें आते हैं और दूसरा होता है उनके अपने-अपने अर्थसे। जैसे—'मैंने उसके दाँत खट्टे कर दिए।' इसमें 'दाँत'का अपना अर्थ है 'मुहँके जबड़ेमें जड़े हुए वे छोटे-छोटे हड्डीके टुकड़े जिनसे चबाया जाता है।' पर वाक्यमें 'दाँत' शब्द जब 'खट्टे करना'के साथ मिलता है तब उसका अर्थ हो जाता है 'हराना'। तो आपने देखा कि वाक्यमें आए हुए शब्दोंका अर्थ दो नातेसे जाना जाता है।

पर वाक्यमें जो शब्द आते हैं उनमें और भी दो बातें देखनेको मिलती हैं—एक तो है 'शब्द' या अर्थतत्त्व और दूसरा है 'वाक्यके शब्दोंका आपसी नाता समझानेवाले मेलजोड़' या सम्बन्ध-योग। ऐसे जो 'मेलजोड़', शब्दोंका आपसी नाता समझाते हैं, उन्हें रूपमात्र कहते हैं और जो शब्द अपना अर्थ बताते हैं वे अर्थमात्र कहलाते हैं [पाली २ सूत्र § ३४]। 'अर्जुनने शरगंगासे भीष्मको जल पिलाया।' इस वाक्यमें 'ने', 'से', और 'को' मेलजोड़ (रूपमात्र) हैं क्योंकि ये 'अर्जुन, शरगंगा, भीष्म, पिलाना' शब्दोंका नाता समझाते हैं। पर 'अर्जुन, भीष्म, शरगंगा, पिलाना' ये चारों शब्द अलग-अलग भी कुछ अपना अर्थ बताते हैं कि—'अर्जुन कुन्ती और पाण्डुका पुत्र था। उसने बाण मारकर धरतीसे जो जलधारा निकाली, वही शरगंगा थी। भीष्म, पांडवों-कौरवोंके दादा थे। लड़ाईमें चोट खाकर शर-शय्यापर पड़े हुए उन्होंने जल माँगा था इसलिये अर्जुनने उनके लिये शरगंगाका जल दिया था। इससे यह बात समझमें आ जायगी कि हम यहाँ मेलजोड़ (रूप-मात्र) की चर्चा करने

नहीं बैठे हैं, हम तो यहाँ शब्द (अर्थमात्र) की छानबीन करेंगे।

दो ढंगसे अर्थकी छानबीन—

अर्थकी छानबीन करनेवाले लोग अर्थोंमें होनेवाले हेर-फेरको जाँच दो ढंगसे करते हैं—

एकमें तो यह देखा जाता है कि अर्थोंमें किस ढंगके और क्यों बिगाड़ आया ? यह तो सीधे-सीधे अर्थकी जाँच (अर्थ-विचार) या अर्थ-परीक्षा कहलाती है।

दूसरा ढंग वह है जिसमें हम यह देखते हैं कि बिगाड़ क्यों, किस उद्देश्यसे या क्या नया अर्थ निकालनेके फेरमें किया गया। यह हेरफेर या बिगाड़, जान-बूझकर या हमारी बुद्धिके सहारे होता है, इसीलिये वह जिस ढंगपर होता है उस ढंगकी जाँच-परखका लेखा बनानेको लोग समझका नियम (बौद्धिक नियम) कहते हैं।

समझकर अर्थोंमें किए जानेवाले हेरफेरके नियम (बौद्धिक नियम)

§ ६४—**वैशिष्ट्य - भेदोद्योतम - विभक्तिशेष - भ्रान्त्युपमान-नवाप्ति-लोपाश्च बौद्धार्थविकाराः।**

[बुद्धिके सहारे अर्थमें हेरफेर होनेके ये नियम हैं : विशेष भाव, भेदीकरण, उद्योतन, विभक्तिशेष, भ्रम, उपमान, नया लाभ और लोप।]

१. विशेष भावका नियम (लॉ ऑफ़ स्पेशलाइज़ेशन)

जब किसी एक बात (भाव या विचार) बताने या समझानेके लिये कई शब्द काममें आते हैं पर फिर किसी कारणसे उन शब्दोंमेंसे कुछ कम हो जाते हैं, तब इस बिगाड़को विशेष भाव कहते हैं जैसे—संस्कृतमें पहले 'उससे अच्छा' और 'सबसे अच्छा' या 'उससे बुरा' और 'सबसे बुरा'के लिये 'तर' और 'तम' या 'ईयस्' और 'इष्ठ' ये दो ढंगके टेक

(प्रत्यय) काममें लाए जाते थे, पर आगे चलकर 'तर' और 'तम'का चलन कम हो गया 'ईयस्' और 'इष्ठ' का बढ़ गया। इसीलिये 'गरिष्ठ, महिष्ठ, वरिष्ठ, श्रेष्ठ' शब्द बन गए। हमारी देशी बोलियोंमें तो ऐसे 'एकसे बढ़कर दूसरा' समझानेवाले शब्द ही मिट गए और हिन्दीमें हम श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम (अच्छा, उससे अच्छा, सबसे अच्छा) कहने लगे। कभी-कभी 'उसकी अपेक्षा या 'उससे अधिक' भी कह देते हैं। पहलेकी विभक्तियोंके बदले भी आजकल कुछ बोलियोंमें परसर्ग (प्रीपोजीशन) आ गए हैं—जैसे संस्कृतके 'वृक्षे'के बदले हिन्दीमें हम कहते हैं 'वृक्षपर' और अँगरेजीमें 'औन दि ट्री'। इसे 'लौ औफ़ स्पेशलाइजेशन' कहते हैं।

२. अलग समझाने या 'भेदीकरण'का नियम—

किसी धातुसे ढलकर बनने या किसी और कारणसे जो शब्द कभी एक शब्दके बदले काममें आते हैं या देखनेमें किसी दूसरे शब्दका अर्थ देनेवाले (पर्यायवाची) जान पड़ते हैं, वे शब्द जिस एक ढंगसे अलग अलग अर्थोंमें आने लगते हैं, उस ढंगको 'भेदीकरणका नियम' या अलग-अलग समझानेका नियम कहते हैं, जैसे—'गर्भिणी' और 'गाभिन' दोनोंका अर्थ है 'जिसके पेटमें बच्चा हो', पर 'गर्भिणी' शब्द आता है स्त्रियोंके लिये और 'गाभिन' गाय-भैंसके लिये। 'मौलवी' और 'पंडित' दोनों शब्दोंका अर्थ है 'बहुत पढ़ा हुआ' पर 'मौलवी'से मुसलमान पढ़े-लिखे' और 'पंडित'से 'हिन्दू' और उनमें भी 'पढ़े-लिखे' ब्राह्मणकी जानकारी होती है। ऐसे ही पाठशाला, मदरसा और स्कूलमें; वैद्य, डाक्टर और हकीममें; लम्प, हंडा और दीवेमें; आसन, पीढ़ा, कुर्सी और मोढ़ेमें जो एक अर्थ होते

हुए भी भेद दिखाई देता है, उसमें यही 'भेदीकरणका नियम' चलता है। एक ही 'हृ' धातुमें वि, आ, सम् आदि लगाकर जब हम 'विहार, आहार, संहार' बना लेते हैं तब उनके अलग-अलग अर्थ हो जाते हैं। अपने घरमें ही देखिए। अपने घर-वालेको आप कहते हैं—'बैठो'। कोई बाहरसे पाहुना आ जाता है तो कहते हैं—'आसन ग्रहण कीजिए'। बच्चोंसे पूछते हैं—'तुम्हारा नाम क्या है ?', आए हुए पाहुनेसे पूछते हैं—'आपका शुभ नाम क्या है ?' दक्षिणमें पानीको 'जलम्' कहते हैं पर वहाँके वैष्णव लोग जलको 'तीर्थम्' कहते हैं। हम लोग जिसे 'नमक' कहते हैं उसे कुछ वैष्णव लोग 'रामरस' कहते हैं। ऐसे ही 'भोग लगाना, खाना और पाना' 'देखना और दर्शन करना' जैसे बहुतसे शब्द हैं तो एक ही अर्थवाले पर वे चलते हैं अलग भावोंमें।

कुछ विद्वानोंने यह लिखा है कि इस भेदीकरण या अर्थके अलगावमें तीन बातें होनी ही चाहिएँ—

क. जिन शब्दोंमें ऐसा अर्थका विलगाव हो जाता हो वे उस भाषामें पहलेसे होने चाहिएँ। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई नया शब्द बाहरसे लाकर भर दिया जाय।

ख. पहले तो यह अर्थका विलगाव दिखाई पड़ता रहता है पर धीरे-धीरे लोग उन भेदोंको भूल जाते हैं और फिर वे अलग-अलग अर्थ दिखलानेवाले बहुतसे शब्द मिट जाते हैं जैसे—'खाद्, भक्ष्, अद् और अश्' ये सबके सब शब्द अलग-अलग ढंगसे 'खाने'के लिये काममें आते रहे होंगे पर अब सब 'खाना' शब्दके लिये काममें आते हैं।

ग. जो समाज जितना ही अधिक सभ्य होगा, उसकी बोलीमें उतना ही अधिक अर्थोंका विलगाव होगा जैसे हमारे

यहाँ 'धोना'के लिये 'कचारना, फींचना, सबुनियाना, पछाड़ना' आदि बहुतसे शब्द काममें आते हैं।

पर ये बातें नहीं मानी जा सकतीं क्योंकि नये शब्द बाहरसे लानेपर भी भेदीकरण या अर्थका अलगाव हो सकता है जैसे वैद्य, डाक्टर, हकीममें।

३. चमकाने (उद्योतन) का नियम

जब किसी शब्द या टेक (प्रत्यय) के लगनेसे कोई अच्छे अर्थमें आनेवाला शब्द बुरे अर्थमें और बुरे अर्थमें आनेवाला शब्द अच्छे अर्थमें आ जाय या ताना मारनेके अर्थमें आवे तब उस ढंगको 'उद्योतनकी क्रिया' या 'उद्योतनका नियम' कहते हैं जैसे—शिकारपुरी, गवर्नरी, साहबी, नवाबी। 'वे पूरे शिकारपुरी हैं। उसका ठाट गवर्नरी है। बड़ी साहबी दिखा रहे हो या बड़ी नवाबी छाँट रहे हो।' यहाँ शब्दोंके अन्तमें 'ई' लगाना उद्योतनकी क्रिया है। कुछ आचार्योंने 'अमीरी' और 'मुनीमी'को भी इसी नियममें ला रक्खा है। पर इनमें 'ई' लगानेसे सीधी-सादी भाववाचक संज्ञा बनी है, उद्योतन या नयापन नहीं आया। उद्योतनमें तो टेक लगनेसे कोई एक अच्छापन या बुरापनका अर्थ आ ही जाना चाहिए। यदि हम कहें कि स्वतन्त्र हो जानेपर सब राज्योंमें 'गवर्नरी शासन हो गया' या 'नवाबी' शासन-कालमें लोग बड़े सुखी थे' तो यहाँ 'गवर्नरी' और 'नवाबी'में उद्योतन नहीं है। पर पंडिताऊ, पढ़ाकू, सिक्खड़ा, बनियौटी, कट्टरपंथी, बलियाटिकमें लगा हुआ 'आऊ, आई, ड़ा, औटी, पंथी और टिक' बुरेपनके अर्थकी और पुष्टई (बल बढ़ानेवाली औषधि) में लगी हुई 'ई' अच्छेपनकी चमक या उद्योतन देता है। तो सीधे-सादे प्रत्यय लगनेको 'उद्योतन' नहीं कहते, जैसा कुछ लोगोंने लिख दिया है।

४. विभक्तियोंके बचे रहनेका नियम

जिन बोलियोंमें पहले विभक्तियाँ रहीं हों, पर उनसे निकलनेवाली बोलियोंमें मिट जानेपर भी लोगोंके मनमें उनकी छाया बनी रहे तब भी कुछ पुरानी, काममें न आनेवाली विभक्तियाँ नई बनी हुई बोलियोंमें ज्योंकी-त्यों आकर मिल जाती हैं। विभक्तियोंको ऐसे जिलाए रखनेवाली तीन बातें होती हैं—

क. बोलचालमें पड़ जाना, जैसे हिन्दीमें 'अर्थात्, दैवात्, हठात्, न जाने' आ गए हैं।

ख. किसी वाक्य या वाक्यांशमें शब्दका पड़कर बना रह जाना, जैसे—गया समय, धोया कपड़ा।

ग. एक जैसे मिलते-जुलते शब्दोंके ढंगपर दूसरा शब्द गढ़ लिया जाना, जैसे—संस्कृतके 'सन्त, ज्वलन्त' शब्दोंके ढंगपर मनगढ़न्त, पढ़न्त, लड़न्त भी बना लिए गए हैं।

५. धोखे (*भ्रम*)*का नियम*—

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि भूल या धोखेसे भी हमें एक शब्दका जो अर्थ जान पड़ने लगता है उसमें लगी हुई टेकको हम भूलसे प्रत्यय मान बैठते हैं और फिर उस प्रत्ययको हम दूसरे शब्दोंमें लगा बैठते हैं, जैसे—संस्कृतके 'उक्षन' शब्दका अँगरेजीमें 'ऑक्सेन' बना, पर उन्होंने समझा कि इसमें लगा हुआ 'एन्' वैसा ही बहुवचन बताता है जैसा 'चिल्ड्रेन'में लगा हुआ 'एन्'। इसलिये उन्होंने भूलसे यह समझ लिया कि 'ऑक्स' एकवचन है और 'ओक्सेन' बहुवचन है। यही बात 'दर असलमें, गुलरोग़नका तेल, गुलमेंहदीका फूल, हिमाचल पर्वत, अभी भी, अभी ही' में है। क्योंकि : दर=में, रोगन=

तेल, गुल = फूल, अचल = पर्वत' इनमें है ही फिर भी अयानपनसे हमने उनमें अपनी बोलीके प्रत्यय या शब्द जोड़ दिए। कभी-कभी ऐसा भी होता है एक पुल्लिग शब्दको भूलसे 'स्त्रीलिंग' समझ लेते हैं और फिर उसका पुल्लिग बना लेते हैं। उत्तर प्रदेशके पूर्वी प्रदेशमें हाथीको लोग स्त्रीलिंग मानते हैं इसलिये उसका पुल्लिग उन लोगोंने 'हाथा' बना लिया।

६. देखा-देखी (उपमान) का नियम—

हम लोग कभी चलते शब्दके ढंगपर भी नया शब्द गढ़ लेते हैं। देखा-देखीसे शब्द बनानेका यह ढंग चार बातोंके लिये काममें लाया जाता है—

क. अपने मनकी बात कहनेमें जो कठिनाई आ खड़ी हो उसे दूर करने के लिये।

ख. किसी बातको और भी खोलकर समझानेके लिये।

ग. किसी उल्टी बात या उसी जैसी बातपर बल देनेके लिये।

घ. किसी पुराने या नये नियमसे मेल बैठानेके लिये, जैसे लोगोंने विभक्तिके बिना बने हुए शब्दोंको अपने लिये ठीक समझा और उसमें कम झंझट देखा इसलिये उसे अपना लिया और फिर अपभ्रंशकी देखा-देखी हमारी बोलियोंमें भी बिना विभक्तिके ही लिखनेका चलन चल पड़ा।

७. नये लाभ—

कभी-कभी कुछ नई बातें भी बोलियोंमें बढ़ती चलती हैं। इसे नये लाभका नियम कहते हैं। ग्रेअलने माना है कि अव्यय जैसे 'यथा'; कृदन्त (इनफ़िनिटिव) जैसे खाना, पीना, जाना; कर्मवाच्य (पैसिव वौएस) जैसे 'रामसे रावण मारा गया'; और क्रिया-विशेषण (ऐडवर्ब) जैसे 'वह वेगसे दौड़ता है।' ये नये लाभ हैं।

८. काममें न आनेवाले रूपोंके मिटानेका नियम—

कभी-कभी किसी कारणसे जब एक ही अर्थ बतानेवाले कई शब्द काममें आने लगते हैं तब लोग उनमेंसे कुछ रूपोंको अच्छा समझकर चला देते हैं जिससे बचे हुए शब्द मिट जाते हैं जैसे—संस्कृतमें 'स्पश्' और 'दृश्' दो धातुएँ थीं पर पीछे चलकर दोनों एक बन गईं।

ऊपर जिन नियमोंकी चर्चा की गई है उनके ब्यौरे देखनेसे जान पड़ेगा कि लोगोंने अपने मनकी बात समझानेके उद्देश्यसे या यों कहिए कि अपनी कमी पूरी करनेके उद्देश्यसे शब्द चलाए, इसलिये उन्हें बौद्धिक नियम कहते हैं।

तीन ढंगके अर्थ—

अर्थकी जितनी जाँच-परख की जा चुकी है उसे देखते हुए यह जानना सरल हो गया है कि अथ तीन ढंगके होते हैं—

१. एक तो वह जो बोलनेवाले या लिखनेवालेके मनमें हो क्योंकि सच्चा अर्थ वही होता है जो बोलने या लिखनेवालेके मनमें होता है। यह अर्थ भी तीन ढंगका होता है—

एक तो वह, जो सीधे-सादे ढंगसे बोलनेवाला या लिखनेवाला कहता है (इष्टार्थ)। दूसरा होता है प्रत्यक्षार्थ, जिसमें कहनेवाला अपने मनमें कुछ रखकर, सामने दूसरे ढंगसे कहता है और उसके इस सामने कहे हुएका कुछ दूसरा अर्थ होता है और मनमें कुछ दूसरा, जैसे कोई व्यक्ति किसीको मनमें बुरा समझता हो (परोक्षार्थ) फिर भी केवल दिखानेके लिये उसकी बड़ाई कर देता है (प्रत्यक्षार्थ)।

२. दूसरे ढंगका अर्थ वह होता है जिसमें कहने या लिखनेवाला ताना देता या छींटे कसता है या यों कहिए कि वह जो

बात कहता है उसमें कुछ दूसरा अर्थ छिपा रहता है, जिसे समझनेवाले ही समझ पाते हैं (व्यंग्यार्थ)।

किसी बातको कहने या लिखनेवाले भी दो ढंगके होते हैं—एक सामने कहनेवाले और दूसरे पीछे कहनेवाले। इसके अनुसार भी अर्थ बदल जाता है; जैसे एक अधीन कर्मचारीको सामने आप कहें—'इसे फिरसे लिखकर लाइए' तो वह फिरसे लिखकर लानेके साथ यह भी समझेगा कि ये मुझे निकम्मा समझते हैं। यदि चपरासीसे आपने कहलाया तो वह यही समझेगा कि 'फिरसे लिखना है।' ऐसे सामने सुनने और पीछे किसी दूसरेके मुहँसे कही हुई बात सुननेसे भी अर्थमें बड़ा भेद पड़ जाता है।

३. तीसरा अर्थ वह होता है जो सुननेवाला समझता है। ये अर्थ चार ढंगके होते हैं—

एक तो वह अर्थ जो कहनेवाले या लिखनेवालेके मनकी बात ठीक-ठीक समझाता हो (शुद्धार्थ)। ये तीन ढंगके होते हैं।

क. जिसे सुननेवाला अपनी समझकी ढलनपर समझता हो। (योग्यतार्थ) इसमें यह भी हो सकता है कि वह बातको पूरी न समझ पावे।

ख. वह अर्थ जिसे वह प्रसंग या परिस्थितिसे समझे जैसे—'लाओ' कहनेसे वह समझ जाय कि मुझे क्या लाना चाहिए (प्रसंगार्थ)।

ग. वह अर्थ जो दूसरोंके समझानेपर समझमें आवे (आप्तोपदिष्टार्थ)। ये अर्थ शुद्ध होते हैं।

दूसरे वे अर्थ जिन्हें सुननेवाला अशुद्ध समझता हो। ये चार ढंगके होते हैं। इनमेंसे—

क. कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें समझ न होनेसे सुनने या पढ़नेवाला ठीक नहीं जान पाता (अयोग्यतार्थ)।

ख. वे हैं जो प्रसंग या परिस्थिति न जाननेसे अशुद्ध लगा लिए जाते हैं (प्रसङ्गभ्रमार्थ) ।

ग. वे, जो ठीक-ठीक न सुननेसे समझ लिए जाते हैं। (दुःश्रवणार्थ) ।

घ. और वे होते हैं जिन्हें हम भूल या धोखेसे यह समझकर ठीक समझे हुए हैं कि हम इसका अर्थ ठीक-ठीक जानते हैं (अहम्मन्यार्थ) ।

विशिष्टार्थ—

तीसरे वे अर्थ हैं जिन्हें कहने या लिखनेवाला जिसी अर्थमें कहता या लिखता है उससे अलग कुछ निराले ही अर्थ लगा लिए जाते हैं। ये अर्थ भी दो ढंगके होते हैं—एक सत्य और दूसरे असत्य। कभी-कभी यह भी होता है कि कहनेवाला तो छींटे कसते हुए बात कहता है और सुननेवाला उसे सच समझ बैठता है जैसे—किसी बुरे ढंगकी कविता करने और कहनेवालेको हम बनाते हुए कहते हैं—'वाह कविजी! क्या कहने हैं' और कविजी समझते हैं कि यह हमारी बड़ाई हो रही है। यह धोखा किसी बातको ठीक न समझनेसे होता है।

चौथे वे अर्थ होते हैं जिनमें हमें सन्देह बना रहता है जैसे किसीने आपको चार काम बताए और जब आप कई दिन पीछे लौटकर आए तो उन्होंने पूछा—कहिए कर लाए?' इस 'कर लाए'ने आपके मनमें यह दुविधा खड़ी कर दी कि ये किस बातके लिये पूछ रहे हैं। यही सन्देह-भरा अर्थ है।

ऊपर दिए हुए ब्यौरेको पढ़कर हम कह सकते हैं कि अर्थ (१) सच्चे, (२) झूठे और (३) संदेहभरे होते हैं।

अर्थोंमें होनेवाले हेर-फेरके ढंग—

पीछे बताया जा चुका है कि वाक्योंमें ही अर्थ होता है इसलिये यहाँ जब हम अर्थोंमें हेर फेरकी बात कहते हैं तब उससे यह नहीं समझना चाहिए कि हम वाक्योंमें होनेवाले अर्थोंकी चर्चा कर रहे हैं। हम तो उन अर्थोंमें होनेवाले हेर-फेरकी बात कह रहे हैं जो ऐसे शब्दोंमें होते हैं जिनके कुछ बँधे हुए अर्थ रहे हैं और फिर उनके अर्थोंमें किसी कारणसे हेरफेर हो गया है।

अर्थ बदलनेके कितने ढंग हैं ?

§ ६५—अपकर्षश्चोत्कर्षौ विस्तारादेशभावसङ्कोचाः।
बिनिमयविसर्पणौ चेदर्थारोपो हि परिणतिश्चार्थे ॥

[अर्थमें इतने ढंगके हेरफेर होते हैं : अच्छेका बुरा होना, बुरेका अच्छा होना, छोटे घेरेसे बड़े घेरेमें आना, बड़े घेरेसे छोटे घेरेमें आना, कुछका कुछ हो जाना, अदल-बदल होना, बढ़ जाना और कहींपर कोई नया अर्थ लगा देना।]

अर्थोंमें उलटफेर कितने प्रकारके और क्यों ?

अब हमें यह देखना है कि अर्थोंमें जो उलटफेर होते हैं वे कितने ढंगके होते हैं—

संसारकी बोलियोंके शब्दोंके अर्थोंकी छानबीन करनेसे जाना गया है कि अर्थोंमें हेरफेर इतने ढंगके होते हैं—

१. अच्छे अर्थका बुरे अर्थमें बदल जाना (अर्थापकर्ष या डीजेनेरैशन या डिटीरियारैशन औफ़ मीनिंग)—

कभी कभी जो शब्द पहले अच्छे अर्थमें आते थे, वे पीछे चलकर बुरे अर्थमें आने लगे या एक ठौरपर जो अच्छे अर्थमें

आते हैं वे दूसरे ठौरपर बुरे अर्थमें आने लगते हैं—जैसे 'भइया' शब्द उत्तर भारतमें 'भाई-चारे'के अच्छे अर्थमें आता है, पर वही बम्बईमें और दक्षिणमें 'नौकर' या 'छोटा काम करनेवाले'के अर्थमें आने लगा। पहले 'बौद्ध' शब्द बुद्धके माननेवाले लोगोंके लिये आदरमें आता था, अब उसका बिगड़ा हुआ रूप 'बुद्धू' शब्द मूर्खके लिये आता है। पहले 'नग्न' और 'लुंचित' शब्द जैन साधुओंके लिये आदरमें काम आते थे पर अब उसका बिगड़ा हुआ रूप 'नंगा-लुच्चा' बुरे अर्थमें आता है। कुछ लोगोंने विराट् सभाके विराट्, चालाक, गुरु और महाराज शब्दको भी अर्थापकर्षमें गिनवा दिया पर उन्हें यह जान लेना चाहिए कि ये शब्द तो दोनों अर्थोंमें आते हैं और जिस अर्थमें आते हैं वह या तो हँसीमें या अर्थ बदलकर आते हैं। ऐसे शब्द जो दोनों अर्थोंमें चलते हैं, उन्हें अर्थापकर्षमें नहीं लाना चाहिए। जैसे—{ ये मेरे गुरु हैं।
क्यों गुरू! हमसे यह चाल ?

{ दरभंगाके महाराजने पूज्य मालवीयजीको बड़ा सहयोग दिया था।
हमारा महाराज आजकल खटियापर पड़ा है।

ऊपर दिए हुए वाक्योंमें 'गुरु' और 'महाराज' दोनों शब्द दो-दो अर्थोंमें आए हैं, इसलिये इन्हें 'बहुत अर्थवाले'का उदाहरण मानना चाहिए, 'अर्थापकर्ष'का नहीं। कुछ लोगोंने 'महाजन'को भी 'अर्थापकर्ष'में गिना है पर वह 'अर्थ-संकोच'का उदाहरण है क्योंकि पहले 'महाजन' शब्द सब 'बड़े लोगों'के लिये काममें आता था, पर अब वह सिमटकर 'रुपया उधार देनेवालों'के अर्थमें ही रह गया है। कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनका तत्सम रूप अच्छे अर्थमें आता था पर उसका बिगड़ा हुआ

रूप बुरे अर्थमें आने लगा जैसे 'स्तन' स्त्रीके लिये और 'थन' 'गाय भैंस'के लिये। ऐसे ही 'लिंग, शब्द-पहचान या चिह्नके लिये आता था अब इसका अर्थ बिगड़ता जा रहा है। पहले अँगरेज़ीके सिली (Silly) शब्दका अर्थ था 'सौभाग्यशाली' पर अब है 'मूर्ख'। यही अच्छे अर्थका बुरा हो जाना है।

२. अर्थका बुरेसे अच्छा हो जाना (अर्थोत्कर्ष या ऐलीवेशन ऑफ़ मीनिंग)—

कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनका पहले अच्छा अर्थ था, पर अब बिगड़ गया जैसे—'साहसी' शब्दका अर्थ पहले 'डाकू, हत्यारा, चोर, जार और बुरा काम करनेवाला' था पर अब इसका अर्थ हो गया है 'बहुत वीरताका और संकटभरा कोई बड़ा काम करनेवाला।'

३. अर्थका फैलाव (अर्थ-विस्तार या जनरलाइज़ेशन या एक्स्पैन्शन ऑफ़ मीनिंग)—

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पहले किसी बँधे हुए एक अर्थमें ही काम आते थे पर आगे चलकर वे बहुतसे अर्थोंमें चलने लगे, उससे मिलती-जुलती बहुत-सी वस्तुएँ या बातोंके जैसे—'तैल' शब्दका अर्थ था 'तिलसे निकली हुई चिकनाई' पर आगे चलकर सरसों, रेंड़ी, यहाँतक कि मिट्टीसे निकले हुए चिकने रसको भी लोग 'सरसोंका तेल, रेंड़ोका तेल, मिट्टीका तेल कहने लगे। ऐसे ही 'गोहार' शब्द पहले 'गौओंके चुराए जानेपर मचाई हुई पुकारोंके लिये ही आता था पर अब सब ढंगकी पुकारोंके लिये काममें आने लगा। पहले जो 'बिना हाथमें काँटा चुभाए कुशा उपाड़ लाता था' उसे 'कुशल' कहते थे पर अब तो जो भी अपने कामको ठीक, सुथरे, सुघड़ ढंगसे करता है उसे

'कुशल' कहने लगे हैं। एक 'विभीषण'ने अपने भाई रावणको धोखा दिया, एक 'नारद'ने किन्हीं दो देवताओं या राजाओंमें झगड़ा कराया पर आज भी सभी घरभेदियोंको 'विभीषण' और सब 'चिट्ठा लड़ानेवालों'को नारद कहते हैं। पहले गवेषणाका अर्थ था 'खोई हुई गौको ढूँढना', अब हो गया 'खोज।'

४. अर्थका सिमटना 'अर्थ-संकोच या स्पेशलाइजेशन या कौंट्रैक्शन ऑफ मीनिंग—

बहुतसे शब्द ऐसे हैं जो पहले किसी एक ढंगकी वस्तुओं या कामोंके लिये चलते थे पर अब वे सिमटकर उन वस्तुओं या कामोंमेंसे किसी एकके लिये बँध गए हैं। जैसे—'मृग' शब्द पहले सब चौपायोंके लिये काम आता था पर अब 'हरिणके' लिये ही बँध गया है। ऐसे ही 'वर' और 'दुर्लभ' शब्द 'अच्छे' और 'कठिनाईसे मिलनेवाले'के लिये काम आते थे पर अब ये शब्द विवाह करनेवाले 'वर' या 'दूल्हे'के लिये ही बँध गए हैं। पहले अँगरेज़ीका 'हाउंड' शब्द सब कुत्तोंके लिये काम आता था पर अब शिकारी कुत्तेके लिये ही आता है। इसीके भीतर वह संकोच भी आ जाता है जहाँ कोई दो विरोधी अर्थ देनेवाला शब्द एक अर्थमें ही चल निकलता है जैसे 'घृणा'का पहले अर्थ था 'दया' और 'घिन' दोनों, पर अब घिन ही रह गया है।

५. अर्थ बदलना (अर्थादेश, अर्थ-परिवर्त्तन या ट्रान्स्फरेन्स ऑफ़ मीनिंग)—

कभी-कभी एक साथ चलनेवाले दो अलग-अलग अर्थोंवाले शब्दोंमेंसे किसी एक शब्दके निकल जानेपर उसका अर्थ दूसरे शब्दका अर्थ बन जाता है जैसे—गृ ·वाटिका (ग्रहवार शब्द साथ चलते थे। इनमेंसे 'गृह' निकल गया, वाटिकाका 'बाड़ी'

बना, जिसका अर्थ है 'बगिया,' पर बँगलामें उसका अर्थ हो गया है 'घर'। कभी-कभी एक अर्थमें पहले काम आनेवाला शब्द पीछे चलकर दूसरे अर्थमें काम आने लगता है जैसे वेदमें 'सह्'का अर्थ था 'जीतना' पर काव्य-संस्कृतमें हो गया 'सहना'।

६. *अर्थका आपसमें अदल-बदल जाना (अर्थ-विनिमय या एक्सचेंज ऑफ़ मीनिंग)*—

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लगभग एकसे गुणवाली पर अलग दो वस्तुओंके लिये काममें आनेवाले शब्दोंके अर्थोंमें हेरफेर हो जाता है, जैसे संस्कृतमें नीमका स्वाद 'तिक्त' कहलाता है और मिर्चका 'कटु', पर हिन्दीमें अब हम नीमको 'कड़वी' (कटु) और मिर्चको 'तीती' (तिक्त) कहने लगे हैं।

७. *अर्थ बढ़ाना (अर्थ-विसर्पण या स्लाइड)*—

कभी कभी एक सीधा-सादा शब्द अपना सीधा अर्थ छोड़कर उस अर्थको बहुत बढ़ाकर बताने लगता है जैसे, 'उसे आज टेम्परेचर हो गया है' कहनेसे हम समझते हैं कि 'उसे बहुत टेम्परेचर 'तीव्र ज्वर' हो गया है। 'उसे मिजाज़ हो गया है' का अर्थ है 'उसे बड़ा मिजाज़ (अभिमान) हो गया है।'

८. *नया अर्थ बैठाना (अर्थारोप या रेडिएशन ऑफ़ मीनिंग)*—

कभी-कभी जानबूझकर या भूलसे या नासमझीसे या धोखेसे हम किसी एक अर्थमें आनेवाले शब्दको किसी दूसरे ऐसे अर्थमें चला देते हैं जो अपने पुराने अर्थसे अलग होता है। ऐसे ही कभी-कभी किसी बातको अच्छे ढंगसे कहनेके लिये ही हम शब्दोंके अर्थोंमें नये अर्थ बैठाकर अपनी बात ऐसे सजा देते हैं कि वह दूसरोंको निराली लगे। यह सबका सब काम

'अर्थारोप या' नये अर्थमें बैठाना' कहलाता है। यह अर्थ बैठानेका काम हम छः ढंगसे करते हैं—

(क) अभिधा शक्तिसे, (ख) लक्षणा शक्तिसे, (ग) व्यञ्जना शक्तिसे, (घ) समाजमें अच्छी समझी जानेवाली शब्दावली (उक्तिसंस्कार) से बनावटीपन लाकर, (ङ) भूल या धोखे (अर्थभ्रान्ति) से और (च) ठीक शब्दोंका भंडार अपने पास न होने (शब्द-दारिद्र्य) से।

शब्दशक्ति—

अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना समझनेके लिये शब्द-शक्ति समझ लेनी चाहिए। हम बैलको देखकर कहते हैं–'यह बैल है।' कभी-कभी किसी मूर्खको देखकर भी हम कहते हैं—'यह बैल है।' इस दूसरे वाक्यमें हमने बैलकी मूर्खता लाकर उस मनुष्यमें ला बैठाई है। इस अर्थ बैठानेको 'आरोप' कहते हैं। यह आरोप बहुत कुछ शब्दकी शक्तियोंसे होता है।

शक्तिग्रह—

किस शब्दका कहाँ क्या अर्थ होगा ? इस बातके जाननेके ढंगको हमारे यहाँ शक्तिग्रह या शक्तिज्ञान कहा गया है और यह बताया गया है यह शक्तिज्ञान आठ प्रकारसे होता है— १. व्याकरणसे, २. उपमान (समानता) से, ३. कोषसे ४. आप्त-वाक्य (शास्त्र या बड़ोंकी बात) से, ५. व्यवहार (चलन) से, ६. वाक्यशेष (प्रसंग) ७. विवरण या पूरे ब्यौरेसे और ८. साहचर्य (वाक्यके दूसरे शब्दोंके मेल) से, [शब्द-शक्ति-प्रकाशिका, श्लोक २० ।] इनमें भी व्यवहार या चलन ही अर्थ जाननेकी सबसे बड़ी शक्ति है, और सब उतने कामकी नहीं हैं।

वाचक, लक्षक, व्यंजक शब्द—

हम बता चुके हैं कि शब्दमें अर्थ जतानेकी एक शक्ति होती है। हमारे यहाँ ऐसी तीन शक्तियाँ मानी गई हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। शब्दका जो अर्थ अभिधा शक्तिसे निकलता है उसे 'वाच्यार्थ' या 'अभिधेयार्थ' कहते हैं और उस शब्दको 'वाचक शब्द' कहते हैं। जब लक्षणा शक्तिसे किसी शब्दका अर्थ निकाला जाता है, तब उस शब्दको 'लक्षक' और उससे निकलनेवाले अर्थको 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं। व्यंजना शक्तिसे जो अर्थ निकलता है उसे 'व्यंग्यार्थ' और व्यंग्यार्थ बतानेवाले शब्दको 'व्यंजक' कहते हैं।

(क) *अभिधा—*

हम जो कुछ भी सीखते हैं वह सब देख-सुनकर (व्यवहारसे) सीखते हैं। जब हम किसी विज्ञान जाननेवालेको यह कहते सुनते हैं कि 'बारोमीटर उठा लाओ' तब हम उस लानेवालेके हाथकी वस्तु देखकर समझ जाते हैं कि यही वस्तु 'बारोमीटर' (तापमापक यंत्र) है। यहाँ संकेतसे ही हम समझ जाते हैं। हम और भी ऐसे उपाय काममें लाते हैं जिनसे कमसे कम समयमें अधिकसे अधिक बातें सीख सकें। संसारकी सभी बातों और वस्तुओंको देख-सुनकर जानना और सीखना सबसे नहीं हो सकता, क्योंकि संसार बहुत बड़ा है, ज्ञान भी अथाह है और सबके लिये सब ठौर चक्कर लगाना भी नहीं हो सकता इसलिये हमें और भी उपाय काममें लाने पड़ते हैं।

हम बता आए हैं कि अभिधा शक्तिसे वाचक शब्द वाच्यार्थ देता है। इस अभिधाके तीन भेद होते हैं—रूढ़ि,

योग और योगरूढि, जिनसे तीन ढंगके अर्थ निकलते हैं रूढ, यौगिक और योगरूढ। जिन शब्दोंकी कोई छानबीन न करनी पड़े और सीधे सुनते ही समझमें आ जाते हैं उन्हें रूढ कहते हैं जैसे—घोड़ा, हाथी, कड़ा, अँगूठी, हरिण, पेड़। जिन शब्दोंको जाँचकर और उसकी बनावटका पूरा ब्यौरा लेकर समझना पड़ता है उन्हें यौगिक कहते हैं जैसे—याचक कुम्भकार आदि। कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनकी जाँच-परख तो की जा सकती है परन्तु उसका अर्थ उससे कुछ अलग ही निराला और बँधा हुआ रहता है, जैसे—'जलज'का अर्थ तो है 'जलसे उपजनेवाला' पर हम 'घोंघे, सीपी, सेवार'को 'जलज' नहीं कहते, 'कमल'को ही कहते हैं। इसलिये जलज 'यौगिक' होनेपर भी रूढ हो गया। इसलिये इसे योगरूढ कहते हैं। ये सब अर्थ अभिधेयार्थ हैं।

(ख) लक्षणा—

कभी-कभी हम ऐसे शब्द भी काममें लाते हैं जिनका कुछ तो अर्थ अपने अर्थसे मिलता हुआ होता है और कुछ उनके अर्थसे अलग। इन्हें लक्षक शब्द कहते हैं और इनसे जो अर्थ निकलता है वह लक्ष्यार्थ कहलाता है। ये लक्ष्यार्थ दो ढंगके होते हैं—

१. जो अपना पहला अर्थ छोड़कर कुछ दूसरा ही अर्थ बताने लगते हैं और इस दूसरे अर्थमें ही बंध जाते हैं, जैसे—बलिया बड़ा झगड़ालू है, इसका अर्थ यह है कि 'बलियावाले आपसमें बहुत झगड़ते हैं।' यहाँ बलिया शब्द रूढिसे 'बलियामें रहनेवाले'के लिये आया है।

२. जिनमें बोलनेवाला कोई अपना अर्थ लगाकर ऐसा शब्द काममें लाता है जिसका अर्थ उस शब्दके चलते अर्थसे अलग

होता है जैसे—'हड्डीकी ठठरी सामने आकर खड़ी हो गई।' यहाँ बोलनेवालेने किसीके दुबलेपनको बतानेके लिये ये शब्द कहे हैं। यहाँ 'हड्डीकी ठठरी'का अपना अर्थ छूट गया और उसका लक्षित अर्थ हुआ 'दुबला-पतला, मरियल मनुष्य।'

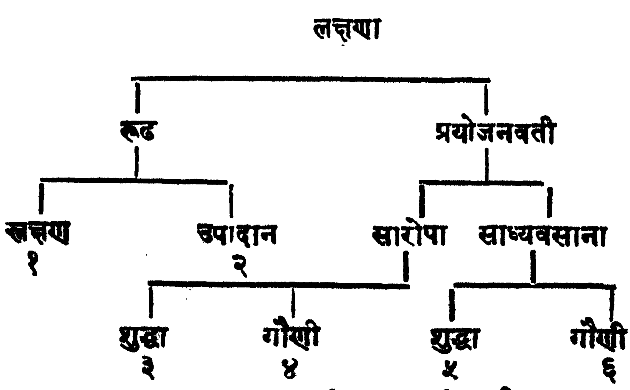
तो लक्षणामें तीन बातें होनी चाहिएँ—

१. उसका जो अपना अर्थ है उसमें रुकावट हो।

२. नये निकलनेवाले अर्थका शब्दके अपने जाने पहचाने अर्थसे कुछ न कुछ मेल हो। और

३. वह शब्द या तो पहलेसे किसी अर्थमें बँध गया हो (रूढ हो) या जानबूझकर काममें लाया गया हो (प्रयोजन-युक्त हो)। इन तीनोंमेंसे एक भी बात न हो तो लक्षणा-शक्ति नहीं लगती।

यह लक्षणा चार प्रकारकी मानी गई है—१. लक्षण-लक्षणा, २. उपादान लक्षणा, ३. सारोपा और ४. साध्यवसाना। सारोपा और साध्यवसानाके भी दो-दो भेद—शुद्धा और गौणी होते हैं। इस प्रकार लक्षणा छः प्रकारकी होती है—



१. लक्षण-लक्षणा : जब कोई शब्द अपने अर्थको पूरा छोड़कर

लक्ष्यार्थ ही बतावे तब लक्षण-लक्षणा होती है जैसे—बनारस मस्त है (बनारसके लोग मस्त हैं)।

२. उपादान लक्षणा : जब कोई शब्द अपना भी अर्थ न छोड़े और दूसरा भी बतावे, वहाँ उपादान लक्षणा होती है जैसे—वहाँ लाल पगड़ी घूम रही थी (लाल पगड़ीवाले सिपाही घूम रहे थे)।

३. गौणी सारोपा लक्षणा : जैसे–'मेरी कन्या तो गौ है' या 'वह स्त्री डायन है।' यहाँ कन्या और गौमें सीधेपन तथा स्त्री और डायनमें झगड़ालूपनका गुण एकसा होनेसे आरोप हो गया है इसलिये गौणी लक्षणा है। साथ ही आरोप किया हुआ विषय और जिसपर आरोप किया गया है, दोनोंका वर्णन होनेसे सारोपा है।

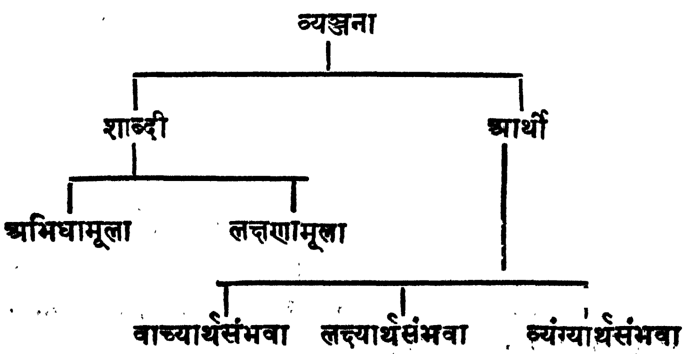
४. गौणी साध्यवसाना लक्षणा : जिसमें उपमान (वर्णन करनेके लिये जो वस्तु समानताके लिये लाई जाय) और उपमेय (जिसका वर्णन हो) एक हो जाते हैं, वहाँ साध्यवसाना होती है, क्योंकि गुणोंका एक रूप हो जाता है जैसे—चन्द्रमामें दो खंजन बैठे हुए हैं (उसके सुन्दर मुखपर दो चंचल नेत्र हैं)। रूपकातिशयोक्ति अलंकारमें यही लक्षणा होती है।

५. शुद्धा सारोपा लक्षणा : जब समानता या मेल न होनेसे आरोप होता है तब शुद्धा सारोपा लक्षणा होती है जैसे—घृत आयु है।

६. शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा—ऊपरके 'घृत आयु है' वाक्यके बदले यदि हम घी देते हुए कहें 'लो तुम्हें आयु ही दे रहा हूँ' तो शुद्धा साध्यवसाना होगी या यों कहो कि जहाँ आरोपके विषय 'घी'को आरोप्यमाण 'आयुके साथ अध्यवसान या एक कर दिया गया है।

(ग) *व्यंजना*—

शब्दकी तीसरी शक्ति है व्यंजना। जब हम कोई ऐसा शब्द या वाक्य कहते हैं कि उसके चलते हुए अर्थोंमें अलग कोई निराला ही अर्थ निकले तब यह व्यंग्यार्थ या व्यञ्जना शक्तिसे निकाला हुआ अर्थ कहलाता है। यह व्यञ्जना शक्ति कभी शब्दके द्वारा अपना काम करती है, कभी अर्थके द्वारा। इसलिये यह दो ढंगकी होती है—(१) शाब्दी और (२) आर्थी। यह कभी अभिधाके सहारे काम करती है और कभी लक्षणाके। इसलिये यह दो ढंगकी होती है—अभिधामूला और लक्षणामूला। आर्थी व्यंजना कभी वाच्य अर्थसे निकलती है, कभी लक्ष्य अर्थसे और कभी व्यंग्य अर्थसे। इसलिये यह तीन ढंगकी होती है—वाच्यार्थ-सम्भवा, लक्ष्यार्थ-सम्भवा और व्यंग्यार्थ-सम्भवा। इस प्रकार शाब्दी व्यंजना दो ढंगकी और आर्थी तीन ढंगकी होती है।



अभिधामूला शाब्दी व्यञ्जनामें एक शब्दसे बहुतसे अर्थ निकलते हैं जैसे—हरि शब्दसे इन्द्र, सूर्य, सिंह, शिव, विष्णु और बंदर। पर शंख-चक्रवाले हरिको 'विष्णु' ही कहते हैं।

लक्षणमूला शाब्दी व्यञ्जनामें लक्षणाके सहारे अर्थ निकलता है जैसे, 'बम्बई समुद्रमें बसा है' अर्थात् (बम्बई चारों ओरसे समुद्रसे घिरा हुआ है)।

वाच्य-सम्भवा आर्थी व्यंजना तब होती है जब वाक्यके वाच्य अर्थसे कोई दूसरा अर्थ निकले जैसे रातको देरतक पास बैठे हुए लोगोंसे यह कहना—'ओ हो! दस बज गए।' इसका अर्थ लोग यह समझेंगे कि अब हमें अपने-अपने घर जाना चाहिए।

जब लक्ष्य अर्थमें व्यंजना होती है तब वह लक्ष्य-सम्भवा आर्थी व्यंजना कहलाती है जैसे—'आपने तो आज अच्छा मेला दिखाया।' इसका अर्थ है आपने बड़ा चकमा दिया और हमें मेलेमें नहीं ले गए।

जब एक व्यंग्य अर्थसे दूसरा व्यंग्य अर्थ निकलता है तब उसे व्यंग्य सम्भवा आर्थी-व्यञ्जना कहते हैं जैसे—'लीजिए, कविजी आ पहुँचे' का एक व्यंग्यार्थ तो यह होगा कि 'अब कविता होगी' और दूसरा यह व्यंग्यार्थ यह निकला कि 'अब ये समय नष्ट करेंगे, सोने नहीं देंगे।'

(घ) *समाजमें अच्छी समझी जानेवाली बनावट (उक्तिसंस्कार या डेकोरम)*—

कभी-कभी हम समाजमें भद्दी और बुरी मानी जानेवाली बातको जान बूझकर कुछ बना-सजाकर कहते हैं। ये बातें चार ढंगकी होती हैं। (क) लज्जाजनक, (ख) अमंगल, (ग) ग्राम्य और (घ) शिष्टाचार-विरुद्ध।

१. 'मैं हगने जाऊँगा', लज्जाजनक बात है। इसके लिये हम कहते हैं—मैं निवृत्त होने, शौच होने, मैदान होने या निपटने जाऊँगा।

२. 'वह मर गया' कहना बुरी, अमंगल बात है। इसके लिये हम कहते हैं—उसका स्वर्गवास, वैकुंठवास, गंगालाभ हो गया।' ऐसे ही दूकान बन्द करनेको 'दूकान बढ़ाना' फूल तोड़नेको 'फूल उतारना', दीया बुझानेको दीया बढ़ाना, होली या आग या दीया जलानेके लिये 'होली मँगलाना, आग या दीया जगाना', किवाड़ बन्द करनेका 'किवाड़ देना', मरे हुएकी जली हड्डीको गंगाजीमें डालनेके लिये इकट्ठा करनेको 'फूल चुनना' कहते हैं। और उस हड्डीको 'फूल' कहते हैं। इसी बातको न जाननेवालोंने कबीरका शव अचानक ओझल हो जानेपर बचे हुए फूल (जली हुई हड्डी) को फूल (पुष्प) समझ लिया और अँगरेजीमें उसका उल्था 'फ्लौवर' कर डाला।

३. भकोसना, (खाना) धग्गड़ (पति), कट्टो (प्रिये), जैसे शब्द ग्राम्य हैं। इनके बदले भोजन करना, पतिदेव प्रिये, आदि शब्दोंका प्रयोग किया जाता है।

यह बनावट या सुधार 'उक्ति रिष्कार' (यूफ़ेमिज़्म) कहलाता है। यूफेमिज़्मका अर्थ ही है 'फूहड़ या बुरी, अशोभन, अमंगल और अश्लील बातोंको सुघड़ ढंगसे कहना (ए प्लेज़ेन्ट वे ऑफ़ रेफ़रिंग टु समथिंग अनप्लेज़ेन्ट)। यह तो शब्दकी छान-बीनमें आना चाहिए पर इन शब्दों या वाक्यांशोंके अर्थोंमें भी हमने सुघरपन लाकर भर दिया है, इसलिये इन्हें भी अर्थारोपमें ले लिया गया है। कुछ लोगोंने इसे अर्थापदेश कहकर बड़ा भ्रामक नाम दिया है।

४, चौथा है शिष्टाचार-विधि (एटिकेट या उपचार)। आप कौन हैं ? यह पूछना अशिष्ट ढंग है। पूछना चाहिए—'आपका शुभ नाम क्या है ?' भले ही उसका नाम अशुभ, 'घमोच, खचेड़ू, दुक्खी' ही क्यों न हो। उर्दूवाले किसी कंगलेसे

उसके रहनेका ठिकाना पूछनेके लिये कहते हैं—'आपका दौलतखाना कहाँ है ?' और वह धनी भी हो तो कहता है—'मेरा ग़रीबख़ाना बनारसमें है।' आवभगतके लिये ढले हुए इन सब वाक्योंमें नया अर्थ लगाकर उसमें भलामानुसपन भर दिया गया है। इसलिये यह भी अर्थका आरोप ही है।

(ङ) अयानपन, भूल या धोखेसे नया अर्थ लगाना (अर्थभ्रान्ति)

कभी कभी हम लोग अनजाने, या भूलसे किसी एक अर्थमें कोई दूसरा मिलता-जुलता शब्द चला देते हैं जैसे—'कम्पार्टमेन्ट' के बदले 'डिपार्टमेन्ट', 'अपमान'के बदले 'अभिमान', 'सूत्रपात'के बदले 'सूत्रधार', 'अन्तर्धान'के बदले 'अन्तर्ध्यान'ही ठीक मानकर बोलने लगते हैं। इसे अज्ञानार्थ (मैलाप्रौपिज्म) कहते हैं। इसी अयानपनका दूसरा भी रूप है जब हम एक अर्थवाले कई शब्दोंमेंसे किसी एकको ऐसा अपना लेते हैं कि वैसा ही अर्थ देनेवाले दूसरे शब्द छूट जाते हैं, जैसे नूत्न और नूतन, मानुष और मनुष्य, भ्रकुटी और भृकुटी, कलस और कलशमेंसे पहले शब्द। कभी-कभी शब्दका ठीक अर्थ न जाननेसे भी हम भूल कर बैठते हैं जैसे 'विन्ध्याचल' ही पहाड़का पूरा नाम मानकर कहते हैं—काशीके दक्षिणमें 'विन्ध्याचल पर्वत' है।

(च) शब्द-भांडार अपने होनेसे एक शब्दमें बहुतसे अर्थ भरना (शब्द-दारिद्रय)—

शब्दका भंडार न होनेसे भी लोग एक ही शब्दसे अनेक अर्थ निकाल लेते हैं, जैसे बम्बईमें 'मरना, कटना, जलना, सड़ना, गलना, फटना, टूटना, चुक जाना, बिगड़ना, मिटना' सबके लिये 'खलास' शब्द काममें लाते हैं।

शब्दोंकी बाहरी छानबीन—

§ ६६—संज्ञानां वैविध्यम्। [नाम बहुत ढंगोंपर रक्खे जाते हैं।]

नाम कैसे पड़े? अर्थोंकी जाँच-परख करनेवालोंने अर्थोंकी बाहरी छानबीनका भी एक झमेला लगा दिया है। वे पूछते हैं कि संसारमें ये बहुतसे नाम क्यों पड़े? उनका कहना है कि 'खग' (आकाशमें चलनेवाला), 'पर्वत' (पोरोंवाला) नाम इसलिये चुने गए कि ये छोटे भी हैं और उस वस्तुका संकेत भी करते हैं। कभी-कभी गुणसे भी नाम पड़ता है जैसे—शंखपुष्पी, अश्वगंधा। कभी-कभी एक बोलीके नाम दूसरीमें पहुँचकर दुहरे शब्द ले लेते हैं जैसे—'पाव'का अर्थ पुर्तगालीमें 'रोटी' है पर हम 'पावरोटी' कहते हैं। कभी-कभी लोगोंके नाम बड़े बेढंगे होते हैं; अन्धेका नाम 'नैनसुख' और कंगालका नाम 'कुबेर'। कभी कभी दो बोलियोंके शब्द मिलकर नाम बनते हैं जैसे—इन्सपेक्टर सिंह, जर्मन पांडे, शेरसिंह या रामबख्श। कभी-कभी पुल्लिंग नाम संक्षेपमें स्त्रीलिंग हो जाता है यदि उसका पहला टुकड़ा स्त्रीलिंग-वाची हो, जैसे, लक्ष्मीनारायणका लक्ष्मी, श्यामाप्रसादका श्यामा, श्रीपतिका श्री। हमारे देशमें नाम और अल्ल बड़े बेढंगे ढंगसे मिलते हैं। शर्मा, वर्मा, सिंह, शुक्लसे या खत्री, तेली, सुनारसे आप समझ जाते हैं कि ये किस जातिके हैं, पर कुछ लोग सर्राफ़, जागीरदार, मुन्शी, जौहरी या दूधवाला लिखकर अपने किसी पुरखेके घरमें होनेवाले कामका ठिकाना बताते हैं। नेहरूजीके पुरखे नहरके किनारे रहते थे, यह बात कोई कैसे जान सकता है? कुछ लोग अपने गाँवका ठिकाना देते हैं जैसे मराठोंमें मझगांवकर, मारवाड़ियोंमें टीबरेवाला। दक्षिणमें

लोग अपने नामके साथ पिताका नाम भी चलाते हैं। मद्रासमें अपने नामके पहले गाँवका नाम लगाते हैं जैसे सर्वपल्ली राधाकृष्णन्। ऐसे ही गाँव या नगरके नाम भी या तो उनके ठिकानेसे जैसे—बरना और अस्सीके बीचमें 'वाराणसी' या किसीके नामपर पड़ जाते हैं जसे—रामपुर, और उन नामोंके साथ आबाद, पुर, गंज, या गढ़ लग जाता है। कभी कभी एक नामपर कई नगर बसाकर उनके अलग-अलग नाम रख दिए जाते हैं जैसे—मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फराबाद, और मुजफ्फरगंज। कभी-कभी नामोंका संस्कार भी हो जाता है जैसे—सेगावँका सेवाग्राम, डुमरॉवका द्रुमग्राम। कभी नाम बिगड़ भी जाते हैं जैसे—ब्राह्मणावलसे बामनौली, सिंहसे सिनहा और मुखोपाध्यायसे मुकर्जी। पहले तो किसीके गोत्र, पिता, माता, गाँव, प्रदेश, गुण, शरीरकी बनावटपर नाम रक्खा जाने लगा और फिर यह काम अललटप होने लगा और अब तो नई वस्तु खोजनेवालेके नामपर ही उस वस्तुका नाम रख दिया जाता है जैसे—बिजलीकी बत्तीमें जलनेवाली चमककी नापको 'वाट' कहते हैं, क्योंकि उसका खोजनेवाला 'वाट' था। कभी-कभी लोग अन्धविश्वासमें पड़कर अपने पुत्रका नाम बुरा भी इसलिये रख देते हैं कि उनका पुत्र जी जाय। ऐसा वे लोग करते हैं जिनकी सन्तान जीती नहीं है। ऐसे नामोंमें दुक्खी, झगड़ू, बुहारू, बिपत जैसे नाम हैं। कुछ लोग दिनोंके नामपर सोमारू, मँगरू, बुद्धू रखते हैं और कुछ लोग किसी देवताकी मनौतीसे जनमे हुए बालकका नाम हनुमानप्रसाद, शीतलाप्रसाद आदि रख देते हैं। यह नामका झमेला ऐसा है कि ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि नाम बस इसी कारण रक्खे जा सकते हैं, दूसरे कारणसे नहीं।

सामान्य भाव और विशेष भाव—

प्रोफ़ेसर ह्विटनीने कहा है कि 'अर्थ-विकार या अर्थोंमें जो हेरफेर होते हैं उन्हें हम दो पालियोंमें बाँट सकते हैं—१ 'सामान्य भाव' (साधारणीकरण या जनरलाइज़ेशन) और 'विशेष भाव' (असाधारणीकरण या स्पेशलाइजेशन) ।' पर इन दोनों अवस्थाओंमें भी आरोप (उपचार, इलिप्सिस या मैटाफ़र) काम करता है और सभी अर्थविकार या अर्थोंमें हेरफेर इसीके भीतर आ जाते हैं। इन लोगोंने यह भी कहा है कि उपचार और संसर्गके भीतर ही सब बातें आ जाती हैं। कुछ लोगोंने रूपक (जैसे वह उल्लू कहाँ गया), अनेकार्थता या एक शब्दका दूसरे अर्थमें आने लगना और पहला अर्थ भी बनाए रहना (जैसे 'धातु' शब्द व्याकरण, वैद्यक, शरीर-शास्त्र तथा खनिज-शास्त्रमें अलग-अलग अर्थोंमें आता है), एकोच्चरित समूह (जैसे 'ओनामासीधम' या बहुत-सी कहावतें जैसे 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी'), समास, मूर्त्तीकरण (जहाँ अमूर्त अर्थ मूर्त हो जाता है जैसे—जनता और देवता पहले 'ता' लगे हुए भाववाचक शब्द थे, पीछे मूर्त्त बन गए) और अमूर्त्तीकरण (मूर्त्तका अमूर्त्त हो जाना जैसे 'छाती' शब्द 'बड़ी छाती' शब्दमें साहस या 'उदारता'के लिये आ गया है) भी अर्थोंमें हेरफेर होनेके ढंग हैं, पर ये रूपक, अनेकार्थता, एकोच्चरित समूह, समास, मूर्त्तीकरण और अमूर्त्तीकरण सबके सब 'अर्थारोप' के भीतर आ जाते हैं—

कई छायावाले अर्थोंकी खोज (सूक्ष्मार्थवृत्ति)—

§ ६७—**सूक्ष्मार्थवृत्तिरप्यर्थविकारे। [बालकी खाल निकालनेसे भी अर्थमें हेरफेर होता है।]**

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही काम कई ढंगसे होता है, इसलिये भाषा जाननेवालोंने उन सबके लिये अलग-अलग शब्द बना लिए हैं। यों भी जैसे-जैसे हमारे मनमें नई-नई लहरें बढ़ने लगती हैं वैसे वैसे एक भावकी अलग-अलग छायाके अर्थोंके लिये अलग-अलग अर्थ गढ़ लिए जाते हैं जैसे—'लालसा, कामना, वासना, अभिलाषा, आकांक्षा' ये सब चाह या इच्छाके ही कई रूप हैं। पर इच्छा कैसी और कितनी है यही समझनेके लिये इतने शब्द चल पड़े हैं। जब हमारी इच्छा कुछ पानेके लिये बड़ी ललक उठती है, उसे लालसा कहते हैं। जब हम कुछ आगे-होनेवाली बातके लिये इच्छा करते हैं या किसी दूसरेके लिये कोई इच्छा करते हैं कि 'भगवान् करे ऐसा हो' तब वह कामना कहलाती है। जब हम अपने हाथमें न होनेवाली दूसरेके हाथसे या ईश्वरकी सहायता मिलनेपर हो सकनेवाली बात चाहें तब वह आकांक्षा कहलाती है। जब बराबर किसी एक बातके लिये कोई इच्छा उठती रहे तब वह वासना कहलाती है और सीधी सादी इच्छा, अभिलाषा कहलाती है। ऐसे ही 'फींचना, कचारना, पछाड़ना, सबुनियाना, धोना' सब धोना ही है पर इन सबमें धोनेका ढंग अलग है। इसलिये अर्थकी छानबीन करनेवालोंको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब किसी एक काम या मनके भाव अलग-अलग छायामें होते हैं तब उनका रूप या भावार्थ अलग-अलग समझानेके लिये अलग-अलग शब्द निकाल लिए जाते हैं और उन शब्दोंसे ही उनका ठीक ब्यौरा समझाया जाता है।

अर्थोंमें हेरफेर होनेके कारण—

§ ६८—व्यक्ति-लोकवृत्तिस्तत्र कारणम् ।

[किसी व्यक्ति या समाजके चाहने या चलानेसे अर्थमें हेरफेर होकर चल निकलते हैं ।]

अर्थोंमें हेरफेर होनेके जितने ढंग बताए गए हैं उन्हें देखनेसे जान पड़ेगा कि या तो कोई मनुष्य अपने मनकी ढलन, सूझ-बूझ या भूलसे नया अर्थ चला देता है या पूरा समाज ही नया अर्थ चलाकर अर्थोंमें हेरफेर करता है । इसे यों कह सकते हैं कि अर्थोंमें अदल-बदल होनेके तीन ढंगके कारण हैं—एक व्यक्तिगत, दूसरा साहित्यगत, तीसरा समाजगत। जहाँतक व्यक्तिगत की बात है, वे भी दो ढंगके हैं—एक तो जो हमारी भूल या अयानपनसे चल निकलते हैं, (जैसे—'उपेक्षा'के बदले 'अपेक्षा' कहना, 'अपमान'के बदले 'अभिमान' कहना) । उसके कुछ ऐसे कारण हैं जो हमारे मन, बुद्धि या हृदयसे मेल रखते हैं । हम लोग इतने आलसी हैं कि नया शब्द गढ़नेमें हमें आलस होता है इसलिये हम एक ही शब्दसे बहुत अर्थ निकाल लेते हैं । सिल्क या रेशमसे बने हुए कपड़ेको सिल्क (सिल्क) ही कहने लगते हैं । इसी आलससे हम बड़े शब्दको छोटा कहकर बोलते हैं और 'ब्लैक-मारकेट'को 'ब्लैक', 'रामचरितमानस'को 'मानस', 'बाइसिकिल'को 'साइकिल' कहते हैं । हम 'लाल पगड़ीवाला सिपाही' कहनेके बदले' लाल पगड़ी'में ही 'सिपाही'का भी अर्थ भर देते हैं । इसी फेरमें अँगरेज़ीवालोंने ईखको 'शक्करका डंडा' (शुगरकेन) और मोरको मटरमुर्ग (पी-कौक) बना लिया । हम शाक कहकर, लौकी, आलू, और सूरनको भी शाकमें ही गिन लेते हैं । घोड़ेका सवार कहनेके बदले 'घुड़सवार' कहते हैं ।

क्रोधमें भरकर किसीको 'गधा' और 'सूअर' तक कह डालते हैं। 'मरना, टूटना, फूटना, जलाना'को हम लोग बुरा (अमंगल) मानकर 'वैकुंठवास हो गया, दीया बढ़ा दिया, चूड़ी मौल गई, आग जगा ला' कहते हैं। जब किसीसे काम लेना होता है तब हम चिकनी-चुपड़ी बातें करके बड़े उजड्ड और देहातीको भी 'परम आदरणीय, दानवीर, लोकोपकारी' कह डालते हैं। जब चुटकी लेनी होती है या किसीको बनाना होता है तब हम मूर्खको भी 'आप तो साक्षात् बृहस्पति हैं' या 'वाह कविजी! आपने तो सबको परास्त कर दिया' कहते हैं। कभी-कभी हम डरके मारे अपनी रोटी छीननेवालेको भी 'अन्नदाता' कह देते हैं। कभी ऐसी बान पड़ जाती है कि एक ही शब्दको 'अच्छा, हाँ, अवश्य, कहिए' आदि बहुतसे शब्दोंके बदले एक ही शब्दका सुग्गा-पठन्त करते हैं (जैसे उदयपुरमें सब लोग किसी बातके मानने, सकारने, हामी भरनेके लिये 'हुकम' और रीवाँमें सब बातोंमें 'जी मरजी', कहते हैं)।

कुछ बातोंका मेल हमारे हृदयसे भी है। हम जब किसी बालकसे लाड़ करते हैं तो उसे लल्ला, मुन्ना कहकर उसका नाम बिगाड़ देते हैं। स्त्रियाँ आदरके लिये अपने पतिका नाम न लेकर 'लल्लाके बाबूजी' कहकर पुकारती हैं यहाँतक कि मारवाड़में बच्चोंको 'राँडका' या 'राँडको' भी कह देते हैं जो यों तो अमंगल है पर लाड़में वह भी मंगल समझा जाता है।

ऐसे ही बहुत सी बातोंसे बुद्धिका भी मेल है जैसे पढ़े-लिखे लोग अपनी पंडिताई छाँटनेके लिये एक शब्दको बहुत अर्थोंमें चलाते हैं या दूसरी बोलियोंके शब्द लेकर काममें लाते हैं या जो शब्द घिस या मिट गए हैं उन्हें चलाने लगते हैं या नये शब्द गढ़ते हैं या किसी बिगड़े हुए शब्दको नया रूप दे देते हैं

(जैसे सेगाँवको सेवाग्राम बना दिया) या अपनी धौंससे किसी एक अर्थमें आनेवाले शब्दको किसी दूसरे अर्थमें चला देते हैं (जैसे गाँधीजीने 'अछूत'के लिये 'हरिजन' शब्द चला दिया)।

अर्थोंके हेरफेरके सामाजिक कारण—

अर्थोंमें होनेवाले हेरफेरके कुछ सामाजिक कारण भी हैं। समाजमें लोग फूहड़ शब्द काममें नहीं लाते जैसे—पुरुष या स्त्रीकी जननेन्द्रियके देशी नाम लोग नहीं बोलते और उनके बदले लिंग या योनि आदि संस्कृतके शब्द चलाते हैं। इसी सामाजिक कारणसे 'आम'का संस्कृत शब्द 'चूत' काममें नहीं लाते और पैरको 'पाद' नहीं कहते। कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो भले लोगोंमें नहीं चलते जैसे—अबे, कट्टो, भकोसना, हुरपेटना। ये शब्द ग्राम्य माने जाते हैं। इसी सामाजिक मेलजोलसे हमने दूसरे देशवालोंसे भी शब्द ले लिए हैं जैसे—कोट, बटन, चश्मा, टिकट, राशन, कन्ट्रोल। यहाँतक कि कुछ ऐसे वाक्योंके टुकड़े भी चलते हुए ले लिए जाते हैं जिनका हमसे कोई मेल नहीं होता जैसे—'मगरके आँसू' (क्रोकोडाइल्स टीयर्स) या सभामें 'भाग लेना' (टेक पार्ट इन दि मीटिंग), प्रकाश डालना (थ्रो लाइट)। दूसरे धर्मोंके मेलमें आकर भी हम ऐसे शब्द ले लेते हैं जिनसे अलग-अलग धर्मवालोंकी पहचानमें भूल न हो जैसे—'मस्जिद, गिरजा, नमाज़', आदि। ये सब नए अर्थोंमें लिये हुए शब्द कुछ दिन तो नयेसे लगते हैं पर चलते-चलते घुल मिल जाते हैं।

ऊपरके ब्यौरेसे यह भी समझमें आ जायगा कि शब्द कुछ भी नहीं है। जो कुछ है 'अर्थ' है, जो हम लोग जान-बूझकर या भूलसे किसी भी शब्दमें लगा देते हैं और यह लगा हुआ अर्थ

या तो बहुत दिनोंसे चलता रहनेसे एक अर्थमें बँध जाता है या फिर हम शब्दोंको नये नये अर्थोंमें ढालने लगते हैं। इससे यह समझमें आ जायगा कि अर्थ बदलनेके तीन कारण हुए (१) सामाजिक, (२) व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक और (३) साहित्यमें चलन। कभी कभी कुछ बातें छिपाकर कहनेके लिये भी हम एक शब्दमें ऐसा दूसरा अर्थ भर देते हैं जो न तो कोषमें मिलता है और न लोगोंमें चलता है। पंडे और दलाल या व्यापारी कभी-कभी इस ढंगके शब्द नये नये अर्थोंके लिये काममें लाने लगते हैं पर ये सबकी बोलचालमें नहीं आते, इसलिये यहाँ हम उन्हें छोड़ देते हैं।

कैसे हेरफेर हो जाता है?—

ऊपर हमने जो बहुत ढंगके हेरफेर समझाए हैं उनकी जाँच-परखसे जाना जा सकता है कि इनमें होनेवाले हेरफेर बहुत बातोंसे होते हैं—

१. एक शब्दको बहुत अर्थों में काममें लानेका काम कवियोंने किया है और ऐसा करके उन्होंने अपनी बातमें नयापन और अनोखापन भर दिया है। इसलिये सबसे पहली बात तो यह है कि हममें जो नयापन लानेकी बान होती है वही किसी शब्दमें इतना बल भर देती है कि वह कई ढंगसे बोले जानेपर अलग-अलग अर्थ देने लगती है और फिर जब वह शब्द किसी बोलीमें चल पड़ता है तो वे अर्थ भी उन उन वाक्योंमें उन शब्दोंके साथ बँध जाते हैं जैसे—'कान ऐंठना, कान उठाकर सुनना, कान कतरना, कान करना, कानका कच्चा होना, कानका परदा फटना कान खड़े करना, कान खाना, कान गरम करना, कान दबाना, कान न हिलना, कान पकड़ना, कानपर जूँ न रेंगना, कानपर

हाथ धरना, कान-पूँछ फटकारना, कान फड़फड़ाना, कान फूँकना कान भरना, कानमें डालना, कानमें तेल डाल बैठना, कान रखना, कान लगाना, कानसे निकल जाना, और कानाफूसी करना'में एक 'कान'को ही न जाने कितने अर्थोंमें लोगोंने बाँधकर उसके बहुतसे अर्थ लगा लिए हैं।

२. आरोप : हम लोग कभी-कभी यह भी करते हैं कि एक शब्द जब किसी एक काममें आता है तो उस काममें आनेवाली दूसरी वस्तुके लिये भी वही शब्द जोड़ देते हैं जैसे—पर्ण शब्दका अर्थ था पत्ता और पत्तेपर लिखा भी जाता था इसलिये लिखे हुए या लिखनेके काममें आनेवाले कागजको भी 'पन्ना' कहने लगे। 'अक्षवाटका' अर्थ था वह स्थान जहाँ जुवा खेलनेके लिये लोग जुटते हों। आगे चलकर यही अक्षवाट या अखाड़ा शब्द उस ठौरके लिये भी काम आने लगा जहाँ बहुतसे लोग जुटते हों। अट्टा या अड्डा शब्द ऊँचे स्थानके लिये काम आता था। आगे चलकर पंछियोंके बैठनेके लिये जो बाँस लगाया गया या छतरी बाँधी गई उसे भी अड्डा कहने लगे और अब तो मोटरोंके अड्डे, तांगोंके अड्डे और जुवेके अड्डे बन गए और अड्डेका अर्थ हो गया 'जहाँ बहुतसे जुटते हों।' इस ढंगके अर्थ लक्षणासे निकाले जाते हैं।

३. दूसरी बोलीसे शब्द लेना : जब हम किसी दूसरी बोलीसे कोई शब्द लेते हैं तो कभी-कभी उनके अपने अर्थको बदल देते हैं—जैसे गुजरातीवाले 'घड़ियाल' शब्द 'घड़ी'के लिये काममें लाने लगे। हम लोगोंने भी अँगरेजीसे बहुत शब्द लिए हैं जिन्हें हम कभी अनोखे अर्थमें भी काममें लाते हैं।

४. जब एक बोली बोलनेवाले लोग तितर-बितर हो जाते

हैं तो एक ही शब्द अलग अर्थ देने लगता है जैसे—संस्कृतका वाटिका, बँगलामें बाड़ी (घर) के लिये आ गया।

५. वातावरण बदलना : कभी-कभी अपने देश या समाजके बदलनेसे या अपना रहन-सहन या रीति-रिवाज या परिस्थिति बदलनेसे भी शब्दके अर्थ बदलते रहते हैं जैसे—ब्रिटिश लोग 'मिठाई'को 'डेस्सर्ट' कहते हैं और अमरीकावाले 'फल'को 'डेसर्ट' कहते हैं (भौगोलिक वातावरण बदलनेसे) 'ठाकुर' शब्द मंदिरमें भगवानकी मूर्तिके लिये, क्षत्रियोंमें क्षत्रियके लिये, नाइयोंमें नाईके लिये चलता है (संगति)। ऐसे ही 'वर' शब्द दुलहेके लिये ही बँध गया है (चलनसे)।

६. जब नई-नई वस्तुएँ बनती और निकलती हैं, तब उनका नाम रखनेके लिये हम नये शब्द न गढ़कर पहलेसे चले आते हुए किसी शब्दको ही अपना लेते हैं जैसे—सिल्कका अर्थ है रेशम, इसलिये उससे बननेवाले दुपट्टेको भी हम लोग 'सिल्क' कहने लगे।

७. कभी-कभी आवभगतके लिये भी बहुतसे शब्द एक बँधे हुए अर्थमें चल पड़ते हैं जैसे, 'आपका दौलतख़ाना कहाँ है। मेरा ग़रीबख़ाना यहाँ है।' उदयपुरमें सब कामोंके लिये 'हुकुम' कहा जाता है यहाँतक कि 'हाँ' और 'अच्छा'के लिये भी 'हुकम' ही कहा जाता है। कभी-कभी इस आदरके लिये अपने इष्टदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली या काममें आनेवाली वस्तुओंके साथ भी अपने इष्टदेवका नाम लगा देते हैं और पवित्र नाम रख देते हैं जैसे—रामानुज सम्प्रदाय वाले 'नमक'को रामरस कहते हैं और वैष्णव लोग पानीको 'तीर्थम्' कहते हैं।

८. गंदी, बुरी और डरावनी बातोंको लोग दूसरे ढंगसे घुमाकर कहते हैं जैसे, बीमारके लिये 'उनके दुश्मनोंका

तबीअत नासाज़ है', फूल तोड़नेको फूल उतारना, दिया बुझानेको दिया बढ़ाना, दूकान बन्द करने या किवाड़ बन्द करनेको दूकान बढ़ाना और किवाड़ देना, होली जलानेको 'होली मँगलाना' कहते हैं क्योंकि लोग कोई अमंगल, डरावनी या बुरी बात नहीं कहते। ऐसे ही शौच जानेके लिये लोग कहते हैं टट्टी जाना, निपट आना या नम्बर एक, नम्बर दो आदि। ऐसे ही जब किसीको कोई साँप काट लेता है तो कहते हैं 'कीराने सूँघ लिया' या 'जानवरने पकड़ लिया।' कभी-कभी लोग अपने बड़ों या प्यारोंका नाम नहीं लेते जैसे पति, गुरु स्त्री और लड़केका नाम। इसी ढंगसे आदर दिखानेके लिये छोटा काम करनेवाले चमारको 'रैदास' और किसी दोषी या अंगहीनको जैसे अन्धेको सूरदास कहते हैं।

९. लम्बे या कई शब्दोंके बदले एक छोटा शब्द भी काममें लाने लगे हैं जैसे, 'बाइसिकिल'के लिये साइकिल, 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल'के लिये 'हिन्दू स्कूल', 'मोटरकार'के लिए 'कार', आदि।

१०. समानता (एनेलौजी) : एक-सा देखकर भी अर्थ बदल जाता है जैसे—मास्टर शब्दका अर्थ है स्वामी या 'बालकों पर शासन करनेवाला'। इसलिये बम्बईमें सब अधिकारियोंको 'मास्टर' कहने लगे यहाँ तक कि ट्रामका टिकटवाला, रेलका टिकटबाबू सब मास्टर बन गए।

११. कभी-कभी लोग भूलसे या जानबूझकर दूसरे अर्थमें कोई शब्द चला देते हैं जैसे—गुजरातीमें 'ज़रूरत'के लिये 'जरूर'। लेखक लोग व्यंग्यमें या चटक लानेके लिये तो लक्षणा-व्यञ्जनासे किसी शब्दका नया अर्थ ही चलाते हैं पर कभी-कभी भूलसे भी चला देते हैं जैसे हिन्दीमें लोगोंने 'आश्रय' (सहारा) के बदले 'प्रश्रय' चला दिया जिसका अर्थ है 'प्यार या आदर'।

१२. कभी-कभी लोगोंके अयानपनसे एक ही शब्द अपने दो रूप लेकर एक ही अर्थमें चलता है। पर ऐसा वे लोग चलाते हैं जो बोलीको जानते नहीं जैसे—'हिमाचल पर्वत' या 'अयोध्यापुरी नामक नगरी' या 'दर असलमें'।

१३. कभी-कभी एक ही शब्दके दो रूप एक साथ चलते हैं जैसे—काम-काज, ब्याह-शादी। कुछ लोगोंने स्तन और थन, गर्भिणी और गाभिनको भी इसीमें ले लिया है (लौ ऑफ़ डिफ़रेन्सिएशन' माना है जो ठीक नहीं है।

१४. अनाड़ीपनसे भी अशुद्ध शब्द चल पड़ते हैं जैसे—'मैं द्वितीय श्रेणीके डिपार्टमेंन्टमें लखनऊ गया था।' यहाँ 'कम्पार्ट-मेन्ट'के बदले 'डिपार्टमेन्ट' कहा गया है। इसे मैलाप्रौपिज्म कहते हैं। ऐसे ही लोग 'मेरा अपमान किया' के बदले 'मेरा अभिमान किया' और 'विलाप किया' के बदले 'प्रलाप किया' कहते हैं।

१५. किसी राष्ट्र, जाति या धर्ममें आदर न होनेसे भी अर्थ बदलता है जैसे—आर्यसमाजी लोग 'पोप' शब्द 'पाषंडी'के लिये काममें लाते हैं, बौद्ध शब्द बुद्धू बन गया और जैनियोंके आदरके शब्द 'नग्न और लुंचित' भी 'नंगे लुच्चे' बनकर बुरे अर्थमें आ गए। आजकल भी लोग ऊबकर किसी भी बुरे कामके लिये कहते हैं कि 'कांग्रेसी काम हो रहा है।'

१६. कभी जो कोई शब्द बहुत चल निकलता है वह बहुत अर्थोंमें आने लगता है जैसे—बंबईमें 'खलास' शब्द 'मरने, कटने, सड़ने, जलने, चुकने, मिटने, हटने, गिरने, टूटने, फूटने', सबके लिये आता है।

१७. कभी-कभी कोई बड़े लोग किसी एक शब्दको किसी अर्थमें चला देते हैं जैसे गाँधीजीने 'हरिजन' शब्द अछूतोंके

लिये चला दिया। यह अर्थका उत्कर्ष हुआ या अपकर्ष यह बताना भाषा-विज्ञान-वालोंके लिये भी टेढ़ी खीर है।

१८. कभी-कभी किसी शब्दके एक अंशका ध्वनि-बल दूसरे अंशपर लग जाता है (शिफ़्ट ऑफ़ एम्फ़ेसिस), जिससे अर्थमें हेरफेर हो जाता है, जैसे—गवेषणाका अर्थ था 'गौको खोजना', पर आगे चलकर 'गव' शब्दसे बल निकलकर 'एषणा'पर टिक गया और 'गवेषणा'का अर्थ हो गया 'छानबीन करना', 'खोज करना'।

१६. कभी ऐसा भी होता है कि एक वर्गके एक शब्दका अर्थ बदल जाता है और फिर आगे चलकर उससे बननेवाले शब्द वैसे ही बनते हैं जैसे—दुहिता का अर्थ है दुहनेवाली पर दौहित्र शब्द इस दुहितासे बना, दूध दूहनेसे उसका कोई लगाव नहीं।

२०. अनजाने नया अर्थ निकल आना जैसे—सिंधुसे 'हिन्दू जाति' और 'हिन्द' दोनों अर्थ हो गए।

२१. किसी शब्द, वर्ग या वस्तुमें कोई एक बात सबसे अलग दिखाई पड़ने लगती है सो उसीमें पूरी वस्तुका अर्थ आ जाता है जैसे—'लाल पगड़ी दिखाई पड़ी।' 'यहाँ 'लाल पगड़ी'में 'लाल पगड़ीवाले सिपाही' आ गए।

२२. कभी-कभी हम लोग आपसमें एक दूसरेपर छींटे कसते हुए, किसी झूठ बोलनेवालेको कह बैठते हैं—'वाह रे हरिश्चन्द्र!' यहाँ 'हरिश्चन्द्र'का अर्थ है 'झूठा'।

२३. कभी-कभी हम लोग जब आपेसे बाहर हो जाते हैं, तब भी कुछ ऐसे शब्द कह बैठते हैं जिनका अर्थ दुलार भी हो जाता है और खीझ भी, जैसे—'आना बच्चू, वाह बेटा!' मेरे ललना' आदि।

२४. सुनने वालेकी जैसी समझ होगी वैसा ही वह शब्दका अर्थ समझेगा या उसके मनमें अवसरसे या अपनी समझसे

जो ज्ञान होगा वह वैसा ही समझेगा जैसे—'लाओ' कहनेपर एक राजाके चार नौकर अलग-अलग चार वस्तुएँ ले आए। राधेश्यामको माननेवाले तोतेकी बोलीको 'राधेश्याम' और रामके उपासक 'राम-राम' समझते हैं।

२५. कभी-कभी किसी शब्दका ठीक अर्थ निश्चय नहीं होता इसलिये उसके अर्थ बदल जाते हैं जैसे—'धर्म'

२६. एक ढंगकी एक वस्तुका नाम उस पूरे ढंगकी वस्तुओंको ही दे दिया जाता है जैसे—शाक कहते हैं हरे पत्तेको, पर अब आलू, टमाटरभी शाक ही कहलाने लगा।

२७. कभी-कभी भाव स्पष्ट करनेके लिये लोग कमसे कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक बात कहना चाहते हैं। ऐसा करनेके लिये वे अलंकारोंसे काम लेते हैं। इसका ब्यौरा हम पीछे दे आए हैं क्योंकि लक्षणा और व्यंजनाके सहारे अर्थ बदलनेमें कुछ देर नहीं लगती। दूसरे सब अर्थ तो देरसे बदलते हैं पर ये अर्थ झट बदल जाते हैं।

अर्थमें अदल-बदलके कुछ निराले ढंग हैं—

यह नहीं समझना चाहिए कि अर्थ बदलनेके कुल इतने ही ढंग हैं, और भी बहुतसे हो सकते हैं।

१. कभी तो एक शब्द अपना नया अर्थ लेकर भी पुरानेको नहीं छोड़ता और उसके बहुतसे अर्थ बदलते रहते हैं। जैसे—हम ऊपर 'कान'की बात बता आए हैं।

२. कभी कभी एक सोतेसे निकले हुए या एक ही शब्दके दो अलग-अलग रूपोंके अर्थ अलग-अलग हो जाते हैं जैसे—स्तन और थन।

३. कभी-कभी कुछ ऐसे शब्द होते हैं कि सुननेमें तो एकसे

रहते हैं पर अलग-अलग सोतोंसे आते हैं और उनके अर्थ भी अलग होते हैं—जैसे हिन्दीमें 'आम' एक फलको कहते हैं और अरबीमें 'साधारण'को। इसे 'होमोनोम या होमोफ़ोन' कहते हैं।

कुछ योरोपीय विद्वानोंने यह बतलाया है कि अर्थमें हेरफेर कुछ ढले हुए ढंगोंसे होता है—

(क) कोई शब्द चाहे अपने जितने अलग-अलग अर्थ रखता हो पर अक्षरोंका वही मेल कभी-कभी ऐसे अनोखे अर्थ देने लगता है कि उनपर अचानक हमारा ध्यान नहीं जाता या कम ध्यान जाता है। इस ढंगके जो हेरफेर होते हैं वे बहुतायतसे दो ढंगके होते हैं—

१. पूरे टुकड़ेका हेरफेर (पार्ट-होल शिफ्ट्) या पूर्ण खंड परिवर्तन, जो अपने बड़े घेरेका अर्थ छोड़कर किसी एक बँधे हुए घेरेके अर्थमें काममें लाए जाने लगते हैं जैसे—

तर्क प्रायः निष्फल होता है।

तुम्हारा तर्क निरर्थक है।

२. पूरा हेरफेर (कन्टेन्ट चेन्ज) जैसे—यह (लेनदेनकी बात) अत्यन्त सबल तर्क है। इन दो बातोंके साथ-साथ यह तो समझ ही लेना चाहिए कि शब्दका अर्थ प्रसंगसे जाना जाता है जैसे अँगरेज़ीमें 'शुक्रवार'के पीछे और 'कुर्सी'से पहले '१३ वाँ' शब्द आ जाय तो उसका बड़ा भद्दा अर्थ हो जाता है।

यह बताया जा चुका है कि जितने भी संकेत (चिह्न) होते हैं वे किसी न किसी बातके प्रतीक या बतानेवाले होते हैं। पर यह बात तभी होती है जब उससे किसीको किसी बातका संकेत या अर्थ मिले। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि शब्द या वह चिह्न (प्रतीक) स्वयं वह वस्तु नहीं है जो वह बताना चाहता है, जैसे लिखा हुआ 'घोड़ा' शब्द या घोड़ेका चित्र सचमुच

घोड़ा नहीं होता। कुछ शब्द ऐसे होते ह जो अलग ठौरपर अलग अर्थ देते हैं। कुछ अनेकस्थानीय शब्द हैं जो अलग-अलग ठौर पर आकर अलग अर्थ देने लगते हैं।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं कि वे एक प्रसंगमें तो अर्थ देते हैं पर दूसरे प्रसंगमें उनका कोई अर्थ नहीं होता। 'किन्नर' शब्दका अर्थ कथा-काव्य आदिमें हो सकता है पर 'प्राणिशास्त्र' में वह निरर्थक है।

(ख) बोलीके इतिहासमें शब्दोंमें हेरफेर इस ढंगसे होता है—

१. बदलेमें आना 'स्थानग्रहण' (सब्स्टीट्यूशन) : अर्थात् जैसे रहन-सहन रीति-नीति बदले वैसे ही अर्थ बदलते जायँ जैसे—जहाजोंकी बनावट बदल जानेपर भी 'जहाज' शब्द सत्रहवीं सदीके जहाजोंके लिये भी काममें आता था और अबके जहाजोंके लिये भी काममें आता है।

२. बराबरी (एनेलौजी या समानता) : जैसे—'क्विक' शब्द फुर्तीके लिये काममें आता है पर 'क्विक ऐन्ड दी डेड'में उसका अर्थ हो जाता है 'ठंढा'।

३. छोटा करना (समास या शौर्टनिंग) : जैसे प्रिंसिपल टीचरका हो गया 'प्रिंसिपल', 'मोटरकार'का हो गया 'कार'।

४. नाम रखना (नामकरण या नौमिनेशन) जैसे—अँगरेजीके 'काउज लिप'का 'काउस्लिप' हो गया।

५. दूसर ठौरपर लगना (अन्तरण या ट्रान्स्फर) जैसे—पेड़का 'पर्ण' (पत्ता) दूसरी ठौरपर पहुँचकर पुस्तकका 'पन्ना' हो गया।

६. एक अर्थके लिये दूसरेका आजाना (परम्यूटेशन या परार्थ परिवर्तन) : जैसे—अँगरेजीमें 'बीड्स'का अर्थ तो है 'प्रार्थना' पर आगे चलकर प्रार्थना करनेकी मालाके दाने ही 'बीड्स' कहलाने लगे।

७. मेलपर ढलना (एडीकेशन या समरूपण): जैसे—जानवरके सींगसे बनाए जानेवाला बाजा भी आगे चलकर 'सिंगा' बाजा ही कहा जाने लगा।

किन्तु आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि अर्थ दो बातोंसे ही बदलता है—एक तो किसीसे जान, अनजान या भूलसे चलाए जानेपर और दूसरा समाजके चलनकी ढलनपर। ऊपर अर्थमें हेरफेरका जितना ब्यौरा दिया गया है उस सबसे यह जाना जा सकता है कि चाहे कोई अर्थ पहलेसे चला आया हो या नया जोड़ा गया हो पर सबमें एक ही बात मिलती है और वह यह है कि १. या तो किसीने भूल और अनजानसे किसी शब्दसे नया अर्थ निकाला या उसमें लगा दिया है या जान-बूझकर अर्थमें चटक या नयानपन लानेके लिये ऐसा किया है या २. समाजने ही नये अर्थका चलन चला दिया। अर्थकी छानबीनके लिये इतना ब्यौरा बहुत है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१. नई सूझ-बूझसे भी अर्थ निकाले जाते हैं।

२. बुद्धि-नियम एक ढोंग है।

३. बुद्धिके सहारे अर्थोंमें हेरफेर होनेके ये नियम हैं: विशेष भाव, भेदीकरण, उद्योतन, विभक्तिशेष, भ्रम, उपमान, नयालाभ और लोप।

४. अर्थोंमें इतने ढंगके हेरफेर होते हैं—(क) अच्छेका बुरा होना (अर्थापकर्ष) (ख) बुरेका अच्छा होना (अर्थोत्कर्ष) (ग) छोटे घेरेसे बड़े घेरेमें आना (अर्थ-विस्तार), (घ) बड़े घेरेसे छोटे घेरेमें पहुँचना (अर्थसङ्कोच), (ङ) कुछका कुछ

हो जाना (अर्थादेश), (च) आपसमें अदल-बदल जाना (अर्थ-विनिमय), (छ) बढ़ जाना (अर्थ-विसर्पण), (ज) नये अर्थमें लग जाना (अर्थारोप)

यह छन्द घोट लीजिए—

अपकर्ष हो, उत्कर्ष हो, सङ्कोच हो, विस्तार हो।
आदेश, अर्थारोप हो, विनिमय, विसर्पण-सार हो॥

५. नाम रखनेके बड़े निराले और बहुत ढङ्ग होते हैं।
६. बालकी खाल निकालनेसे भी अर्थमें हेरफेर होता है।
७. किसी व्यक्ति या समाजके चलानेसे ही अर्थोंमें हेरफेर होते हैं।

९

लिखावटका भी अर्थ होता है।

लिखावट कैसे चली और कितने ढंगकी ?

लिखावट भी बोलीका सङ्केत ही है—पहचानके लिये बनाए हुए चिह्नोंसे लिखावट बनी—कुछ लोग लिखावटकी चार अवस्थाएँ मानते हैं : विचार-लिपि, (आइडियोग्रैफ़िक), चित्रलिपि (पिक्टोग्रैफ़िक), सस्वराक्षर-लिपि (सिलेबिक) और अक्षरलिपि (एल्फ़बैटिक)—नागरीकी लिखावट ध्वन्यात्मक (फ़ोनेटिक) या ध्वनिके ढङ्गपर बनी होनेसे पूरी है—लिखावट दाएँ, बाएँ या नीचेको चलती है।

§ ६९—**लेखोऽपि वाक्सङ्केतः।**

[लिखावट भी बोलीका ही सङ्केत है।]

हम पीछे बता आए हैं कि लकीरोंको देखकर भी हम कुछ जान या समझ लेते हैं। किसी बने हुए चित्रको देखकर हम जान लेते हैं कि यह किसका है या इसमें क्या ब्यौरा दिया हुआ है। बाण-जैसी बनी हुई लकीर (→) देखकर हम समझ लेते हैं कि जिधर इसकी नोक है उधर हमारा ध्यान दिलाया जा रहा है। पत्थरपर खोदकर लिखा हुआ, ताड़-पत्तोंपर लोहेकी कलमसे गुदा हुआ और वस्त्र, चमड़े, लकड़ी या कागजपर लिखा हुआ पढ़कर भी हम लिखनेवालेकी बात समझ जाते हैं। चित्रकी बात तो अनपढ़ भी समझ जाते हैं, बाण जैसी बनी हुई

लकीरोंको भी लोग अटकलसे समझ लेते हैं, पर लिखे हुएको वे ही लोग पढ़ते-समझते हैं जो उस लिखावटको सीख चुके हैं। ऐसी लिखावटें सब देशोंकी अलग-अलग हैं और कहीं-कहीं तो एक देशमें ही सौ-सौ लिखावटें काममें आती रही हैं या आ रही हैं।

झटपटकी लिखावट (त्वरा-लिपि या शौर्ट हैंड)—

लिखावटोंकी चलनका ब्यौरा जाननेसे पहले यहाँ हम एक बात और बता देना चाहते हैं कि जहाँ आजकल संसार-भरमें बहुत-सी लिखावटें चली हैं वहाँ लोगोंने किसीके बोले हुएको ज्योंका-त्यों लिखनेका ढंग निकाल लिया है जिसमें एक-एक ध्वनि, शब्द या वाक्यके लिये सङ्केत होता है और वह ऐसे झटकेसे लिखा जाता है कि पूराका पूरा शब्द या कभी-कभी पूरा वाक्य एक चिह्नसे समझा दिया जाता है। इससे यह समझना चाहिए कि लिखावट भी हमारी बोलीका ऐसा अङ्ग बन गया है कि बोलीकी जाँच-परख करते हुए हम इसकी ओरसे आँख नहीं मूँद सकते।

क्योंकि हमारी बोलीकी ध्वनियों या शब्दों या मनकी बातोंको बतानेमें आजकल लिखावट ही सबसे बढ़कर काम आ रही है इसलिये यह भी जान लेना चाहिए कि लिखावट कैसे चली और कैसे फैली।

लिखावटें कैसे चलीं ?

§ ७०—**अभिज्ञानचिह्नाल्लिपिसृष्टिः ।**

[पहचानके लिये बनाए हुए चिह्नोंसे लिपि बनी ।]

हमारी धरती जब जङ्गलीपनकी नींदसे अँगड़ाई लेकर, आँखें मलकर, जँभाकर जाग उठी तब उसके बच्चोंने जो बहुतसे

भले काम किए उनमें एक था लिखनेका ढङ्ग निकालना। पर यह काम मन बहलाने-भरके लिये ही नहीं किया गया था। उन्हें झख मारकर इस काममें हाथ डालना पड़ा। पौ फटी, सूरज निकला, दोपहर हुई, दिन ढला। पर इन्हीं चार पहरोंमें न जाने कितनी बार वे जूझ जाते थे। कल्लनका घड़ा कहीं जल्लनके घड़ोंमें पहुँच गया तो बस महाभारत हुआ समझो। कल्लनके घड़ेपर मोती तो टँके नहीं थे कि लाखोंमें धरा हो, कोई पहचान ले। घड़े-घड़े एकसे। वे दरबारी चाल-ढाल तो जानते न थे। बस पहले भौंहें तनतीं, फिर डंडे तुलते और बात-बातमें सिर फूट जाते, बर्छियाँ चलने लगतीं। पलक मारते मारते धरती लाल हो उठती। पर धीरे-धीरे उन लोगोंने सोचा कि अपनी कोई पहचान बना लें, तब तो टंटा ही जाता रहे। बस एक-एक टोलीने अपनी-अपनी अलग-अलग पहचान बना ली और अपने डंगर-ढोर, कपड़े-लत्ते, लोहे-लक्कड़ सबको आँक दिया। यहींतक नहीं, उन्होंने अपने घरके बूढ़े-बच्चे, छोटे बड़े, सबपर यह पहचान लगा दी।

फिर जङ्गलमें घूमते-घामते सैकड़ों जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौधे, बेल-पत्ते उन्हें मिलते। उनमेंसे कोई उनकी खाँसी हरता, कोई उनकी आँखोंकी ललाई काट देता। अब इनमेंसे किसे-किसे वे मनकी कोठरियोंमें तहा-तहाकर रखते। उन्होंने इन पेड़-पौधोंके नाम रक्खे और सबके लिये चिह्न बना डाले।

फिर जब एक-एक झुण्डके लोग दूर-दूर जा बसे, दो भाइयोंके बीच कई-कई कोसका बीच पड़ गया, तब उन दूर बैठे हुए भाई-बन्दों, गोती-नातियों, हेली-मेलियोंसे लेन-देन, काम-काज, कीन-बेचका व्यवहार रखनेके लिये भी उन्हें लिखावटका आसरा लेना पड़ा।

जब इन सब बातोंने उन्हें लिखनेका ढङ्ग चलानेके लिये बेबस कर दिया तब उन्होंने आड़ी-तिरछी लकीरोंसे एक लिखावट बना ली। उससे उन्होंने अपने घर-बारका काम तो चलाया ही, साथ ही इन्हीं लकीरोंमें वे अपने गीत भी लिखने लगे। पर हाँ, बहुत दिनोंतक इने-गिने लोग ही थे जो लिखना सीखते थे और लिखा हुआ बाँच सकते थे। ऐसे लोगोंपर अपढ़ लोग बड़ा अचरज करते और समझते कि 'ये लोग जोगी हैं, भूतोंसे खेलते हैं।'

देखा जाय तो सबसे पुरानी लिखावट पत्थरोंपर लिखे हुए कुछ बेतुके, बेढङ्गे किरम-काँटेभर ही हैं। गुनी लोग यह मानते हैं कि पत्थरकी इन लिखावटोंको पहले किसी लिखैयेने मट्टी, गेरू या सेलखड़ीसे पाटीपर लिख डाला होगा और फिर किसी 'काला अक्षर भैंस बराबर' समझनेवाले पथरकटने छीनी लेकर उस लिखावटको गहरा खोद डाला होगा।

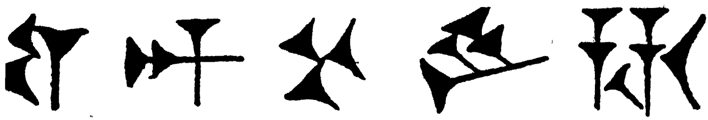
कैल्डियाकी पोथियाँ—

फिर जैसे-जैसे दिन बीते वैसे-वैसे लोग सीधे, चपटे खपड़ों और पतली ईंटोंपर लोहेके तकुएसे खोदकर उन्हें आगमें पकाकर पोथियाँ बनाने लगे। ऐसी खपड़-पोथियाँ पहले-पहल सर हेनरी लेअर्डको कैल्डियाकी खोजमें हाथ लगी थीं।

इन खपड़-पोथियोंमेंसे एक लंदनके अचरज-घरमें रक्खी है जिसमें बाढ़की कहानी लिखी है। यह पोथी लिखावटकी सबसे पुरानी साख है और ईसासे लगभग चालीस सौ बरस पहले लिखी गई थी। सच्ची बात तो यह है कि हिब्रुओंने अपने जनमकी कथावाली पोथीमें बाढ़वाली कहानी कैल्डियावालोंसे ही ली थी जो इन्जीलके जनमसे सैकड़ों बरस पहले लिखी जा चुकी थी। ये कैल्डियावाले फन्नीदार अक्षरोंमें ऐसे लिखते हैं कि

एक-एक अक्षर एक-एक फन्नीकी या कई-कई फन्नियोंकी मिलावटसे बना होता था और उन्हें वे चौकोर नोकवाले तकुओंसे बाईंसे दाईं ओरको लिखते थे।

कैल्डियाकी लिखावट—



कैल्डियावाले लिखैया वहाँकी सरकारसे पैसा पाते थे। जब वहाँके राजा लोग चढ़ाईपर जाते थे तो लिखैयोंको भी अपना टंट-घंट बाँधकर साथ जाना पड़ता था। वहाँ वह लिखता जाता था—'इतनी बस्तियाँ हथियाईं, इतने बैरी खेत आए, इतना माल हाथ लगा, इतने दिन लड़ाई हुई आदि।' साथ ही वह राजाकी बड़ाईके पुल भी बाँधता जाता था—'यों उछले, यों पैंतरा भाँजा, यों तलवार चलाई, यों घुड़सवारी की, यों चमके, यों दमके और यों जीत गए।' धरमकी पोथियाँ लिखनेवाले कैल्डियाके पुजारी लोग भी रजवाड़ोंके चाकर ही थे। लड़ाई और धरमकी पोथियोंके साथ-साथ इन खपड़-पोथियोंमें खेती, तारोंकी चाल और राज चलानेकी बातोंपर भी लिखा हुआ मिलता है। यह कहा जाता है कि लेअर्ड और असीरियामें खोजनेवालोंके हाथ जो खपड़-पोथियाँ लगी हैं वे निनेवेके राजा सेन्नाचेरिबके घरकी हैं जिसने विक्रमी सम्वतसे ६२४ बरस पहले आँखें मींच ली थीं।

पुरानेपनमें दूसरी बारी मिस्रवालोंकी पोथियोंकी आती है। ये पोथियाँ बत, बाँस या नरकटके कलमसे पसारोंपर लिखी जाती थीं। इन पसारोंको पैपाइरस या पपुरस कहते हैं। ये पसारे नील नदीकी घाटियोंमें उगनेवाले सरपतोंकी गुद्दी कूटकर

बनाए जाते थे। अबतक मिली हुई मिस्री पोथियोंमें सबसे पुरानी पोथीका नाम "मरोंकी पोथी" है। यह तब लिखी गई थी जब बड़े पिरेमिडोंकी नींव डाली जा रही थी। ऐसी एक मरोंकी पोथी लन्दनके अचरज-घरमें रक्खी है। जार्ज पूतनाम (पुटनम) जी कहते हैं कि इसमें देवताओंके लिये बनाए हुए गाने और उनकी बड़ाई है। इसमें मरे हुओंकी अगले पिछले जनमकी सारी बातोंका पूरा ब्यौरा दिया हुआ है।

यह मरोंकी पोथी एक-एक मरे हुएके साथ मुर्दाघरमें इसलिये रक्खी जाती थी कि उसके आत्माको अगला जन्म लेनेतक सुख मिलता रहे। इस चलनसे ये पुराने मिस्री धरतीके सबसे पुराने पोथी बेचनेवाले हैं। मिस्रमें पढ़ने-लिखनेकी बातें मन्दिरोंसे चलीं यहाँतक कि मिस्री देवताओंमें एक थोथ हर्मेस नामके देवता भी हैं जो पोथीघरोंकी रखवाल करते हैं। मिस्रियोंकी लिखावटमें अक्षरोंके बदले मछली, कौवा सिंह, चिड़िया और उन दिनोंके बर्तन भाँडों-जैसे अक्षर बनाए जाते थे।



(मिस्री अक्षर)

मरोंकी पोथीको छोड़कर दूसरी पोथी है 'प्ताह होतेपकी सीख' जो दूसरी सबसे पुरानी पोथी है। 'प्ताह होते'प मेम्फिसमें जनमा था और विक्रम सं० ३५०० बरस पहलेतक था। इस पोथीके पुरानेपनकी बात तो इसीसे समझी जा सकती है कि यह उन दिनों लिखी जा रही थी जिन दिनों श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितको कथा सुना रहे थे। कौन जानता है कि यह प्ताह

होतेप (व्यास-सुत) शुकका ही मिस्री नाम हो । यह मूसासे २००० बरस पहले और होमरसे २५०० बरस पहले था।

ये सीखें लगभग १६ हाथ लम्बे और ३॥ हाथ चौड़े लपेटनों-पर लिखी गई हैं और अब पैरिसके सरकारी पोथी-घरमें रक्खी हुई हैं।

चीनी पोथियाँ—

इन पोथियोंके पीछे चीनकी पोथियोंकी बारी आती है। चीनी साधु कनफूचीने विक्रमसे ४५० बरस पहले ही कथा, कहानियों, गीतों और सीखोंकी पोथियाँ लिखनेका चलन चला दिया था। ये पोथियाँ बाँसके चौड़े फच्चरोंपर लिखी जाती थीं। कभी तो तीखे, नुकीले तकुएसे इनपर अक्षर कोंचे जाते थे और कभी-कभी वे कोंचे हुए अक्षर हिन्दुई कालिखसे रँग दिए जाते थे। चीनी लोग पाटके कपड़ोंपर भी लिखा करते थे। उन्होंने विक्रमसे पचास बरस पहले ही कागज बनानेका काम चालू कर दिया गया था। ईसाके जनमके थोड़े दिनों पीछे ही चीनियोंने ठोस काठके समतल टुकड़ोंपर उल्टे खोदकर उनसे छापनेका लग्गा भी लगा दिया था और योरोपमें छापनेका काम चलनेसे तीन सौ बरस पहले ही वे उठौवा छापे छापने लगे थे।



(चीनी अक्षर, जो ऊपरसे नीचेको लिखे जाते हैं)

चीनकी इन पुरानी पोथियोंमें सीखकी बातें और चाल-ढाल ठीक करनेकी बातें भरी हैं। उन दिनों चीनी लिखयोंका लोगोंमें बड़ा जस था, बड़ा नाम था। पर विक्रमसे लगभग सौ बरस

पहले चीनके रावण शेहांगतीने यह डुग्गी पिटवा दी थी कि खेती बारी, दवा दारूकी पोथियोंको छोड़कर और सब पोथियाँ जलवा दी जायँ। कहने-भर की देर थी। पोथियोंकी होलियाँ जलने लगीं। ऐसे ऐसे नैन-फूटे राजा भी धरतीपर कम हुए होंगे जिन्होंने अपनी जलनका बदला पोथियोंसे निकाला हो। शेहांगतीने उन पोथियोंकी आग ताप तो ली पर उसके मनकी बात पूरी न हो पाई। चीनी लोग तो बड़े घाघ होते ही हैं। पोथियोंमें जो कुछ लिखा था वह उन्होंने घोटकर गलेमें रख लिया। पोथियाँ तो आगमें जल गईं पर गलोंपर किसका बस चल सकता था। इस सत्यानासी राजाको आँखें मुँदते ही फिर चीनियोंका कलम छूतेही वे जी उठीं।

चीनमें भी इन लिखैयोंको सरकारसे पैसे मिलते थे। पेट पालनेके लिये इन्हें घरघर भटकना नहीं पड़ता था चीनमें लिखैयोंकी जितनी पूछ हुई उतनी और कहीं नहीं हो पाई। इन पुराने चीनी लिखैयोंमें पानशाओ नामकी एक देवी भी थी जो विक्रमकी पहली सदीमें अपने देशमें बड़े-बड़े लोगों और उनके कामोंका ब्यौरा लिख रही थी। उन दिनों चीनमें इतना लिखा गया कि आजतक कोई क्या खाकर उतना लिखेगा। सच पूछो तो चीनी लिक्खाड़ पुरानी पोथियोंपर ही अपनी कलम माँजते हैं। चीनी कुछ पुरानी चालके लोग हैं। जहाँ किसीने किसी पुरानी पोथीमें मीन-मेख निकाली कि उसका सिर नापा गया। लोग उसे चैन नहीं लेने देते। उसका सोना, खाना, उठना, बैठना दूभर कर देते और उसके कामको ढिठाई-भरा और अकारथ समझते हैं। इसलिये चीनी लिक्खाड़ अभीतक पुराने गीत गाते हैं। उनपर नया रङ्ग चढ़ता ही नहीं, वे चढ़ने ही नहीं देते। एक पैर आगे रखनेमें वे हिचकते हैं।

सबसे पुरानी हिब्रूकी पोथियाँ भी ईसासे लगभग छः सौ बरस पहले लिख डाली गई थीं।

यूनानमें लिखावट—

किन्हीं दिनों उत्तरी अफ्रीकामें कार्थेज धरतीकी सबसे बड़ी बस्ती थी। वहाँके व्यापारी फ़ोनीसियोंने पहले पहल यूनानियोंको कलम थामना सिखाया और मिस्रियोंने उन्हें पोथी बनाना। यों तो यूनानी अक्षर ईसासे आठ सौ बरस पहले ही जनम ले चुके थे पर वे छिट-फुट बिखरे हुए थे, कोई उन्हें पूछता न था।



(फ़ोसीसी अक्षर)

जेवंसीका कहना है कि यूनानमें पढ़ने लिखनेकी चलन विक्रमसे पाँच सौ बरस पहले चल निकली थी और जो लोग पढ़ना-सीखनेसे जी चुराते थे या पढ़ लिख नहीं सकते उनकी लोग खिल्ली उड़ाते थे, उन्हें उल्लू बनाते थे और उनपर उँगली उठाते थे। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे पढ़ लिखकर पूरे गुनी हो जाते थे। बस वे इतना ही लिखना जानते थे कि अपने घर-बारका, हाट-बाटका, पैसे-रूपए और घटी बढ़ीका ब्यौरा रक्खें और अपने भाई-बन्धोंसे लिखा पढ़ी कर लें।

सिकन्दरियामें—

एथन्सके पीछे सिकन्दरियामें यूनानियोंने अपनी जड़ जमाई और वहाँ प्तोलैमी भाइयोंने अच्छी-अच्छी सभी यूनानी पोथियाँ बटोर लीं। जब जूलियस सीजरने विक्रमसे नौ बरस पीछे सिकन्दरियाके पोथीघरमें आग लगाई, उन दिनों उसमें सात

लाख पोथियाँ थीं। आज दो सहस्र बरस पीछे धरतीके सबसे बड़े लन्दनके पोथी-घरमें कुल चार लाख ही पोथियाँ इकट्ठी हो पाई हैं। इस पोथी-घरके जल जानेसे लाखों बड़े कामकी पोथियाँ राख हो गईं।

सिकन्दरियाके पोथी-घरकी पोथियाँ लन्दनके पोथी-घरकी जैसी न थीं। उनमेंसे सैकड़ों ऐसी थीं जो सरपतके पसारोंपर लिखी हुई थीं और कुछ ऐसे कागदोंपर लिखी हुई थीं जो आग लगनेके सौ बरस पहलेसे वहाँ बनने लगे थे। उनमें दोनों ओर काठके गोलहरे लगे रहते थे जिनपर उन्हें लपेट भी सकते थे। इनमेंसे कोई-कोई लपेटे तो बड़े लम्बे होते थे पर बहुत करके छोटे पसारोंपर ही लिखनेका चलन था। पसारा लगभग हाथभर चौड़ा होता था। इसपर धुर लम्बाईकी ओर ऐसी सकरी पट्टियोंमें ऊपरसे नीचेतक लिखते थे जो साढ़े छः अंगुलतक चौड़ी होती थीं। इन्हें अलग करनेके लिये दो पट्टियोंके बीचों-बीच लाल लकीरें खिची रहती थीं।

होमर या हमेरसकी ईलियद नामकी पोथी ऐसे ऐसे चौबीस लपेटोंपर लिखी गई होगी। इस पोथीके बहुतसे उतार-लेख उस पोथी-घरमें थे। इन पसारोंपर जब लिखैया लिख लेते थे तब वे चितेरोंको दे दिए जाते थे जो नये-नये ढङ्गों और रंगोंसे बेल बूटे चीतकर उन्हें सजाते थे और बीच-बाचमें उनपर ढङ्ग-ढङ्गकी मूरतें भी खींच देते थे। तब वे उन्हें पोथीगरके पास ले जाते थे जो इनके कन्ने बराबर करता था और इन पसारोंको घोंटकर चिकना कर देता था। तब उसके दोनों ओर लकड़ीके गोलहरे डण्डे लगाकर एक ओरसे लपेटकर गोलमोल करके कुन्देवाले डोरेसे बाँध देते थे और इन काठके गोलहरोंके छोरोंपर कभी कभी चाँदी, पीतल या चमकदार धातु भी मढ़ देते थे। ऊपर ही हमने कह

दिया है कि इनपर नरकटके दीवेकी कालिखमें गोंद मिलाकर लिखते थे, पोथीकी पीठ केसरसे रँग देते थे और ये लपेटे पीले या बैंगनी रंगके कागदी उब्बोंमें सँभालकर रख दिए जाते थे।

पहलेके लिखैया लोग पोथी बेंचते भी थे। वे पैसा देकर किसीसे लिखी हुई पोथी उधार लेते और एड़ी-चोटीका पसीना एक करके इन्हीं लपेटनोंपर लेखे उतार कर धनिकोंके हाथ बेंच देते थे। ऐसी पोथीके व्यापारी विक्रमके समय तक ऐथन्समें बहुतेरे थे। ये लोग सड़कोंपर, चौहट्टोंपर अपनी हाट लगाते थे। चाणक्यके समय ही यूनानमें पोथी बेचना पड़े व्यापारोंमें गिना जाने लगा था। ये पुरानी पोथी बनिये बड़े घाघ होते थे। नई लिखावटको सदियों पुरानी बनानेका गुन भी इन्हें आता था। वे ऐसा करते थे कि पोथी लेकर अनाजके बखारेमें डाल देते थे। इससे कुछ ही दिनोंमें उसका रंग भी धुँधला हो जाता था और उनमें कीड़े भी लग जाते थे। बस पोथी पुरानी पड़ गई और लिखैयोंने इस पुरानी बनाई हुई नई पोथीको किसी आँखके अन्धे और गाँठके पूरेके मत्थे मढ़कर अपने टके सीधे कर लिए।

यूनानी पोथियाँ—

ईसासे तीन सौ बरस पहले सिकन्दरिया ही यूनानी पढ़ने-लिखनेवालोंका अड्डा बन गया। लगभग उन्हीं दिनों रोमवाले भी यूनानियोंकी देखा-देखी उन्हींके ढङ्गपर कलम माँजने लगे थे। सिकन्दरियाकी उन दिनोंकी देन है यहूदियोंके इञ्जीलका उल्था जिसे 'सप्तु आगिस्त' कहते हैं। ऐसा सुनते आए हैं कि वह उल्था सत्तर यहूदी रब्बियोंने मिलकर किया था। एक तो मिस्रमें बननेवाले पसारोंसे ही सिकन्दरियाको बड़ा आसरा मिल गया और फिर झगड़ालू राजाओंकी पहुँचसे दूर रहनेसे उसका

काम और नाम दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता गया। सिकन्दरियाके पोथी-घरमें बड़े-बड़े धक्काड़ लिखनेवालोंका जमघट था। अनगिनत पोथियाँ लिखी गईं और देश-देशमें बाँटी और बेची गईं पर सिकन्दरियाके ये सुनहरे दिन बहुत दिन टिक न सके, रोमवालोंने उन्हें उजाड़ डाला और साथ ही साथ यूनानियोंके दिन भी ढल गए।

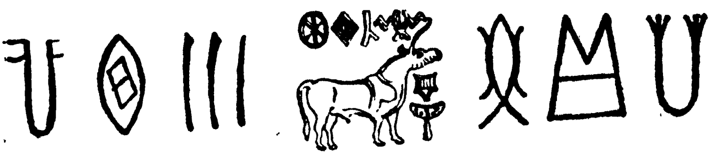
रोममें लिखावट—

पहले-पहल रोमवालोंकी पोथियोंमें सब मसाला औरोंकी मँगनीका था। पर रोमने जब अपनी धाक जमाली तब दूर-दूरसे बालकी खाल खींचनेवाले अनगिनत लिक्खाड़ोंने रोममें आकर अपना अड्डा जमाया। पहले तो बहुत दिनोंतक यूनानी बोलीका बोलबाला रहा और रोमी लोग भी यूनानी पोथियोंके पन्ने ही उलटते रहे। पर जब रोमी बोली कुछ ताव पकड़ने लगी तब भी उसकी नींव और ढाँचा यूनानी ही रहा। यूनानी नाटकोंका रूमी बोलीमें उल्था कर लिया गया था। होमर भी रोमीमें बोलने लगे थे। सच बात तो यह थी कि यूनानी लड़कीको रोमी कपड़े-भर पहना दिए थे, और तो और, जो सबसे पुराने धक्काड़ लिखनेवाले थे वे भी सभी बाहरके थे। रोमके पढ़ने-लिखनेके सुनहले दिन बस सौ बरसतक ही तो रहे। ईसाके सौ बरस पहलेसे लेकर ईसाके जनमतक रोमके बड़े-बड़े लिक्खाड़—सिसरो, लुक्रीतिअस, सीजर, होरेस, वर्जिल, ओविड और लिवी जनमे और चलते बने। रोममें भी ऐसे लिक्खाड़ कम नहीं थे जो अपना पेट पालनेके लिये पैसेवालोंका आसरा लें और यह चाल बहुत दिनोंतक चलती भी रही। बेचारे होरेस और वर्जिलको करोड़पति मैसेनसका मुँह ताकना पड़ता था। पर एक ही अच्छी

बात थी कि हमारे देशके राजाओंके ढङ्गपर वह भी गुन परखता था। वह न होता तो इन जैसोंको भी पेटकी आग बुझानेको घर-घर हाथ पसारने पड़ते।

ब्राह्मी—

अपने देशमें लिखनेकी चाल तो न जाने कब चल पड़ी थी। मोहनजोदड़ो और हरप्पामें खपड़ोंपर जो लिखावट है वह ईसासे पाँच हजार बरस पहलेकी बताई जाती है और यह भी कहा



(मोहन जोदड़ोकी लिखावट)

जाता है कि सिन्धके मैदानमें रहनेवाले आर्योंने बेबिलोन और मिस्रवालोंसे अपना मेल-जोल बना रक्खा था और वहाँवालोंसे लेन-देन भी चलाते थे। कौन जाने मिस्रवालोंको खपड़-पोथियाँ हम लोगोंने ही दी हों। पर इन बातोंमें क्या धरा है? हाँ, सबसे पुरानी हमारी ब्राह्मी लिखावट हमें उस घड़ेके ढकनेसे मिलती है जो पिप्रावामें पाया गया है और जिसमें भगवान बुद्धके फूल रक्खे मिले हैं। इसके पीछे तो अशोकने लाट, टीले और पहाड़की चट्टानोंपर ब्राह्मी और खरोष्ठीमें बुद्धके धरमकी और भलेपनकी बातें खुदवाई थीं। यह चाल कई सौ बरसतक चलती रही और धीरे-धीरे ताड़के और बाँसके पत्तोंपर लिखाई होने लगी और फिर तो भोजपत्रोंपर भी लोग लिखने लगे। सबसे पुरानी ताड़पत्तेपर लिखी हुई पोथी छठी सदीकी लिखी हुई है जिसका नाम है उष्णीष-विजयधारिणी और वह पाई गई

जापानके होर्म्यूज मठमें। इस ब्राह्मीके न जाने कितने रूप बदले और आज तो यह देवनागरी, गुजराती और बंगला लिखावटोंमें थोड़ासा हेरफेर लेकर छापेमें आजानेसे कुछ साँचोंमें बँध गई है।

कुछ लोगोंने द्राविड़ी लिखावटोंको भी ब्राह्मीसे निकला बताया है पर यह ठीक नहीं है। चौथी पालीमें नागरी अंक और अक्षरका ब्योरा देते हुए हम इसे समझावेंगे।

यों धरतीपर पोथियाँ चल निकलीं और फिर तो धीरे धीरे छापेकी कल चल निकली और हाथकी बढ़िया लिखावटके दिन लद गए।

लिखावटकी चार अवस्थाएँ—

§ ७१—विचार-चित्र-सस्वराक्षर-ध्वन्यक्षरक्रमेण लिप्यश्चतस्र अवस्था इति केचित्।

[कुछ लोग मानते हैं कि लिखावटकी चार अवस्थाएं रहती हैं।]

कुछ विद्वानोंका मत है कि लिखावट एक ढंगसे चार अवस्थाओंमें ढलकर बनी है—

१. एक बातके एक संकेतवाली (आइडियोग्रैफ़िक या विचार-लिपि)

२. चित्र-लिखावट (पिक्टोग्रैफ़िक या चित्र-लिपि)

३. बोलीकी लहरपर लिखावट (सिलेबिक या लयान्वितलिपि)

४. एक ध्वनिवाले अक्षरोंकी लिखावट (अल्फ़ाबेटिक या ध्वन्यक्षर लिपि)

इन चारों अवस्थाओंको वे इस ढङ्गसे मानते हैं कि सबसे पहले लोग एक पूरी बातके लिये एक चिह्न बना देते थे। यदि उन्हें कहना होता कि 'मैं जा रहा हूँ' तो वे एक चिह्न बना देते

थे। इसके पीछे आई चित्र-लिपि, जिसमें एक-एक चित्र बनाते थे। जैसे उन्हें घोड़ा बताना हुआ तो घोड़ेका चित्र बना देते थे। आज भी ये दोनों ढङ्गकी लिखावटें पुरानी अनपढ़ जातियोंमें ज्योंकी त्यों मिलती हैं। तीसरी लयान्विति (सस्वराक्षर या सिलेबिक) लिपि है जिसमें व्यञ्जनके साथ स्वर मिले रहते हैं "क" अक्षर बराबर है क + अ। इसीलिये बहुतसे लोग हमारी देवनागरी लिखावटको लयान्वितिमूलक (सस्वराक्षर या सिलेबिक) मानते हैं, पर वे यह भूल जाते हैं कि सिलेबिल या लयान्विति तो किसी शब्दकी बहुत सी ध्वनियोंका वह सबसे छोटा मेल है जो एक झटकेमें बोला जाता हो जैसे "संसार" शब्द लीजिए। सिलेबिल या लयान्वितिको देखते हुए इसमें दो झटके या सिलेबल् हैं—एक सम् , दूसरा सार। पर इसमें अक्षर तीन हैं सं, सा, र और ध्वनियाँ छः हैं (स्, अं, स्, आ, र्, अ । इसलिये जो लोग देवनागरी लिखावटको सिलेबिक मानते हैं, वे भूल करते हैं। चौथी लिखावटें वे हैं जिनमें ध्वनिके लिये अक्षर आता है जैसे अँगरेजीका 'बी' = 'ब' है।

§ ७२—ध्वन्यात्मकत्वात्पूर्णा हि देवनागरी।

[नागरीकी लिखावट ध्वनिके ढंगपर बनी होनेसे पूरी है।]

आचार्य चतुर्वेदका मत है कि नागरी सस्वराक्षर लिखावट न होकर ध्वन्यात्मक है और इसीलिये हम उसे सब लिखावटोंमें सबसे अच्छी सुलझी हुई लिखावट मानते हैं, क्योंकि हम जैसा बोलते हैं वैसा ही उसमें लिखते हैं। अँगरेजी—जैसी लिखावटोंमें गड़बड़ यह है कि वहाँ अक्षरका नाम है "बी" पर वह आता है ब के लिये। अक्षरका नाम है "ए" और आता है अ, आ, ए, ऐ और औ के लिये, इसलिये, उनमें बहुत झंझट करनी पड़ती है।

पर हमारी लिखावटमें ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। यहाँ तो जो अक्षरका नाम है वही उसे देखकर बोला जाता है। उसे पढ़ने, समझने और बोलनेमें कोई झंझट नहीं होती। इसलिये हम देवनागरीको पूरी लिखावट मानते हैं और उसे पाँचवीं 'ध्वन्यात्मक अवस्था'में मानते हैं।

लिखावट कैसे चलती है?—

§ ७३—दक्षिण-वामाधोगतयः।

[लिखावट दाएँ, बाएँ या नीचेको चलती है।]

दुनियामें जितनी कुछ लिखावट है सब तीन ढंगसे चलती है—

१. बाएँसे दाएँ, जैसे देवनागरी या योरोपकी रोमन लिखावटें।

२. दाएँसे बाएँ जैसे अरबी, फ़ारसी।

३. ऊपरसे नीचे, जैसे चीनी बोलीकी लिखावट।

अभीतक कोई ऐसी लिखावट देखनेमें नहीं आई जिसमें नीचेसे ऊपर लिखा जाता हो। पर आजकल जैसी सजावट होने लगी है उसमें कभी-कभी दाएँसे या बाएँसे लिखी जानेवाली लिखावटें भी ऊपरसे नीचे या टेढ़ी बाँकी लिख दी जाती हैं पर यह सजावटमें ही होता है, लिखनेकी चलनमें नहीं।

लिखावटकी जाँच परखके लिये जो ऊपर ब्यौरा दिया गया है उतना बहुत है।

सङ्केत विद्या—

जैसे लिखावट चली वैसे ही लोगोंने गुपचुप बातचीत करनेके लिये कुछ हाथके संकेत भी बना लिए थे जिनमें अक्षर,

मात्रा सब वैसी ही जानी जा सकती थी जैसे लिखावटमें। कहा जाता है कि जब लङ्कामें राम और हनुमान आपसमें बातचीतमें करते थे तो उन्होंने एक अपना गुर बना रक्खा था—

अहिफन कमल चक्र टंकार।
ताल पवन यौवन सिसकार॥
उँगली अक्षर चुटकी मात्रा।
राम पवनसुत करते बात्रा॥

इसे यों समझ सकते हैं कि हाथको साँपके फन जैसा बना दिया तो उसमें "अ" से अः तक सब आ गए। कमल जैसा बनाया तो क, ख, ग, घ, ङ आ गया। चक्रके ढंगसे उँगली घुमाई तो च, छ, ज, झ, ञ आ गए। मुंहसे टंकार दिया तो ट, ठ, ड, ढ ण आ गए। हाथसे ताल दी तो त, थ, द, ध, न आ गए। पंखेके ढंगसे हाथ घुमाने लगे तो प, फ, ब, भ, म आ गए। मुँहपर हाथ फेरा तो य, र, ल, व, आ गए और मुँहसे सिसकारी भरी तो श, ष, स, ह आ गए। जिस वर्गका जो अक्षर बताना हुआ उतनी उंगलियाँ उठा दीं जैसे "ग" कहना हुआ तो कमल जैसा हाथ बनाकर तीन उँगलियाँ उठा दीं और "गा" कहना हुआ तो दो चुटकियाँ भी बजा दीं। इस प्रकारके अपने-अपने अलग-अलग संकेत लोगोंने बना लिए हैं और उन्हें काममें भी लाते हैं पर वे बोलियोंकी छानबीनके लिये किसी कामके नहीं हैं।

लिखने और बोलनेमें भेद—

लिखने और बोलनेमें ध्वनियाँ भी वे ही रहती हैं, शब्द भी वे ही रहते हैं और वाक्य भी वे ही रहते हैं पर दोनोंमें बहुत भेद हो जाता है। जब कोई बोलता है तब वह उसके साथ आँख

भौं हाथ, नाक, पाँव भी चलाता है और अपने स्वरको भी भावके साथ उतारता-चढ़ाता है, इसलिये बहुत-सी बातें तो उसके इस आँख चलाने और स्वरके उतार-चढ़ावसे या भौंसे समझमें आ जाती हैं पर लिखा हुआ समझनेके लिये बोलियोंके सब शब्द, उनके अर्थ और काममें लानेके लिये सब ढंग जान लेनेपर ही हम उनका अर्थ लगा सकते हैं। इसलिये बोली हुई बातका अर्थ समझानेसे लिखी हुई बातका अर्थ समझाना बहुत कठिन होता है पर फिर भी लिखनेवालोंने ऐसे-ऐसे लिखनेके ढंग निकाल लिए हैं कि जो बात अपने मुँहपर भाव लाकर कही जा सकती है उसकी छाया लिखनमें भी ज्योंकी त्यों आ जाती है। इस सबका ब्यौरा हम पिछले अध्यायमें ही दे आए हैं।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१. लिखावट भी बोलीका संकेत ही है।

२. पहचानके लिये जो पहले चिह्न बनाए, गए, उन्हींसे लिखावट बन निकली।

३. कुछ लोग मानते हैं कि लिखावटकी चार अवस्थाएँ रही हैं : विचार-लिपि, चित्र-लिपि, सस्वराक्षर-लिपि, और अक्षर-लिपि।

४. नागरीकी लिखावट ध्वनिके ढंगपर बनी होनेसे पूरी है।

५. लिखावट दाएँसे बाएँ, बाएँसे दाएँ या ऊपरसे नीचेको चलती है।

॥ अनेक भाषावित्साहित्याचार्य पण्डित सीतारामचतुर्वेदी-द्वारा विरचित भाषालोचन ग्रन्थकी दूसरी पाली नौ अध्याय और ७२ सूत्रोंमें पूरी हुई ॥

तीसरी पाली

[संसारकी बोलियाँ और उनके बोलनेवाले कहाँ कहाँ हैं ?]

१

संसारमें बोलियाँ कैसे फैलीं ?

बोलियोंका बँटवारा

संसारकी बोलियोंका बँटवारा दो बातोंको देखकर किया गया : (क) रूप या बनावट (रूपाश्रित वर्गीकरण) और (ख) गोत्र (गोत्राश्रित वर्गीकरण)—बनावटकी दृष्टिसे बोलियाँ दो ढंगकी हैं : १. अलगन्त (अलग-अलग शब्दोंवाली, विकीर्ण, अयोगात्मक या आइसोलेटिंग), २. जुटन्त (प्रत्यय और उपसर्ग जुटाकर बनाई हुई, सप्रत्ययोपसर्ग, योगात्मक या एग्ल्यूटिनेटिव)—जुटन्त बोलियाँ तीन ढंगकी मिलती हैं : १. मिलन्त (धातुरूपात्मक, श्लिष्ट या इन्फ्लैक्शनल) २. घुलन्त (सम्पृक्त, प्रश्लिष्ट या इन्कौर्पोरैटिङ्ग), ३. अलग-जुटन्त (अश्लिष्ट, सिम्पिल एग्ल्यूटिनेटिव)—आपसी नातेको देखकर बोलियोंके बारह गोत्र माने गए हैं—आचार्य चतुर्वेदी और पेईने ऐसे सत्रह परिवार माने हैं ।

§ १—**रूप-गोत्राश्रितौ वर्गौ ।**

[बोलियोंका बँटवारा उनकी रूप या बनावट और आपसी नाते या गोत्रके सहारा किया गया ।]

दूसरी पालीके सूत्र § ४२ में हम बता आए हैं कि बोलियोंकी बनावट चार ढङ्गकी मिलती है—१. अलगन्त (विकीर्ण या अयोगात्मक या आइसोलेटिङ्ग), २. जुटन्त (सप्रत्ययोपसर्ग या एग्ल्यूटिनेटिव), ३. मिलन्त (धातुरूपात्मक या इन्फ्लैक्शनल), ४. घुलन्त (सम्पृक्त या इन्कौर्पोरेटिङ्ग) । वहाँ इनका ब्यौरा देते हुए बताया गया है कि—

१. अलगन्त या विकीर्ण (अयोगात्मक या आइसोलिटिङ्ग) भाषाएँ अलग-अलग बिखरे हुए शब्दोंसे बनी होती हैं।

२. जुटन्त (सप्रत्ययोपसर्ग या एग्ल्यूटिनेटिव) भाषाएँ ऐसे शब्दोंसे बनी होती हैं जिनके आगे, पीछे या बीचमें कुछ अर्थ समझाने वाले लटके (प्रत्यय, उपसर्ग, मध्यग) जुटे हुए हों।

३. मिलन्त (धातुरूपात्मक या इन्फ्लैक्शनल) भाषाएँ वे होती हैं जिनके शब्दोंके साथ संज्ञाओं या क्रिया-रूपोंकी विभक्तियाँ मिली हों।

४. घुलन्त (सम्पृक्त या इन्कौर्पोरेटिङ्ग) वे होती हैं जिनके वाक्योंके सब शब्द एकमें घुलकर एक शब्द होकर वाक्य बन जाते हों।

बोलियोंको छानबीन करनेवालोंने संसारकी बोलियोंकी जाँच-परख करके यह देखा कि बहुत सी बोलियाँ अलग-अलग होती हुई भी कुछ बातोंमें आपसमें मिलती-जुलती सी लगती हैं। इस ढङ्गका मेल दो बातोंमें होता है—

१. जिसमें सम्बन्धतत्त्व या दो शब्दोंके बीच नाता जतानेवाले शब्द एक-से होते या उनकी बनावटमें कुछ एक-सी बातें होती हैं।

२. जिसमें अर्थ-बोध या शब्द (अर्थयोग या अर्थतत्त्व) या अर्थ बतानेवाले शब्द एक-से होते हैं।

इन्हीं दो बातोंका मेल देखकर लोगोंने भाषाओंको दो पालियोंमें बाँटा है—

(क) बनावटके ढङ्गपर बँटवारा (रूपाश्रित वर्गीकरण) जिसे कुछ लोगोंने आकृति-मूलक वर्गीकरण कहा है और जिसे अँगरेजीमें सिन्टैक्टिकल या मौर्फोलौजिकल क्लासिफिकेशन कहते हैं। यह वर्गीकरण यह देखकर किया जाता है कि किन बोलियोंमें मेल-जोड़ या सम्बन्ध-तत्त्व एकसे लगते हैं।

(ख) दूसरा होता है गोत्राश्रित वर्गीकरण, जिसे कुछ लोग पारिवारिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण कहते हैं और जिसे अँगरेजीमें हिस्टौरिकल क्लासिफिकेशन कहते हैं। यह वर्गीकरण बोलियोंमें अर्थ-बोध या अर्थ-तत्त्व (शब्द) एकसे होनेपर किया जाता है और यह व्याकरण या शब्दोंकी जाँच-परखके सहारे होता है। परिवार शब्द इसलिये ठीक नहीं है कि अरबी, अँगरेजी, तुर्की आदि बहुतसे शब्द हिन्दीके परिवारमें तो आगए पर उसके गोत्रके नहीं है। इसलिये गोत्र शब्द ही ठीक है।

रूपाश्रित वर्गीकरण

जब हम रूपकी चर्चा करते हैं तो उससे यह समझना चाहिए कि वाक्यमें आनेवाले शब्दोंका आपसी नाता किस ढङ्गसे दिखाया गया है। 'रामने अयोध्यामें राज्य किया' में चार शब्द 'राम, अयोध्या, राज्य, करना' हैं। रूपकी देखभालके लिये हमें यह परखना होगा कि—१. इन चारोंको अपने-अपने ठीक अर्थमें लानेके लिये हमने इन्हें वाक्यमें किस ढंगसे बाँधा या इनका नाता दिखाया है। २. दूसरी बात यह है कि इस वाक्यमें आनेवाले चारों शब्द—'रामने, अयोध्यामें, राज्य, किया' किस ढङ्गके धातु, प्रत्यय या उपसर्गके साथ या यों कहिए कि अपने आगे-पीछे या बनावटमें होनेवाले किस हेर-फेरके साथ आए हैं। इन्हीं दो बातोंके सहारे रूपाश्रित वर्गीकरण किया जाता है।

§ २—विकीर्ण-सप्रत्ययोसर्गौ रूपाश्रितौ।

[रूपाश्रित वर्गमें दो ढंगकी बोलियाँ आती हैं—अलगन्त और जुटन्त।]

इस रूपाश्रित वर्गीकरण या शब्दोंकी बनावटके सहारे होनेवाले बँटवारेमें दो ढङ्गकी बोलियाँ आती हैं—१. अलगन्त

(विकीर्ण या अयोगात्मक या आइसोलेटिङ्ग) २. जुटन्त (सप्रत्ययोपसर्ग या एग्ल्यूटिनेटिव या योगात्मक)। इससे यह बात समझमें आ सकती है कि वाक्य और शब्दको देखकर ही यह वर्गीकरण किया गया है। इस रूपाश्रित वर्गीकरण (बनावटके सहारे होनेवाले बँटवारे) में जो दो ढङ्गकी बोलियाँ आती हैं उन्हें अलग-अलग भी समझ लेना चाहिए।

(क) अलगन्त (विकीर्ण, अयोगात्मक या आइसोलेटिङ्ग)

कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जिनके वाक्यमें सब शब्द अलग-अलग बिखरकर रहते हैं पर कौन शब्द किस अर्थके लिये कहाँ आना चाहिए यह भी उसके पल्लेसे बँधा रहता है क्योंकि ऐसी बोलियोंमें मेल जोड़ दिखानेवाले लटके (नाता बतानेवाले उपसर्ग, विभक्ति, प्रत्यय आदि) नहीं हुआ करते और न शब्दोंकी बनावटमें ही कोई हेर-फेर होता है। वाक्योंकी ऐसी बनावट उन बोलियोंमें होती हैं जिनमें एक शब्दके लिये एक अक्षर होता है जैसे चीनी आदि एकाक्षर गोत्रकी भाषाएँ। हिन्द-यारोपीय बोलियोंमें भी अब कुछ ऐसा रङ्ग दिखाई देने लगा है कि उनके वाक्योंके शब्द भी अलग-अलग बिखरते जा रहे हैं। संस्कृत बोलीमें राममें ही 'टा' प्रत्यय जोड़नेसे 'रामेण' बनता था पर अब राममें हमने 'सु' प्रत्यय लगाकर हिन्दीमें 'रामने' बना लिया। ऐसी लगभग सभी बोलियोंमें वाक्यकी बनावटमें शब्दोंकी ठौर बँध गई है। हिन्दीमें हम कहते हैं—'सीता और लक्ष्मणको साथ लेकर राम वनको गए' पर संस्कृतमें इसे कई ढङ्गसे कह सकते हैं—

सीतया लक्ष्मणेन सह रामः वनं गतः।
रामः वनं लक्ष्मणेन सीतया च सह गतः।

गतः रामः वनं सह सीतया लक्ष्मणेन च ।
वनं रामः सह सीतया लक्ष्मणेन च गतः ॥

चीनी बोलीकी एक कविताका हम ज्योंका त्यों उल्था देते हैं जिससे यह समझनेमें असुविधा न होगी कि कैसे बिना क्रियाके ही उन्होंने अपना काम चला लिया है और अर्थ समझनेमें भी कोई झंझट नहीं होती—

सरिताके दो कूल। वैवाहिक भोज।
समय आगमन। नौका लुप्त।
हृदय प्रफुल्लित। आशा मौन।
इच्छाएँ सब सुप्त ॥

प्रसादजीने अपनी कामायनीमें ऐसे ही बिखरे शब्द रखकर छन्द लिखा है—

अवयवकी दृढ़ मांस पेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्तका होता था जिनमें सञ्चार ॥

यह होना इस प्रकार चाहिए था—

उस नरकी दृढ़ मांस-पेशिमें ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
उसकी स्फीत शिराओंमें था स्वस्थ रक्तका सुख-सञ्चार ॥

हिन्दीमें तार देनेके लिये तो हम ऐसे लिखते ही हैं—

'वसन्तोत्सव। उपस्थिति अनिवार्य। क्षमा। रुपया आवश्यक।'

यह अलगाव होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते—'गए लक्ष्मण सीताके राम साथ वनको'। यह हिन्दीके वाक्यकी बनावटमें ठीकमें नहीं समझा जायगा।

कभी-कभी किसी एक शब्दपर ठमक देनेके लिये उसमेंसे कोई नया अर्थ निकालनेके लिये वाक्यके शब्दोंमें भी हम अदल-बदल कर लेते हैं जैसे—

१. 'रामने आम खाया है' और २. 'आम रामने खाया है।'

इनमेंसे दूसरे वाक्यमें यह बताया गया है कि जिस आमको आप खोज रहे हैं, वह रामने खाया है। पर हम यह नहीं कह सकते—'खाया आम रामने'। हाँ, कवितामें इस ढङ्गकी छूट हो जाती है और हम कह सकते हैं—

गए राम वनमें लक्ष्मणको सीताको ले साथ।

पर इसको भी यों नहीं कह सकते—

राम साथ सीताको लक्ष्मणको ले गए वनमें।

इससे यह समझनेमें कठिनाई न होगी कि जिस बोलीमें वाक्योंके शब्द जितने बिखरते जाते हैं, उतनी ही उन शब्दोंकी ठौर वाक्यमें बँधती जाती है। ये सब बोलियाँ अलग शब्दोंवली (विकीर्ण) होती है।

ख. जुटन्त (सप्रत्ययोपसर्ग) या एग्ल्यूटिनेटिव

कुछ बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनमें शब्दोंके साथ दूसरे शब्दोंसे मेल जोड़ बतानेवाले लटके (प्रत्यय, उपसर्ग और मध्यग) ऐसे मिले हुए रहते हैं कि उन्हें पहचाना जा सकता है। वे न तो शब्दोंकी बनावट बिगाड़ते हैं और न अपनी बनावटमें बिगाड़ आने देते हैं। शब्दके साथ चिमटकर भी वे अलग पहचाने जा सकते हैं। इसलिये ऐसे वाक्योंको लोग काँच-वाक्य (पारदर्शी वाक्य) कहते हैं जैसे नीचे दिए हुए वाक्यमें तः, अति, आ, त्व, अ, ता सब अलग जुटे हुए दिखाई देते हैं—

परिस्थिति-तः अति आ-हारत्व अ-ज्ञान-ता है।

इन जुटन्त बोलियोंमें मेल-जोड़ (प्रत्यय या उपसर्ग), शब्दों या धातुओंके साथ जुड़ जाते हैं और क्योंकि इन बोलियोंमें मेल-जोड़ और अर्थ-बाँधका ऐसा जुटान होता है इसलिये इनको जुटन्त बोलियाँ कहते हैं।

§ ३—सप्रत्योपसर्गास्तु श्लिष्ट-सम्पृक्ताश्लिष्टाः।

[जुटन्त बोलियाँ तीन ढंगकी होती हैं : मिलन्त घुलन्त, अलग-जुटन्त।]

इन जुटन्त बोलियोंमें जितने ढङ्गके जुटान होते हैं उन्हें देखते हुए उन्हें तीन पालियोंमें रक्खा गया है—

(क) मिलन्त या धातु-रूपात्मक (इन्फ्लैक्शनल या श्लिष्ट),

(ख) घुलन्त (सम्पृक्त या इनकौर्पोरेटिङ्ग) जिसे पोली-सिन्थेटिक, बहुसंश्लेषणात्मक, होलोफ्रिस्टिक या अव्यक्त योगात्मक भी कहते हैं।

(ग) अलग जुटन्त (सिम्पिल एग्ल्यूटिनेटिव या अश्लिष्ट)।

मिलन्त (धातुरूपात्मक, श्लिष्टयोगात्मक या इन्फ्लैक्शनल)

मिलन्त बोलियाँ वे हैं जिनमें मेल-जोड़ बतानेवाली टेक लग जानेपर अर्थ बाँधवाले शब्दोंकी बनावटमें भी कुछ बिगाड़ आ जाता है पर मेल-जोड़ बतानेवाली टेक अलग दिखाई पड़ती हैं जैसे—'भूत, देह, देव' शब्दसे बने हुए 'भौतिक, दैहिक, दैविक' शब्दमें 'भूत, देह, देव' शब्द बिगड़ गए हैं पर जो उनके साथ 'इक' जुड़ा हुआ है वह अलग दिखाई पड़ रहा है। ऐसी बोलियाँ संसारकी सबसे बड़ी बोलियाँ मानी जाती हैं। सेमेटी, हैमेटी और हिन्द-योरोपी गोत्रकी बोलियाँ इसी 'मिलन्त'के भीतर ही आती हैं। बोलियोंकी छान-बीन करनेवालोंने इन मिलन्त बोलियोंके भी दो भेद कर दिए हैं—१. भीतर मिलन्त (अन्तर्मिलित) २. बाहर-मिलन्त (बहिर्मिलित)।

भीतर-मिलन्त बोलियाँ—

भीतर-मिलन्त बोलियोंमें अर्थ-बाँध या शब्दके भीतर ही

टेक (प्रत्यय आदि) मिली रहती है। सेमेटी और हैमेटी बोलियोंमें यह बात बहुत दिखाई पड़ती है। अरबीका 'तलब' शब्द लीजिए। इसीसे वे 'तलब, तालिब, तुलबा, मतलब' बना लेते हैं।

ये बोलियाँ भी दो ढंगकी होती हैं—१. पूरी मिली हुई (संयुक्त या सिन्थेटिक) जैसे अरबी आदि सेमेटी बोलियोंका पुराना ढाँचा, जिनमें कोई अलग मेल-जोड़ बाहरसे नहीं लगाना पड़ता और २. अलग जोड़वाली (एनेलिटिक या सह-संयुक्त), जिनमें शब्द बनते तो हैं पहले ही ढङ्गसे, पर वाक्य बनाते समय उनमें कुछ अलग नये मेल-जोड़के शब्द भी लगा लिए जाते हैं। पीछेकी हिब्रू बोलीमें यह बात बहुत देखी जाती है।

बाहर-मिलन्त बोलियाँ—

बाहर मिली हुई (एक्स्टर्नल इन्फ्लैक्शनल या बहिर्मिलित श्लिष्ट) बोलियोंमें जो मेल-जोड़की टेक लगाई जाती है वह अर्थ-बाँध (शब्द)के पीछे आती है जैसे संस्कृतमें जब पठ्‌के साथ ति, तः, अन्ति लगाना होता है तो वह पठ् शब्दके साथ ही जोड़कर उससे 'पठति, पठतः, पठन्ति' बना लेते हैं। इस बाहर मिली हुई मिलन्त बोलीको भी लोग दो ढङ्गोंकी मानते हैं—

१. पूरी मिली हुई (संयुक्त या सिन्थैटिक) जैसे—हिन्द-योरोपीय गोत्रकी यूनानी, लातिन, संस्कृत और अवेस्ता बोलियाँ जिनमें साथ लगनेवाली क्रिया (सहायक क्रिया या औग्जिलियरी वर्ब) और परसर्ग (प्रिपोज़ीशन) नहीं लगाना पड़ता था, शब्दके भीतर ही वह मेल-जोड़ मिला रहता था जैसे संस्कृतमें—'रामेण पुस्तकं पठितम्' (रामसे पुस्तक पढ़ी गई या रामके द्वारा पुस्तक पढ़ी गई)। इन हिन्द-योरोपी गोत्रकी

बोलियोंमेंसे लिथुआनी बोली आदि आज भी ज्योंकी त्यों पूरी मिली हुई (संयोगात्मक) हैं।

२. अलग जोड़वाली (सहसंयुक्त) बोलियोंमें हिन्द्-योरोपीय गोत्रकी आजकलकी वे बहुत सी बोलियाँ आती हैं जिनकी विभक्तियाँ (मेल-जोड़ बतानेवाली टेक) धीरे-धीरे घिसकर पूरी मिट गई हैं और उनके साथ अलग मेल-जोड़ और क्रिया बतानेवाले नये शब्द लग गए हैं जैसे ऊपर 'पठितम्' के लिये हिन्दीमें कहा गया है 'पढ़ी गई' और इसी अलगानेके फेरमें कुछ हिन्दीके लिखनेवाले लोग 'रामने' को भी मिलाकर लिखनेके बदले 'राम ने' लिखने लगे। पर अब कुछ लोगोंका कहना है कि हिन्द्-योरोपी गोत्रकी ये बिलगावनी (अयोगात्मक) बोलियाँ फिर वैसी ही पहले ढङ्गकी मिली हुई बनती चली आ रही हैं। पर उन लोगोंका यह सोचना भूल है क्योंकि जो बोलियाँ बन गई हैं, वे अब बदल नहीं सकतीं।

घुलन्त (सम्पृक्त या इन्कौर्पोरेटिङ्ग) बोलियाँ

घुलन्त बोलियोंमें मेल-जोड़ बतानेवाली टेक और शब्द (अर्थ-बाँध) ऐसे घुले-मिले रहते हैं, कि एकको दूसरेसे अलग नहीं कर सकते जैसे—संस्कृतमें गङ्गासे गाङ्गेय, दशरथसे दाशरथि और भीमसे भैम। इन घुलन्त बोलियोंके भी लोगोंने दो भेद माने हैं—(क) जिनमें यह घुलना पूरा रहता है, जिन्हें पूरा घुला (तन्मय या कम्प्लीटिली इन्कौर्पोरेटिव) और (ख) अधूरा घुला (किञ्चित्तन्मय या पार्टली इन्कौर्पोरेटिव) कहते हैं।

पूरी घुली हुई बोलियोंमें मेल-जोड़ और शब्दकी घुलन्त इतनी पूरी होती है कि कभी-कभी एक शब्द ही पूरा वाक्य

बन जाता है और वाक्य बनते समय सब शब्द पूरे न आकर अधूरे-अधूरे मिलकर एक लम्बा शब्द-वाक्य बन जाते हैं। अमेरिकाके आदिम बसैयों और ग्रीनलैण्डवालोंकी बोलियाँ इसी ढङ्गकी हैं। दक्षिण अमरीकाकी चेरोकी बोलीमें 'नातेन = लाओ', 'अमोखोल = नाव' और 'निन = हम' होता है पर यदि उस बोलीमें कहना हो—'हमारे पास नाव लाओ' तो वे कहेंगे 'नावोलिनिन'। ऐसे ही ग्रीनलैण्डकी बोलीमें 'उलिसरि = मछली मारना', 'पैरतोर = काम', 'करना = पिनेसु', 'अरपोक = वह हड़बड़ी करता है'। पर जब उन्हें कहना होता है 'वह मछली मारनेके लिये झटपट जाता है' तो वे कहते हैं—

'अउलिसरिअरतोरसुअरपोक्'।

अधूरी घुलन्त बोलियोंमें सर्वनाम और क्रियाओंका ऐसा मिलान होता है कि क्रिया अपनापन खोकर सर्वनामको पूरा करनेमें लग जाती है। फ्रान्स और स्पेनकी मेड़पर पिरैनीज पहाड़के उत्तर-पच्छिममें 'बास्क' नामकी बोली और अफ्रीकाकी बन्तू परिवारकी बोलियाँ कुछ इसी ढङ्गकी हैं। 'बास्क' बोलीमें यदि कहना हो—'मैं इसे उसके पास ले जाता हूँ' तो कहेंगे 'दकारकियोथ'। इसमें सब सर्वनाम और क्रियाएँ ही हैं। इन अधूरी घुलन्त बोलियोंमें नाम (संज्ञा), गुण बतानेवाले शब्द (विशेषण), क्रिया, और सदा एकसे रहनेवाले शब्द (अव्यय) सभी नहीं मिल पाते। ऐसे कुछ घुलन्त वाक्य हमारे यहाँ भी हैं। उत्तर-प्रदेशके पच्छिमी खण्डमें (मेरठ, मुजफ्फर नगरमें) 'मैंने कहा'के बदले 'मका', 'मैंने कहा तू सुनता क्यों नहीं है' के बदले 'मकातू सुणता क्यूँन ', 'यों कहो' के बदले 'नुको' और 'उसने कहा'के बदले 'उन्नेका' चलता है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उधरकी पूरी बोली ही अधूरी-घुलन्त है।

अलग-जुटन्त (पृथग्युक्त या सिम्पिल एग्लूटिनेटिव) बोलियाँ

अलग जुटन्त बोलियाँ वे हैं जिनमें मेलजोड़की टेक (प्रत्यय) दूसरे शब्दों (अर्थ-बाँधों) से ऐसे ढङ्गसे जुटी रहती हैं कि वे अलग दिखाई पड़ती हैं। इसीलिये ऐसी बोलियोंकी बनावट बड़ी सीधी-सादी होती है। एस्पेरान्टो बोलीकी बनावट इसी ढङ्गपर की गई है।

इन अलग-जुटन्ती बोलियोंको भी कई मेलमें बाँटा जा सकता है जैसे—१. पहले-जुटन्त (प्रेफिक्स एग्ल्यूटिनेटिव या अग्रप्रयोगात्मक), जिसमें शब्दसे पहले उपसर्ग लगता है और सब शब्द वाक्यके भीतर अलग-अलग रहते हैं। उनमें इतना ही होता है कि 'में, पै, पर' आदि मेल-जोड़, शब्दके पीछे लगनेके बदले, शब्दसे पहले जुट जाते हैं। अफ्रीकाकी बन्तू बोलियोंमेंसे काफ़री बोलीमें 'कु = के लिये' (सम्प्रदानका चिह्न), 'ति = हम', 'मि = उन'। इनके मेलसे 'कुति = हमको' और 'कुनि = उनको'। ऐसे ही जुलू बोलीमें 'उमु = एक, अब = बहुतसे, न्तु = मनुष्य, न्गा = से।' इन्हें मिलाकर 'उमुन्तु = एक मनुष्य, अबन्तु = कई मनुष्य, न्गउमुन्तु = मनुष्यसे और न्गअबन्तु = मनुष्योंसे' बन जाता है।

अलग-जुटन्ती बोलियोंके तीन भेद

इन अलग जुटन्ती बोलियोंमें कुछ ऐसी भी हैं, जिनके बीचमें, पीछे और पीछे-आगे मेल-जोड़ लगाया जाता है। ऐसी बोलियाँ हिन्द-महासागरके टापुओंसे लेकर अफ्रीकाके मेडागास्कर टापूतक फैली हुई हैं। इन बोलियोंमें मेलजोड़ और शब्द दो ढङ्गसे जुटते हैं—

(क) यदि दो अक्षरोंसे मिला हुआ शब्द हो तो मेल-जोड़ बीचमें जोड़ दिया जाता है।

(ख) यदि दोसे अधिक अक्षरोंवाला शब्द हो तो मेल जोड़ उन सबके पहले और पीछे जोड़ा जाता है। इनमेंसे— १. बीच-जुटन्ती (मध्य-संयुक्त, मध्ययोगात्मक या इनफ़िक्स एग्ल्यूटिनेटिव) बोलियोंमें मुण्डा परिवारकी सन्थाली बोली आती है, जहाँ 'मंझि = मुखिया' और 'प = बहुत बतानेका चिह्न', दोनोंको मिलाकर 'मपंझि = मुखिया लोग' या 'बहुतसे मुखिया' शब्द बन जाता है। २. दूसरी आगे-पीछे जुटन्तीमें मकोर बोली आती है जिसमें 'म्नफ़ = सुनना', पर ज-म्नफ़उ = मैं तेरी बात सुनता हूँ' बन जाता है। यहाँ 'म्नफ़'के पहले 'ज' और पीछे 'उ' जोड़ा गया है। ३. तीसरी पीछे-जुटन्ती (अन्तसंयुक्त, अन्तयोगात्मक या सफ़िक्स एग्ल्यूटिनेटिव) बोलियोंमें मेल-जोड़ पीछे जुटता है जैसे—हंगरीकी बोलीमें 'जार = बन्द करना, जारत = बन्द करवाता है, जारतृगत् = अधिकतर बन्द करवाता' है। ऐसे ही तुर्की बोलीमें एव = घर, एवलेर = बहुतसे घर, एवलेरइम = मेरे घर।

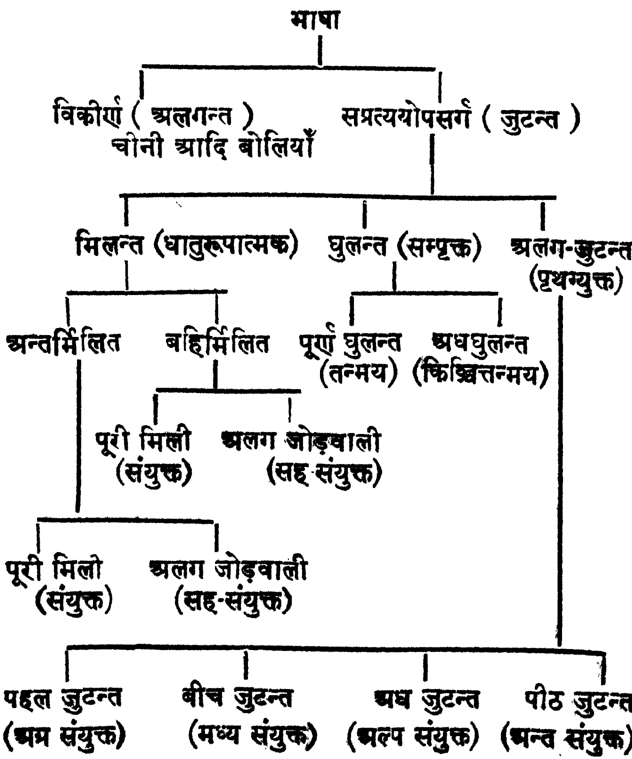
अधूरी अलगन्त जुटन्ती बोलियाँ—

अधूरी-जुटन्ती (अंश-योगात्मक या पार्टली एग्ल्यूटिनेटिव) बोलियाँ जुटन्त और अलगन्त बोलियोंके बीचमें पड़ती हैं क्योंकि इनमें मिलने और जुटनेके दोनों चिह्न मिलते हैं पर ये जुटन्त बोलियों और उनमें भी अलग-जुटन्ती बोलियोंसे ही मिलती-जुलती हैं इसीलिये इन्हें अधूरी अलगन्त जुटन्ती (अल्प-संयुक्त, अंश-अश्लिष्ट योगात्मक) नाम दिया गया है। न्यूज़ीलैण्ड और हवाई टापूकी बोलियाँ ऐसी ही हैं।

हमारा मत है कि यह सब इतनी खींचतान अकारथ बालकी खाल निकालना है। इसमें बस इतनी ही बात जाननी चाहिए कि बोलियोंको दो झुंडोंमें बाँट दिया गया है—१. रूपाश्रित और

२. गोत्राश्रित। नीचे दिए हुए खाँचेमें बनावटके साँचेपर बना हुआ बोलियोंका बँटवारा (रूपाश्रित वर्गीकरण, आकृतिमूलक वर्गीकरण या सिन्टैकिटकल या मौर्फोलौजिकल क्लासिफिकेशन) भली प्रकार समझा जा सकता है—

[रूपाश्रित वर्गीकरण]



गोत्राश्रित वर्गीकरण

ऊपर हम देख आए हैं कि जब कुछ बोलियोंमें शब्द और वाक्य बनानेके ढङ्गमें कुछ एकपन जान पड़ता है तब हम उन्हें एक रूपवाली, रूपाश्रित समानतावाली या आकृतिमूलक समानतावाली समझते हैं पर जब बोलियोंके अर्थ-बाँध अर्थात् शब्दोंके रूप या धातु भी ज्योंका त्यों मिलती हैं तब हम समझते हैं कि ये सब एक ही सोतेसे निकली हैं। जिन लोगोंने पहले-पहल बोलियोंकी छानबीन की, उन्होंने देखा कि 'पिता'के लिये संस्कृतमें 'पितृ' फ़ारसीमें 'पिदर', लातिनमें 'पेतर' जर्मनीमें 'फ़ौटेर' और अंग्रेज़ीमें 'फ़ादर' शब्द आता है तो उन्होंने इससे समझा कि ये सब बोलियाँ किसी एक आदिम बोलीसे निकली हैं। इस ढङ्गसे जिन बोलियोंमें आपसमें शब्द और धातुका मिलान होता है वे एक गोत्रकी या एक माँसे जनमी हुई मानी जाती हैं। हम पहले ही समझा आए हैं कि यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह हो सकता है कि आर्य लोग चारों ओर फैले हों और पढ़ने-लिखने, राज चलाने या व्यापार करनेमें औरोंसे बढ़-चढ़कर रहे हों और उन्होंने अपनी बोलीकी छाप उन लोगोंपर डाल दी हो जो उनसे हारकर उनके नीचे आ गए हों। हम यह भी बता चुके हैं कि पहले नदियों, पहाड़ों, रेतीले मैदानों और समुद्रोंसे अलग होकर न जाने कितनी जातियाँ रहती थीं जिनकी अपनी अलग बोली और अलग रहन-सहनका ढङ्ग था, यहाँतक कि आज भी बिहार जैसे प्रदेशकी पहाड़ियोंमें ऐसे सन्थाली लोग रहते हैं जो आजतक भी बिहारियोंसे अलग बोली लेकर बैठे हैं। पर ज्यों-ज्यों वे लोगोंके साथ उठने-बैठने और उनके साथ पढ़-लिखकर काम-काज करने लगे हैं त्यों-त्यों उनकी बोलीमें भी

हम लोगोंके साथ आनेसे न जाने कितने शब्द चल पड़े हैं। इसलिये यह गोत्रवाली बात चलाना ठीक नहीं है। हाँ, इतना कह सकते हैं कि कुछ बोलियाँ ऐसी हैं जिनपर किसी एक बोलीकी किसी समय बड़ी गहरी छाप पड़ गई और तबसे वह उस छापके साथ आए हुए शब्दोंको अपनाकर वैसे ही चला रही है जैसे हमने तुर्कों, फ़ारसवालों और अँगरेजोंसे सैकड़ों शब्द ले लिए और फिर उन्हें अपनाकर वैसे ही चला रहे हैं मानो वे हमारे अपने हों।

जिन लोगोंने हमारे यहाँ पहले बोलियोंकी छानबीन की है उन्होंने संस्कृतके साथ प्राकृत (लोगोंकी भाषा) और उसके साथ भी देशी भाषा या देश-देशकी बोलीकी चर्चा की है। इसीसे समझा जा सकता है कि कुछ देशी बोलियाँ ठौर-ठौरपर चलती रही हैं जिन्हें पढ़े-लिखे लोग बराबर सँवारते, सुधारते और माँजते रहे हैं और उनपर राज चलाकर या उनसे व्यापार करके या उनपर पण्डिताई जमाकर अपने सैकड़ों शब्द उन्हें देते रहे हैं।

§ ४—द्वादश गोत्राश्च।

[बोलियोंके बारह गोत्र माने गए हैं।]

पर जिन लोगोंने संसारकी बोलियोंमें इस ढङ्गकी एक जैसी बातें पाई हैं उन्होंने संसार-भरकी बोलियोंको बारह खण्डों या गोत्रोंमें बाँट दिया है—

१. हिन्द-यूरोपी (जिसे भूलसे लोग भारोपीय लिखने लगे हैं)। २. सेमेटी, ३. हेमेटी, ४. चीनी, ५. ऊराल-अल्ताई, ६. द्राविड़, ७. मलायोपौलीनेशियन, ८. काकेशी, ९. बन्तू, १०. मध्यअफ्रीकी, ११. आस्ट्रोप्रशान्तीय, १२. बची हुई या शेष

§ ५—आचार्यैस्तु सप्तदशधा ।

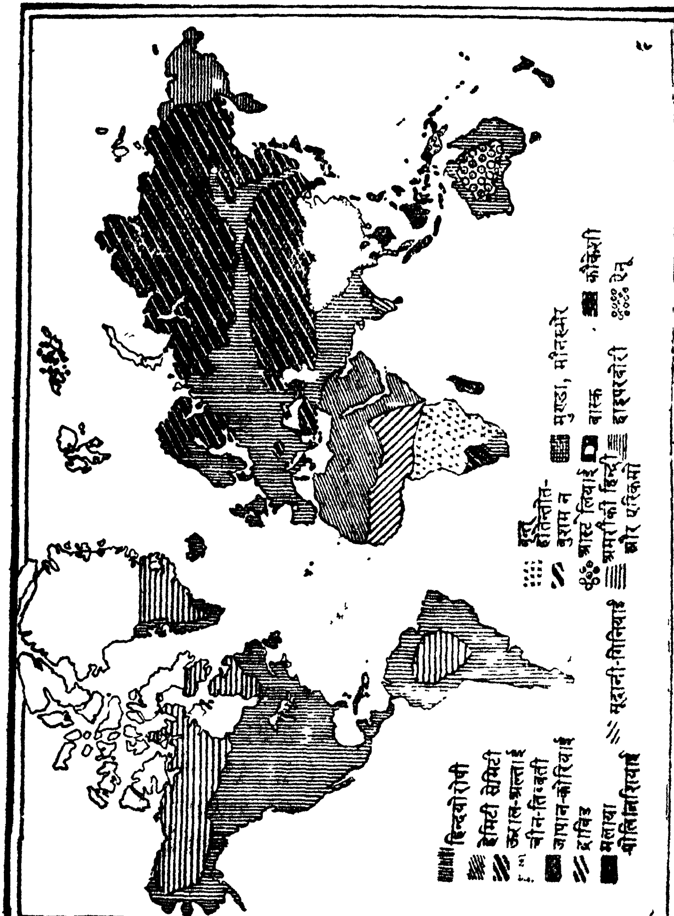
[आचार्योंने सत्रह गोत्र माने हैं ।]

मारियो ए पेईने जिस ढङ्गसे बोलियोंका बँटवारा दिखलाया है वह औरोंसे अधिक अच्छा जान पड़ता है । उन्होंने बोलियोंके नीचे लिखे गोत्र गिनाए हैं—

१. हिन्द योरोपीय (इन्डो-योरोपियन),
२. हैमिटी-सेमेटी,
३. ऊराल-अलताई,
४. चीन-तिब्बती,
५. जापान-कोरियाई,
६. द्राविड़ी,
७. मलायोपोलिनेशियाई,
८. सुदानी-गिनी,
९. बन्तू,
१०. होतेन्तोत-बुशमैनी,
११. आस्ट्रेलियाई और पापुआ,
१२. अमरीकी हिन्दी और एस्किमो,
१३. मुण्डा-मोनख्मेर,
१४. बास्क,
१५. हाइपरबोरी,
१६. काकेशी,
१७. ऐनू ।

नीचे दिए हुए मान-चित्रमें ये सब बोलियाँ सीधे-सीधे दिखाई पड़ जायँगी और उनका विवरण समझमें आ जायगा ।

अब इनमेंसे हम एक एकको अलग-अलग लेते हैं—



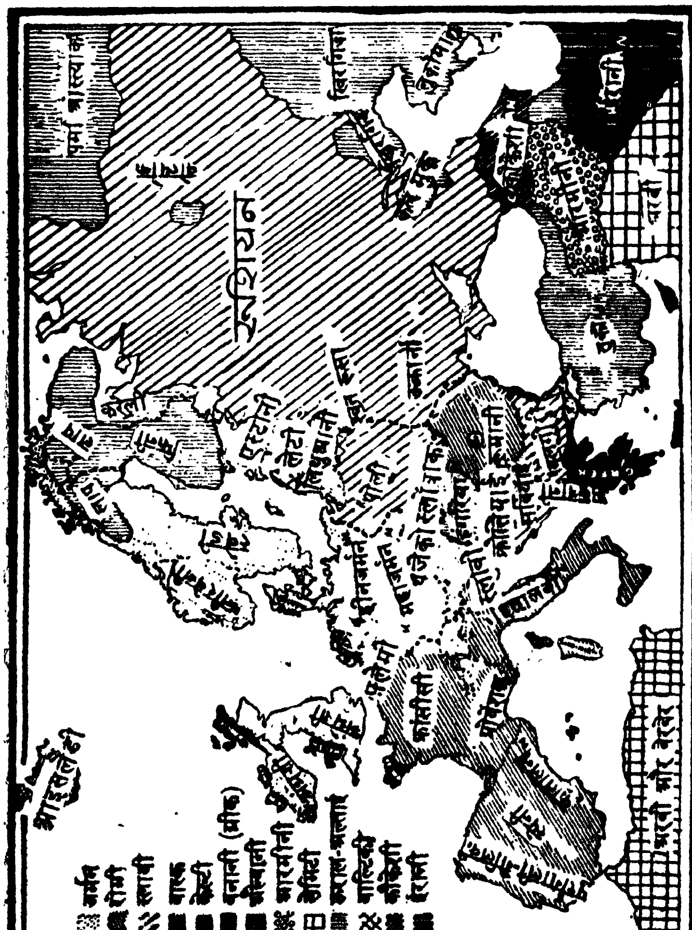
१. हिन्द-योरोपी—

हिन्द-योरोपी बोलियाँ समूचे योरोप, दक्खिन-पच्छिमा एशियामें उत्तर-पूरबी भारततक, और ऊपरसे लादी हुई बोलियोंके रूपमें पूरे पच्छिमा गोलार्ध, आस्ट्रेलिया न्यूज़ीलैण्ड, तस्मानिया दक्षिण अफ्रीका, दक्खिन-पूरबी एशिया और प्रशांत महासागरके टापुओंमें बोली जाती हैं। ये लादी हुई बोलियाँ अँगरेज़ी, फ्रान्सीसी, हुलाँश (डच), पुर्तगाली, इतालवी और स्पेनी हैं। पहले भारतमें भी अँगरेज़ीका बोल-बाला था पर अब यहाँ हिन्दी अपना ली गई है। इस हिन्द-योरोपी बोलीके बोलनेवाले लगभग एक अरब हैं। इन बोलियोंकी बनावट पहले तो धातुमूलक (इन्फ्लैक्शनल) और मिली हुई या (संश्लेषात्मक) रही पर अब धीरे धीरे इनकी धातुके पीछे लगनेवाले मेल-जोड़ हट रहे हैं, शब्द अलग-अलग हो रहे हैं और वाक्योंमें शब्दोंका आपसी नाता बतानेके लिये शब्दोंकी सजावट (वाक्य-विन्यास) बँधती जा रही है। इस गोत्रको जर्मन लोग इन्डो-जर्मन कहते हैं। इसकी बड़ी-बड़ी शाखाओंमें ये बोलियाँ आती हैं—

(क) जर्मन बोलियाँ, जिनमेंसे उत्तरी या स्कैन्डीनेवियन खण्डमें आइसलैण्डी, डैनो-नौर्वेजी और स्वीडिश बोलियाँ आती हैं और पच्छिमी जर्मन बोलियोंमे अँगरेज़ी, ऊँची जर्मन, नीची जर्मन (यिद्दिश) और डच-फ्लैमिश आती हैं।

(ख) रोमांस या इतालवी बोलियाँ, जिसकी स्पेनी शाखामें स्पेनी, पुर्तगाली और कतालन (जुदाइयो-स्पेनी या सेफ़ार्डी) बोलियाँ आती हैं और फ्रान्सीसी शाखामें फ्रान्सीसी और प्रौवेंग्सल या प्रोवेन्शेल। इसकी तीसरी शाखा है इतालवी और चौथी है रोमानियन।

(ग) कैल्टिक



(घ) बाल्टो-स्लाविक, जिनमें से बाल्टिकमें लिथुवानी और

लैटिश तथा स्लाविकमें रूसी, उक्रैनी, पोलिश, ज़ेक, स्लोवाक, सर्वो-क्रोतियाई, स्लोवीन और बलगेरी।

(ङ) यूनानी

(च) अलबानी

(छ) आरमीनी

(ज) ईरानी, जिसमें फ़ारसी, कुर्दिश, बलोची और अफ़गानी या पश्तो बोलियाँ आती हैं।

(झ) हिन्दी भाषा, जिनमें हिन्दी, बँगला, पञ्जाबी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, और सिंघली बोलियाँ और घुमन्तू जातियोंकी बोलियाँ आती हैं।

२. *सैमिटो-हैमिटी*—

सैमिटो-हैमिटी गोत्रकी बोलियाँ अरब, ईराक़, फ़िलस्तीन, सीरिया, उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, लीबिया, अल्जीरिया, तूनिशिया, मोरोको, सहाराकी बलुई धरती, इथियोपिया, एरित्रिया, सुमालीलैण्ड, जंज़ीबार, मडागास्कर और माल्टा टापूमें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले साढ़े सात करोड़ हैं। इन बोलियोंकी बनावटमें यही सबसे अनोखी बात है कि इनमें शब्दोंके रूपोंमें तीन व्यञ्जन होते हैं जिनके बीच-बीचमें स्वर लगाकर उनके अलग-अलग अर्थ बना लिए जाते हैं जैसे अरबीमें 'कतब' = 'लिखना', 'कताबा' = 'उसने लिखा है', 'कुतिबा' = 'यह लिखा गया है', 'यक्तुबू' = 'वह लिखेगा', 'युक्ताबू' = 'यह लिखा जायगा', 'अक्ताबा' = 'उसने लिखवाया है', 'किताब = 'लेख या पुस्तक', 'कातिब' = 'लिखनेवाला' और 'कातबन' = 'लिखनेका काम'। इसकी बड़ी शाखाएँ ये हैं—

(क) सैमेटी, जिसके उत्तरी रूपमें हिब्रू और दक्खिनीमें अरबी और इथियोपी (तिग्री, अम्हारी) आदि हैं।

(ख) हैमिटी, जिसमें लिबिको (बर्बर, कबीली, शिल्ह, तुवारेग आदि), कुशीती (सोमाली, गाला आदि) और कौप्ती बोलियाँ आती हैं।

इन सब बोलियोंमें अरबीका बड़ा मान है और मुसलमान लोग इसे अपनी धर्म-बोली मानते हैं।

३. ऊराल-अल्ताई—

ऊराल-अल्ताई गोत्रकी जितनी बोलियाँ हैं वे फ़िनलैंड, करेलिया, एस्तोनिया, उत्तरी नौर्वे और स्वीडन, पूर्वी योरोपी रूस, तुर्की, सोवियत एशिया, मंगोलिया, चीनी तुर्किस्तान और मंचुकुओमें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले लगभग छः करोड़ हैं। इन बोलियोंकी बनावट जुटन्त (एग्ल्यूटिनेटिव) ढङ्गकी हैं। इनमें शब्दोंके पीछे जो मेल-जोड़ जुटाया जाता है वह अलग दिखाई पड़ता है, जैसे—तुर्की बोलीमें 'अत्'का अर्थ है घोड़ा, पर 'अत्इम् = मेरा घोड़ा, अत्लारइम् = मेरे घोड़े' बन जाता है। इन बोलियोंमें दूसरी बात यह है कि यदि किसी शब्दमें अग्रस्वर (ए, ई, ऐ, औ) होगा तो उनमें जितने भी नये शब्द जुटेंगे उन सबमें अग्रस्वर जुट जायगा। पर यदि उनमें पश्चस्वर (आ, ओ, उ, और तुर्की इ) हो तो साथ जुटे हुए सब शब्दोंमें भी पश्चस्वर जुटेगा, जैसे—हंगरीके 'केज़' (हाथ) शब्दमें अग्रस्वर 'ए' हैं इसलिये 'हाथमें' कहना होगा तो कहेंगे 'केज़बेन' पर 'हाज़' (घर) में पश्चस्वर 'आ' है इसलिये अगर 'घरमें' कहना होगा तो वह 'हाज़बान' हो जायगा। इस गोत्रकी एक और अनोखी बात है कि इसमें लिङ्ग नहीं होते। इसकी इसकी बड़ी-बड़ी दो शाखाएँ हैं—

(क) ऊरालो या फ़िनो-उग्री : जिसमें फ़िनी (करेलो और

एस्तोनीके साथ), लाप (उत्तर-पूर्वी योरोपी रूसकी बोलियाँ जैसे मोर्दवीनी, शेरेमिस, और ओत्याक), हंगेरियन (मग्यार, ओस्त्याक और समोयेड)।

(ख) अल्ताई : जिसमें तुर्की (जिससे मिलती-जुलती तातारी, तुर्कीमानी और किरगिज़ भी हैं), मंगोली, और तुंगस या मंचू बोलियाँ आती हैं। ये बोलियाँ उत्तर और बीचके योरोपसे लेकर सारे उत्तरी एशियामें प्रशान्त महासागरके छोरतक फैली हुई हैं, पर इनके बोलनेवाले बहुत कम हैं। इस गोत्रकी एशियाई बोलियाँ सब सोविएतकी धरतीपर हैं इसलिये डर यह है कि कहीं उनमें रूसी बोली न आ घुसे और मंचुकुओकी मूचू बोलीके बदले कहीं चीनी और जापानी बोलियाँ न आ जायँ।

४. जापानी-कोरियाई—

जापानी-कोरियाई गोत्रकी बोलियाँ बस जापान और कोरियामें ही चलती हैं। यह जापानी बोली फ़ारमोसा, मंचुकुओ, करोलीन और मार्शल टापुओंमें और जहाँ-जहाँ जापानियोंका हाथ है वहाँ-वहाँ बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले दस करोड़ हैं। इसकी बनावट है तो जुटन्त (एग्ल्यूटिनेटिव) पर उतनी नहीं है जितनी ऊराल-अल्ताई बोलीकी है। इसमें लिङ्ग और वचन नहीं होते। इन बोलियोंमें एक ऐसी उदास (इम्परसनल) क्रिया होती है जिसे लगाकर आदर, नम्रता आदि बातें दिखानेके लिये अलग-अलग शब्द बना लिए जाते हैं। बनावटमें इतना मेल होते हुए भी बहुतसे लोग जापानी और कोरियाईमें कोई नाता नहीं मानते। इसकी दो ही शाखाएँ हैं—

(क) जापानी।

(ख) कोरियाई।

५. *चीन-तिब्बती*—

चीन-तिब्बती गोत्रकी सब बोलियाँ चीन, तिब्बत, बर्मा, थाइलैण्ड या श्याम, उत्तरी हिन्दचीन, मंचुकुओ और सीक्यांगमें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले लगभग पचास करोड़ हैं। इसकी बनावट एकाक्षरी या एक-लयान्वितिक (मोनोसिलेबिक) है। इसमें सब शब्द एक-एक लयान्विति (सिलेबिल) के हैं जिनके आगे-पीछे कोई मेल-जोड़ नहीं जुटता। वाक्यमें किस शब्दका क्या नाता है यह उन शब्दोंके रक्खे जानेके क्रम या सजावटको देखकर जाना जाता है। इसके साथ-साथ सबसे बड़ी बात यह है कि बहुतसे शब्द ऐसे हैं जिनकी ध्वनि तो एक-सी है पर उन्हें स्वर चढ़ाकर या स्वर उतारकर बोलनेसे बहुतसे अलग-अलग अर्थ हो जाते हैं। चीनका 'फु' शब्द ऊँचे बराबर स्वरमें बोला जायगा तो अर्थ होगा 'मनुष्य', कुछ झटकेसे स्वर उठाकर कहा जायगा तो अर्थ होगा 'भाग्य', कुछ स्वर उतारते और फिर चढ़ाते हुए कहा जायगा तो अर्थ होगा 'पूर्णता' या 'पूरापन' और झटकेसे स्वर उतारकर कहा जायगा तो अर्थ होगा 'धनी'। इसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ तीन हैं—

(क) चीनी।

(ख) तिब्बती, उर्मी।

(ग) स्यामी या थाई।

एक तो चीनी बोलीमें यों ही बहुतसी देशी बोलियाँ चलती हैं जो आपसमें भी नहीं समझी जाती। दूसरे इसमें स्वरके उतार-चढ़ावकी भी झंझट है। तीसरी कठिनाई इसकी लिखावटकी है जिसमें लगभग तीन हज़ार ऐसे अक्षर हैं जिनमें ध्वनियोंके चिह्नोंके मेलके बदले अलग-अलग शब्दोंके मेल हैं। जापानियोंने इस लिखावटमें सुधार करके इसे अपना लिया है।

६. *द्राविडी—*

द्राविडी बोली भारतमें विन्ध्याचलसे दक्खिन और लङ्काके उत्तरमें बोली जाती है। इसके बोलनेवाले लगभग दस करोड़ हैं। इन बोलियोंक बनावट जुटन्त-सी है जिसमें एक संज्ञा लेकर उसमें बहुवचनका चिह्न लगाकर फिर कारकका चिह्न लगा देते हैं जो एकवचन और बहुवचन दोनोंके लिये आता है। इनमें सचमुच स्त्री-लिङ्ग या पुलिङ्गसे लिङ्ग न मानकर जातिसे या बड़े-छोटेके भेदसे माने जाते हैं जैसे स्त्रियाँ, (यहाँतक कि देवियाँ भी) छोटी समझी जाती हैं और बिना जीववाली वस्तुअ में गिनी जाती हैं। इसकी बड़ी बड़ी शाखाओंमें—

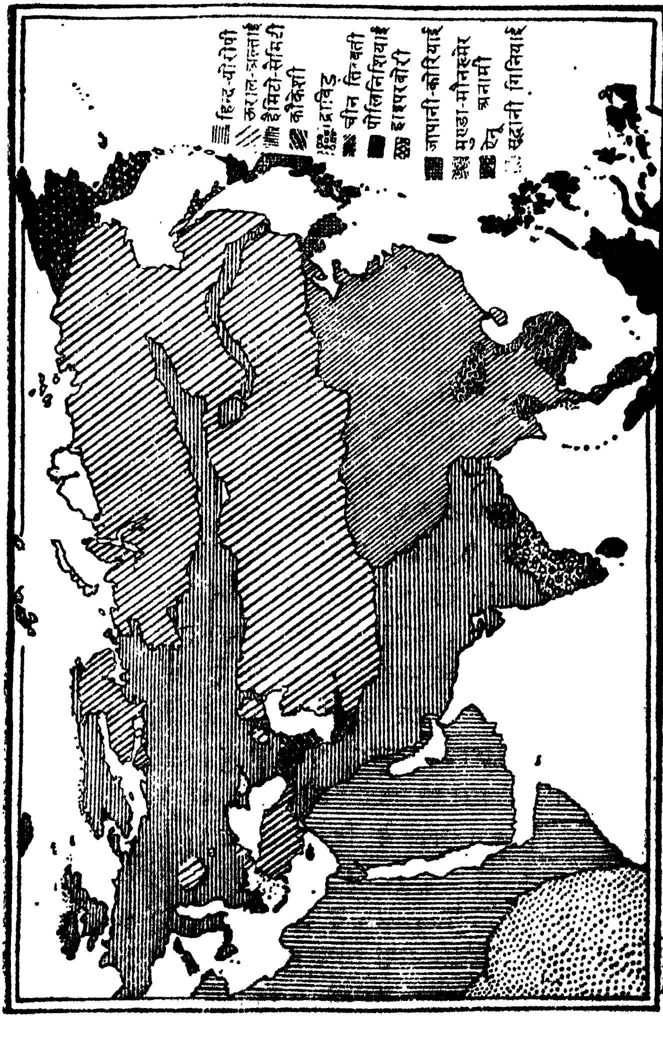
(क) तामिल, (ख) तेलुगु, (ग) ब्राहुयी, (घ) कन्नड़, (ङ) गोंड, (च) भील और (छ) मलयालम हैं।

७. *मलायो-पोलीनेशियाई—*

मलायो पोलीनेशियाई बोलियाँ मलाया प्रायद्वीप, पूर्वी हिन्द-द्वीप समूह (जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सेलेबेस, और बालि आदि) फ़िलिपाइन्स, मडागास्कर, न्यूज़ीलैण्ड (माओरी) समोवा, हवाई, ताहिती और प्रशान्तके टापुओंमें बोली जाती है। इसके बोलनेवाले लगभग नौ करोड़ हैं। इनकी बनावटमें दो लयान्विति (सिलेबिल)की धातुएँ होती हैं और संज्ञाओंके साथ पीछे कुछ नहीं जोड़ा जाता। इनमें वचन और लिङ्गका भी भेद नहीं होता। इनकी बड़ी बड़ी शाखाएँ ये हैं —

(क) हिन्देशियाई : जिसमें डच पूर्वी-हिन्द-द्वीप-समूह, मलाया, मडागास्कर, और फ़िलीपाइन्स (तागालोग, बिसाया आदि) की बोलियाँ आती हैं।

(ख) मेलानेशियाई : जिसमें न्यू हैब्रिडीज, फ़िजी और सोलोमन आदि द्वीपोंकी बोलियाँ आती हैं।


हिन्द-योरोपी
ऊराल-अल्ताई
हैमिटी-सैमिटी
कौकेशी
द्राविड़
चीन तिब्बती
पोलिनिशियाई
हाइपरबोरी
जापानी-कोरियाई
मुण्डा-मोनख्मेर
अनामी
ऐनू

(ग, मिक्रोनीशियाई : जिसमें गिलबर्ट, मार्शल, करोलीन टापू आदिकी बोलियाँ आती हैं।

(घ) पोलीनेशियाई : जिसमें समोवा, न्यूज़ीलैण्ड, ताहिती, और हवाई टापुओंकी बोलियाँ आती हैं। सच पूछिए तो बोलियोंके इस झुण्डमें इतने ढङ्गकी इतनी अनगिनत बोलियाँ हैं कि उन्हें ठीक ठीक समझनेके लिये बाँधना टेढ़ी खीर है। पर इनमेंसे जावा, मलाया और हवाईकी बोलियाँ ली जा सकती हैं।

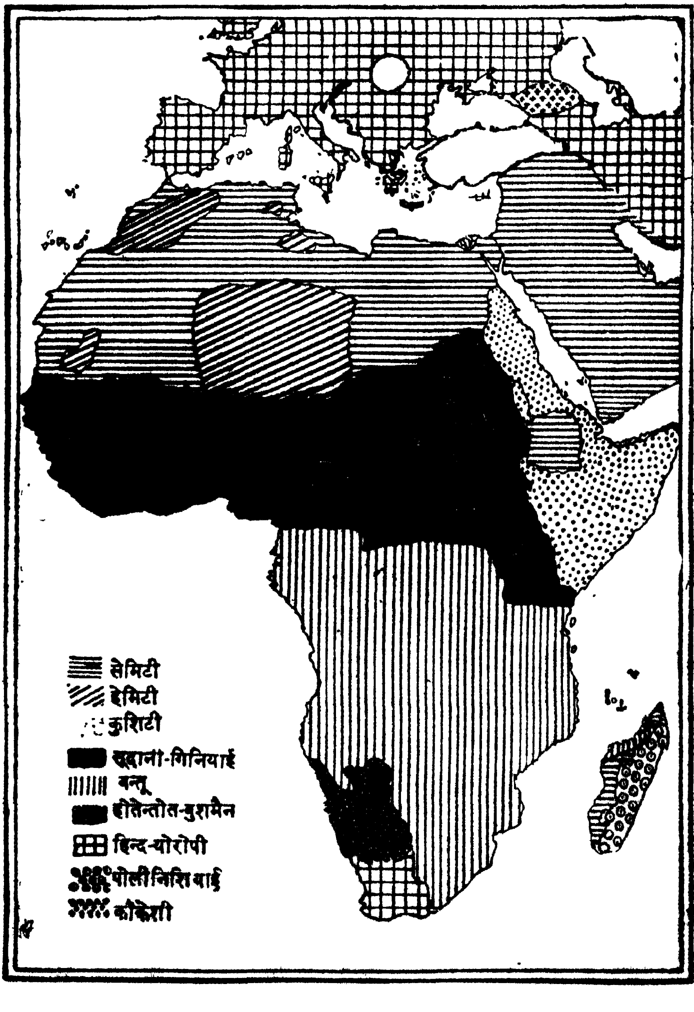
८. *अफ्रीकी हब्शी बोलियाँ—*

अफ्रीकी बोलियाँ सहारा रेगिस्तानके दक्षिणमें और इथियोपिया या एबीसीनियाके पश्चिममें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले लगभग दस करोड़ हैं। इनमें इतनी ढङ्गकी बनावटें हैं कि उनका ठीक ठीक ब्यौरा नहीं दिया जा सकता। फिर भी इनमेंसे कुछ बोलियोंमें संज्ञाएँ अलग-अलग वर्गोंमें बँटी हैं, जैसे—मनुष्य, पेड़, पानी आदि, और इन सबके साथ अलग-अलग शब्दोंसे पहले टेक या उपसर्ग लग जाता है। वही उपसर्ग उनके विशेषणोंमें भी लगता है पर जब बहुवचन कहना होता है तो उपसर्ग बदल जाता है जैसे, स्वाहिलीमें 'म्थु म्जूरी'='सुन्दर मनुष्य' पर 'वाथु वाजूरी'='बहुतसे सुन्दर मनुष्य।' ऐसे ही क्रिया-विशेषणमें भी उन क्रियाओंके उपसर्ग लगते हैं जिनकी वे विशेषता बताते हैं, जैसे—'कुफा कुजूरी = सुन्दरतासे प्राण देना'। इसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ ये हैं—

(क) सुदानी-गिनी : जिसमें नूबियाई, मसाई, हाउसा, योरूबा, मंदिङ्गो आती हैं। बहुतसे भाषा-शास्त्री सुदानी-गिनी भेद नहीं मानते।

(ख) बन्तू : जिसमें रुअन्दा, स्वाहिली, जुलू, हेरेरो, उम्बुन्दू बोलियाँ आती हैं।

(ग) होतेन्तौत-बुशमैनी ।



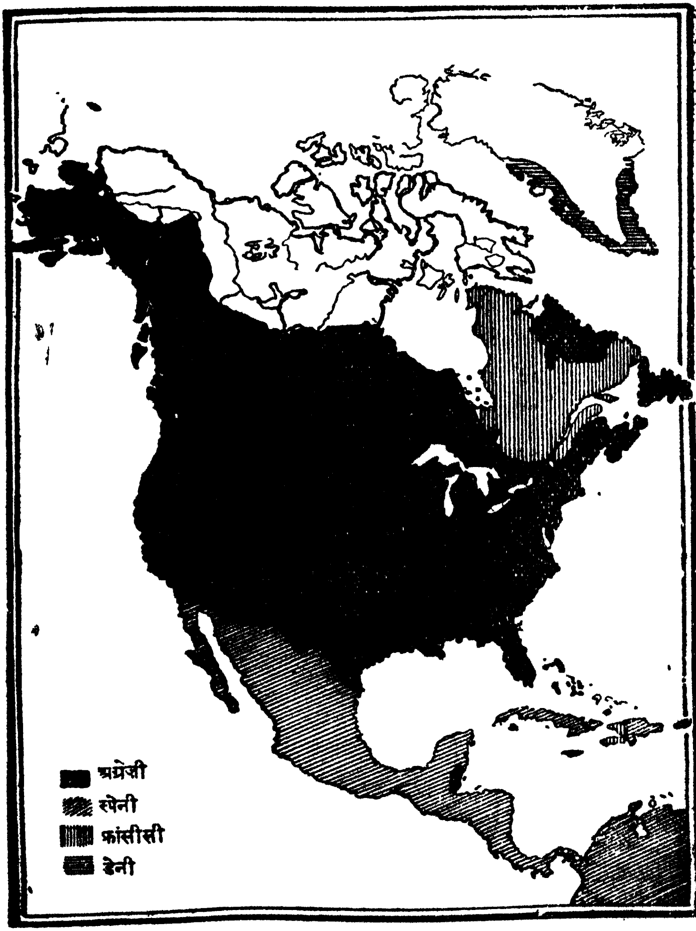
६. *अमरीकी हिन्दी—*

अमरीकी हिन्दी बोलियाँ पश्चिमी गोलार्धमें बोली जाती हैं। इनके बोलनेवाले एक करोड़से अधिक न होंगे और उनमें भी बहुतोंने अँगरेज़ी, स्पेनी, पुर्तगाली बोलियाँ अपना ली हैं। इन बोलियोंमें भी अनगिनत ढङ्गके भेद हैं, पर बहुतायतसे ये बोलियाँ बहुत मिलावटवाली (पोलीसिन्थैटिक) हैं या यों कहिए कि इनके शब्दोंका कोई अपना अलग ठिकाना नहीं है। वे जब वाक्यमें आते हैं तभी उनका अर्थ होता है। दूसरे ढङ्गसे इसे यों कह सकते हैं कि पूरा वाक्य ही एक शब्द बन जाता है जिनके अलग-अलग टुकड़ोंका कोई ठिकाना या अर्थ नहीं होता, जैसे—ओनीदा बोलीमें 'ग-नग्ला-स्ल इ-ज़क-स' का अर्थ हुआ 'मैं एक गाँव ढूँढ़ रहा हूँ।' इस वाक्य-शब्द या शब्द-वाक्यमें 'ग् = मैं, नग्ला = रहना, स्ल है नग्लाका प्रत्यय, इ है क्रियाका उपसर्ग, ज़क् = ढूँढ़ना और स = काम चल रहा है।' पर अलग-अलग इनमेंसे किसीका कोई अर्थ नहीं है। इन बोलियोंके जो बहुत बड़े-बड़े ठट्ट देखे-समझे जा चुके हैं उन्हें जातियोंमें बाँटें तो ये होंगे—

(क) उत्तरी अमरीकामें एस्किमो, अलगोंकियोनी (जिसमें ब्लैकफुट, चेयेनी, अरापाहो, क्रो, ओजिबवा, देलावरे आदि), इरोकोइस (जिसमें होरोन, वायन्दोत, चेरोकी बोलियाँ) और उतो अज़तेक।

(ख) बीच अमरीकामें बहुतसी बोलियोंके साथ मायन, मिक्स्टेक, और ज़ापोटेक बोलियाँ चलती है।

(ग) दक्खिन अमरीकामें अरावक, अराउचनियाँ, चरीब, छिबछा, क्वेछुवा और तुपी-गुआरानी बोलियाँ आती हैं। पर इन सबपर योरोपकी बोलियोंका रंग चढ़ गया है जो नीचेके मानचित्रोंमें देखा जा सकता है।


अंग्रेजी
स्पेनी
फ्रांसीसी
डेनी


स्पेनी
पुर्तगाली
अंग्रेज़ी
फ्रांसीसी
डुलांश (डच)

दूसरे गोत्र

दूसरे झुण्डोंमें ये बोलियाँ हैं—

१०. *ऐनू*—

इसे उत्तरी जापानमें लगभग बीस हजार बोलतेहैं।

११. *हाइपरबोरी*—

इसके बोलनेवाले उत्तर-पूर्वीय साइबेरियामें हैं।

१२. *बास्क*—

यह उत्तर-पूर्वीय स्पेन और दक्षिण-पश्चिमी फ्रान्समें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले लगभग दस लाख हैं।

१३. *काकेशी*—

इसके बोलनेवाले सोवियत यूनियनके काकेश प्रदेशमें बीस लाखके लगभग हैं। इसमें जार्जी, लेसघी, अवर, सिरकसिया बोलियाँ आती हैं।

१४. *मोनख्मेर*—

इसमें दक्खिन-पूर्वी एशियामें बोली जानेवाली अनामी, मुंडा बोलियाँ आती हैं। इनमेंसे बहुत-सी तो पूर्वी भारत और फ्रान्सीसी हिन्द्चीनमें बोली जाती हैं। इसके बोलनेवाले दो या तीन करोड़ हैं।

१५. *पापुआ बोलियाँ*—

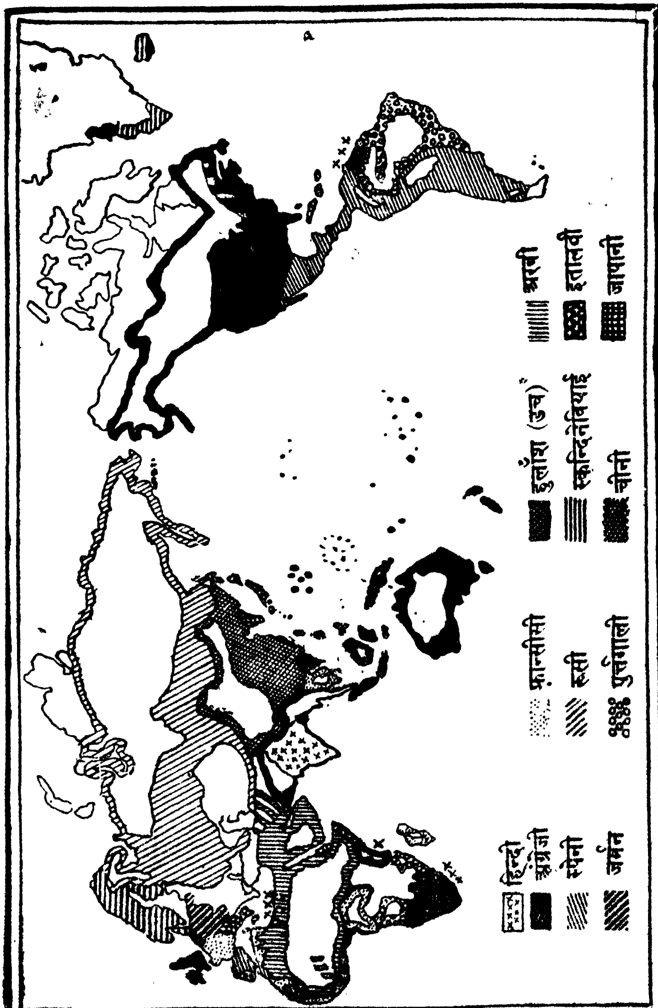
इनके बोलनेवाले आस्ट्रेलिया और न्यूगिनोमें कुछ लाख हैं और इनके अलग-अलग बोलियोंके झुण्ड हैं।

इन बोलियोंमेंसे कुछ बड़ी अनोखी हैं। ऐनूमें अस्सीके लिये चार कोड़ी या चार बीसी कहते हैं। बास्क बोलीकी बनावट अमरीकी-हिन्दी बोलियों-जैसी बहुत मिलावटवाली है,

जैसे—'टोपीवालेके साथ' कहना हो तो कहेंगे 'पोनेत-एकिला-को-आरे-किन', जिसका अलग-अलग अर्थ होगा 'टोपी-साथ-वह-का-साथ।' काकेशी बोलियोंमें व्याकरणके लिङ्ग और व्यञ्जनकी ध्वनियाँ बहुत ही अनोखी और अनगिनत हैं। उसकी बनावट भी कुछ अनोखे ढङ्गकी है जैसे 'मैं अपने पिताको प्रसन्न करता हूँ' का अनुवाद करना पड़ेगा—'मेरे द्वारा सन्तुष्ट करता है, अपना, पिता।' आस्ट्रेलियाकी बोलियोंमें गिनती कुल तीनतक है इसलिये उन्हें 'सात' कहना हो तो कहेंगे 'जोड़ा जोड़ा जोड़ा एक' और पन्द्रह कहना हो तो कहेंगे—'हाथ इधरका, उधरका और पैर आधा।' बोलियोंकी छानबीन करनेवालोंके लिये इन बोलियोंमें बड़ी सामग्री भरी पड़ी है।

यह वर्गीकरण ठीक नहीं हैं—

आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि बोलियोंका जो यह बँटवारा किया गया है वह अधूरा और बेढङ्गा है, यहाँतक कि जिन बोलियोंका व्याकरण मिलता भी है उन्हें भी ठीक ढङ्गसे नहीं सजाया गया है। बोलियोंकी बनावटके ढङ्गपर बँटवारा न करके बोलियोंको इस ढङ्गपर बाँटना चाहिए कि किन बोलियोंमें कौनसी ध्वनियाँ आपसमें मिलती हैं, कौनसी नहीं मिलती जैसे—फ्रान्सीसी, यूनानी, रूसी और लातिनमें ट, ठ, ड, ढ, नहीं है। अतः इन्हें एक वर्गमें रक्खा जा सकता है। जिस ढङ्गसे हिन्द-योरोपीय बोलियोंके 'कैन्टुम्' और 'शतम्' वर्ग बना लिए गए हैं उसी ढङ्गसे संसार-भरकी सब बोलियोंकी पहले ध्वनियाँ इकट्ठी कर ली जायँ और सब एक-जैसी ध्वनिवाली बोलियोंको एक-एक ठट्ठमें बाँध लिया जाय। ऊपर बोलियोंके जो गोत्र गिनाए गए हैं उनमें हिन्द-योरोपी गोत्र बहुत बड़ा भी है और उसमें आनेवाली सब बोलियोंके


हिन्दी
अंग्रेजी
स्पेनी
जर्मन
फ्रान्सीसी
रूसी
पुर्तगाली
हालैंड (डच)
स्कान्डिनेवियाई
चीनी
अरबी
इतालवी
जापानी

रूप भी बहुत मिलते हैं। इसलिये इनकी जाँच-परख हम अगले अध्यायमें अलग करेंगे। पर एक अनोखी बात यह है कि इन हिन्द-योरोपी बोलियोंने कुछ ऐसी धाक बैठा दी है कि उनके बोलनेवाले जहाँ-जहाँ गए वहाँ-वहाँकी बोलियोंको दबाकर उन्होंने अपनी बोलियाँ चला दीं, जिसका ब्यौरा पीछेके मानचित्रमें पाया जा सकता है।

पर अब सभी लोग दूसरोंके चंगुलसे छूटनेका जतन कर रहे हैं और जहाँ लोग दूसरोंके फन्देसे छूटकर अपनेसे अपना राज चला रहे हैं, वहाँ लोग फिर अपनी बोलियोंको जिला रहे हैं, इसलिये ऐसा भी हो सकता है कि जो बोलियाँ आज जंगली मानी जाती हैं वे कल लिखा-पढ़ी और कामकाजकी बोलियाँ बन जायँ।

सारांश

अब आपकी समझमें आ गया होगा कि—

१—संसारकी बोलियोंका बँटवारा दो दृष्टियोंसे किया गया—(क) बनावटकी दृष्टिसे (रूपाश्रित वर्गीकरण) (ख) उनके गोत्रकी दृष्टिसे (गोत्राश्रित या पारिवारिक वर्गीकरण)।

२—बनावटकी दृष्टिसे बोलियाँ दो ढङ्गकी हैं : (क) अलगन्त (विकीर्ण या अयोगात्मक); (ख) जुटन्त (सप्रत्योपसर्ग या योगात्मक)।

३—जुटन्त बोलियाँ भी दो ढङ्गकी मिलती हैं : (क) मिलन्त (धातुरूपात्मक या श्लिष्ट), (ख) घुलन्त (सम्पृक्त), (ग) अलग जुटन्त (अश्लिष्ट)।

४—गोत्रकी दृष्टिसे बोलियोंके बारह गोत्र माने गए हैं :

१. हिन्द-योरोपी, २. सेमेटी, ३. हेमेटी, ४. चीनी, ५. ऊराल-अल्ताई, ६. द्राविड, ७. मलायोपोलीनेशियाई,

८. काकेशी, ९. बन्तू, १०. मध्य अफ्रीकी, ११. औस्ट्रो-प्रशान्ती, १२. शेष बोलियाँ।

यह पद घोट लीजिए--

हिन्द्योरोप[1], सेमटी[2], हमटी[3], चीनी[4], या ऊरालल्ताई[5]।
द्रविड़[6], मलायोपलीनेशिया[7], काकेशी[8], बन्तू[9] भी छाई॥
मध्यफ्रीकी[10], आस्ट्रू-प्रशान्ती[11], शेष[12] बोलियाँ अलग सुहाई।
इन बारह परिवारोंमें ही, भाषाएँ जगमें मिल पाई॥

—मेरियो पेई और आचार्य चतुर्वेदीने सत्रह गोत्र माने हैं—
१. हिन्द-योरोपी, २. हैमेटो-सेमिटी, ३. ऊराल-अल्ताई, ४. चीनी-तिब्बती, ५. जापानी-कोरियाई, ६. द्राविडी, ७. मलायो-पोलीनेशियाई, ८. सूडानी-गिनी, ९. बन्तू, १०. होतेन्तौत-बुशमैनी, ११. औस्ट्रेलियाई और पापुआ, १२. अमरीकी हिन्दी और ऐस्किमोवाली, १३. मुण्डा-मौन्ख्मेर, १४. बास्क. १५. हाइपरबोरी, १६. काकेशी, १७. ऐनू।

द्राविड और हिन्द-योरोपी गोत्रकी बोलियाँ

हमारी बोलियोंका बँटवारा कैसे हो ?

द्राविडी बोलियोंमें अलग-जुटन्त टेक, टवर्ग, दो वचन और तीन लिंग होते हैं—उनमें १. द्राविड (तमिल, मलयालम्, कन्नड़, तुलू, कुर्गी और टुडा), २. मध्यवर्त्ती (गोंड, कुरुक आदि), ३. तेलुगु और ४. ब्राहुई बोलियाँ आती हैं—हिन्द-योरोपी गोत्रको संस्कृत गोत्र कहना चाहिए—हिन्द-योरोपी बोलियोंमें प्रत्यय बाहरसे जुटते, एक अक्षरवाली धातु होती, और बहुत समास-प्रत्यय होते हैं—आदिम हिन्द-योरोपी बोलीमें धातुमें प्रत्यय जोड़कर शब्द बनते थे, उपसर्ग नहीं थे, तीन वचन और तीन लिंग थे, क्रियामें काल नहीं होता था और विभक्तियाँ शब्दमें मिली रहती थीं—हिन्द-योरोपी बोलियोंको दो वर्गोंमें बाँटा गया : केन्टुम् और सतम्—आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि ध्वनि-साम्य, शब्द-साम्य और वाक्य-साम्यके आधारपर बँटवारा होना चाहिए।

हमारे देशके उत्तरी फैलावमें हिन्द-योरोपी गोत्रकी आर्य बोलियाँ और दक्खिनी फैलावमें द्राविड़ी बोलियाँ बोली जाती हैं, इसलिये हम उन दोनोंका ही ब्यौरा यहाँ देंगे।

§ ६ — पृथग्युक्तप्रत्यया टवर्ग - द्विवचन - त्रिलिङ्गान्विता द्राविडी।

[द्राविडी बोलियोंमें अलग-जुटन्त टेक, टवर्ग, दो वचन और तीन लिंग होते हैं।]

विन्ध्याचलके दक्खिनमें कन्याकुमारीतक फैला हुआ पूरा दक्खिनी हिन्द द्राविड देश ही है जिसमें विदर्भ या महाराष्ट्रको

छोड़कर समूचे दक्खिनी पठारमें द्राविडी भाषाएँ बोली जाती हैं। उसके साथ-साथ लङ्काकी उत्तरी पट्टी, लख द्वीप, मध्यभारत और बिहार-उड़ीसाके कुछ काँठोंमें भी इस गोत्रकी बोलियाँ बोलनेवाले सोते हैं। कुछ लोगोंने इन बोलियोंको तमिळ गोत्रका भी बताया है। वाक्य और स्वरकी बनावट देखते हुए यह ऊराल-अल्ताई बोलियोंसे मिलती जुलती है इसी भूलसे श्रौएडेरने ऊराल-अल्ताईकी फ़िनो-उग्रिक शाखासे द्राविडका नाता जोड़नेका पचड़ा चलाया था। उधर पी० डब्लू० स्मिटने इसका नाता आस्ट्री भाषासे जोड़ा क्योंकि वे कहते थे कि मडागास्कर, औस्ट्रेलिया और भारत, ये सब छोटे-छोटे द्वीपोंसे आपसमें मिले हुए थे। इधर जबसे मोहनजो दड़ोमें खुदाई हुई है तबसे लोगोंने उसके साथ भी इनका नाता जोड़ना चाहा है।

द्राविड परिवारकी विशेषताएँ—

१. इस गोत्रकी बोलियों तुर्कीके समान शब्दके पीछे अलग उनकी टेक (प्रत्यय, उपसर्ग) लगती हैं।

२. इस गोत्रकी बोलियोंमें जो टेक जोड़ी जाती है वह अलग दिखाई पड़ती (पारदर्शक) है जिससे शब्दमें भी कोई बिगाड़ नहीं आता। इसलिये बहुत बड़ा समास भी बिना कोई बिगाड़ किए ही बन जाता है।

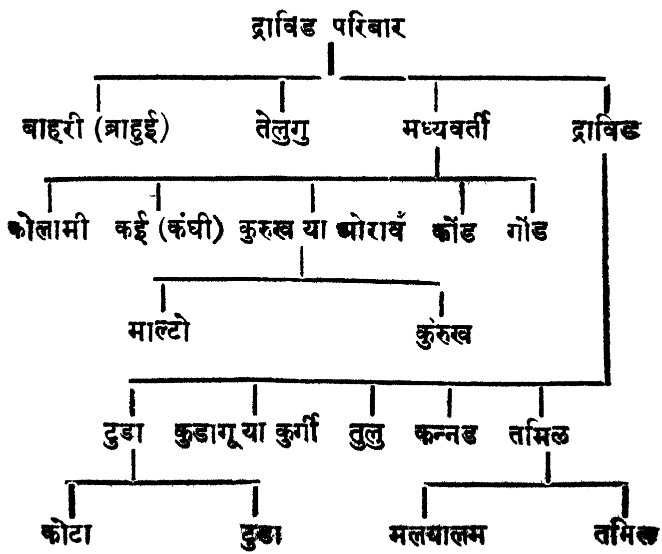
३. तेलुगुमें शब्दोंके पीछे 'उ' जोड़ दिया जाता है जैसे रामुलु।

४. शब्दोंमें जो स्वर होते हैं वैसे ही लगभग प्रत्ययोंके मिलाते समय उनमें भी आ जाते हैं। किसी शब्दके पहले घोष व्यंजन नहीं मिलते। पर बीचमें आनेवाले अनुनासिक व्यंजन और अकेले व्यंजनके पीछे घोष रहते हैं। यह बात तमिळमें तो है पर तेलुगु, कन्नड़ और मलयालममें नहीं है।

५. इन बोलियोंमें ट, ठ, ड, ढ, ण की बहुतायत है। कुछ लोग भूलसे मानते हैं कि 'ट' वर्गकी ध्वनियाँ संस्कृतमें इन्हींसे आई हैं पर 'विराट्' शब्द वेदसे ही हमारे यहाँ चल रहा है।

६. इन सब बोलियोंमें एक और बहु दो ही वचन होते हैं। बहुवचन बनानेके लिये प्रत्यय जोड़ा जाता है। नपुंसक सब एकवचन होते हैं, उत्तम पुरुष सर्वनाममें बहुवचनके दुहरे रूप मिलते हैं—एक कहनेवालेका एक सुननेवाले का। लिङ्ग तीनों होते हैं। संज्ञाके दो भेद होते हैं—१. उच्च या सज्ञानी और २. नीच या अज्ञानी। कुछ संज्ञाएँ क्रियाका भी काम करती हैं।

७. इन बोलियोंमें क्रियाएँ कुछ बड़ी अनोखी होती हैं जिनमें पुरुष बतानेके लिये पुरुषवाची सर्वनाम जोड़ा जाता है और सहायक क्रिया लगाकर कर्मवाच्य बनाया जाता है।



§ ७—द्राविड-मध्य-तेलुगु-बाह्याश्च द्राविडे।

[द्राविड बोलियोंमें द्राविड मध्यवर्ती, तेलुगु और बाहरी बोलियाँ आती हैं।]

ऊपर दिए हुए खाँचेको देखकर जाना जा सकता है कि द्राविड गोत्रमें चार बोलियाँ आती हैं—१. द्राविड, २. बीचकी (मध्यवर्ती), ३. तेलुगु, ४. बाहरी।

इनमेंसे द्राविडीमें—१. तमिळ, २. कन्नड़, ३. तुलु, ४. कुडागू या (कुर्गी), ५. टुडा। इनमें भी तमिळमें 'तमिल और मलयालम' और टुडामें 'टुडा और कोड्डा'।

मध्यवर्ती द्राविड बोलियाँ—

बीचकी द्राविड बोलियोंमें—१. गोंड, २. कोंड, ३. कुरुख या ओरावँ, ४. कुई (कंधी) ५. कोलामी। इनमेंसे कुरुख दो ढङ्गकी होती है—१. कुरुख, २. माल्टो।

तेलुगुमें तेलुगु ही आती है।

बाहरीमें ब्राहुई।

तमिल—

तमिळ बोली भारतमें मद्रास नगरके उत्तरसे लेकर कन्याकुमारी तक और लङ्काकी उत्तर और पूर्वी पट्टीमें बोली जाती है। इस बोलीका साहित्य बहुत बड़ा है। इसमें दो बोलियाँ हैं—१. पढ़े-लिखोंकी या पोथियोंकी बोली, जिसे शेन (पूर्ण) कहते हैं, २. देहाती बोली (कोडुन) है। शेनमें संस्कृत शब्द बहुत मिलते हैं। इस बोलीमें नीचे दिए हुए अक्षर ही होते हैं—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए (ह्रस्व) ए, ऐ, ओ (ह्रस्व), ओ, औ, क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, व, ऴ, ळ, ऱ, ऩ, ज, ष, स, ह, क्ष।

इस बोलीमें ख, छ, ठ, थ, फ, ग, ज, ड, द, ब, घ, झ, ढ, ध, भ नहीं होते। इसमें दो 'न' होते हैं पर उच्चारण एक ही होता है 'र' के लिये जो दो अक्षर होते हैं उनका उच्चारण अलग-अलग होता है। इनमें भी अरबी, फ़ारसी, उर्दूके समान नियम है कि लिखते समय कहाँ कौन सा 'र' या 'न' लगाया जाय।

मलयालम्—

कहा जाता है कि मलयालम् भी तमिलकी ही एक बोली है पर वह नवीं सदीके लगभग उससे अलग हो गई। सच बात तो यह है कि मलयालम अलग बोली है जो बहुत दिनोंतक तमिलवालोंके हाथमें पड़नेसे उनके रंगमें रँगी हुई थी पर नवीं सदीसे वह अलग हो गई। यह मलाबारकी पट्टीपर समुद्र और पच्छिमी घाटके बीचकी सँकरी पट्टीमें और लख द्वीपमें बोली जाती है। इसमें पढ़े-लिखे लोग तो संस्कृतसे भरी हुई बोली बोलते हैं पर मोपले मुसलमान इसकी ठेठ बोली ही बोलते हैं। इसमें संस्कृत मिली हुई एक लिखनेकी चलन भी है जिसे 'मणि-प्रवालम्' शैली कहते हैं। इसका साहित्य तेरहवीं सदीसे मिलता है। तिरुवरांकूर (त्रावंकोर) और कोचीनमें यही बोली बोली जाती है। इसमें उतने ही स्वर और व्यंजन हैं जितने नागरीमें, पर तमिलके साथसे इसमें ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' और ऱ, ऴ, ऩ, ऱ, ट़ अक्षर तमिलसे बढ़कर हैं। यह वर्णमाला ही बताती है कि यह तमिलसे अलग है।

कन्नड़—

कुर्गके पूरबकी कुछ पट्टी छोड़कर पूरे मैसूर, हैदराबाद, मद्रासके पच्छिमी भाग और बम्बईके दक्खिन-पूर्वी खंडमें कन्नड़ बोली जाती है। इसकी बोली तो तमिलसे मिलती

है पर लिखावट तेलुगुसे। यही सबसे पुरानी द्राविडी बोली मानी जाती है। इसमें चौथी या पाँचवीं सदीसे साहित्य रचा जाने लगा था। यह बोली बहुत सजावटवाली है।

तुलु, कुडागू, टुडा और कोट्टा—

तुलु बोली कुर्ग और बम्बईकी मेड़पर छोटेसे घेरेमें बोली जाती है। इसमें कोई साहित्य नहीं है, फिर भी कैल्डवेलने इसे संसारकी सबसे बड़ी बोलियोंमेंसे एक माना है। कुडागू भी कुर्गकी बोली है जिसपर कन्नड़ और तुलु दोनोंकी छाप है। इसलिये इसे दोनोंके बीचकी बोली समझनी चाहिए। टुडा और कोट्टा बोलियाँ नीलगिरिके जंगलवाले लोग बोलते हैं पर ये लोग दिन पर दिन घटते जा रहे हैं और इनके साथ इनकी बोली भी।

मध्यवर्ती बोलियाँ—

गोंड बोली बोलनेवाले विन्ध्यप्रदेश बुन्देलखण्डमें रहते हैं। उनकी बोली तमिळसे मिलती है और इसके बोलनेवाले जंगली हैं, इसलिये इनमें कोई साहित्य नहीं है। ऐसे ही कोंड बोली भी उड़ीसाकी पहाड़ियोंपर बोली जाती है और यह भी गोंड ही है और उसीसे मिलती-जुलती है। बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्तकी मेड़पर लगभग पौने नौ लाख लोग तमिळसे मिलती-जुलती कुरुख या ओराँव बोली बोलते हैं। बंगाल-बिहारकी मेंड़पर राजमहलकी पहाड़ीवाले इसी ओराँवकी एक माल्टो बोली बोलते हैं। उड़ीसाके जंगलोंमें तेलुगुसे मिलती जुलती कुई (कंधी) बोली बोली जाती है और उसीसे मिलती-जुलती बरारके पच्छिममें कोलामी बोली जाती है जिसपर मध्यप्रान्तके भीलोंकी बोलीकी बहुत छाप है पर यह भी अब बहुत ठंडी होती जा रही है।

तेलुगु—

हैदराबादके दक्खिन-पूर्वी काँठे और आन्ध्रमें तेलुगु बोली जाती है। यहींके लोग तिलंगे कहलाते हैं। यों तो यहाँ बारहवीं सदीसे ही साहित्य चला पर आजकल तो इन लोगोंने बहुत ही साहित्य बना डाला है। द्राविड परिवारकी यह सबसे मीठी बोली है। इसके शब्दोंके पीछे स्वर या उ लग जाता है।

ब्राहुई—

कुछ लोगोंने बिलोचिस्तानमें बोली जानेवाली ब्राहुईको भी भूलसे द्राविड़ बोलियोंमें मान लिया है पर यह बोली ईरानी, पश्तो और बलूचीकी छाप लेकर बनी हुई मकरानीके ढंगकी अलग बोली है।

द्राविड गोत्रकी बोलियाँ सब अलग-अलग अपने-अपने घेरेमें फलो-फूलीं और बढ़ीं पर उनपर संस्कृतकी बहुत बड़ी छाप पड़ी। इस लेन-देनमें बहुतसे शब्द संस्कृतमें आए, इनके तीन लिंग मराठीमें पहुँच गए और कहा जाता है कि सोलह छटाँकका सेर और सोलह आनेका रुपया भी इन्हींसे चला है।

हिन्द-योरोपीय बोलियाँ

§ ८—संस्कृता हिन्द-योरपी।

[हिन्द-योरोपी गोत्रको संस्कृत गोत्र कहना चाहिए।]

जिसे लोग हिन्द-योरोपीय गोत्रकी बोली कहते हैं और जिसे कुछ लोग इण्डो-जरमन, इण्डो-कैल्टिक, आर्य, जफैटिक बोली भी कहते हैं उसका नाम होना चाहिए संस्कृत गोत्रकी बोलियाँ क्योंकि इन बोलियोंकी जब छानबीन की जाती है तो संस्कृतको सहारा मानकर चलते हैं। यों तो ये लोग मानते हैं कि

संस्कृत भी यूनानी और लातिनके समान किसी आदिम बोलीसे ही निकली है, फिर भी आजकलकी बोलियोंका जब मिलान करते हैं तब संस्कृतको ही सामने रखकर उनकी छानबीन करते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि आर्य लोग मध्य एशियामें थे और वहींसे चारों ओर फैले, पर हम इस बातको नहीं मानते। क्योंकि जो भी पहले लोग रहे होंगे वे नदियोंके किनारे खाने-पीनेकी सुख-सुविधा देखकर ही रहते होंगे और यह सुविधा जितनी सप्तसिन्धु (पंजाब) में है उतनी एशियाके किसी देशमें नहीं है। मनुष्यको सबसे पहले पानी चाहिए, हरा-भरा देश चाहिए जहाँ के फल-फूलसे या जहाँ खेती करके वह काम चला सके। आज भी घना बस्तियाँ नदियोंके किनारे ही हैं। इसलिये पहले आर्य लोग नदीके किनारे त्रिसप्त सिन्धुमें ही रहते होंगे जहाँके लड़ाई-झगड़ोंमें ऊबकर वे लोग इधर-उधर चल दिए होंगे जैसे हम लोगोंके देखते-देखते पूर्वी बंगाल, पच्छिमी पंजाब और सिन्धके लोग इधर चले आए हैं। फिर ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गए होंगे त्यों-त्यों योरपकी ओर फैलते गए होंगे और वहाँके पुराने रहनेवालोंकी बोलियोंपर अपनी छाप डालते गए होंगे।

संस्कृत (हिन्द-योरोपी) गोत्रकी बोलियोंकी विशेषताएँ—

§ ६—**श्लिष्टयोगात्मिकैकाक्षरधातुमूला समासप्रत्ययबहुला संस्कृता।**

[संस्कृत या हिन्द-योरोपी बोलियोंमें बाहरसे प्रत्यय जुटते, एक अक्षरवाली धातु होती और बहुत प्रत्यय होते हैं।]

इस गोत्रकी बोलियोंमें कुछ नई बातें मिलती हैं—

१. इसकी बोलियाँ श्लिष्ट योगात्मक हैं जिनमें योग या

मेल बाहरसे होता है और जो मेलजोड़ (प्रत्यय) जोड़े जाते हैं उनके अर्थका कोई ठिकाना नहीं होता ।

२. इस गोत्रकी बोलियाँ पहले सभी जुटन्त (संयोगात्मक) थीं, पीछे सब अलगन्त या बिखर गईं और उनमें परसर्ग और सहायक क्रियाएँ लगने लगीं।

३. धातुएँ एक अक्षरवाली होती हैं जिनमें प्रत्यय जोड़कर शब्द बनते हैं और ये प्रत्यय भी दो ढङ्गके होते हैं—'कृत् और तद्धित' ।

४. इन बोलियोंके शब्दसे पहले जो उपसर्ग लगाए जाते हैं जैसे 'वि, आ, नि', वे शब्दका अर्थ बदलनेके लिये लगाए जाते हैं। इन बोलियोंमें समास बहुत होते हैं।

५. स्वर बदल देनेसे शब्दका रूप बदल जाता है जैसे 'आओ, आए, आऊँ ।' इनमें 'ओ ए, ऊँ' के हेरफेरसे कालमें हेरफेर हो गया है। इस गोत्रकी बोलियोंमें प्रत्यय बहुत हैं।

मूल संस्कृत या आदिम हिन्द-योरोपी बोली—

§ १०–प्रत्ययान्वितधातुमूलानुपसर्गा त्रिवचनलिङ्गाऽकाल-क्रियान्विता श्लिष्टा चादिभाषा ।

[आदिम हिन्द-योरोपी बोलीमें प्रत्यय जोड़कर शब्द बनते-थे, उपसर्ग आदि नहीं थे तीन वचन और तीन लिङ्ग थे, क्रिया-में काल नहीं होता था और बिभक्तियाँ मिली रहती थीं।]

कुछ लोग मानते हैं कि हिन्द-योरोपी बोलियाँ किसी एक बोलीसे निकली हैं जिसकी बनावटके लिये बहुत अटकल लगाई जा रही है। हम पहले ही बता आए हैं कि 'अलग-अलग नदियों, पहाड़ों, और समुद्रों से हुएघिरे देशोंमें मनुष्योंके

छोटे-छोटे झुण्ड उस अपने छोटे घेरेमें रहकर अपनी बोली बोलते और उसीमें कामकाज चलाते थे। पर आर्योंने वहाँ-वहाँ पहुँचकर अपनी बोलीकी छाप उनपर डाली और वे अलग-अलग बोलियाँ इसकी छाप भर लेकर अपनापन लिए हुए बन रहीं। इसलिये उन्हें किसी हिन्दयोरोपी बोलीकी शाखा न मानकर उसकी छाप भर ही माननी चाहिए और संस्कृतको ही ऐसी बोली माननी चाहिए जो ज्योंकी त्यों पहली बोलीका बनाव-सिंगार लिए अभीतक जी रही है।

हिन्द-योरोपी बोली—

जिन लोगोंने आदिम हिन्दयोरोपी बोलीपर अटकल लगाई है उन्होंने कहा है कि आदिम हिन्दयोरोपी बोलीमें ये ध्वनियाँ थीं—

स्वर—

१. अंतस्थ स्वर—इ, ऋ, ऌ, उ, न, म।

२. मूल स्वर—अ, आ, ऎ, ऒ, औ।

३. संयुक्त स्वर—अइ, आइ, अऋ, आऋ, अऌ, आऌ, अउ, आउ, अन्, आन्, अम्, आम्, ऎइ, एइ, ऎऋ, एऋ, ऎउ, एउ, ऎन्, एन, ऎम्, एम, ऒइ, ओइ, ऒऋ, ओऋ, ऒऌ, ओऌ, ऒउ, ओउ, ऒन्, ओन, ऒम्, ओम।

जिन स्वरोंके नीचे ˇ लगा है वे ह्रस्व हैं।

४. उदासीन स्वर—'अ' यह ह्रस्व स्वरका भी आधा बोला जाता है इसलिये ठीक ठीक नहीं सुनाई पड़ता।

व्यंजन—

१. अंतस्थ व्यंजन—य् र् ल् व् न् म्

२. शुद्ध व्यंजन—

कवर्ग—१. क्‌ ख्‌ ग्‌ घ्‌ इनका उच्चारण न जाने क्या था, कुछ क्य्‌ ख्य्‌ ग्य्‌ घ्य्‌ जैसा रहा होगा।'

२. क़्‌ ख़्‌ ग़्‌ घ़्‌ ये क़ाग़ज़के 'क़' के समान पूरे गलेसे बोले जाते थे।

३. क्‌ ख्‌ ग्‌ घ्‌। ओठ चलाकर बोले जाते थे इसलिये कुछ 'व' की ध्वनि भी आती रही होगी और वह क्व्‌ ख्व्‌ ग्व्‌ घ्व्‌ सा सुनाई पड़ता होगा।

तवर्ग—त्‌ थ्‌ द्‌ ध्‌

पवर्ग—प्‌ फ्‌ ब्‌ भ्‌

ऊष्म—स्‌। यह दो स्वरोंके बीचमें आनेपर 'ज़्‌' बोला जाता था। अन्तस्थ व्यंजन न्‌ और म्‌ ही सब वर्गोंके साथ अनुनासिक व्यंजन बन जाते थे। इसलिये ये कभी कभी ञ और ङ भी बोले जाते थे और अलग न और म भी बन जाते थे। इस बोलीमें कई शुद्ध व्यंजन एक साथ आ सकते थे पर मूल स्वर एक साथ एक ही आ सकता था। इन स्वरोंमें नकियाव (अनुनासिकता) नहीं था।

आदिम बोलीकी विशेषता—

इस बोलीमें कई अनोखी बातें थीं—

१. धातुमें प्रत्यय जोड़कर शब्द बना लिए जाते थे।

२. उसमें न उपसर्ग थे, न मध्यग लगते थे। संज्ञा, क्रिया और अव्यय अलग अलग होते थे यहाँतककि विशेषण और सर्वनाम भी संज्ञामें ही माने जाते थे और अव्ययमें भी बिगाड़ हो जाता था।

३. तीन वचन (एक, दो, और बहु) और तीन लिंग (पुं,

स्त्री, और नपुंसक , क्रियामें तीन पुरुष उत्तम (मैं) मध्यम (तुम) और अन्य पुरुष (वह) थे।

४. क्रियामें कामका होना और उसका फल देखा जाता था, कब हुआ यह नहीं देखा जाता था अर्थात् काल नहीं था।

५. संज्ञाओंमें आठ विभक्तियाँ लगती थीं।

६. समास बनानेमें प्रत्यय छोड़ दिए जाते थे।

७. शब्द बनानेमें स्वरके क्रम अर्थात् स्वरके उतार-चढ़ावका बहुत ध्यान रक्खा जाता था। मेलजोड़ (सम्बन्ध-योग) और अर्थबाँध (शब्द) ऐसे मिले रहते थे कि अलग नहीं हो सकते थे।

८. यह बोली भीतर मिली हुई (श्लिष्ट योगात्मक) थी।

कैन्टुम् और सतम् वर्ग—

§ ११—कँटुंसतमिति द्विधा।

[हिन्द-योरोपी बोलियोंके दो भेद : कँटुम और सतम्।]

लोगोंका कहना है कि यह आदिम हिन्द-योरोपी बोली बोलनेवाले लोग ज्यों-ज्यों अलग हुए त्यों-त्यों उनकी बोलियाँ बिखर गईं। इन सब बिखरी बोलियोंके समूचे झुण्डको हिन्द-योरोपी कहते हैं। सन् १८७० में आकोलीने सुझाव दिया कि आदिम हिन्द-योरोपी बोलीकी गलेकी ध्वनियाँ (क, ख, ग, घ) इस गोत्रकी कुछ बोलियोंमें ज्योंको त्यों रह गई और कुछमें वे ऊष्म स् श हो गई। इसी पर इस गोत्रके दो वर्ग बना लिए गए—कैन्टुम् और सतम्। यह नाम इसलिये डाला गया कि 'सौ' के लिये जो शब्द इन बोलियोंमें मिलते हैं उसमें यह अलगाव पूरा-पूरा दिखाई पड़ता है। इस 'सौ' के लिये 'सतम्' शब्द आवेस्ताका है और 'कैन्टुम' है लातिनका। दोनों झुण्डोंमें

'सौ' के लिये जो शब्द आते हैं उन्हें देख लिया जाय तो दोनों झुण्ड सीधे-सीधे दिखाई पड़ जायँ—

कैन्टुम् वर्ग		सतम् वर्ग	
लातिन	केन्टुम	अवेस्ता	सतम्
इतालवी	केन्टो	संस्कृत	शतम्
फ्रेंच	केन्त	फ़ारसी	सद
ब्रीटन	कैन्ट	हिन्दी	सौ
ग्रीक	हेक्टोन	रूसी	स्तो
गैलिक	क्यड	बल्गेरियन	सुतो
तोख़ारी	कन्ध	लिथुआनियन	श्ज़िम्तास

बहुतसे लोग मानते थे कि पच्छिमकी बोलियोंको कैन्टुम् और पूरबकी बोलियोंको सतम् वर्गका मानना चाहिए, पर अभी पूरबमें हित्ताइत और तोख़ारी दो ऐसी बोलियाँ मिल गईं जिनमें स के बदले क आता है। इसलिये वह पूरब और पच्छिमवाला अलगाव छोड़ दिया गया और अब कैन्टुम्में ये बोलियाँ आती हैं—

१. कैल्टिक, आयरलैण्ड, वेल्स, स्कौटलैण्ड, मानी द्वीप और ब्रिटैनी और कार्नवालकी बोलियाँ जिनका लातिन बोलियोंसे बहुत मेल है। इस कैल्टिक बोलीकी तीन शाखाएँ हैं—१. गालिक, २. ब्रिटानी या ब्रिथोनिक, ३. गोइडैलिक या गाइलिक। ब्रिटानिकमें भी तीन बोलियाँ आती हैं—क. सिमरिक या वेल्स, ख. कार्निश, ग. ब्रीटन या आरमोरिकन। गोइडैलिकमें भी तीन बोलियाँ आती हैं—च. आयरिश, छ. स्कौच् और ज. मैंक्स।

ट्युटोनिक बोली ही हिन्द-योरोपी परिवारकी सबसे बड़ी शाखा है जिसे जर्मनिक भी कहते हैं। इसमें ठेठ जर्मनीको

बोलीको उच्च जर्मन (हाइ जर्मन) और सबको निम्न जर्मन (लो जर्मन) कहते हैं। इस झुण्डकी बोलियाँ धीरे-धीरे जुटन्तसे अलगन्त होती चली जा रही हैं।

ट्यूटोनिक झुण्डकी दो शाखाएँ हैं-१. पच्छिमी और २. पूर्वी।

१. पच्छिमामें भी प्राचीन सैक्सन (कौंटिनेन्टल सैक्सन, ऐंग्लो-सैक्सन और अंगरेज़ी), प्राचीन फ्रिजियन, (उत्तरी, पूर्वी, पच्छिमी) और उत्तरी नीची फ्रैंक (डच, फ्लेमिश, बारबन) वो नीची जर्मन (लो जर्मन) बोलियाँ कहलाती हैं और मध्य फ्रैंक, दक्खिनी फ्रैंक और प्राचीन उच्च जर्मन (बवेरियन, स्वाबियन और अलमानिक) बोलियाँ ऊँची जर्मन (हाइ जर्मन) कहलाता हैं।

२. पूर्वी शाखामें क. उत्तरी ट्यूटोनिक, अर्थात् पूर्वी नौर्स (स्वीडिश, डेनिश), पश्चिमी नौर्स (नौर्वेजियन, आइसलैण्डी) और ख. गोथिक आती हैं।

लातिन झुण्डके दो ठट्ठ हैं—१. लातिन और २. आम्ब्रो-सैमेनिटिक। लातिन वर्गमें १. शुद्ध लातिन और २. प्राकृत लातिन (लिंगुवा रोमान) है जिसके अन्तर्गत इतालवी, रैतोरोमन, रोमानियन, प्रोवेन्स्सल या प्रावेन्केल, स्पेनिश, पुर्तगाली, फ्रान्सीसी और सेफार्डी बोलियाँ आती हैं।

हैलनिक शाखामें पाँच बोलियाँ हैं—क. डोरिक, जिसमें लेकानियन, मैसेनियन, कोरिन्थियन, मैगारन और क्रीटन आदि हैं। ख. उत्तरपच्छिमी, जिसमें फोकिसन, लोक्रोसन और एलिसन आदि हैं। ग. एओलिक, जिसमें उत्तरा थैसालियन, एओलिसन, बोइओदियन आदि हैं। घ. आर्केडियन। ङ. इयोनो-अत्तिका, (इयोनिक और अत्तिकी) हैं।

हित्ताइत बोलियां संस्कृत और लातिनसे बहुत मिलती हैं और ये एशिया माइनरमें ईसासे डेढ़ सहस्र बरस पहले बोली जाती रहीं।

तोखारी बोली शक लोगोंकी बोली समझी जाती है। इसमें सन्धिके नियम संस्कृत जैसे हैं और विभक्तियाँ भी आठ हैं। संख्याओंके नाम भी हिन्द-योरोपीय गोत्रसे मिलते हैं।

सतम्‌की पाँच शाखाएँ मानी जाती हैं—१. इलीरियन, २. बाल्टिक, ३. स्लावोनिक, ४. आरमीनियन, ५. आर्य।

इलीरियन बोलियोंके बोलनेवाले एड्रियाटिक सागरके तीरपर इटलीके दक्खिन-पूरबतक फैले थे। अब इस बोलीका नाम भर रह गया है। इसकी दो शाखाएँ थीं—१. इलारियन, जिसमें वैनेटियन और लिबर्नियन थीं। २. एपिराट, जिसमें अलबेनियन (घेघ और टोस्क) और मैसापियन बोलियाँ आती हैं।

बाल्टिक या लेटिकके भीतर तीन बोलियाँ आती हैं—क. पुरानी प्रशियन, ख. लिथुवानी और ग. लैट्टिश।

स्लावोनिक बोलियोंकी तीन शाखाएँ हैं—१. पूर्वी शाखा, जिसमें बड़ी रूसी, उजली रूसी और छोटी रूसी बोली जाती है। २. पच्छिमी शाखा, जिसमें जेक (बोहीमियन और स्लोवेकियन), सर्बियन और लेकिश (पोलिश और पोलाबिश) बोलियाँ आती हैं। ३. दक्खिनी शाखामें बलगेरियन और इलीरियन (सर्बोक्रोटियन और स्लोवानियन) बोलियाँ आती हैं।

आरमीनियन शाखामें दो बोलियाँ आती हैं—१. फ्रीजियन और २. आरमीनियन, जिसमें प्राचीन और वर्त्तमान (अरारात और स्तम्बोल) बोलियाँ आती हैं।

आर्य गोत्रकी बोलियोंमें लोगोंने दो बड़ी शाखाएँ मानी हैं—१. भारतीय और २. ईरानी। पर इन दोनोंको हिन्द-योरोपीय बोलियोंकी अलग अलग शाखा मानना ठीक नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि ईरानी बोली संस्कृतकी वैसी ही प्राकृत है जैसी महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि थीं और जो अरबी लिखावटमें लिखी जानेसे अलग मानी जाने लगी।

आर्य शाखामें तीन बोलियाँ आती हैं—१. ईरानी, २. दरद् और ३. भारतीय।

ईरानीमें दो शाखाएँ हैं—पूर्वी और पच्छिमी। पूर्वीमें दो बोलियाँ हैं—क. सोगदी या पामीरी बोलियाँ, ख. अवेस्ता जिसमें बर्गिस्ता, पश्तो (पश्तो और पख्तो), देवारी, बलूची, औसेटी, कुर्दी और पहलवी (हुज्वारेश और पाज़न्द), जिससे आजकी फ़ारसी निकली है। पच्छिमोमें मोडियाई और पुरानी फ़ारसी आती है।

दरद्में तीन बोलियाँ आती हैं—१. खोवार या चित्राली बोलियाँ २. क़ाफ़िरी, ३. दरद, जिसमें क. शीना (गिलगिटी और ब्रोक्पा), ख. कश्मीरी (कश्मीरी और कष्टवारी), ग. कोहिस्तानी (मैया, तोरवारी और गार्वी) बोलियाँ आती हैं।

भारतीय बोलियोंको हम चार कालोंमें बाँट सकते हैं—१. प्राचीन भारतीय भाषाकाल (विक्रम सम्वत्के पहलेसे लेकर ५०० विक्रम सम्वत्तक), २. मध्यकालीन भाषाकाल (५०० विक्रम सम्वत्से लेकर १२०० तक), ३. उत्तरकालीन भाषाकाल (१२०० विक्रम संवत्से १७०० तक) और ४. वर्त्तमान भाषाकाल (१७०० विक्रमीसे लेकर आजतक)। पहले कालमें वेद, ब्राह्मण, सूत्र आदिकी वैदिक संस्कृत और काव्यकी संस्कृत आती है। मध्यकालके प्रथम भागमें पालि और अर्ध-मागधी आती है। दूसरे कालमें प्राकृतें आती हैं जिनमें पैशाची, खेतानी, कैकय, खश, मागधी, लाटी, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री और नागर आती हैं। तीसरे कालमें सब अपभ्रंश बोलियाँ आती हैं और चौथेमें आजकलकी बोलियाँ आती हैं।

हमारा मत है कि भाषाओंका वर्गीकरण ठीक नहीं हुआ है। क्योंकि एक शब्दके एक अक्षरके दो रूप मिलने मात्रसे किसी बोलीको एक वर्गमें बाँध देना कोई तुककी बात नहीं है सत्तम्।

वर्गको ही लीजिए तो इसमें आवेस्ता, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दीका तो एक गोत्रमें रहना ठीक है किन्तु रूसी, बलगेरी और लिथुआनियनकी तो प्रकृति ही पूर्णतः भिन्न है। अतः इस प्रकार वर्गीकरण न करके शुद्ध रूपसे तीन आधारोंपर वर्गीकरण करना चाहिए—

१. वर्णमाला, अर्थात् जिन भाषाओंकी ध्वनियाँ एक समान हों उन्हें एक वर्गमें रक्खा जाय। इस दृष्टिसे हम टवर्गवाली और बिना टवर्गवाली बोलियोंके दो वर्ग बना सकते हैं।

२. शब्द-साम्य, जिन भाषाओंमें एक पदार्थ या क्रियाके लिये आनेवाले शब्द एकसे हों।

३. वाक्य-साम्य, जिनमें वाक्यके रूप एक नियमसे बनते हों।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—द्राविड़ बोलियोंमें टेक (प्रत्यय) अलग जोड़े जाते हैं, टवर्ग ध्वनियाँ अधिक रहती हैं, दो वचन (एक वचन और बहुवचन) होते हैं और तीन (पुं, स्त्री और नपुंसक) लिंग होते हैं।

२—द्राविड़ बोलियोंमें चार झुण्डोंकी बोलियाँ आती हैं—१. द्राविड़ (तमिल, मलयालम, कन्नड़, तुलू, कुर्गी), २. बीचकी (गोंड, कुरुक आदि), ३. तेलुगु, ४. बाहरी (ब्राहुई)।

३—हिन्द-योरोपी बोलियोंके गोत्रको संस्कृत गोत्र कहना चाहिए।

४—लोगोंने अटकल लगाई है कि आदिम हिन्द-योरोपी बोलीमें धातुमें प्रत्यय जोड़कर शब्द बनते थे, उपसर्ग आदि नहीं थे, तीन वचन और तीन लिंग थे, क्रियामें काल नहीं होता था और विभक्तियाँ मिली रहती थीं।

५—हिन्द-योरोपीय बोलियोंके दो भेद किए गए—केंटुम् और सतम्।

६—आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि यह बँटवारा ठीक नहीं है। ध्वनि, शब्द और वाक्यकी बनावट जिनमें एक ढंगकी हो उन्हें एक श्रेणीमें रखना चाहिए, एक अक्षर (क और स) पकड़कर नहीं।

चौथी पाली

[हिन्दी कैसे बनी, सँवरी और फैली।]

१

हिन्दी कैसे बनी और फैली ?

हिन्दीकी बनावट और उसका घेरा

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशसे ढलकर या सीधे संस्कृतसे आजकी बोलियाँ निकलीं—ग्रियर्सनने आर्य बोलियोंके दो घेरे माने हैं : भीतरी और बाहरी—चाटुर्ज्याने पाँच घेरे माने हैं : उत्तरी, पच्छिमी, बीचका, दक्खिनी और पूर्वी—आचार्य चतुर्वेदीने सात घेरे माने हैं : का, दा, ओ, नो, चा, रा, एर्—राज करनेवालों और व्यापारियोंसे हिन्दीने बहुत शब्द लिए— ब्रज, अवधी, नागरी आदि हिन्दीके झुंडकी साथिन बोलियाँ हैं।

§ १–संस्कृत-प्राकृतापभ्रंशेभ्यो वा संस्कृताद्भवभाषासृष्टिः।

[संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशसे ढलकर या सीधे संस्कृतसे आजकी बोलियाँ निकलीं।]

बहुतसे लोग मानते हैं कि आर्य लोग पहले पहल बीच एशियामें रहते थे और वहींसे चारों ओर फैले। पर हम पीछे समझा चुके हैं कि वे पंजाब, कश्मीर और अफगानिस्तानके उस फैलावमें रहते थे जिसे तब सप्तसिन्धु कहते थे। उन आर्योंकी सबसे पुरानी बोलीकी साखी ऋग्वेदमें मिलती है जो विक्रमसे कई हजार वर्ष पहलेसे सप्तसिन्धुमें गूँज रही थी। कुछ लोग मानते हैं कि ऋग्वेदकी भाषा 'वैदिक संस्कृत' को ही अपढ़ लोगोंने बिगाड़कर बोलचालकी प्राकृत बना ली थी। कुछ लोग मानते हैं कि पहले लोगोंकी (प्रकृत जनोंकी) बोलचालकी एक प्राकृत भाषा

थी जिसे सँवार-सुधारकर पढ़े-लिखे लोगोंने संस्कृत या मँजी हुई बोली 'संस्कृता वाक्' बना ली। पर ये दोनों मत ठीक नहीं हैं। सच्ची बात तो यह है कि जैसे आज भी पढ़े-लिखे लोगोंकी बोली और गँवारू बोलीमें भेद है वैसे ही पहले भी संस्कृत तो पढ़े-लिखे या मँजे हुए लोगोंकी बोली (संस्कृतजनानां वाक्) थी और उसके साथ एक सबके बोलचालकी बोली (प्राकृत-जनानां वाक्) थी जिसे प्राकृत कहते थे। सबकी बोलचालकी बोलीमें कोई नियम नहीं था। वे अपनी देशी बोलियाँ भी बोलते थे और इधर-उधरसे आने-जानेवाली न जाने कितनी जातियोंकी बोलीके शब्द भी लेते-जोड़ते चलते थे। इसीके साथ-साथ संस्कृत और प्राकृतका भी लेनदेन बराबर चल रहा था। संस्कृतके बहुतसे शब्द लोगोंकी बोलचालमें पड़कर अपना साज बिगाड़कर प्राकृतमें घुलते चले जा रहे थे, इधर प्राकृतके बहुतसे शब्दोंको संस्कृत-वाले सँवार-सुधारकर नियमके साथ अपनी संस्कृतमें अपनाते चले जा रहे थे। पढ़े-लिखे लोगोंकी बोलचाल और लिखा-पढ़ीकी बोली संस्कृत थी इसलिये प्राकृत और प्राकृत बोलनेवाले ओछे ही समझे जाते थे। पर धीरे-धीरे प्राकृतमें भी लोग लिखने-पढ़ने लग गए और उसमें भी पोथियाँ कविताएँ रची जाने लगीं। विक्रमसे लगभग ६०० सौ बरस पहले महावीरने जैन धर्म और बुद्धने अपना बौद्ध धर्म समझानेके लिये देशी 'प्राकृत' बोलियोंको कुछ संस्कृतसे मिला-जुलाकर अर्द्ध मागधी (आधी मागधी आधी संस्कृत) और पाली (पाली हुई) प्राकृतें गढ़कर चलाई। पहले तो इन गढ़ी हुई प्राकृतोंमें धर्म ही समझाया गया पर पीछे चलकर दूसरी देशी बोलियों (प्राकृतों)में और भी ढंगका साहित्य रचा जाने लगा। ऐसी प्राकृतें भारतके अलग-अलग प्रदेशोंमें उन-उन देशोंके नामसे चलीं जैसे पंजाबमें 'पैशाची'

प्राकृत, व्रज और उसके आस पास 'शौरशेनी', मगध (दक्खिनी बिहार) में मागधी, नर्मदाके दक्खिनमें बरारके आस-पास महाराष्ट्री और उत्तर पच्छिमी भारत (अफ़गानिस्तान तथा फारस) में पारसी प्राकृत बोली जाती थी। आजकलकी बोलियोंकी छानबीन करनेवाले लोगोंने ईरानीको आर्य गोत्रकी, भारतीयसे अलग शाखावाली बोली माना है पर यह सचमुच वैदिक संस्कृतकी ही एक प्राकृत थी, जिसके बिगड़े हुए रूप पूर्वी और पच्छिमी ईरानीमें मिलते हैं, जो वैसी ही प्राकृत है जैसे शौरसेनी या मागधी। ये प्राकृतें विक्रमसे लगभग सात सौ बरस पहलेसे लेकर बारह सौ बरस पीछेतक लिखी-पढ़ी-बोली जाती रहीं पर साथ-साथ ऊँचा साहित्य और आर्योंके दर्शन-पुराण-इतिहासकी पोथियाँ संस्कृतमें ही रची जाती रहीं।

धीरे-धीरे जब प्राकृत बोलियाँ भी लिखा-पढ़ीकी बोलियाँ हो गईं और व्याकरणके नियमोंमें बँध चलीं तब उनमें भी बिगाड़ आने लगा और इन बिगड़ी हुई बोलियोंमें या अपभ्रंशोंमें भी लगभग ५०० विक्रम संवत्से लगभग बारह सौ विक्रमीय संवत्-तक साहित्य रचा जाता रहा।

यह अपभ्रंश भी प्राकृतोंके बिगाड़से उनके नामपर बनी, जैसे शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री अपभ्रंश। व्याकरण लिखनेवालोंने अपभ्रंशके तीन रूप माने थे—१. नागर, २. व्राचड़ और ३. उपनागर। इसमेंसे नागर अपभ्रंश तो गुजरातमें बोली जाती थी जिसे हेमचन्द्रने शौरसेनी प्राकृतसे निकला हुआ बताया। व्राचड़ सिन्धमें बोली जाती थी और उपनागर अपभ्रंश नागर और व्राचड़के मेलसे बनी थी इसलिये यह पच्छिमी राजस्थान और पंजाबके पच्छिम-दक्खिनी फैलावमें बोली जाती रही होगी। हेमचन्द्रने जिस अपभ्रंशकी बात छेड़ी है उससे राजस्थानकी

डिंगल बोलियाँ या गुजराती ही बनी है। हेमचन्द्रने जिसे शौरसेनी अपभ्रंश कहा है वह आभीरोंकी अपभ्रंश रही और राजस्थान तथा उत्तर-पूर्वी गुजरातमें बोली जाती रही। इसमें रासक (यात्रा-काव्य या प्रवास-काव्य) बहुत लिखे गए जिनमें कोई व्यापारी अपनी घरवालीको छोड़कर व्यापारके लिये बाहर जाता है और वहाँसे बहुत दिनोंपर लौटता है। उस बीच उसकी पत्नी उसके बिछोहमें दुखी होती है और फिर उसके लौटनेपर सुखी होती है। ऐसी लगभग ७२ अपभ्रंश बोलियाँ गिनाई गई हैं जिसका अर्थ यह है कि छोटे-छोटे जनपदोंमें लोगोंने प्राकृतोंको बिगाड़कर अपने-अपने घरकी अपभ्रंश बना ली थी। इतनी अपभ्रंश बोलियाँ क्यों बनीं इसका सीधा कारण यह भी था कि शक, हूण सीथियावाले आदि जो लोग बाहरसे आए वे अपने साथ अपनी बोलियोंका जोड़ तोड़ लेते आए और यहाँकी बोलीसे मिलाकर एक नई बोली बना बैठे।

उन दिनों उत्तर-भारतमें छोटे-छोटे राज्य बन गए थे और सब आपसमें लड़ते-भिड़ते और अपनी बोलियोंमें लिखते-पढ़ते थे। इसलिये अपभ्रंश बोलियोंमें भी साहित्य रचा जाने लगा और वे भी बिगड़ चलीं। इसी बीच मुसलमानोंकी चढ़ाइयोंने इन बोलियोंमें तुर्की, फ़ारसी और अरबके शब्द भरे। अलग-अलग देशोंके एक एक बड़े घेरे (प्रान्त) के लिये एक बोलीमें सन्त और भक्त उपदेश देने लगे। उन्हींकी भाषाओंने जहाँ अलग-अलग प्रादेशिक बोलियाँ बाँधकर उन्हें पक्का किया वहीं उन्होंने मिलकर अपनी सधुक्कड़ी बोलीके लिये उत्तर-भारतकी हिन्दी, हिन्दवी, रेखता, भाषा या नागरी भी अपनाली, जिसमें अमीर खुसरोने अपनी मुकरनी और पहेलियाँ लिखी थीं।

यहाँकी बोलियोंकी छान-बीन करनेवालोंने भूलसे यह मान

लिया है कि आजकी सभी देशी बोलियाँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशमेंको ढलकर आई हैं। पर ऐसी बात नहीं है। कुछ बोलियाँ सीधे संस्कृतसे ही बनी हैं, जैसे—अन्तर्वेद (मेरठ-मुजफ्फरनगर) की नागरी। हम बता आए हैं कि नदियों, पहाड़ोंसे घिरे छोटे-छोटे घेरोंमें लोगोंकी अपनी-अपनी बोलियाँ बोली जा रही थीं। उन देशोंपर आर्योंने अपनी छाप डाल दी, जिससे वे बोलियाँ सीधे संस्कृतसे शब्द लेकर कुछको ज्योंका त्यों (तत्सम) और कुछको बिगाड़कर (तद्भव) काममें लाने लगे। ऐसे ही बोलियाँ बन चलीं।

भारतकी आर्यभाषाएँ

§ २—अन्तर्मध्यबहिर्वृत्ताश्रितार्यभाषेति ग्रियर्सनः।

[ग्रियर्सनने भारतीय बोलियोंके दो घेरे माने हैं—भीतरी और बाहरी।]

जौर्ज ग्रियर्सनने भारतकी आर्य भाषाओंको तीन शाखाओंमें बाँटा है—

क. बाहरी शाखा, जिसके पश्चिमोत्तरी समुदायमें लहँदा और सिन्धी; दक्खिनी समुदायमें मराठी और पूर्वी समुदायमें उड़िया, बंगाली, असमी और बिहारी।

ख. बीचकी शाखा, जिसमें पूर्वी हिन्दी आती है।

ग. भीतरी उपशाखा, जिसके भीतरी समुदायमें पच्छिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी और राजस्थानी है और पहाड़ी समुदायमें पूर्वी पहाड़ी या नेपाली, बीचकी पहाड़ी और पच्छिमी पहाड़ी बोलियाँ हैं।

§ ३—दिङ्मध्यभेदात्पञ्चधेति चाटुर्ज्या।

[उत्तरी, पच्छिमी, बीचकी, पूर्वी और दक्खिनी, ये पाँच वर्ग सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने माने हैं।]

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या कहते हैं कि भारतीय आर्य भाषाओंका यह वर्गीकरण होना चाहिए—

क. उत्तरी, जिसमें सिन्धी, लहँदा और पंजाबी आती है।

ख. पच्छिमी, जिसमें गुजराती आती है।

ग. बीचकी, जिसमें राजस्थानी, पच्छिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी आती है।

घ. पूर्वी, जिसमें, बँगला, उड़िया और असमी आती है।

ङ. दक्खिनी, जिसमें केवल मराठी आती है।

§ ४—कादाजोनोचारारएरित्याचार्याः।

[आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि वर्त्तमान भारतीय आर्य बोलियोंके सात वर्ग हैं : का, दा, जो, नो, चा, रा और एर्।]

आचार्य चतुर्वेदीका मत है कि न तो अन्तरंग और बहिरंग (भीतरी और बाहरी) कहकर भारतकी आर्य बोलियोंको बाँटा जा सकता है न उत्तरी, पच्छिमी, बीचकी, पूर्वी और दक्खिनी कहकर। भारतकी आर्य बोलियोंके बिलगावकी सबसे अच्छी पहचान उनका संबंधका चिह्न है। हमें यदि कहना हो 'रामका घोड़ा, तो ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही, पहाड़ी, जयपुरी, बघेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, बोलियोंमें यह 'का' बराबर मिलता है। पहाड़ी बोलियोंमें रामोक् घोड़ो, नेपालीमें रामको घोड़ो, अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ीमें रामके घोरा, ब्रजमें रामकौ घोरो या रामकौ घोरो, बुन्देली और जयपुरीमें रामको

घोरो, मगही और भोजपुरीमें रामकऽ या रामकै घोड़ा और नागरीमें रामका घोड़ा हो जाता है। यह पूरा क्षेत्र 'का' बोलियोंका क्षेत्र है। इस क्षेत्रके पच्छिम-उत्तरमें 'दा' वर्गकी पंजाबी और लहँदा बोलियाँ हैं जहाँ 'रामदा घोड़ा' कहते हैं। इसके दक्खिन-पच्छिममें सिन्धी और कच्छी बोलियोंका 'जो' क्षेत्र है जहाँ 'रामजो घोरो' कहते हैं। इसके पूरब राजस्थानमें 'रा' वर्गका क्षेत्र है जहाँ 'रामरा या रामरो घोड़ो' कहेंगे। इस क्षेत्रके दक्खिन-पच्छिममें गुजरातीका 'नो' क्षेत्र है जहाँ 'रामनो घोड़ो' कहते हैं। 'नो' क्षेत्रके दक्खिनमें कोंकण तक और पच्छिममें विदर्भ तथा नागपुर और उसके आगे तक मराठीका 'चा' क्षेत्र है जहाँ 'रामचा घोड़ा' कहते हैं। फिर बँगला, उड़िया और असमीका 'एर्' क्षेत्र है जहाँ 'रामेर अश्व' हो जाता है। इस प्रकार आर्य बोलियोंके सात वर्ग हैं—का, दा, जो, नो, चा, रा और एर्।

इस ढंगसे आर्य बोलियोंका बँटवारा ठीक और सीधे समझमें आ सकता है क्योंकि चाटुर्ज्याने उत्तरीमें सिन्धी और पंजाबीको एक वर्गमें रख दिया पर सिन्धी और पंजाबीका कोई मेल नहीं है। ऐसे ही राजस्थानी और हिन्दीकी बनावटमें तो डिंगल और पिंगल वालोंने ही भेद बनाकर रख दिया था, फिर उनको बीचकी बोलियोंके साथ कैसे रक्खा जा सकता है।

उर्दू—

कुछ लोग उर्दूको हिन्दीसे अलग मानते हैं। पर उसे अलग माननेका कारण यही है कि वह फ़ारसी लिपिमें लिखी जाने लगी, जैसे अरबी लिखावटमें आजानेसे फ़ारसीको भी लोग भारतीय भाषाओंसे अलग समझने लगे। यदि इन सबकी लिपि नागरी होती तो यह भेद जो आज समझा जा रहा है वह

न होता। हाँ, उर्दूकी बनावटकी पहचानके लिये उसे मुसलमानी नागरी कह सकते हैं जिसमें संज्ञा और विशेषण अरबी और फ़ारसीसे लदे होते हैं।

हिन्दुस्तानी—

जहाँतक हिन्दुस्तानीकी बात है वह तो इसी हिन्दीका योरोपीय लोगों-द्वारा दिया हुआ नाम है। गाँधीजी एक हिन्दुस्तानी चलाना चाहते थे जिसमें सब बोलियोंकी खिचड़ी हो पर ऐसी बनावटी बोली चल नहीं सकती थी इसलिये वह जहाँकी तहाँ रह गई।

ग्रामीण बोलियाँ—

कुछ लोगोंने भूलसे ब्रज और अवधी जैसी सम्पन्न बोलियोंको ग्रामीण बोलियाँ लिख दिया है। इनमेंसे बाँगरू, जट्ट (खड़ी बोलीकी देशी बोली) और भोजपुरीको ग्रामीण मान सकते हैं पर अब भोजपुरीमें भी अच्छा साहित्य रचा जाने लगा है। इसलिये बाँगरूको छोड़कर ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि सब साहित्यिक बोलियाँ हैं। उन्हें ग्रामीण या गँवारू कहना ठीक नहीं है क्योंकि उनके भी दो रूप चलते हैं, एक साहित्यका और दूसरा सबको बोलचालका।

हिन्दीकी बनावट—

§५—शासन-व्यापारप्रभावेनान्यभाषा-शब्दग्रहणं हिन्द्याम्।

[राज करनेवालों और व्यापारियोंसे हिन्दीने बहुतसे शब्द ले लिए।]

हिन्दी बोली जिस नागरी रूपमें सबके बोलचाल और काम-काजकी बोली बनी है उसकी अपनी ठेठ बनावट तद्भव की है।

उसमें कहा जाता है—'फुलवारीमें फूल खिले हुए हैं'। पर आजकलकी नागरीमें कहा जाता है—'उद्यानमें प्रसून विकसित हैं।' इससे जान पड़ेगा कि नागरी हिन्दीमें अब संस्कृतके तत्सम शब्द लानेकी चाल चल पड़ी है। पर साथ ही जिन-जिन बोलियोंका हमारी बोलीसे मेल हुआ उनके भी शब्द हमने अपना लिए, जैसे—अरबी, तुर्की, पश्तो, फ़ारसी, अँगरेजी, पुर्तगाली, डच, और फ्रान्सीसी शब्द। ये सब विदेशी शब्द दो कारणोंसे आए—१. या तो इन बोली बोलनेवालोंका हमपर राज होनेसे और २. या आपसमें व्यापारसे। पर इस लेनदेनमें हमने संज्ञा और विशेषण ही लिए हैं, अपना ढाँचा और अपनी बनावट नहीं बदली। इस बनावटको देखते हुए दो तो नागरीके सच्चे रूप हैं—१. ठेठ (तद्भवनिष्ठ), और २. संस्कृतभरा (संस्कृतनिष्ठ) और दो बनावटी रूप हैं—१. उर्दू (अरबी-फ़ारसीनिष्ठ) और खिचड़ी (सर्व-भाषानिष्ठ)। आजकल नागरी संस्कृतनिष्ठ हो चली है।

§ ६—ब्रजभाषादि सहचर्यः।

[ब्रज, अवधी, नागरी आदि हिन्दी झुंडकी साथिन हैं।]

इस नागरी (मेरठ-मुज़फ़्फ़रनगरकी बोली) की साथिन बोलियोंमें ब्रज, अवधी, बुन्देलखंडी, मालवी, बघेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, मैथिल, पहाड़ी और मगही बोलियाँ आती हैं जिनमेंसे कुछका अपना-अपना साहित्य भी है।

सारांश

अब आप समझ गए होंगे कि—

१—संस्कृत और प्राकृत साथ-साथ चलती थी।

२—संस्कृतको प्राकृतसे मिलाकर महावीरने अर्द्धमागधी और बुद्धने पालि चलाई।

३—संस्कृतके साथ-साथ प्राकृतोंमें भी साहित्य रचा जाने लगा।

४—प्राकृतोंके बिगड़नेपर अपभ्रंशमें भी पच्छिमी राजस्थान और उत्तरपूर्वी गुजरातमें साहित्य रचा गया और रासक लिखे गए जिसकी देखादेखी राजस्थानीमें 'रासो' बने।

५—कुछ बोलियाँ सीधे संस्कृतसे आजकी बोलियोंमें ढलीं।

६—कुछ बोलियाँ अपने साँचेमें संस्कृतको घोलकर बनीं।

७—ग्रियर्सनने भारतीय आर्य भाषाओंके दो घेरे माने हैं—१. भीतरी और २. बाहरी। चाटुर्ज्याने उत्तरी, पूर्वी, बीचकी, पच्छिमी और दक्खिनी पाँच वर्ग माने हैं।

८—आचार्य चतुर्वेदीने सात वर्ग माने हैं : का दा जो नो चा रा एर्।

९—जिन्होंने हमपर राज किया या हमसे व्यापार किया उन सबकी बोलियोंके शब्द लेकर हमने संस्कृतके तत्सम और तद्भवसे मेरठ-मुज़फ़्फ़रनगरकी बोलीको सँवारकर नागरी बोली बनाई जो अब संस्कृत शब्दोंकी ओर झुक रही है।

१०—हिन्दी झुंडकी साथिन बोलियोंमें ब्रज, अवधी, बुन्देलखंडी, छत्तीसगढ़ी, बघेलखंडी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, मैथिल, पहाड़ी और मगही आदि बोलियाँ आती हैं।

॥ अनेक भाषावित् साहित्याचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी-द्वारा विरचित भाषालोचन ग्रन्थकी चौथी पाली एक अध्याय और छः सूत्रोंमें पूर्ण हुई ॥

॥ इति भाषालोचनं सम्पूर्णम् ॥

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving